हरियाना प्रदेश का लोकसाहित्य

[लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा पी एच० डी०
के उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध]

लेखक
डाक्टर शंकर लाल यादव
एम० ए०, पी-एच० डी०

हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद

—प्रकाशक—
हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

प्रथमावृत्ति—२०००, १९६०
मू० १२) रु०

प्रकाशकीय

भारतीय लोकजीवन की पुरातन और अधुनातन मान्यताओं की अभिव्यक्ति यदि एक साथ देखनी हो तो लोकसाहित्य की ओर दृष्टिपात करना चाहिये। गीतों, गाथाओं, कथाओं और कहावतों आदि में लोक-संस्कृति की जो धारा बही है, वह अक्षुण्ण और सार्वकालिक है। हिन्दुस्तानी एकेडेमी ने पिछले कई वर्षों से हिन्दी भाषी प्रदेश के विशिष्ट क्षेत्रों के लोक-साहित्यिक अध्ययन का प्रकाशन किया है। डाक्टर शंकरलाल यादव का प्रस्तुत अध्ययन "हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य" इसी दिशा में आगे बढ़ा हुआ एक कदम है।

हरियाना, हिन्दी क्षेत्र का सीमान्त प्रदेश है। किसी समय यह प्रदेश आर्य सभ्यता एवं संस्कृति का केन्द्र था। पुराण और पुराणेतर साहित्य में इस प्रदेश को विशेष महत्व प्राप्त हुआ है। तात्पर्य यह कि संस्कृति की गरिमा से परिपूर्ण इस प्रदेश का लोकसाहित्य समृद्ध है।

विद्वान् लेखक ने गहन अध्ययन के बाद हरियाना-प्रदेश के विभिन्न रूपों—लोकगीत, लोककथा, लोकगाथा तथा अन्य प्रकीर्ण साहित्य का गवेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। इसमें भाषाशास्त्रीय प्रमुख विश्लेषणों के साथ सांस्कृतिक और ऐतिहासिक पक्ष पर भी प्रामाणिक अध्ययन है। परिशिष्ट में एक बृहद् शब्दसूची भी दी गयी है। तीन गीतों की स्वर लिपि भी है।

आशा है, लोकसाहित्य के अध्येताओं के लिये यह पुस्तक उपादेय सिद्ध होगी और विद्वत्समाज में समादृत होगी।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद

विद्या भास्कर
मन्त्री तथा कोषाध्यक्ष

उपोद्घात

किसी देश की कृष्टि और संस्कृति का परिचय उस देश के लोकसाहित्य में पर्याप्त मात्रा में मिल जाता है। लोकसाहित्य जन-जीवन का आइना है। इस दर्पण में अनगढ़ जनता की भावनाओं का, सुख दुखभरी विविध मनोवृत्तियों का प्रतिफलन होता है। नागर साहित्य में भाव और विचारों का प्रकाशन कलात्मक ढंग से, भाषा और कथन शैली के परिष्कार के साथ होता है परन्तु लोकसाहित्य में वह बिना किसी सजावट, बिना किसी बनावट के, स्वतः प्रस्फुटित होता है। लोकसाहित्य वह पौदा है जिसे किसी माली ने न तो सींचा और न काटा छाँटा है, वह तो बिना विशेष परिपोषण के पुष्पित और फलित होता है। इसलिए इसकी सुगंधि मंद और भीनी होती है। साहित्यिकता, संगीतात्मकता और कलात्मकता का लोकसाहित्य में नागर-साहित्य के समान उत्कर्ष नहीं मिलेगा परन्तु साहित्य, संगीत और कला का मूल प्रेरक स्रोत लोकसाहित्य और लोक गीतों में ही निहित है। भाषा का मूल रूप भी इसी साहित्य में प्राप्त होता है।

भारतीय जन जीवन आदि काल से ही अपने सुख-दुख की बात को सहज अकृत्रिम ढंग से लोकसाहित्य के विविध रूपों में प्रकट करता आया है। आदिकाव्य रामायण के रचयिता महर्षि वाल्मीकि लिखित साहित्य के आदि कवि कहे जाते हैं। उनसे पूर्व भी लोक जीवन की सुख दुखात्मक अनुभूतियाँ तत्कालीन जन भाषा में प्रकट हुई होंगी, परंतु आज उनके आकलन का लिपिबद्ध लेखा नगण्य है। लोकसाहित्य की धारा तब से अब तक भाषा परिवर्तन के साथ बहती चली आ रही है।

पाश्चात्य देशों में लोकसाहित्य का संकलन और उसके अध्ययन का कार्य १६ वीं शताब्दी के आरंभ से ही गंभीरता के साथ होने लगा था। इन्हीं पाश्चात्य मनीषियों से प्रेरणा पाकर हमारे यहाँ लोकसाहित्य का अध्ययन प्रारम्भ हुआ। हिन्दी में लोकसाहित्य संग्रह का व्यवस्थित कार्य पं० रामनरेश त्रिपाठी जी ने किया। उन की 'कविता कौमुदी' इस दिशा की प्रथम पुस्तक मानी जाती है। आगे चलकर विश्वविद्यालयों में भी इस साहित्य के अध्ययन का कार्य आरंभ हुआ।

कई वर्ष हुए मैंने अपने निरीक्षण में लोकसाहित्य से संबंधित तीन विषय—भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन, अवधी लोकसाहित्य का अध्ययन तथा

बुंदेलखण्डी लोकसाहित्य का अध्ययन—तीन विद्यार्थियों को दिये। डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने अथक परिश्रम के साथ कार्य करके भोजपुरी लोक साहित्य पर प्रबंध पूरा कर दिया और उन्होंने पी० एच डी० की उपाधि भी प्राप्त की, परन्तु अन्य दो विषयों पर कार्य पूर्ण न हो सका। ब्रज लोकसाहित्य का, डा० सत्येन्द्र जी का अध्ययन इस समय तक हिन्दी जगत् में आ चुका था। इसी बीच सन् १९५१ ई० में श्री शंकर लाल यादव (अब डा० यादव) ने इस विश्वविद्यालय में हिंदी अनुसंधान के लिए प्रवेश लिया और उन्हें मैंने उनकी अभिरुचि के अनुसार अपने निर्देशन में 'हरियाना प्रदेश का लोकसाहित्य' विषय के अध्ययन का कार्य दिया। डा० यादव हरियाना क्षेत्र में ही एक डिग्री कालेज के हिंदी विभाग के अध्यक्ष के रूप में कार्य कर रहे थे। उनकी मेधा और उनके उत्साह का परिचय मुझे मिल चुका था। उन्होंने बड़ी लगन और परिश्रम के साथ यह कार्य सन् १९५७ में पूरा कर लिया और इस कृति पर उन्हें इस विश्वविद्यालय ने पी एच० डी० की उपाधि प्रदान की।

डा० यादव ने अपने इस शोध प्रबंध में हरियानी खड़ी बोली के लोकगीत, लोक कथा, लोक गाथा तथा अन्य प्रकीर्णक लोकसाहित्य के रूपों का अध्ययन किया है। इसके साथ ही उन्होंने लोकसाहित्य के रमणीयतम रूप 'लोक-नाट्य' पर भी विशेष प्रकाश डाला है। इस प्रकार का अध्ययन इस कोटि के अन्य अध्ययनों में नहीं है। लोकगीतों में मार्मिकता एवं सहजानुभूति है तथा चित्रात्मकता का मैना योग रहता है—यह एक मल्हार गीत में, मुझे डा० यादव ने एक समय सुनाया था, बड़े सुंदर रूप से बैठा है —

> गोरया चाल्या छूट के होलिया लाग्यी राड़।
> क्यूँकर पड़ऊँ आपके सिरे गोड्याँ गड़ दस नाय॥
> मेरी बावली मरठोर।

प्रबंध के अन्त में नागरू खड़ी बोली का एक संक्षिप्त शब्द कोष भी डा० यादव ने दिया है। मेरे विचार में यह अनुसंधान कृति रचना और उपादेयता, दोनों दृष्टियों से उच्च कोटि का है। डा० यादव इस समय लखनऊ विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में लोकसाहित्य के विशेषज्ञ प्राध्यापक हैं। उनकी लेखनी से लोक और नागरसाहित्य के अन्य ग्रंथ भी प्रसूत हों, यह मेरी मंगल कामना है।

लखनऊ विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग की ओर से हमने भी कुछ प्रकाशन हिन्दी-संसार के सम्मुख प्रस्तुत किये हैं। इस ग्रंथ का भी हम

छापते परम हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग (उत्तर प्रदेश) ने इस शोध प्रबंध के प्रकाशन का कार्य अपने हाथ में लिया है। इसके लिए हम एकेडेमी की सराहना करते हैं। आशा है, इस ग्रन्थ के प्रकाशन से लोकसाहित्य के अध्ययन की अभिरुचि उद्दीप्त होगी और हिन्दी जगत् लाभान्वित होगा।

—दीनदयालु गुप्त

डा० दीनदयालु गुप्त
एम० ए०, डी० लिट्०
अध्यक्ष,
हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाएँ,
लखनऊ विश्वविद्यालय
विजयदशमी, २०१७

प्रस्तावना

यदि साहित्य समाज का दर्पण है तो यथार्थ में लोकसाहित्य समाज की आत्मा का उज्ज्वल प्रतिबिम्ब है। किसी देश की जातीय, राष्ट्रीय, साहित्यिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक एवं आर्थिक माप के लिए यदि कोई वास्तविक पैमाना हमारे पास है तो वह उस देश का लोकसाहित्य ही है। यह अपने असंस्कृतरूप में ही आकर्षक, अपनी कच्ची अवस्था में ही मधुर और अपनी हीनस्थिति में ही उच्च तथा महान् है। उसके वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित अध्ययन की हिन्दी में बड़ी कमी रही है। मैंने इस पुस्तक रूप में 'हरियाना प्रदेशीय लोकसाहित्य' का अध्ययन प्रस्तुत किया है। समूचे हरियानी लोक वाङ्मय को एक ही स्थान पर छूने का अथवा अनुशीलन की सामर्थ्य मुझ में नहीं है। मैंने केवल कतिपय नमूने पाठकों के समक्ष रखे हैं। परन्तु जब गुलाब में कंटक है, मयंक में अंक है तब प्रस्तुत कृति में भी पाठकों को कुछ स्खलन एवं त्रुटियाँ मिलें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। फिर भी, यदि इस पुस्तक से हिन्दी लोकवार्ता साहित्य का तनिक भी उपकार हुआ अथवा नाममात्र को भी किसी अभाव की पूर्ति हुई और साथ ही पाठकों का कुछ भी मनोरंजन हुआ, तो मैं अपना प्रयास सफल समझूँगा।

"एवं चेत् परितोषाय विदुषां कृतिनो वयम्"

—शंकरलाल यादव

वक्तव्य

१९४९ की बात है। मैं रेवाड़ी कालेज में हिन्दी प्राध्यापक रूप में पहुँचा। वहाँ पर छात्रावास में रहने तथा स्थानीय निवासियों के सम्पर्क में आने से जनपदीय बोली के साथ मेरा परिचय हुआ। संस्कृत व्याकरण, निर्वचन शास्त्र के अध्ययन और भाषातत्व विज्ञान की शिक्षा ने मेरे भीतर भाषा के रहस्यों की खोज के प्रति जो आग्रह उत्पन्न कर दिया था उसे अब अपने विकास के लिए क्षेत्र मिला।

मैं अवसर की प्रतीक्षा में था। सौभाग्य से मेरे अनन्य शुभचिंतक, सुहृद् और मुझे साहित्य क्षेत्र में सतत समुत्साहित किये रहनेवाले अग्रज सदृश रामेश्वर जी, एम. ए. (कोसली रेवाड़ी) ने १९५१ के अन्त में मेरी प्रवृत्ति को समझकर एक लोक संवादात्मक नाटक का अभिनय कराया। मैंने यह अनुभव किया कि वे नाटकीय संवाद जो हरियानी बोली में थे, अपेक्षाकृत विशेष आकर्षक थे। इस नाटक के सम्भाषण और गीतों में, राग और रागिनियों में ओजस्विता, सामाजिकता, लोकवातातत्व और भाषायीतत्व प्रधानता से उपलब्ध थे। अब मैंने अपने को उस बोली के निकट पाया जिसने आधुनिक खड़ी बोली हिन्दी के निर्माण व विकास में एक महत्वपूर्ण कार्य किया है और जिसकी इस दिशा में एक मौलिक देन है। ऐसे ही कारणों से मेरी रुचि हरियानी बोली की ओर विशेषरूप से जागरूक हुई। मैंने स्वयं कुछ सामग्री एकत्र की और अपने कुछ छात्रों को भी ऐसा करने के लिए प्रेरित किया।

१९५२ के मध्य में, लखनऊ विश्वविद्यालय में हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग के अध्यक्ष डा० दीनदयालु जी गुप्त से मेरी भेंट हुई। मैंने हरियानी बोली के लोकसाहित्य के अध्ययन का अपना विचार उनके समक्ष रक्खा। डा० गुप्त जी ने मेरी प्रार्थना पर विचार किया और सहायता पहुँचाने का आश्वासन ही नहीं दिया, अपितु अपने विश्वविद्यालय में अन्तेवासी के रूप में मुझे खोज कार्य की अनुमति प्रदान कर कृतसंकल्प भी किया।

अब मेरा विचार हरियाना प्रदेश के लोकसाहित्य का वैज्ञानिक रीति पर अध्ययन करने का था। इसके लिए यह आवश्यक था कि सामग्री सब

प्रकार से यथार्थ एव विशुद्ध हो। अत मैंने इस कार्य की यथार्थता के लिए साधारण से साधारण कठिनाइ भी उठाकर नहीं रखी है। इस सामग्री को स्वय उस प्रदेश में घूम घूमकर मैंने एकत्र किया है और फलस्वरूप कई बार परिव्राजक बनकर हरियाना प्रदेश म भ्रमण करता फिरा हूँ। इस सग्रह का प्रतिशब्द मैंने जनता के मुख से सुनकर लिखा है और सग्रहीत किया है। प्रदेश के तीर्थों, मेलों, मठों और समाधियों पर भी मैंने अपनी उद्देश्यपूर्ति के लिए श्रद्धा के पुष्प चढाये हैं और प्रचुर सामग्री एकत्र की है।

एक कहावत है, "बारह कोस पर पाणी और बाणी बदल जाते हैं।" अत मैंने बोली के इस सूक्ष्म परिवर्तन को समझ सकने और लिख सकने के लिए अपने पड़ाव प्राय १८-२० कोस पर लगाये जिससे न्यून से न्यून परिवर्तन भी मेरी पकड़ से नहीं बच सके हैं। मेरे दौरों की कठिनाइयाँ अपना पृथक् अस्तित्व एव इतिहास लिए हुए हैं। मैं जिस गाँव में जाकर उतरता ग्रामीण जनता के लिए एक कौतूहल की वस्तु बन जाता था। वे न समझ पाते कि एक व्यक्ति जो पढ़ा लिखा है, सभ्रात एव स्वच्छ वेशभूषा धारण किये है, कवल कार्य करता है—हाली हाली (ग्वाले) से कहानी सुनना, उनका सभाषण सुनना और बूढ्ली (वृद्धा) लुगाइयों से पुराने गीत सुनना आदि। अधिकतर जनता मुझे सी० आइ० डी० (गुप्तचर) विभाग का कोई अधिकारी समझती और मेरी उपस्थिति को सदैव सदिग्धरूप से देखती। अनुनय करने पर भी वे लाग मेरी बात पर ध्यान न देते और ओले टाले मारकर मसखरी करके नौ दो ग्यारह हो जाते। वयस्क ग्वालिए अवश्य एक आध अश्लील-सी रागणी सुना देते जो सभवत उनकी भावी नायिका की रूपरेखा मात्र खींचती थी। ऐसी स्थिति म स्त्री-गीतों को लेखनीबद्ध करने की तो बात ही दूर थी। इस सहज एव निर्मूल ग्राम सुलभ आशका ने मेरे सामने कई बार प्रतिकूल परिस्थितियाँ तक उपस्थित कीं, जिनका वणन यहाँ अपेक्षित नहीं है। इतना लिखना तो अवश्य अप्रगत न होगा कि मुझे कई बार इन प्रतिकूल परिस्थितियों से बचने के लिए वहाँ से खिसकना पड़ा है। अनेक बार निराश कर देनेवाली कठिनाइयाँ आईं, परन्तु 'परदेश कलेस नरेसहुँ को' के साथ धैयपूर्वक उन्हें भी सहा है।

अपने उद्देश्य म रत, मैंने मान अपमान, भूख-प्यास आदि की चिंता न की और अपनी यात्राओं पर बराबर बढ़ता रहा। जनता ने भी मेरी क्षमता तथा साहस को पहचाना। अब कुछ लोग मेरी बात सुनने लगे। कुछ अपनी सतत उपस्थिति, मृदुल स्वभाव एव सिधाइ से मैंने जनता को

अन्तत अपनी ओर आकर्षित कर ही लिया और उनका भ्रम दूर हुआ। गाँव के सरपंच, स्कूलों के अध्यापक एवं अन्य पेशेवाले लोग मेरे इस कार्य का कुछ कुछ महत्व पहचानने लगे। इस उद्योग एवं अध्यवसाय से जो निरन्तर चार वर्षों तक चलता रहा, मेरे पास मिलाकर कोई दो सहस्र छोटे बड़े गीत और कई सौ कहानियाँ सङ्कलित हो गईं।

इस संग्रह की मेरी अपनी योजना रही है। खेत-क्यार में कीकड़ की छाया में बैठकर, खेत-रक्षक के मचान पर चढ़कर, घसियारे की गठड़ी पर बैठकर मैंने इसका संचयन किया है। कहानी लिखने में एक कठिनाई यह हुई है कि कई बार इन्हें ग्रामीण बोली में लिख सकना दुष्कर रहा है। यह उस परिस्थिति में हुआ है जब कथक तेजी से बढ़ा है और उसे धीरे धीरे कहानी सुनाने में कठिनाई हुई है। कई कथकों की ऐसी प्रवृत्ति होती है कि जब वे कहानी सुनाना आरम्भ कर देते हैं तो उनके कंठ के पट खुल जाते हैं और वे गाण्डीव के सदृश अप्रतिहत गति से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते हैं। ऐसी स्थिति में कहानी खड़ी बोली में ही लिखी जा सकी है। मेरे इस संग्रह में से लगभग २२५ गीत और १५ कहानियाँ उन बटमारों के हाथ पड़कर नष्ट हो गई जिन्होंने घग्गर के काठे में मुझे दिन धौले लूट लिया था। एक अभेद्य पुरुष मेरे उस झोले को लेकर चम्पत हो गया जिसमें मेरा रात-दिन का परिश्रम और ग्रामीण नर-नारियों का हृदय भरा हुआ था।

हरियानी लोकसाहित्य सङ्कलन के पश्चात् मैंने हरियानी भाषा के इतिहास तथा विकास, प्रादेशिक संस्कृति तथा अन्यान्य ज्ञातव्य बातों के लिए सामग्री एकत्र की। इसके लिए मैं शिक्षित जनता के सम्पर्क में आया और प्राचीन लेख, हस्तलिखित पुस्तकें तथा ऐसी ही अन्य उपयोगी सामग्री को मैंने खोजा। इस प्रकार इलाके की पूरी जानकारी मुझे हुई।

मेरी अगली योजना की यह विशेषता रही है कि मैंने जोगी, भाट, मिरासी, डूम और भाषा आदि से लोक-गाथाएं एकत्र कीं। हरियाना प्रदेश के नामीगिरामी रागियों से यहां के प्रसिद्ध राग सुने और लेखबद्ध किये। जींद रियासत के बीदखुर्द ग्राम के प्रसिद्ध गायक सान्ता जोगी से हरियाने का लोकप्रिय राग 'निहालदे' सुना। माडौठी ग्राम (रोहतक) के चतरू सूरदास से उसका दूसरा पाठ लिया। तीसरा पाठ बाबा मंगल भारथी के मुखारविन्द से अधिगत किया। दाणा खुर्द (हांसी) के श्रीचन्द हरिनन्द के सौजन्य से "गुरु गुगा का साका" प्राप्त किया। नरवाना (पटियाला) से टुगर की लड़ाई का किस्सा अथवा "देवी का जुज्झ" लेखबद्ध किया। गोढाणा से

(राहतक) 'राग राव किसन गोपाल' हस्तगत किया। महम से महमी साधुओं के उदात्तचरित्र वाले अवदान एकत्र किये। दादरी, हिसार, तोशाम और पानीपत से पूरनमल, गापीचद भरथरी, रूपवसत आदि लोर गाथाओं को हासिल किया। इस प्रकार मैंने हरियाने की सभी मुख्य मुख्य गाथाएँ एकत्र कीं, परन्तु विस्तारभय से केवल तीन गाथाएँ—निहालदे, गुरु गूगा और राग राव किशनगोपाल ही मैंने सविस्तार यहाँ दी हैं। ये सभी राग (गाथाए) अप्रकाशित हैं, नूतन हैं एव मौलिक हैं। इस सग्रह का एक राग किस्सा राव किशन गोपाल अभी तक उपेक्षित रहा है। उसे पाठकों के समक्ष रखने का श्रेय प्रस्तुत लेखक को है। यह राग एकदम मौलिक एव यथार्थ है। पजाब की लोकगाथाओं के यशस्वी उद्धारक सर आर सी टम्पल ने अपनी पुस्तक 'दि लीजेंड्स आव् दि पजाब' भाग २ में ५८ गाथाएं सग्रहीत की हैं। उनमें से १७ हरियाने में प्रचलित हैं एव प्रिय हैं। परन्तु हमारे सग्रह के सभी राग (गाथाएं) इनसे पृथक् हैं, अत सुतरा मौलिक हैं।

इस प्रकार मैंने अनेक यात्राएं करके हरियाना प्रदेश के साथ सान्निध्य स्थापित किया है। मुझे गर्व है कि इस महान् प्रदेश के साथ मैं तादात्म्यलाभ कर सका हूँ। सक्षेप में यही मेरे इस सग्रह का इतिहास है।

सग्रह के उपरात अपने शोधकार्य को यथासभव पूर्ण, प्रामाणिक एव व्यापक बनाने में कोई कमी मैंने नहीं छोड़ी है। इस काम के लिए मुझे अनेक सम्पन्न पुस्तकालयों में अध्ययन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इनमें से केन्द्रीय पुरातत्व पुस्तकालय, दिल्ली, केन्द्रीय सचिवालय, दिल्ली विश्वविद्यालय और लखनऊ विश्वविद्यालय के पुस्तकालय प्रमुख हैं। मैंने राहतक, हिसार, करनाल, गुड़गाव, जींद और पटियाला नाभा आदि जिलों व रियासतों के सभी गजेटियर देखे हैं। लिखना प्रारभ करने से पूर्व मैंने लोकवार्ता के धुरीण विद्वान्—फ्रेजर और टेम्पिल (बर्न एव बिशप) विचारक रस्किन और श्री राहुल साकृत्यायन, डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, भारतीय लोकसाहित्य मर्मज्ञ सत्येन्द्र एव सत्यार्थी, ग्रियर्सन और एलविन, त्रिपाठी तथा मेघाणी, पारीक एव राकेश और दुबे तथा उपाध्याय आदि सभी विद्वानों के साहित्य का अध्ययन किया है।

इस प्रयत्न से पूर्व इस दिशा में दो कार्य—'ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन' तथा 'भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन' क्रमश डा० सत्येन्द्र एव डा० कृष्णदेव उपाध्याय के मेरे देखने में आये हैं। इस निबध के तैयार करने में डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने ग्रथ को परिष्कृत रूप में रखा है। यह

ग्रंथ भी पी एच० डी० के लिये डा० गुप्त के निर्देशन में लिखा गया था। श्री एस० एस० रघावा की पुस्तक 'हरियाना के लोक गीत' अभी प्रकाशित हुई है परन्तु वह प्रयत्न साधारण, एकांगी एवं अल्पकाय है। उसमें हरियाना लोकसाहित्य के केवल एक रूप-गीतों को ही लिया गया है। अतः यह गर्व के साथ कहा जा सकता है कि प्रस्तुत लेखक का यह कार्य अपने क्षेत्र में मौलिक एवं नूतन है। इस निबन्ध के निर्माण में मेरा अपना मौलिक दृष्टिकोण ही सजग रहा है। मैंने सामग्री को वैज्ञानिक रूप से जाँचा है और उसके अध्ययन के लिए एक नूतन एवं मनोवैज्ञानिक पद्धति अपनाई है। प्रारम्भ में लोकसाहित्य एवं लोकवार्ता विषयक विवेचनापूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। प्रथम अध्याय में हरियाना प्रदेश के प्रामाणिक इतिहास की खोज की गयी है और उसकी प्राचीन गौरवगाथा को परखा गया है। द्वितीय अध्याय में हरियाना बोली का भाषायी अध्ययन किया गया है। ऐसा करने में हमारा यह लक्ष्य रहा है कि पाठक हरियानी लोकसाहित्य—गीत, कथा, गाथा तथा विविध साहित्य के रसास्वादन के लिए हरियानी बोली से अभिज्ञता प्राप्त कर लें। हरियाना के स्थान स्थापन (लोकेशन) के लिए भाषायी मानचित्र दिया गया है जिसने पुस्तक का मूल्य बढ़ा है। इस प्रयत्न को मैं मौलिक एवं लाभपूर्ण समझता हूँ। अगले चार अध्यायों में हरियानी लोकसाहित्य का सविस्तार अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। तृतीय अध्याय में गीतों के अध्ययन के पीछे 'साहित्यचर्चा' नाम से कलापारखियों के मनोरंजनार्थ एक सूक्ष्म-विवेचन और दिया गया है। अंतिम अध्याय में हरियाना प्रदेश की लोक संस्कृति का चित्र उपस्थित किया गया है। अपने अंत में एक परिशिष्ट भाग जोड़कर पुस्तक को पूरा किया गया है। इसमें दो हरियाना लोक कहानियाँ दी गई हैं जिससे हरियानी के रूप-निर्धारण में पाठकों को सरलता होगी। कलाकारों के उपयोग के लिए एक बृहद् शब्द सूची भी दी गई है। इससे हरियाना बोली के शब्द भंडार का सहज ही ज्ञान हो जायेगा। साथ ही नमूने के तौर पर तीन गीतों की स्वरलिपि भी दी गई है। इस प्रकार लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक को सभी दृष्टियों से उपयोगी बनाने की चेष्टा की है।

अन्त में, एक बात और कह देना चाहता हूँ कि प्रस्तुत प्रयत्न में मैंने सिद्धांतशास्त्रियों की कोई बात नहीं कही है। न मैंने किसी नूतन दिशा की ओर संकेत किया है और न कोई नई थ्योरी ही खोज निकाली है। मैंने तो केवल हरियाना प्रदेश में प्राप्त लोक साहित्य का साधारण-सा पर्यालोचन किया है। मेरा विश्वास है कि लोकसाहित्य अध्येता के लिए यह पुस्तक अवश्य उपयोगी सिद्ध होगी।

साथ ही जिन सज्जनों से मुझे अपेक्षित सहयोग तथा मुहमाँगी सहायता, आशा एवं उत्साह मिला है उनके प्रति भी कृतज्ञता प्रकाशित करना मैं अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूँ। इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम मैं डा० दीनदयालु जी गुप्त के प्रति आभारी हूँ जिनकी महती कृपा से मैं इस प्रशस्त पथ पर अग्रसर हुआ। गुप्त जी की अनुकम्पा के बिना सम्भवतः मेरा औत्सुक्य एवं उत्साह कली रूप में ही सीमित रहकर मुरझाकर सूख जाता। उन्हीं के निर्देशन में यह प्रबन्ध लिखा गया है। डा० भगीरथ मिश्र और डा० सरयू प्रसाद जी अग्रवाल का भी कृतज्ञ हूँ, उन्होंने भी समय-समय पर मुझे मार्ग दिखाया है। इन दोनों सज्जनों के साथ बैठकर कई बार मैंने अपने विषय की विवेचना और आलोचना की है। वैसे तो मेरे सहायकों की नामावली बड़ी लम्बी है, फिर भी कुछ महानुभाव ऐसे हैं जिनका नामोल्लेख किए बिना मैं अवश्य ही अपने कर्तव्य में एक त्रुटि छोड़ जाऊँगा।

इस क्रम में, श्री देवेन्द्र सिंह (छारा रोहतक) का नाम विशेष रूप से स्मरण रहेगा जिनके यहाँ अब से ५ वर्ष पूर्व इस कार्य का श्रीगणेश हुआ। श्री खजान सिंह चौधरी (रोहतक) मेरे उन छात्रों में से एक हैं जिन्होंने मुझे लज्जाशील महिला जगत् के सव्रीडकंठ से गीत लिखने में सबसे अधिक सहायता प्रदान की। निश्चय ही उनके बिना मेरा यह कार्य इतना सम्पन्न न होता। मैं इनका कृतज्ञ हूँ। पं० जयनारायण जोशी (हांसी) ने मुझे हरियाना प्रदेश में प्रचलित नानाविध अनुष्ठान, संस्कार, आचार, परम्परा एवं विश्वास आदि का साक्षात् ज्ञान कराया। दादरी (जींद रियासत) के पं० जयन्ता प्रसाद व्यास और उनके साथी बैलाल सूरदास ने मुझे भरसक सहायता दी। वे मेरे धन्यवाद के पात्र हैं। रोहतक जिले के परिभ्रमण में मेरे एक दूसरे छात्र श्री छोटूराम यादव ने जो मेरी सहायता की है वह स्मरण की वस्तु है। पानीपत में श्री ब्रह्मानंद जी गोयल, प्रधानाध्यापक, स्थानीय जैन हाई स्कूल ने अपने इलाके से जो सामग्री एकत्र करवाई है, वह अमूल्य है। करनाल, कैथल, गोहाणा, बरवाला और बारवल आदि स्थानों के कई हितैषी मेरी सहायक सूची के रत्न हैं। सोनीपत में भाटों का चौपाल के वे दिन मुझे चिरकाल तक स्मरण रहेंगे जहाँ मुझे कहानियों की अपार निधि मिली है। भिवानी के लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार श्री कन्हैयालाल जी भिण्डा का मेरे प्रति बड़ा सदयता का व्यवहार रहा है। निःसंदेह, वे मेरे सबसे बड़े सहायकों में से एक हैं। मैं उनके उपकारों से कदापि उऋण न हो सकूँगा। कप्तान राव वीरेन्द्र सिंह जी (रामपुरा) ने अपने पुस्तकालय से अमूल्य सहायता प्रदान की। वे मेरी श्रद्धा के पात्र हैं। श्री एच० पी० पटेल

(नडाभाद) ने मुझे गुजराती भाषा और साहित्य का परिचय कराया है। गायनाचार्य मास्टर श्री राम जी ने कई गावों की स्वरलिपि तैयार कर मुझे सक्रिय सहायता प्रदान की। हरियाना प्रदेश के भाषायी मानचित्र तैयार करने में श्री लक्ष्मी नारायण वर्मा, एम० ए०, ने जो परिश्रम किया है वह कदापि भुलाया न जा सकेगा। वे धन्यवाद के पात्र हैं। मेरी पत्नी ने अनेक महिलाओं की सहज सलज्ज वाणियों को कागज पर प्रतिष्ठित कर मेरी जो सहायता की है वह अनुपम है। भारका (हिसार) की श्रीमती कुंती जी का स्नेह भी प्रशंसनीय है जिन्होंने स्त्री-सुलभ लज्जा मिश्रित चाव से तथा निस्स्वार्थभाव से अपने सरस एवं अमूल्य गीतरत्नों से मेरी झोली भरी है। वे धन्यवाद की पात्री हैं।

अंत में, मैं ज्ञात-अज्ञात उन सब सहायकों का भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मेरी तनिक भी सहायता की अथवा परदेश में मुझे सुख-सुविधा दी।

—लेखक

विषय-सूची

विषय-प्रवेश १७-४८

प्रथम अध्याय ४९-७८

द्वितीय अध्याय ७९-११९

तृतीय अध्याय १२१-३३६

चतुर्थ अध्याय ३३७-३७६

पचम अध्याय ३७७-४०८

षष्ठ अध्याय ४०९-४५५

सप्तम अध्याय ४५७-४७५

परिशिष्ट



विषय-प्रवेश

क. लोकसाहित्य का अध्ययन : प्रवृत्ति-पृष्ठभूमि

उन्नीसवीं शताब्दि के मध्य तक लोकसाहित्य एक उपेक्षित विषय था। महिलाओं द्वारा गाये गये गीतों को ऊल जलूल, दुलिहारे की डालियाँ और धोबी का अल्लाना, किन्नरों का रिझमन की वाचालता और दंतकथाओं का शब्दाडम्बर समझा जाता था। बच्चों की तुकबन्दियों को भी निरर्थक शब्द जंजाल कहा जाता था। परन्तु आज हम उन्हें एक विशेष सम्मान और गौरव व राष्ट्रीय निधि एवं सांस्कृतिक थाती के रूप में पाते हैं।

लोकसाहित्य एक ऐसा विषय है जिसका सम्यग् अध्ययन किये बिना हम किसी देश की सभ्यता एवं संस्कृति, धर्म व रीति रिवाज कला और साहित्य, सामाजिक अभ्युदय एवं आकांक्षाओं का सूक्ष्म अवलोकन नहीं कर सकते हैं। शास्त्रसम्मत कला व साहित्य से हम किसी देश विशेष की तत्कालीन समुन्नत संस्कृति का आभास भले ही मिल जाय, परन्तु अमुक संस्कृति कैसे पनपी, इसका सत्व पाना कठिन कार्य है। जबकि लोकसाहित्य के द्वारा यह कार्य बहुत सुलभ हो जाता है। अतः लोकसाहित्य का अध्ययन बड़ा आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने एक स्थान पर बड़े मार्के की बात कही है कि लोकसाहित्य जनता की सम्पत्ति होने के कारण लोक-संस्कृति का दर्पण है।[1]

लोकसाहित्य के अध्ययन ने संसार को आज एक विशेष प्रकार की जिज्ञासा, कौतूहल तथा आश्चर्यानुभूति में डाल दिया है। इस उपेक्षित लोक-साहित्य सामग्री में हमारी विशाल संस्कृति का पुनीत इतिहास व्याप्त है। हमारे शिष्ट साहित्य का उद्गम-स्रोत भी यही लोकाभिव्यक्ति है और हमारे समुन्नत साहित्य के विकास की जड़ें भी लोकमानस की भावभूमि से ही तत्वग्रहण करती हैं। भारतवासियों का भी जीवन सदा से काव्यमय रहा है और वह लोकसाहित्य से परिपूर्ण है। फलतः भारतीय जीवन में आदिकाल से हमें लोक-साहित्य के दर्शन होते हैं।

लोकसाहित्य किसी एक व्यक्ति अथवा कुछ व्यक्तियों द्वारा बनाया नहीं जाता। यह तो सम्पूर्ण समाज का उल्लास और उच्छ्वास होता है। इसमें

---

[1] डा० उपाध्याय—'भोजपुरी ग्राम गीत' द्वितीय भाग, वक्तव्य पृष्ठ १।

निर्माण म समग्र समाज का हाथ होता है। यह एक परम्परागत निधि है जिसे लेखनी ने न कभी सवारा है, न सजाया है और न कदाचित् कभी इसे लेखनी की सहायता ही मिली है। यह तो प्रारम्भ से समाज की जिह्वा पर ही आसीन रहा है। सभ्यता और संस्कृतियों का उत्थान पतन हुआ, साहित्य बना और बिगड़ा परन्तु लोकसाहित्य का स्रोत कभी शुष्क नहीं हुआ और आज भी उसकी धारा अविरल रूप से प्रवहवान है।

लोकसाहित्य का अध्ययन करनेवाले अग्रणी विद्वान् यूरोप के हैं। यूरोप में बहुत पहिले से ही लोकसाहित्य पुरातत्व (आरक्यालाजी) और नृ विज्ञान (एथ्रापालाजी) के अध्ययन का आवश्यक सहायक रहा है। इस प्रसग में, विशप परसी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिन्होंने सत्रहवीं शताब्दि के मध्य में पाश्चात्य गीतों के एक प्राचीन संग्रह की खोज की। विशप परसी के उपरान्त प्रसिद्ध उपन्यासकार सर वाल्टर स्काट ने अंग्रेजी लोकगीत सौन्दर्य की ओर जनता को आकर्षित किया और अपनी रचनाओं म यत्र तत्र उस सामग्री का उपयोग भी किया। इसी शताब्दि के उत्तरार्द्ध म अर्थात् सन् १६८१ इ० म जाहन ब्रीग्रे, महोदय ने 'रीमेंस ग्राव् जैंटिलिज्म एन्ड ज्युडाइज्म' पर जो विवेचना दी है वह यहूदियों तथा अन्य साधारणजन के विषय म बड़ी पते की बातें बतलाती हैं। १७७७ म जाहन ब्रैंड ने 'ग्राबजर्वेशन ग्रान दि पोपुलर एन्टीकुटीज ग्राव दि ब्रिटिश ग्राइल्स' पर एक पुस्तक लिखकर इस अध्ययन को आगे बढाया। १८वीं शताब्दि में 'रेलिक्स ग्राव इंगलिश पोइट्री' को लिखते समय विशप पीरी ने लोकगीतों को हा स्थान दिया है।

उन्नीसवीं शताब्दि विश्व के लोकसाहित्य के इतिहास म एक क्रान्तिकारी युग है। इस शताब्दि में लोकसाहित्य के क्षेत्र म कितने ही प्रशस्त एव विशद उद्योगों का सूत्रपात हुआ है। १८२६ इ० प्रकाशित 'होन महोदय' की 'ऐवरी डे बुक' में भी लोकसाहित्य सम्बन्धी सम्यक् विवेचना भरी है। आगे चलकर ग्रिम-बन्धुओं ने विशेष रूप से जेकबग्रिम ने भाषा विज्ञान (भाषाशास्त्र) और माइथालाजी (धर्मगाथा) के क्षेत्र मे लोकसाहित्य के सिद्धान्त रूप म उपयुक्तता सिद्ध की। इस नव्य भव्य प्रयत्न के कारण जर्मनी के इन विद्वानों का नाम सदा स्मरण रहेगा। इनकी दो पुस्तकें 'किंडर एन्ड हउसमार्चें' और 'द उत्सर माइथालाजी' क्रमश सन् १८१२ और १८३५ इ० म प्रकाशित हुई। इन जर्मन विद्वानों ने अपने इस नये प्रयत्न द्वारा लोकवार्ता जैसी उपेक्षित सामग्री के अध्ययन का एक वैज्ञानिक रूप दिया। इनका दृष्टिकोण बड़ा व्यापक एव उदार था। ग्रिम-बन्धुओं की प्रेरणाओं, मान्यताओं और धारणाओं के उपरान्त इस अध्ययन का ओर अन्य अनेक विद्वानों का ध्यान गया और

जनता म भी एक उत्कट रुचि उत्पन्न हुइ ।

इस युग तक योरप के विद्वानो का परिचय सस्कृत के साथ हो चुका था। वेदो क अध्ययन ने इस ओर एक नया द्वार खोला। इस वैदिक अध्ययन के द्वारा साहित्य की प्राचीन ग्राम सामग्री को परखा गया और उसकी वैज्ञानिक छानबीन की गया। अभी तक मैक्समूलर आदि प्रागविद्या विशारदों का यह विचार था कि लोकवार्ता सम्बधी प्रत्येक वस्तु की वैदिक कसौटी पर परख होनी चाहिए परन्तु यह विचार आगे लोकवार्ता-शास्त्रियो को मान्य नहीं रहा। इसके विपरीत, उन विद्वानों ने यह प्रमाणित किया कि लोकवार्ता की व्याख्या के लिय वेदो की ओर देखने की आवश्यकता नहीं। इस प्रवृत्ति के जनक थे श्री इ० बी० टेलर और सर जेम्स फ्रेजर। टेलर महोदय का कार्य बड़ा महत्वपूर्ण था। स्वय फ्रेजर महोदय इनके बड़े कृतज्ञ थे। उन्होंने स्वय एक स्थान पर कृतज्ञता प्रकाश करते हुए लिखा है कि डा० "इ० बी० टेलर के प्रथा के अध्ययन से मेरी रुचि समाज के प्राचीन इतिहास की ओर जाग्रत हुइ ओर मेरे सामने उस लोक के दर्शन हुए जिसका स्वप्न भी नहीं देखता था।[1]" दो अन्य महानुभाव, जिनका प्रभाव फ्रेजर महोदय पर पड़ा, श्री मनहार्ट और डब्ल्यू राबर्ट्सन स्मिथ थे। इनकी प्रेरणा के फलस्वरूप १८९० इ० म फ्रेजर महोदय की 'दि गोल्डन बो' जो लोकवार्ता की 'बाइबिल' कहलाती है, प्रकाश म आइ। इस ग्रन्थ के कइ भाग हैं जो लोकवार्ताशास्त्रियो के लिए बड़े महत्व के हैं। यही वह ग्रन्थ है जिसकी रचना ने लोकवार्ता के अध्ययन में एक नई दिशा दी। वैदिक अध्ययन का लोकवार्ता के प्रति जो आग्रह था वह न रह गया। इनके प्रयत्नो से यह सिद्ध हुआ कि लोकवार्ता की आदिम एव मौलिक प्रवृत्तियों का सधान असभ्य, अर्द्धसभ्य, अशिक्षित एव हब्शी लोगों के आचार विचार, ऐतिहासिक-दशा आदि म होना चाहिए। फ्रेजर महोदय का मत इस ओर बड़ा स्पष्ट है —

"आर्यों के आदिम धर्म के शोध का कार्य या तो कृषिजीवी लोगो के अंध-विश्वासों (मूढ़ग्राहों), विश्वासों और रीति-रिवाजों से आरम्भ होना चाहिए या उनका उपयोग करते हुए निरतर उसका सशोधन और नियन्त्रण होत रहना चाहिए। जीवित प्रथाओं की साक्षियों के समक्ष पूर्वकालीन धर्म के विषय म प्राचीन ग्रन्थों की साक्षी का विशेष महत्व नहा है।" फ्रेजर महोदय का कहना है कि लिखित साहित्य के द्वारा विचार-पद्धति इतनी तीव्रता स आगे बढ़ती है कि यह साधारण जन के कठ से प्रचारित मत और

१ 'दि गोल्डन बो' की भूमिका लेखक श्री जेम्स फ्रेजर।

विश्वासों का बहुत पीछे छोड़ जाती है। फ्रेजर महोदय के सतत तथा सफल उद्योगों के परिणामस्वरूप लोकवार्ता विशारदों की दृष्टि आर्यक्षेत्र के बाहर भी गयी और विस्तृत हुई। श्री ऐंड्रू लेंग ने इस अध्ययन क्षितिज को और भी दीप्ति प्रदान की। परिणाम स्वरूप अंधविश्वास आदि धार्मिक तत्व इस आदिम समाज में आदिकाल से ही पोषित हुए। इनका अध्ययन मानव इतिहास की नींव तक पहुँचने में बड़ा सहायक सिद्ध हुआ है और होगा भी। यह नृ विज्ञान और समाज विज्ञान की उन गुत्थियों के सुलझाने में समर्थ होता है जो अभी तक जटिल बनी हुई हैं।

उपरोक्त पाश्चात्य प्रयत्नों के अतिरिक्त आज भी पश्चिम के विद्वान प्रयत्नशील हैं। इस ओर सबसे अधिक सचेष्ट और सफल प्रयत्न आधुनिक काल में अमेरिका के कुछ अध्यवसायी विद्वानों ने किया है। उनमें प्रो० एफ० जे० चाइल्ड का नाम विशेष उल्लेखनीय एवं प्रख्यात है जिन्होंने इंगलैंड और स्काटलैंड के एक एक लोकगीत को बड़ी छानबीन के साथ खोजा है और उनकी अन्य देशों के गीतों के साथ तुलना की है। इन प्रयत्नों पर अंग्रेजी साहित्य को गर्व है।

उपरोक्त वर्णन उन उद्योगों का है जिनके द्वारा योरप और अमेरिका में लोकवार्ता का कार्य बढ़ा और विकसित हुआ। सौभाग्य से इसकी लहर भारत में भी आई क्योंकि जिन दिनों लोकवार्ता सम्बन्धी प्रयत्न पश्चिम में हो रहे थे, भारत का सम्बन्ध भी पश्चिम से बढ़ रहा था। भारत की लोकवार्ता पर भी इनकी दृष्टि पड़नी स्वाभाविक थी। फलतः टॉड महोदय ने 'एनाल्स आव राजस्थान' लिखते समय राजस्थान के इतिहास के लिए बहुत-सी लोक वार्ताओं का आश्रय लिया तथा उसका भरपूर उपयोग किया। किसी लिखित इतिहास के अभाव में बहुत सी मुख-परम्परागत सामग्री को आधार बनाया गया। उसकी जाँच की गई और तथ्यपूर्ण सामग्री का यथोचित उपयोग भी किया गया। सामयिक विश्वासों एवं रीति प्रथाओं का पर्याप्त वर्णन टॉड राजस्थान में मिलता है। अतः पक्षपातरहित होकर यह कहा जा सकता है कि टॉड महोदय ही भारत के सर्वप्रथम लोकवार्ता-संग्राहक हैं। टॉड के बाद लगभग ५० वर्षों तक भारत में इस दिशा में कोई स्तुत्य प्रयत्न नहीं हुआ। फिर सन् १८८४ में सर आर० सी० टेम्पल महोदय (तत्कालीन पंजाब में कमिश्नर) ने 'लीजेन्ड्स आव दि पंजाब' तीन भागों में प्रकाशित कराके इस उपेक्षित सामग्री की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया। इन्होंने एक विशिष्ट लग्न एवं अध्यवसाय के साथ पंजाब भर के किस्सों का (गाथाओं और अवदानों का) संग्रह किया। इन पुस्तकों की भूमिका में सर टेम्पल ने बड़े

पते की बातें बतलाई हैं। इन्होंने प्रथम भाग की भूमिका में लिखा है कि स अपनी आफिशियल ड्यूटी से समय निकालकर स्थानीय मेलों ठेलों में जाते विवाहादि उत्सवों में सम्मिलित होते और रात-रात भर जागकर नौटकी और स्वांगों को भी देखते थे। इन्होंने बहुत से किस्से[१] कहनेवालों को महीनों तक पैसे देकर लिखवाने का काम किया। सन् १८६६ ई० म रेवरेंड एम० हिस्लप के वे लेख जो मध्यभारत की आदिम जातियों के सम्बन्ध म थे, प्रकाशित हुए। सर टेम्पल ने सन् १८६८ में मिस फ्रेयर ने 'ओल्ड डेक्कन डेज' नाम का एक लघु संग्रह प्रकाशित कराया था। इसके तीन वर्ष पश्चात् सन् १८७१ में डाल्टन महोदय की 'डिस्क्रिप्टिव एथनालाजी आव बंगाल' का प्रकाशन हुआ। इन्हीं दिनों भारतीय पुरातत्व और इतिहास की सामग्री को लेकर चलनेवाली एक सुप्रसिद्ध पत्रिका 'इंडियन एंटिक्वेरी' में बहुत-सी लोकवार्ता सम्बन्धिनी सामग्री छपनी आरम्भ हुई। रेवरेंड लालबिहारी डे का 'फोकटेल्स आव बंगाल' सन् १८८३ में प्रकाशित हुई। अगले वर्ष अर्थात् सन् १८८४ में टेम्पल महोदय के वे तीन ग्रंथ निकले जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। सन् १८८४ में श्रीमती एफ० ए० स्टील की वे कहानियाँ प्रकाशित हुईं जिनका संग्रह 'वाइड अवेक स्टोरीज' के नाम से हुआ है। इस पुस्तक के प्रकाशन का सौभाग्य भी सर टेम्पल को ही है। नटेश शास्त्री ने 'फोकलोर इन सदर्न इंडिया' लिखकर इस प्रयत्न में सहयोग प्रदान किया है।

सन् १८९० में डब्ल्यू० क्रुक ने 'नार्थ इंडियन नोट्स एंड क्वेरीज' नाम से एक स्वतंत्र पत्रिका निकालनी प्रारम्भ की। इनके साथ ही रेवरेंड ए० कैम्बल तथा रेवरेंड जे० एच० नोलीज के सद्‌योग से संथालों की और काश्मीर की कहानियाँ पाठकों के सामने आईं। आर० एस० मुकर्जी की 'इंडियन फोकलोर', श्रीमती डुकौर्ट की 'शिमला विलेज टेल्स', रेवरेंड सी० स्विनर्टन की 'रोमांटिक टेल्स फ्रॉम पंजाब' लोकवार्ता की महत्त्वपूर्ण सामग्री से भरी पड़ी है। श्री सी० एच० बाम्पस और रेवरेंड ओ० बौडिंग का नाम 'संथाली' कहानियों के साथ सदा स्मरण रहेगा। एम० कुलक की 'बंगाली हाउस होल्ड टेल्स' और श्रीमती शोभना देवी की 'ओरिएंटल पर्ल्स' का लोकवार्ता सम्बन्धिनी महत्ता कितनी है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। पामर महाशय द्वारा प्रकाशित 'विलेज फार टेल्स आव सालान' ...

१ 'किस्सा' पंजाब का एक व्यापक शब्द है जो किसी कहानी, गान, गाथा और इतिहास आदि के लिए प्रयुक्त होता है। ग्राम लघु-गीत को छोड़कर शेष समस्त लोकवार्ता के लिए इसका प्रयोग देखा जाता है। गाथा शब्द के लिए वार भी प्रचलित है।

तीन भाग किस लोकवाता अध्येता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित नहीं करते ? पेंजर और टानी द्वारा प्रकाशित कथासरित्सागर लोकवाता के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण स्थान का अधिकारी है। यह कथाशास्त्र का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है। इस सम्बन्ध में भारत के लब्धप्रतिष्ठ नृ विज्ञानवेत्ता शरच्चन्द्र राय का नाम भी नहीं भुलाया जा सकता। इन्होंने अपनी खोज में प्राचीन कहानियाँ दी हैं। ग्रियर्सन महोदय का नृ अध्ययन भी प्राचीन कहानियों के विश्लेषण का परिणाम है। 'इण्डियन फेयरीटेल्स' के कर्ता 'रामस्वामी राजू' का नाम भी उल्लेखनीय है। अपने इस संग्रह में उन्होंने सौ भारतीय कहानियों को स्थान दिया है। जी० आर० सुब्राह्मिया पंताल्लु का 'फोकलोर आव दि तेलगूज़' प्रौढ तथा साहित्यिक आलोचना से पूर्ण एक अनुपम संग्रह है। मारिस ब्लुम फील्ड, नार्मन ब्राउन, रूथ नार्टन, एम० बी० एमेन्यू आदि अमेरिकन लोकवार्ताशास्त्रियों का भी नाम इस ओर आता है। इन्होंने और उपन्यासकार स्कॉट ने जिसका उल्लेख प्रथम पृष्ठ में हो चुका है, लोककथाओं और लोकगाथाओं के अध्ययन की एक बिल्कुल नवीन तुलनात्मक प्रणाली स्थापित की है।

आजकल भारतीय लोकवार्ताशास्त्र के प्रमुख विद्वान नृ शास्त्री डॉ० वैरियर एल्विन हैं जिन्होंने मुंडा और संथाल आदि आदिम जातियों पर विशेष कार्य किया है। चाइल्ड और रिचार्ड महोदय का नाम और काम भी स्तुत्य है किन्तु इस प्रसंग में यह भी स्मरण रखने योग्य है कि उपरोक्त जितने भी उद्योग एवं प्रयत्न इस ओर हुए हैं वे सब अंग्रेजी को माध्यम बनाकर चले हैं। फिर भी ये सभी भारत में लोकवार्ता क्षेत्र के अग्रणी हैं और इनकी प्रेरणा से बहुत-सा काम हुआ है।

लोकवार्ता के अन्तर्गत लोकगीतों का भी संग्रह एवं अध्ययन हुआ है। सन् १८७२ में श्री सी० आइ० गोवर ने 'फोकसांगस् आव सदर्न इंडिया' को प्रकाशित कराया। श्री ताराचंद का 'ऐंशियेंट बैलेड्स एण्ड लीजेण्डस आव हिन्दुस्तान' सन् १८८२ में प्रकाशित हुआ। सर टैम्पल महोदय ने जिनका उल्लेख पहिले पृष्ठों में हो चुका है 'लीजेण्डस आव दि पंजाब' में गीत ही संग्रहीत किये हैं जो बड़े-बड़े गीत रूप में 'किस्सा' कहलाते हैं।[1] क्षितिमोहन सेन का बंगला में 'दादामणि' नाम का संग्रह विख्यात है। 'मैमनसिंह गीतिका' में

---

[1] हरियाना में बड़े-बड़े गीत किस्सा के नाम से पुकारे जाते हैं जिनका दूसरा नाम अवदान अथवा गाथा दिया जाता है।

मा उगाला गीत ही सग्रहीत हैं । झवेरचन्द मेघाणी द्वारा प्रकाशित 'रढियाली रात' ३ भाग, रणजीतराव मेहता के 'लोकगीत', नर्मदाशकर लाल 'शकर' व 'नागर स्त्रियों माँ गवातागीत' आदि गुजराती की महत्वशाली पुस्तकें हैं । सतराम ने 'पजाबी गीत' पजाबी भाषा के गीतों का उत्तम सग्रह है । मारवाड़ी भाषा के गीतों के कई सग्रह प्रकाशित हुये हैं जिनमें मन्नलाल वैश्य की 'मारवाड़ी गीतमाला' निहालचन्द वर्मा के 'मारवाडी गीत' तथा ताराचद श्रोझा का 'मारवाड़ी स्त्रीगीत सग्रह' विशेष उल्लेखनीय हैं । श्री देवेन्द्र सत्यार्थी तो इस क्षेत्र के प्राण हैं जिन्होंने भारतभ्रमण करके लोकवार्ता की अमूल्य राशि का सग्रह किया है ।

हिन्दी में इस प्रयत्न का श्रीगणेश श्री मन्नन द्विवेदी ने किया। उनकी 'सरवरिया' पुस्तिका इस दिशा की प्रारम्भिका के रूप में है । सरस्वती में प्रकाश पाकर सतराम जी के 'पजाबी लोकगीत' हिन्दी की निधि बने । इनके पीछे हिन्दी लोकगीतों के कर्मठ शोधक प० रामनरेश त्रिपाठी इस क्षेत्र में अग्रणी बने । कविता-कौमुदी के पाचवें भाग में उत्तर प्रदेश के सभी प्रकार एव रगों के ग्राम गीतों को स्थान मिला है । हिन्दी के क्षेत्र में त्रिपाठी जी का यह सर्वप्रथम व्यापक उद्योग था । इनकी प्रेरणा से प्रेरणा पाकर तथा इस ओर बढती अभिरुचि को देखकर हिन्दी लोकवार्ता के अनेक सच्चे सेवक उत्पन्न हुये और परिणाम-स्वरूप हिन्दी और उसकी बोलियों में प्रयास कार्य हुआ । राजस्थानी-गीतों के बड़े उत्तम सग्रह स्वर्गीय प्रा० सूर्यकरण जी पारीक, डा० रामसिंह और श्री नरोत्तम स्वामी जी के प्रयत्न स्वरूप प्रकाशित हुए हैं । डा० रामसिंह एव श्री नरोत्तम स्वामी जी ने 'ढोलामारू रा दूहा' को लिपिबद्ध कर इस मरणासन्न निधि को अमर बना दिया है । स्वामीजी तथा प्रा० सहल कन्हैयालाल जी के सहयोगों से 'राजस्थान पत्रिका' अंग्रेजी के 'इडियन एटक्वेरी' के नमूने पर निकल रहा है । इस पत्रिका में पुरातत्त्व के साथ लोकवार्ता की भी चर्चा रहती है । विद्यापति के पश्चात् मिथिला की माधुरी का हिन्दी जगत् के समक्ष लानेवाले की श्री राम इकबाल सिंह राकेश इस ओर अच्छे लोकगीत सग्रहकर्ता हैं जिनकी की 'मैथिली लोकगीत' पुस्तक हिन्दी-सम्मेलन से प्रकाशित हुई है । लोकवार्ता की बहुत-सी सामग्री 'हस' और 'विशालभारत' पत्रिकाओं में इधर उधर छपी है । श्यामाचरण दुबे का 'छत्तीसगढ़ी लोकगीत' इस विषय का सुन्दर सग्रह है । डा० कृष्णदेव उपाध्याय के 'भोजपुरी लोकगीत', २ भाग हिन्दी साहित्य-सम्मेलन से प्रकाशित हुआ है । इस सग्रह की एक विशेषता सर्वोपरि है कि गीतों की व्याख्या बड़ी ही अनुपम की गयी है । आदि में एक सारपूर्ण भूमिका ने ग्रथों

का मूल्य द्विगुणित कर दिया है। डा० उपाध्याय को 'भोजपुरी लोक साहित्य' पर लिखे गये विशिष्ट निबंध (थीसिस) पर लखनऊ विश्वविद्यालय से डाक्टरेट की उपाधि मिली है। यह निबंध डा० दीनदयालु गुप्त के निर्देशन में लिखा गया था। बुंदेलखण्ड में तो प० बनारसीदास जी चतुर्वेदी की प्रेरणा से बहुत सा कार्य हुआ है। शिवसहाय चतुर्वेदी जैसे महान् लोकवार्ता संग्रहकार ने बुंदेलखंडी लोकवार्ता का उद्धार किया है। इनकी बुंदेलखंडी लोक कहानियाँ एक सुंदर भूमिका के साथ छपी हैं। श्री कृष्णानंद गुप्त के अध्यवसाय एवं प्रयत्न स्वरूप टीकमगढ़ (बुंदेलखण्ड) से 'लोकवार्ता' नामक त्रैमासिक पत्र, अंग्रेजी की 'फोक्लोर मैगजीन' के आदर्श पर निकालना आरंभ हुआ था। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने भी जनपदीय साहित्य के अध्ययन की ओर विशेष प्रेरणा दी है। उनकी 'पृथ्वीपुत्र' नामक पुस्तक इस दिशा की सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों में से एक है। डा० अग्रवाल ने लोकवार्ता को भारतीय दृष्टिकोण से देखा और परखा है। स्वतंत्र पुस्तकों के अतिरिक्त डा० अग्रवाल ने अनेक ग्रंथों की भूमिका के रूप में भी अपने लोकवार्ता संबंधी विचार जनता के समक्ष रखे हैं। डा० सत्येंद्र जी ने 'ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन', ब्रजलोक कहानियाँ और इस विषय संबंधी अनेक लेखों द्वारा हिंदी लोक-साहित्य-संग्रह को समृद्ध किया है। डा० सत्येंद्र जी के साथ ब्रज-साहित्य मंडल को नहीं भुलाया जा सकता। यह मण्डल ब्रजलोकवार्ता का विज्ञान सम्मत विवेचन एवं अध्ययन करने में जुटा हुआ है। इस प्रकार के साहित्य मंडलों की प्रत्येक देश व जनपद के लिए महती आवश्यकता है जो तद्देश जनपदीय लोकसाहित्य के संग्रह एवं रक्षा का कार्य करें और उस संग्रहीत सामग्री के आधार पर एक विवेचनापूर्ण अध्ययन प्रस्तुत करें।

लोकवार्ता संबंधी इस संक्षिप्त सारणी से यह तो स्पष्ट है कि हिंदी की विविध बोलियों में लोकवार्ता संबंधी कार्य हो रहा है। जो कुछ लोकवार्ताएँ अभी तक प्रकाश में आई हैं उनके अवलोकन से यह बात प्रतीत होती है कि सभी प्रदेशों में बाहिरी आवरण के पीछे एक मूल-तत्व के दर्शन होते हैं। सभी लोकवार्ताएँ किसी एक स्थान पर मिलती दीख पड़ती हैं जिससे एकतत्व ही सर्वत्र प्रवहमान है अथवा मानवीय ऐक्य का अनुमान सुलभ है। जहाँ तक समानता का संबंध है, हिन्दी ही की लोकवार्ता क्यों, समस्त संसार की वार्ताएँ किसी एक ही दिशा की ओर आती-जाती दिखाई पड़ती हैं। लोकवार्ता का वह साम्राज्य है जहाँ न किसी धर्म की प्रधानता है, न किसी रंग और जाति का प्राबल्य। यह साम्राज्य यथार्थ में वह समुदाय विहीन (सैक्युलर) है जहाँ प्रत्येक बात मानव द्वारा मानव के लिए और मानव का बनकर कही

गया है। यहाँ विशुद्ध मानवता का शासन है। यहाँ नीच ऊँच, छोटे-बड़े, गोरे-काले, पौर्वात्य-पाश्चात्य, उदीच्य एवं दाक्षिणात्य सब एक समान हैं। लोकवार्ता ने पुष्ट कर दिया है कि मानव मानव का हृदय, विचार और भावनाएँ एक जैसी हैं विश्व के एक छोर से दूसरे छोर तक।

ख लोकवार्ता एवं लोकसाहित्य

अ प्रयोग की समस्या

लोकवार्ता अंग्रेजी के फोक लोर (Folk Lore) शब्द का पर्यायवाची है। हिन्दी में इसके प्रचार का अधिकांश श्रेय श्री कृष्णानन्द जी गुप्त एवं डा० वासुदेव शरण जी अग्रवाल को है।

उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध तक इस क्षेत्र के अध्ययन का नाम सार्वजनिक पुरातत्त्व (पापुलर एन्टीक्वटीज) था। सर्वप्रथम सन् १८४६ में श्री विलियम जाहन थामस ने इसे नया नाम फाक्लोर दिया। फोक शब्द ऐंग्लो-सैक्सन शब्द 'Folc' का विकसित रूप है। डा० बार्कर ने 'फोकशब्द' को समझाते हुए लिखा है कि 'फाक' से किसी सभ्यता से दूर रहनेवाली पूरी जाति का बोध होता है या यदि इसका विस्तृत अर्थ लिया जाये तो सुसंस्कृत राष्ट्र के सभी लोग इस नाम से पुकारे जा सकते हैं। पर 'फोक्लोर' के सदर्भ में फाक का अर्थ असंस्कृत लोग है। दूसरा शब्द लोर (Lore) ऐंग्लो-सेक्सन 'Lar' से निकला है और इसका अर्थ होता है वह जो सीखा जाये। इस प्रकार 'फोक्लोर' का शाब्दिक अर्थ है 'असंस्कृत लोगों का ज्ञान'।[1]

फाक्लोर शब्द के पर्याय हिन्दी शब्द के ऊपर जब गंभीर विचार करते हैं तो फाक शब्द के लिए हिन्दी में तीन शब्दों का प्रयोग मिलता है—लोक, जन और ग्राम। अंग्रेजी फोक शब्द के लिए हिन्दी का 'लोक' शब्द बहुत प्रचलित है एवं प्रिय है। पर हिन्दी 'फोक्साम्स्' के प्रथम संग्रहकर्ता प० रामनरेश त्रिपाठी 'फाकशब्द' के लिए 'ग्राम' शब्द पर विशेष बल देते हैं। उन्होंने अपने साहित्य में सर्वत्र ग्राम शब्द का ही प्रयोग किया है। यथा—ग्रामगीत, ग्रामसाहित्य आदि।[2] डा० माता चद जी ने 'फाक' के लिए जनशब्द के प्रति आग्रह किया है।

---

१ देखिए डा० भोलानाथ तिवारी का लेख 'लोकायन और लोकसाहित्य' सम्मेलन पत्रिका, स० २०१०

२ देखिये जनपद खड १, अक १, त्रिपाठी जी का लेख।

गंभीर विवेचन के लिए पहिले हम ग्राम शब्द को लेते हैं। इस शब्द में वस्तुतः लोक की विशाल भावना नहीं आ पाती। यदि हल्का आवरण उठाकर देखें तो नगर में भी लोक की स्थिति है। सुसंस्कृत राष्ट्र के सभी लोग इस नाम से पुकारे जा सकते हैं। इस प्रकार ग्राम और पुर का इसमें भेद नहीं है। दूसरा शब्द जन है। यह 'जनि' धातु से बना है जिसका अर्थ है उत्पन्न होना। इस प्रकार उत्पन्न होने वाले (जन्मने वाले) सभी लोगों का बोध इस शब्द से हो जायेगा। अति प्राचीन काल से यह शब्द इस अर्थ का द्योतक रहा है। पृथ्वीसूक्त में जन शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में मिलता है यथा 'जन बिभ्रती बहुधा विवाचसम्', जानपद शब्द से भी जन शब्द के व्यापक अर्थ की ध्वनि निकलती है। वैदिक युग में 'जानराज्य' जनता के प्रिय राज्य को बताया गया है। ब्राह्मणग्रन्थों, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश के साहित्य में भी जन शब्द प्रायः इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। जनप्रवाद, जनपद तथा जनाश्रय आदि शब्दों में भी जन की यही ध्वनि है। पर साथ ही साथ जन शब्द का एक दूसरा अर्थ भी लगा चलता रहा है जो भक्त के अर्थ में आगे चलकर रूढ़ हो गया। महाभारत काल में गीता में कृष्ण के लिए जो जनार्दन विशेषण आता है वह इसी अर्थ का पोषक है। इस शब्द की व्युत्पत्ति दी गई है 'जन भक्त अर्दयति रक्षति' इति जनार्दन। उदाहरण— 'निहत्य धार्तराष्ट्रान्न का प्रीतिः स्याज्जनार्दन'।[1] हिन्दी के भक्ति-साहित्य में तो जन शब्द 'भक्त' का पर्यायवाची ही बन गया है। 'हरिजन जानि प्रीति अतिबाढ़ी' (हरि का दास) (भक्त) जानकर प्रीति बढ़ी 'जन रंजन भंजन खलव्राता। वेद धर्म रक्षक सुरत्राता।—(सुन्दरकाण्ड)

लोक शब्द का प्रयोग भी बहुधा है। इस शब्द की व्युत्पत्ति धातुद्वय से 'लोकृ दर्शने' और 'रुच् दीप्तौ' से संभव है। पर इस क्षेत्र में पाणिनी वैयाकरण एवं पाश्चात्य भाषाविज्ञान विशारदों में मतैक्य नहीं है। व्युत्पत्ति विषयक अर्थ को अलग रखते हुए प्रयोग से इसका एक अर्थ और भी मिलता है। इस शब्द का अर्थ स्थानवाची भी अवश्य है। ऋग्वेद में इसी अर्थ में इसका प्रयोग आया है। 'देहिलोकम्' का अर्थ है 'स्थान दो'। भुवन अर्थ में भी यह शब्द प्रयुक्त हुआ है यथा—इहलोक, त्रिलोक एवं चतुर्दशलोक आदि। लोक का एक विशिष्ट अर्थ वेद विरोधी भी है। 'लोके वेदे च' की बात उसी समय से चली है। किन्तु आगे चलकर 'लोक' वेदेतर संस्कृति की संकुचित सीमा को तोड़कर ऊपर उठ गया है, उसकी भावना वैदिक और अवैदिक दोनों तत्वों को सहज रूप से छूने लगी है। अब वेद के तुल्य ही

[1] गीता, अध्याय १, श्लोक ३६।

यह शब्द स्वतंत्र एवं सामान्य अस्तित्व का अधिकारी हो गया है। यथा 'लोक सभा' आदि शब्दों में अशोक के शिलालेखों के देखने से पता चलता है कि उस समय लोक शब्द से सामान्य जीवन का अभिप्राय लिया गया है। यह प्रयोग 'अनुत्तर सर्वलोक हिताय' से सुस्पष्ट है। बौद्धधर्म के प्रचार के साथ ही लोक शब्द में 'मानवमात्र' की भावना का उद्भव हुआ। प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषा के 'लोगजत्ता' (लोकयात्रा), 'लो अप्पवाय' (लोक प्रवाद) आदि शब्द लोक की महत्ता प्रदर्शित करते हैं।

इस प्रकार हमने देखा है कि 'ग्राम' शब्द सीमित है, जन अपनत्व 'फोक' के निकट है परन्तु 'लोक' में 'लोक वेद च' से लेकर 'लोक कि जन बड़रो' तक शुद्ध 'फोक' की भावना मिलती है। निष्कर्षतः लोक ही फोक का प्रतिशब्द ठीक बैठता है।

'फोक' के लिए भारतीय शब्द लोक निर्णीत हो चुकने पर 'लोर' के लिए भारतीय प्रतिशब्द की समस्या शेष रहता है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है लोर ऐंग्लो-सैक्सन (Lar) से निकला है और इसका अर्थ होता है 'वह जो सीखा जाये' अर्थात् 'ज्ञान'। इस प्रकार 'फोक्लोर' का शाब्दिक अर्थ हुआ 'लोक ज्ञान'। साथ ही साथ 'जो सीखा जाय' इस अर्थ की विवेचना करते-करते 'फोकलोर' के लिए अनेक शब्दों की उद्भावना हो जाती है। यथा—लोकज्ञान, लोक-विज्ञान, लोकशास्त्र, लोकपरंपरा, लोकप्रतिभा, लोकप्रवाह, लोकपंथ, लोक विधान, लोकसंग्रह, लोकपुराण, लोक आगम आदि[1]। पर इन शब्दों में किसी में भी मुकम्मिल भाव आद्योपांत अनुस्यूत नहीं मिलता। अतः इस समस्या को सुलझाने के लिए विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रयुक्त शब्दों का विवेचन अपेक्षित है। सर्वप्रथम डा० वासुदेव शरण जी अग्रवाल ने 'फोक्लोर' शब्द का पर्याय 'लोकवार्ता' रखा है। उन्हें यह वार्ता शब्द 'वल्लभ सम्प्रदाय' में प्रचलित निजवार्ता, घरूवार्ता, ८४ वैष्णवन की वार्ता, दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता आदि में मिला है[2]। इस शब्द के अपनाने के प्रति श्री कृष्णानन्द जी गुप्त का भी आग्रह है। उन्होंने बुन्देलखण्ड के लोकवार्ता पर के निबंध में लिखा है—"लोकवार्ता को अंग्रेजी में 'फोक्लोर' कहते हैं। अथवा यों कहिए कि फोक्लोर के लिए हमने लोकवार्ता शब्द का प्रयोग किया है। फोक्लोर का प्रचलित अर्थ है जनता का साहित्य, ग्रामीण कहानी आदि। परं

[1] डा० भोलानाथ तिवारी का लेख 'सम्मेलन पत्रिका' स० २०१०

[2] डा० सत्येन्द्र—ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, विषय प्रवे पृष्ठ १।

हम उसका अर्थ करते हैं जनता की वार्ता। जनता जो कुछ कहती है अथवा उसके विषय में जो कुछ कहा और सुना जाता है वह सब लोकवार्ता है। जिस प्रकार प्रत्येक देश (जनपद) की अपनी एक भाषा होती है उसी प्रकार अपनी एक लोकवार्ता भी होती है। जनता के मानस में लोकवार्ता का जन्म होता है।"

परन्तु इस शब्द को स्वीकार करने में विद्वानों को कई आपत्तियाँ हैं। प्रथम, यह शब्द पर्याप्त व्यापक नहीं है। लोकवार्ता में तो अधिक से अधिक लोककथा का भाव वहन करने की क्षमता है। देशीय प्रयोग में चिट्ठी-पत्री की भाँति कथावार्ता का प्रयोग होता है जिससे यह स्पष्ट है कि कथा और वार्ता पर्यायवाची शब्द हैं। डिंगल में भी इस शब्द की यही स्थिति है। वहाँ पर भी वारता अथवा वारता का प्रयोग कथा के अर्थ में ही होता है। दूसरे, संस्कृत साहित्य में इसका अर्थ 'अफवाह' या 'किंवदन्ती' भी मिलता है[१]। प्रसिद्ध संस्कृत कोशकार आप्टे महोदय ने लोकवार्ता का अर्थ 'पापुलर रिपोर्ट' या 'पब्लिक रयूमर' दिया है। परन्तु इस समस्या के सुभाव के लिए 'ऐनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका' का मत भी देख लेना समीचीन होगा। इस विश्वकोष में 'फोकलोर' शब्द का इतिहास बतलाते हुए लिखा है कि "सन् १८४६ में डब्ल्यू० जे० थामस ने यह शब्द सभ्य जातियों में मिलने वाले असंस्कृत समुदाय की प्रथाओं, रीतिरिवाजों तथा मूढ़ भावों की अभिव्यक्ति करने के लिए गढ़ा था। शब्दों के अर्थ परिभाषाओं द्वारा नियत नहीं होते, प्रयोग द्वारा होते हैं।[२]" अतः परिभाषाओं और कोषकारों को छोड़कर प्रयोग देखना चाहिए। लोकवार्ता के संपादक श्री कृष्णानन्द जी गुप्त ने तो सुस्पष्ट शब्दों में कहा है कि जनता जो कुछ कहती और सुनती अथवा उसके विषय में जो कुछ कहा और सुना जाता है वह सब लोकवार्ता है। इस स्थापना को स्वीकार करते हुए लोकवार्ता शब्द बड़ा व्यापक बन जाता है और फोकलोर का समीचीन पर्याय हो जाता है।

लोकायन शब्द फोकलोर का भारतीय प्रतिशब्द है। यदि इस शब्द को परखा जाय तो यह बड़ा सुन्दर शब्द निकलेगा। इसमें 'अयन' शब्द रामायण की भाँति 'घर' अथवा 'सर्वस्व' के रूप में प्रयुक्त माना जायेगा और इसका अर्थ होगा—'लोक का घर' अथवा 'लोक का सर्वस्व।' अतः इस शब्द की परिधि में वह सब कुछ आ जायेगा जो जनता कहती है, सुनती है अथवा उसके

१ श्री द्वारका प्रसाद शर्मा—'संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ'।

२ ऐनसाइक्लोपीडियाब्रिटेनिका—पृष्ठ ४४६, वाल्यूम १।

विश्व में जो कुछ कहा और सुना जाता है। शब्दान्तर में यह लोक का रामायण है। जैसे रामायण राम के सब कुछ को लेकर चली है ठीक उसी प्रकार 'लोकायन' शब्द भी लोक के सबन्ध को अपने में समेटे हुए है। अतः यह शब्द भी लोकवार्ता की भाँति व्यापक एवं ग्राह्य है। परन्तु लोकवार्ता शब्द हिन्दी में प्रयोग क्षेत्र में अपना स्थान निर्धारित कर चुका है। नवीन शब्दों के सुझाव और आग्रह से लोकवार्ता के प्रति जमी हुई आस्था कम नहीं हो सकती। अतः सुविधा के लिए फोकलोर शब्द का भारतीय प्रतिशब्द लोक-वार्ता ही सर्वश्रेष्ठ एवं मान्य है। हमारे विचार से भी यही उपयुक्त एवं ग्राह्य है।

अन्य अनेक विद्वानों ने भी इस दिशा में विविध सुझाव दिये हैं। उन पर विहंगम दृष्टिपात करना भी अप्रासंगिक न होगा। पं० रामनरेश त्रिपाठी जी ने 'फोकलोर' के लिए 'ग्राम साहित्य' शब्द स्वीकार किया है किन्तु यह शब्द अव्याप्तिदोष दूषित है। डा० हजारीप्रसाद जी द्विवेदी ने इस प्रसंग में 'लोक संस्कृति' शब्द का प्रयोग किया है।[1] परन्तु यह 'फोकक्लचर' का ही पर्याय बन सकता है 'फोकलोर' पृथक् रह जाता है।

भाषा तत्वविद् डा० सुनीति कुमार चटर्जी ने 'फोकलोर' के लिए भारतीय प्रतिशब्द 'लोकयान' दिया है। वे कहते हैं—"यान का प्रचलित अर्थ वाहन या सवारी है पर उसका एक अर्थ जाना या चलना भी है। सचमुच लोक जीवन फोकलोर के साथ, उसके सहारे और उस पर चलता है। इन दृष्टियों से 'लोकयान' में बिना किसी प्रकार की खींचातानी के 'फोकलोर' के अन्तर्गत आने वाली सभी बातें आजाती हैं।"[2] किन्तु इस शब्द की परिधि में विश्वास, रीति-रिवाज और अन्धविश्वास (नूदमाहो) का ही समावेश हो सकता है। लोकवार्ता का विलास इससे बाहर पड़ेगा जो फोकलोर का एक मुख्य अंग है।

डा० सत्येन्द्र ने अपना थीसिस—'ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन' में लोकवार्ता शब्द का ग्रहण किया है। एक स्थान पर (आलोचना पत्रिका, अंक ४, पृष्ठ ३७) फोकलोर के लिए दो अन्य शब्दों का ग्रहण करते मिलते हैं—लोकाभिव्यक्ति एवं लोकतत्व। इनमें से पहिला शब्द अव्यापक है और दूसरा 'फोक एलीमेंट' का पर्याय हो सकता है, फोकलोर का नहीं।

---

1 जनपद खण्ड १, अंक १, पृष्ठ ६६।

2 'राजस्थानी कहावतां भाग पहिलो' सं० २००६, भूमिका पृष्ठ ११।

आ लोकवार्ता का क्षेत्र एवं व्यापकता

फोकलोर शब्द के हिंदी पर्याय की खोज करते हुए इस शब्द की परिभाषा एवं इसके क्षेत्र के ऊपर भी कुछ विचार हुआ है। 'ऐनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' में फोकलोर के इतिहास पर टिप्पणी देते समय इसके क्षेत्र विस्तार को भी छू लिया गया है। विश्वकोष ब्रिटेनिका के शब्द—"यह शब्द सभ्य जातियों में मिलनेवाले असंस्कृत समुदाय की प्रथाओं, रीति रिवाजों तथा मूढ़ ग्राहों को अभिव्यक्त करने के लिए गढ़ा गया था। अंग्रेजी परम्परा में फोकलोर के क्षेत्र की कोई सूक्ष्म सीमा निर्धारित नहीं की जाती प्रयोग में साधारण प्रवृत्ति इसके क्षेत्र को संकुचित अर्थ में सभ्य समाजों में मिलने वाले पिछड़े तत्वों की संस्कृति तक ही सीमित रखने की है।" किंतु शार्लट शोफिया बर्न की वैज्ञानिक परिभाषा में और भी अधिक स्पष्टता एवं सत्यता है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'हैंडबुक ऑव फोकलोर' में फोकलोर के इतिहास की खोज की है और एक मार्मिक मीमांसा दी है। उनके एक विशिष्ट उद्धरण का अनुवाद डा० सत्येंद्र जी ने अपनी थीसिस 'ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन' में इस प्रकार दिया है, "फोकलोर शब्द, शब्दार्थत लोक का विद्या (दि लर्निंग ऑव दि पीपिल) सन् १८४६ में श्री थामस ने पहिले प्रयोग में आने वाले (पापुलर एंटीक्विटीज) शब्द के लिए गढ़ा था। (अब) यह एक जातिबोधक शब्द की भाँति प्रतिष्ठित हो गया है जिसके अन्तर्गत पिछड़ी जातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों में अवशिष्ट रीति रिवाज, कहानियाँ, गीत तथा कहावतें आती हैं। प्रकृति के चेतन तथा जड़ जगत् के संबंध में, मानव स्वभाव तथा मनुष्यकृत पदार्थों के संबंध में, भूत प्रेतों की दुनियाँ तथा उसके साथ मनुष्यों के संबंधों के विषय में, जादू, टोना, सम्मोहन, वशीकरण, तावीज, भाग्य, शकुन, रोग तथा मृत्यु के संबंध में आदिम तथा असभ्य विश्वास इसके क्षेत्र में आते हैं। और भी इसमें विवाह, उत्तराधिकार, बाल्यकाल तथा प्रौढ़जीवन के रीति रिवाज तथा अनुष्ठान और त्यौहार, युद्ध, आखेट, मत्स्य व्यवसाय, पशु पालन आदि विषयों के भी रीति रिवाज और अनुष्ठान इसमें आते हैं तथा धर्मगाथाएँ, अवदान (लीजेंड), लोक कहानियाँ, साके (बैलेड), गीत, किंवदन्तियाँ, पहेलियाँ तथा लोरियाँ भी इसके विषय हैं। संक्षेप में, लोक की मानसिक सम्पन्नता के अन्तर्गत जो भी वस्तु आ सकती है वह सभी इसके क्षेत्र में है। यह किसान के हल की आकृति नहीं जो लोकवार्ताकार को अपनी ओर आकर्षित करती है, किन्तु वे उपचार अथवा अनुष्ठान हैं जो किसान हल को भूमि जोतने के काम में लाने के समय करता है। जाल अथवा वंशी

की बनावट नहीं, वरन् वे टोटके जो मछुआ समुद्र पर करता है, पुल अथवा निवास का निर्माण नहीं, वरन् वह बलि जो उनके बनाते समय दी जाती है और उसको उपयोग में लाने वालों के विश्वास। लोकवार्ता वस्तुतः आदिम मानव की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है, वह चाहे दर्शन, धर्म, विज्ञान तथा औषध के क्षेत्र में हुई हो, चाहे सामाजिक संगठन तथा अनुष्ठानों में अथवा विशेषतः इतिहास, काव्य और साहित्य के अपेक्षाकृत बौद्धिक प्रदेश में।[1]

उपरोक्त विवेचन से यह तो स्पष्ट है कि लोकवार्ता शब्द का विस्तार बड़ा महान् एवं विशद है। इसके अन्तर्गत उस समस्त आचार-विचार की समृद्धि रहती है जिसमें मानव का परम्परित रूप प्रतिबिम्बित होता है। यह मानव मानस की वह निधि है जिसमें परिष्कार तथा संस्कार अपेक्षित नहीं। डा० वासुदेव शरण जी अग्रवाल ने इसके क्षेत्र का परिगणन करते हुए लिखा है, "लोक का जितना जीवन है उतना ही लोकवार्ता का विस्तार है। लोक में बसने वाला जन, जन की भूमि और भौतिक जीवन तथा तीसरे स्थान में उस जन की संस्कृति—इन तीन क्षेत्रों में लोक के पूरे ज्ञान का अन्तर्भाव होता है, और लोकवार्ता का सम्बन्ध भी उन्हीं के साथ है[2]।"

उपरोक्त समस्त विवेचन का सार हम इस प्रकार दे सकते हैं कि लोकवार्ता पुण्य सलिला सुरसरिता के सदृश विपथगा है। इसके विषयों को तीन प्रधान समूहों में बाँटा जा सकता है—१ कला २ विश्वास ३ अनुष्ठान। १ कला के क्षेत्र में, साहित्य (लोकगीत, लोकगाथा, लोककथा, लोकनाट्य, लोकोक्ति, सूक्ति तथा पहेली), चित्रकला, मूर्तिकला, संगीतकला, अभिनय कला, तथा नृत्यकला आदि हैं। २ विश्वास के क्षेत्र में वे समस्त मान्यताएँ तथा अन्धविश्वास आयेंगे जो विभिन्न जीवों, धर्मगाथा के चरित्रों (यथा—इन्द्र, अग्नि आदि) भूत, चुड़ैलों आदि से सम्बन्धित हैं। ३ अनुष्ठान में वे कार्य-कलाप आते हैं जो इन विश्वासों के कारण विभिन्न अवसरों पर अनिष्ट का परिहार करने तथा इष्ट की सिद्धि के लिए किये जाते हैं।

विस्तृत रूप से यदि लोकवार्ता के विषयों की परिगणना की जाये तो एक लम्बी चौड़ी तालिका बन सकती है। श्रीमती बर्न ने उसके तीन उपविभाग किये हैं और उनकी विस्तृत सूची दी है। डा० सत्येन्द्र ने इसका अनुवाद एवं वर्गीकरण इस प्रकार दिया है।

---

१ डा० सत्येन्द्र—'ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन', पृष्ठ ४,५।

२ डा० वासुदेव शरण अग्रवाल—'पृथ्वीपुत्र' पृष्ठ ८१।

१ ने निरवास और आचरण अभ्यास जो सम्बन्धित हैं—
   १ पृथ्वी और आकाश से,
   २ वनस्पति जगत से,
   ३ पशु जगत से,
   ४ मानव से,
   ५ मनुष्य निर्मित वस्तु से,
   ६ आत्मा तथा दूसरे जीवन से,
   ७ परामानवी व्यक्तियों से (यथा देवता, देवी तथा ऐसे ही अन्य व्यक्तियों से),
   ८ शकुनों अपशकुनों, भविष्यवाणियों, आकाशवाणियों से,
   ९ जादू टोनों से और,
   १० रोगों तथा स्थानों की कला से।
२ रीति रिवाज—
   १ सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाएँ,
   २ व्यक्तिगत जीवन के अधिकार,
   ३ व्यवसाय धंधे तथा उद्योग,
   ४ तिथियाँ, व्रत, तथा त्योहार और,
   ५ खेलकूद (अखाड़ेबाजी) तथा मनोरंजन
३ कहानियाँ, गीत तथा कहावतें—
   १ कहानियाँ (अ) जो सच्ची मानकर कही जाती हैं।
   (आ) जो मनोरंजन के लिए होती हैं।
   २ गीत (सभी प्रकार के)
   ३ कहावतें तथा पहेलियाँ।
   ४ पद्यबद्ध कहावतें तथा स्थानीय कहावतें।
   ५ साधारणतया, मोटे तौर पर लोकवार्ता के विषयों की सूचिका इस प्रकार दी जा सकती है —
   क अभिव्यक्ति —
      १ साहित्यिक एवं कलात्मक —लोकगीत, लोककथाएँ, लोकगाथाएँ, कहावतें, पहेलियाँ तथा सूक्तियाँ आदि।
      २ शारीरिक अभिव्यक्ति —लोकनृत्य, लोकनाट्य आदि, बालक बालिकाओं के विभिन्न खेल, ग्रामीण खेल आदि।

ख रीति रिवाज, प्राचीन परम्पराएँ, त्योहार, पर्व, पूजा, तीर्थ, व्रत आदि।

ग जादू टोना, टोटका, भूत प्रेत चुड़ैल सम्बन्धी विश्वास आदि।

इस प्रकार पाठक देख पाये हैं कि लोकवार्ता का क्षेत्र बहुव्यापी है और साहित्यिक पक्ष उसका एक अंश मात्र है। परन्तु जहाँ पर विभिन्न विश्वास और नाना अनुष्ठान लोकसाहित्य सृजन में सहायक हैं वे भी लोकसाहित्य के ही अन्तर्गत आ जाते हैं। इस दृष्टि से लोकसाहित्य का क्षेत्र लोकवार्ता से व्यापक हो जाता है। परन्तु इस पक्ष में विद्वान एकमत नहीं हैं।

(ङ) लोकवार्ता और लोकसाहित्य का सम्बन्ध

यहाँ तक फोकलोर (लोकवार्ता) के रूप, क्षेत्र और सज्ञादि पर विचार हुआ है। अब लोकवार्ता और लोकसाहित्य के सम्बन्ध को देख लेने की आवश्यकता है। श्रीमती बर्न ने अपनी विस्तृत मीमांसा से यह स्पष्ट किया है कि लोकवार्ता का लोकसाहित्य एक अङ्ग है, और इसकी परिधि में लोकगीत, लोककथा, लोकगाथा, कहावतें, पहेलियाँ, सूक्तियाँ और लोकनाट्य आदि आते हैं। किन्तु डा० सत्यव्रत सिन्हा का मत इसके विरुद्ध है[1]। उनका कहना है कि लोकवार्ता स्वयं लोकसाहित्य का एक अंग है। लोकसाहित्य के दो भेद होते हैं—लोकगीत और लोकवार्ता। वार्ता शब्द में इतनी व्यापकता नहीं है कि उसमें समस्त लोकसाहित्य का समावेश हो जाये। इस प्रकार वे लोकवार्ता को लोकसाहित्य का एक भाग बतलाते हैं। एक स्थान पर डा० सत्येन्द्र ने भी लोकसाहित्य को लोकवार्ता से अधिक व्यापक बतलाया है। उन्होंने लिखा है—एक दृष्टि से लोकसाहित्य का केवल एक अंग ही लोकवार्ता के अन्तर्गत आ सकता है। ऐसा भी लोकसाहित्य हो सकता है, नहीं होता ही है, जो लोकवार्ता नहीं माना जा सकता। लोकवार्ता में केवल वही लोकसाहित्य समाविष्ट होता है जो लोक की आदिम परम्परा को किसी न किसी रूप में सुरक्षित रखता है। इस साहित्य को हम आदिम मानव की आदिम प्रवृत्तियों का कोष कह सकते हैं। पर लोकसाहित्य का बहुत सा अंश ऐसा भी है जो पारिभाषिक लोकवार्ता से बाहर रहता है। यह वह साहित्य है जिसकी मौखिक परंपरा विशेष पुरानी नहीं है, जिसके निर्माण का काल अथवा समय जाना जा सकता है। जो नये विषयों पर नए उद्देश्य के परिणाम स्वरूप रचा गया है और रचा गया है बिना किसी सरकारी

[1] "हिन्दी अनुशीलन पत्रिका" वर्ष ४ अंक ४—डॉ० सत्यव्रत सिन्हा का लेख।

चेतना के। इसके निर्माण में हृदय और मानस की वह सहज अकृत्रिम अभिव्यक्ति काम करता है जो लोकसाहित्य के लिए अपेक्षित है किन्तु किसी आदिम परंपरा की सुरक्षा नहीं है। अत यह कहना अप्रगल्भ न होगा कि लोकवार्ता का क्षेत्र लोकसाहित्य की दृष्टि से कुछ असमुचित है।' परन्तु संसार के सभी मनीषियों ने लोकवार्ता की व्यापकता एक स्वर से स्वीकार की है और वे सभी लोकसाहित्य को लोकवार्ता का प्रमुख अंग स्वीकार करते हैं। प्रस्तुत लेखक का मत भी यही है बिना संस्काररहितता के और आदिम परंपरा की सुरक्षा के बिना किसी साहित्य को लोकसाहित्य कहना ही व्यर्थ है।

ग लोकसाहित्य के विविध रूप

अभी तक हमने लोकवार्ता के रूप को परखा है और उसके साथ लोकसाहित्य के संबंध पर विचार किया है। अब लोकसाहित्य के विविध रूपों पर दृक्पात करना अप्रासंगिक न होगा। मोटे तौर पर हम इस साहित्य को तीन रूपों में प्राप्त करते हैं एक—कथा, दूसरा—गीत, तीसरा—कहावतें आदि। लोककथाओं की विभेदता भी तीन रूपों में मानी जाती है—धर्मगाथा, लोकगाथा (अवदान आदि) तथा लोक-कहानी। धर्मगाथा (माईथालाजी) पृथक् अध्ययन का विषय है। शेष कथा के दो भाग रह जाते हैं लोकगाथा तथा लोक कहानी। डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने इन दोनों का पृथक्-पृथक् अस्तित्व स्वीकार करते हुए लोक साहित्य को चार रूपों में बाँटा है एक—गीत, दूसरा—लोकगाथा, तीसरा—लोक-कथा तथा चौथा—प्रकीर्ण साहित्य जिसमें अवशिष्ट समस्त लोकाभिव्यक्ति का समावेश कर लिया गया है।

वैसे तो धर्मगाथाएँ पृथक् अध्ययन का विषय है किन्तु लोक-कहानी और धर्मगाथा में जो विशेष अन्तर आ गया है उसे समझ लेना अहितकर न होगा। धर्मगाथा अपने निर्माण-काल में एक सीधी सादी लोक-कहानी ही होती है परंतु उस कहानी में धर्म की एक विशेष पुट लग जाती है जो उसे लोक-कहानी के वास्तविक आधार से पृथक् कर देती है। डा० सत्येन्द्र ने इस ओर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि धर्म गाथा स्पष्टत तो होती है एक कहानी पर उसके द्वारा अभीष्ट होता है किसी ऐसे प्राकृतिक व्यापार का वर्णन जो उसके सृष्टा ने आदिम काल में देखा था और जिसमें धार्मिक भावना का पुट होता है। ये धर्म गाथाएं हैं तो लोकसाहित्य ही, किन्तु विकास की विविध अवस्थाओं में से होती हुई ये गाथाएं धार्मिक अभिप्राय से संबद्ध हो गयी हैं। अत लोकसाहित्य के साधारण क्षेत्र से इनका स्थान बाहर हो जाता है और यह धर्मगाथा सम्बन्धी अध्ययन एक पृथक् ही अन्वेषण

का विषय है।[1] अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'दि क्वीन आव दि एअर' में जान रस्किन ने धर्मगाथा की मीमांसा देते हुए लिखा है कि यह अपनी सीधी-सादी परिभाषा में एक कहानी है जिससे एक अर्थ संयुक्त है और जो प्रथम प्रकाशित अर्थ से भिन्न है।

लोकगाथाएँ (अवदान, किस्से या साके) वे काव्यमय कहानियाँ हैं जिनका आधार इतिहास है अथवा जिन्हें कालक्रम से ऐतिहासिक महत्व हासिल हो चुका है। लोक मानस की वे घटनाएं जो कोरी कल्पना-जन्य हैं वह आगे चलकर ऐतिहासिक रूप प्राप्त कर जाती हैं। जिन जातियों का मानसिक विकास नहीं हुआ है उनमें थोड़े से चमत्कारपूर्ण कार्य करने वाले व्यक्ति युग पुरुष अथवा ऐतिहासिक पुरुष की नाईं पूजे जाते हैं। ठीक इसी प्रकार का एक किस्सा (अवदान, गाथा) हरफूल जाट जुलाणा वाले का है जिसने अपने जीवन भर जानी लगा कर वधिकों से (कसाइयों से) गायें छुड़ा ली थीं। आज भी गोमाता के पुजारी प्रदेश हरियाना की साधारण जनता हरफूल जाट के वीर रसात्मक किस्सा को गा-गाकर आनन्द मनाती है। अन्य जनपदीय जातियों में भी ऐसे अनेक किस्से आपको मिल जायेंगे।

किस्सों की परख से यह स्पष्ट है कि इनमें इतिहास के अवशेषों को ही मरने से नहीं बचाया गया है पर साम्प्रतिक पुरुषों के किस्से भी चमत्कृत रूप में मिले हैं। अत साके प्राचीन वीरों और सिद्ध महात्माओं के ही हों ऐसी बात नहीं है, ये साके सामयिक पुरुष सम्बन्धी भी हो सकते हैं, बल्कि होते भी हैं। यथा—'किस्सा हरफूल जाट जुलाणा का', इन नये व्यक्तियों के सम्बन्ध में बड़ी अद्भुत कल्पनाएँ कर ली जाती हैं। सर आर० सी० टेम्पल ने 'लीजेंड्स आव दि पंजाब' में इन किस्सों को छः भागों में बाँटा है। इन छः चक्रों में से एक चक्र उन कथाओं का भी है जो स्थानीय वीरों से सम्बन्ध रखती हैं।

हमने लोक गाथाओं को अवदान, साका, राग या किस्सा के नाम से अभिहित किया है। इस साहित्यिक विधा का एक नाम राजस्थानी में ख्यात भी प्रचलित है। ये ख्यातें रासो से भिन्न वस्तु हैं। रासो साहित्यिक वीर कथाएँ हैं और ख्यातें मौखिक कथाएँ हैं। ये लोक गाथाएँ दो रूपों में मिलती हैं। एक प्राचीन पुरुषों की शौर्य की कहानियाँ हैं जिन्हें वीरकथा कहा जा सकता है। इन्हें ही 'पवाड़ा' भी कहते हैं यथा 'जगदेव का पवाड़ा'। इनमें पुराण पुरुषों का अस्तित्व निर्विवाद मान लिया जाता है। दूसरे—साके।

१ डा० सत्येन्द्र 'ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन' पृष्ठ ६ और ८।

ये उन पुरुषों के शौर्य से सम्बंधित हैं जिनके प्रति इतिहास मौन है। गाने में जीवन तथा शौर्य का विस्तार अपेक्षित है।

लोककथा निस्संदेहात्मकतया लोकगाथा से भिन्न वस्तु है। जो विद्वान् इन दोनों को एक लोक-कहानी के ही लघु और विशाल रूप कहते हैं उन्होंने उनके मर्म को पहचानने का प्रयास नहीं किया। लोकसाहित्य के ये दोनों रूप आपस में भिन्न हैं। लोक कथाओं में कहानियों के दोनों तत्व—मनोरंजन एवं शिक्षा पाये जाते हैं। जो कहानियाँ केवल शिक्षा के लिए ही निर्मित हुई हैं उनके लिए अलग नाम भी दिया गया है। इन कहानियों को भारतीय साहित्य में तन्त्राख्यान या पशु पक्षियों की कहानियाँ कहा गया है। अंग्रेजी में ऐसी कहानियों का नाम फेबिल दिया गया है। फेबिल को समझाते हुए 'ला फाउन्टेन' ने बड़ी प्रिय परिभाषा दी है —

"Fables in sooth are not what they appear,
Our moralists are mice and such small deer
We yawn at Sermons, but we gladly turn,
To moral tales, and so amused in yarn"

"काल्पनिक कथाएँ, वास्तव में, वैसी नहीं जैसी दिखाई देती हैं। हमारे धर्मोपदेष्टा चूहे और मृगशावक भी हो सकते हैं। हम उपदेश सुनते सुनते ऊँघने लगते हैं, किन्तु शिक्षाप्रद कहानियों को प्रसन्नतापूर्वक पढ़ते हैं और वर्णन का खूब आनन्द लेते हैं।" भारतीय कथा साहित्य में इस प्रकार के आख्यानों की कमी नहीं है। विष्णु शर्मा का पचतन्त्र और हितोपदेश शश शृगाल-काक उलूक के मध्य चलने वाले जीवनोपयोगी आख्यान ही तो हैं। भारत के ये आख्यान संसार के श्रेष्ठतम फेबिलस् में से हैं। इनकी यही विशेषता है कि इनमें किसी न किसी प्रकार की शिक्षा अवश्य मिलती है।

यहाँ पर इतना और ध्यान दे लेना चाहिए कि प्रत्येक वह कहानी जिसमें पशु-पक्षी किसी भी रूप में आये हैं तन्त्रमूलक अथवा नीतिमूलक कहानी नहीं कहला सकती। फेबल्स् वे ही कहानियाँ हैं जिनमें नीति बतलाई गई है अथवा कोई सुनिश्चित उपदेश दिया गया है। बौद्ध जातकों में आई हुई वे पशु-पक्षी सम्बन्धी कहानी कदापि तन्त्राख्यान नहीं कहलायेंगी। कारण कि वे धर्मभावना को जाग्रत करके चुप हो जाती हैं और उनका आदर धर्म श्रद्धा से होता है। यही स्थिति वेदों में मिलने वाली उन कहानियों की है जिनमें पशु-पक्षियों का नाम आया है।

लोकसाहित्य के कथा भाग पर विचार कर चुकने पर लोक गीत और लोक कहावतें, पहेलियाँ आदि रहती हैं। लोक गीत लोक मानस के वे अजस्र

एव निश्छल प्रवाह हैं जिनका लोक प्रतिभा के द्वारा विभिन्न अवसरों पर निर्माण होता है एव गान होता है। संक्षेप में लोकगीत लोक द्वारा लोक के लिए गाया गया गीत होता है। लोक गीतों की संख्या उतनी हो सकती है जितने जीवन के पहलू हैं।

प्रकीर्ण साहित्य मे उस समस्त लोकाभिव्यक्ति का समावेश होता है जो लोककथा, लोकगाथा और लोकगीत की परिधि से बाहर पड जाता है। इस प्रकार इनमें लोक के वे सभी अनुभव जो समय-समय पर होते हैं आ जाते हैं। पहेलियाँ, सूक्तियाँ, बुझौवल, कहावतें, बालकों के खेलकूद के बोल विलास आदि सब इसके अन्तर्गत आ जाते हैं। इनका विवेचनात्मक वर्णन भी यथास्थान दिया गया है।

(घ) लोकसाहित्य की विशेषताएँ

लोक साहित्य जिसने रूपादि का ऊपर वर्णन हुआ है उसकी विशेषताओं पर दृक्पात करना असमीचीन न होगा। लोक साहित्य को कुछ विद्वानों ने लोक श्रुति (वेद) कहा है। वेद का नाम श्रुति इसी विशेषता के कारण पड़ा है कि यह शिष्य परपरा श्रुतिबल से चलता चला आया है। लोक-साहित्य भी इसी वर्ण परम्परा से आगे बढ़ता है। यह दादी से पोता तक, नानी से धेवता तक श्रुति मार्ग से आया है। यही इसका प्रथम एव प्रमुख विशेषता मानी जाती है। इसके विपरीत प्रणीत साहित्य मौखिक परम्परा की अपेक्षा लेखनी परपरा पर गर्व करता है। यदि लेखबद्धता का यह गौरव *लोक-साहित्य को मिल जाये तो वह एक प्रकार से निष्प्राण हो जायगा।* लिपि का प्रसाद भले ही गीतों, गाथाओं, कथा-कहानियों को सुरक्षित रख ले परन्तु उनकी अनुभाविकाशक्ति उसी क्षण नष्ट हो जाती है जब कि वे लेखनी की नोक पर सवार होकर कागज की भूमि पर उतरना आरंभ करते हैं। उनको सुरक्षा, सौन्दर्य एव सम्मान भले हो मिल जाये किन्तु उनमें वह स्वाभाविक उन्मुक्त प्रवृत्ति नहीं रहती जिसमें वे जन्मे हैं, पनपे हैं और पुष्ट हुए हैं। वह गमले के पौदे की भाँति हरा भरा रहता हुआ भी अशक्त और भविष्यत् की उन्नति से विमुख रहता है। ग्रैक सिज्विक के ये शब्द कितने तथ्यपूर्ण हैं कि लोकसाहित्य का लिपिबद्ध होना ही उसका मृत्यु है। वस्तुत लोकसाहित्य की मौलिकता ने ही उसे व्यापकता एव अनेकरूपता प्रदान की है।

इसी बात को प्रो० किटरेज ने 'इंगलिश और स्काटिश बलेड्स' की भूमिका म इस प्रकार कहा है—'लोक-साहित्य का शिक्षा से कोई सरोकार

नहीं होता अब कोई जाति पढना सीख लेती है, तो सबसे पहिले वह अपना परम्परागत गाथाओं का तिरस्कार करना सीखती है। परिणाम यह होता है कि जो एक समय सामूहिक जनता की संपत्ति थी वह अब केवल अशिक्षितों का पैतृक संपत्ति मात्र रह जाता है।'

एक दूसरी विशेषता, जो लोकसाहित्य के पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती है, वह है उसकी अनलङ्कृत शैली। शिष्ट साहित्य म सालकारता के प्रति विशेष आग्रह होता है। यत्र-तत्र अनलकृति भी क्षम्य है— 'अनलङ्कृति पुन क्वापि' (मम्मट—काव्य प्रकाश, काव्य का लक्षण) पर लोक साहित्य म बनावट, सजावट, कृत्रिमता और अलकरणप्रियता का आग्रह नहीं है। यह तो उस वन्य कुसुम के सदृश है जो बिना सवारे हुए भी अपनी प्राकृतिक आभा से दीप्तिवान है। इसम नैसर्गिक रुक्षता (खुरदरापन) है किन्तु है एक लावण्य एव सौन्दर्य से सयुक्त। यह तो लोक मानस की वे मदृल तरगें हैं जो सहृदयों के कलहस को आह्लादित करती हैं। यह तो जाह्नवी की उस अजस्र जलधारा के सदृश है जो मानव के साथ अनादि काल से बहती चली आ रही है। सालकार काव्य से लोक गीतों का वैशिष्ट्य प्रदर्शित करते हुए प० रामनरेश त्रिपाठी के ये शब्द चिरस्मरणीय रहेंगे— 'ग्राम गीत और महाकवियों की कविता में अतर है। ग्राम-गीतों म रस है, महाकाव्य में अलकार। ग्रामगीत हृदय का धन है और महाकाव्य मस्तिष्क का। ग्रामगीत प्रकृति के उद्गार हैं, इनमें अलकार नहीं केवल रस है, छद नहीं केवल लय है, लालित्य नहीं केवल माधुर्य है।' कितने सार्थक हैं त्रिपाठी जी के ये शब्द। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि इनमें दडी का पद लालित्य, भारवि का अर्थ गौरव और कालिदास की अनूठी उपमाएँ न देखने को मिलें—बेशक, पर इनम रस का एक पारावार लहरा रहा है जो सहृदय सवेद्य है।

सादगी लोक कविता का सर्वस्व है। साहित्यिक कविता म ऊहा और कल्पना के वे रग हैं जो कालान्तर में छूछे हो जाते हैं। लोक कविता अपने नैसर्गिक रग म मानव के उप काल से जीवित है और जीवित रहेगी। इस काव्य क्षेत्र म अलकार बहिष्कार की शपथ नहीं ली गई है। ये तत्व अस्पृश्य एव त्याज्य नहीं ठहराये गये हैं। अत रीत्यलकार पारखी अनावश्यक रूप से निराश व चिंतित न हों। उन्हें स्थान-स्थान पर बड़े भव्य एव सुन्दर अलकार चारों ओर बिखरे मिलेंगे। हमारा कहने का अभिप्राय केवल यह है कि लोकसाहित्य में शिष्ट साहित्य की भाँति रीत्यलकारों के प्रति आग्रह नहीं होता। जहाँ अलकार आये हैं अनायास ही आ गये हैं। उनकी सख्या अल्प

अवश्य है किन्तु आये हैं ये सयम के साथ। इन्हीं तथा अन्यान्य कारणों से लोक साहित्य को सर्वप्रियता प्राप्त हुई है। अनुपम सादगी और स्वाभाविक सरलता लोक साहित्य के आत्मीय गुण हैं।

लोक साहित्य की तीसरी प्रमुख विशेषता है रचयिता और रचना काल का अज्ञात होना। दादी नानी से चली आती हुई दतकथाओं और गीतों आदि की परपरा किस युग से चली और किस कृती के पुण्यों का परिणाम है इसका हमारे पास कोई प्रमाण नहीं। यों तो सभी रचनायें किसी न किसी व्यक्ति की प्रतिभा का प्रसाद है किन्तु उसका व्यक्तित्व इस परपरा मे अज्ञातावस्था में है। वास्तव म, इन गीतादिकों के कर्ता वे निरीह जन हैं जिन्होंने अपने नाम और ग्राम की चिंता न करते हुए समाज के लिए अपनी प्रतिभा की भेंट दी है। कालक्रम से अज्ञातनामा व्यक्ति विशेष की रचना में समुदाय ने भी अपना योग दिया और यह स्वाभाविक भी था क्योंकि वह वस्तु समुदाय की है और समुदाय के लिए है। समुदाय का योग मिलना आवश्यक है। इसी से कविता के आरभ पर विचार करते हुए कुछ विद्वानों ने कहा है कि आदि में कविता समस्त समुदाय के प्रयत्नों से बना। किसी ने कुछ जोड़ा, किसी ने कुछ और एक पद बना। इसी प्रक्रिया से कविता आगे बढी है। इससे एक कठिनाई अवश्य हुई है कि लोकसाहित्य का कोई मूल पाठ नहीं मिलता। यह भी कहा जा सकता है कि सम्भवत: कोई निश्चित मूल पाठ रहा भी न हो। इसका एक विपरीत परिणाम यह भी हुआ है कि कई लोगों को घाघ, भड्डरी आदि की कहावतों को लोकसाहित्य कहने में आपत्ति हुई है। किन्तु इन लोक कलाकारों का व्यक्तित्व इतना व्यापक और महान् हो चुका था कि इनके नाम भी एक समुदायवाची बन गये हैं। इन्होंने 'सूल का रूप' ले लिया है। सच पूछा जाये तो इन नामों में नाम की गध न रह गई है। ये तो अब पुरुष के रूप म गये हैं। भले ही वह पुरुष घाघ हो, भड्डरी हो, या हो अन्य कोई लोक नाट्यकार दीपचन्द जैसा व्यक्ति। लखमी हरियाने का लोक सागी इस रूप में है कि उसमें लोक नाट्यकार के लिए जिस सूझ, व्यक्तित्व और प्रतिभा की आवश्यकता होती है वे सब एक एक करके विद्यमान हैं। उसकी कल्पना इतनी निराली और व्यापक तत्वों से समन्वित थी कि दर्शकवृन्द 'वाह दादा, वाह दादा' कहकर पुकार उठते और रसानुभूति से उन्मत हो जाते थे। यहाँ पर डा० उपाध्याय की वह स्थापना जिसमे उन्होंने राहुल जी आदि अनेक भोजपुरी भाषा में लिखनेवालों को भोजपुरी लोकसाहित्य निर्माताओं में स्थान दिया है कुछ खटकने वाली है। राहुल जी का रूप तो एक उत्कृष्ट विवेचक और मीमासक का है उसमें भला जन गायक का रूप कहाँ आ सकता

है ? फिर लोक बोली या लोक भाषा में लिखी हुई प्रत्येक वस्तु लोक साहित्य के पावन सिंहासन पर नहीं विराजमान हो सकती। इसके लिए उन परिस्थितियों की आवश्यकता है जो किसी वस्तु को लोकसाहित्य बनाने में सहायक होती हैं।

लोकसाहित्य की अन्य विशेषता यह है कि यह प्रचार या उपदेशात्मक प्रवृत्तियों से अछूता है। विशुद्ध लोकसाहित्य में प्रचार, प्रापेगेन्डा अथवा उपदेश का अभाव रहता है। उसमें तो विरह, वीरता, करुणादि के सात्विक भाव भरे होते हैं जो जन जन को एक रूप से प्रिय एवं ग्राह्य हैं। यहाँ पर यह आक्षेप किया जा सकता है कि लोकोक्तियों में भी तो उपदेशात्मक प्रवृत्ति है फिर वे लोकसाहित्य का प्रमुख अंग क्योंकर हैं ? विचारने पर प्रतीत होगा कि लोकोक्ति-साहित्य का प्राण वह कोरा उपदेश ही नहीं है। लोकोक्ति तो वह विट् एवं चमत्कार है जो शत शत अनुभवों के द्वारा प्राप्त हुआ है और किसी के मुख से चमत्कृत रूप में प्रस्तुत हुआ है। इसलिए लोकोक्ति केवल 'अभिव्यक्ति' पर जीवित है उपदेश पर नहीं। उपदेश तो वहां एक गौण तत्त्व है।

लोकसाहित्य की एक और विशेषता यह भी है कि उसमें साम्प्रदायिकता के लिए स्थान नहीं है। वह पक्षी व पवन के सदृश स्वच्छन्द है। उसे शाक्त एवं वैष्णव की आलोचना से कुछ नहीं लेना देना है। उसे विष्णु भी उतने ही पूज्य हैं जितनी कि शक्ति या काली आराध्या। उसकी निर्गुण ब्रह्म में उतनी ही आस्था है जितनी कि सीताराम, राधाकृष्ण और शिव पार्वती में। लोकसाहित्य की इस उदात्त भावना ने निस्संदेह इसे अन्य सभी साहित्यों से महान् बना दिया है।

अंत में इस बात को समाप्त करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं यदि कविता का कार्य पाठक को संवेदनशील बनाना, सोचने समझने की शक्ति देना और जीवन की रहस्यमय व्याख्या करना है तो निश्चय ही शास्त्रीय कविताएँ अधिकांश में असफल रही हैं। लोकगीत चाहे जिस देश व जाति के हों कविता के वास्तविक उत्तरदायित्व को बहुत अंश में पूरा करते हैं, निभाते हैं।

(ट) लोकसाहित्य का महत्त्व

उपरोक्त विवेचन से हम उस कोने पर पहुँच गये हैं जहाँ से सरलतया लोकसाहित्य के महत्व को आंका जा सकता है। लोकसाहित्य का महत्त्व बहुविध है। विचार करने पर पाठक को धर्मगाथा (माइथालाजी), नृविज्ञान

(एनथ्रापोलाजी), जाति विज्ञान (एथनालोजी) और भाषा विज्ञान (फाइलालॉजी) आदि क्षेत्रों में लोकसाहित्य की महत्ता, विशेष रूप से अनुभव होगी। यदि हम कहें कि लोकसाहित्य के सम्यक् विवेचन के बिना इन क्षेत्रों का अध्ययन अपूर्ण एवं अद्धपूर्ण होगा तो कोई अत्युक्ति न होगी। लोकसाहित्य धर्मगाथादिका के अध्ययन के लिए आधारशिला का काम करता है। भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में तो लोक साहित्य की महत्ता सर्वविदित है।

विश्व और मानव की रहस्यमय पहेली को सुलझाने के लिए, उसके प्राचीनतम रूपों की खोज के लिए और उसके यथार्थ स्वरूप को जानने के लिए जहाँ इतिहास के पृष्ठ मूक हैं, शिलालेख और ताम्रपत्र मलीन हो गये हैं वहाँ उस तमसाच्छन्न स्थिति में लोकसाहित्य ही दिशा निर्देश करता है। लोकसाहित्य का गंभीर अध्ययन जीवन और जगत का मौलिक एवं प्रामाणिक ज्ञान के लिए अत्यन्त आवश्यकीय है। आदिम मानव की आदिम प्रवृत्तियों को जानने का सबसे सरल, प्रामाणिक एवं रोचक साधन लोकसाहित्य ही तो है। इस स्थल पर एक और बात भी विचारणीय है कि सभ्य कहे जाने वाली जातियों के यथार्थवादी (Realistic) लेखकों की भाँति अनेक असंस्कृत जातियों के मौखिक साहित्य में भोग व लिप्सा की दुर्गन्ध नहीं है। इनके गीतों में जीवन की निकृष्ट दशा को छोड़ जीवन के रमणीय पक्ष का प्रदर्शन हुआ है।

भय, आश्चर्य और जिज्ञासा हेतु मानव ने छन्दोबद्ध अथवा छन्दमुक्त जो कुछ भी कहा है वह सभी हमारे अन्वेषण, अध्ययन एवं मनन के लिए उपादेय हैं। उसमें वे सभी प्रकार के गीत, कथा, गाथा, पहेली, लोकोक्ति, मुकरी आदि अनेक विधा द्वारा मानव ने अपने हृदय के भावों को व्यक्त किया है, अपना ज्ञान-गंगा प्रवाहित की है। शिशु स्वागत के लिए गाये गये हालर और लोरियाँ भी इसी साहित्य के अङ्ग हैं। इन सबका अध्ययन बड़ा मनोरम एवं उपयोगी है जो नीचे के विवरण से स्पष्ट है।

१ ऐतिहासिक महत्व

किसी देश व समाज के प्राचीन रूप की झलक देख लेने का अनुपम साधन लोकसाहित्य है। इस आगए माउ में चन्दन के रूख पर रेशम की डोर से झूला डालने की बात इंगित करती है, बटऊ (अतिथि, विशेषकर जामाता) के पधारने पर सोने की कड़ाह में पूरियाँ उतारने की बात कही जाती है तो तत्कालीन समाज के विगत वैभव विलास की झाँकी मिल जाती है। भले हो ये समाज की आदर्श कल्पनाएँ रही हों किन्तु जन मानस

में ये वस्तुएँ रही अवश्य हैं। चन्द्रावल तथा अन्यान्य पतिपरायणा महिलाओं के आदर्श पातिव्रत को प्रदर्शित करने वाले गीत तथा कामांध यवनों के निरीह जनता के गार्हस्थ्य जीवन को पंकिल करने वाले कारनामे किस इतिवृत्त से अधिक प्रभावशाली नहीं हैं?

वर्णनात्मक दोहे जो ग्रामीण जनता के मुख में आसीन हैं बड़ी पते की बातें बतलाते हैं और पिछले इतिहास पर प्रकाश डालते हैं। हरियाणा के विषय में गुरु गोरख नाथ के पर्यटन से सम्बन्धित यह दोहा—

'कटक देश, कठोर नर, भैंस मूत्र को नीर।'
करमां का मारा फिरे, बागर बीच फकीर।

नाथ कालीन इस प्रदेश के इतिहास को अपने में समेटे हुए है। यह संस्कृत में प्राप्त उस वर्णन के प्रतिकूल है जहाँ हरियाणे को 'बहुधान्यकभू' कहा गया है। इस स्थिति में पाठक एक विचिकित्सा में पड़ जाता है कि राजाश्रित किसी कवि की वह संस्कृतोक्ति सत्य है अथवा रमते राम बाबा गोरखनाथ का यह ठेठवाणी। सामयिक परिस्थिति एवं वातावरण को देखते हुए गोरख बाबा वाली बात ही यथार्थ बैठती है। ऐसे ही अन्य अनेक तत्व इतिहास की खोज में सहायक होते हैं।

पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय साहित्य में यह कमी बतलाई है कि इसमें इतिहास विषयक सामग्री का एक तरह से अभाव है परन्तु उनका यह आक्षेप शिष्ट और लोकसाहित्य दोनों पर लागू नहीं होता। लोक मस्तिष्क ने अपने इतिहास की कड़ियाँ अपने गीतों में, अपनी कथाओं में जोड़ी हैं। लोक गाथाएँ तो एक रूप से इतिहास की प्रचुर सामग्री से सम्पन्न हैं। उनमें अतिरंजना भले ही हो किन्तु इतिहास के विद्यार्थी को कुछ ऐसे तथ्य अवश्य मिल जायेंगे जो प्रसिद्ध इतिहास लेखकों की दृष्टि से छूट गये हैं।

२ सामाजिक महत्व

लोकसाहित्य का सामाजिक मूल्य बहुत अधिक है। समाज शास्त्र के समुचित अध्ययन के लिए लोकसाहित्य की महत्ता सुविदित है। भारतीय समाज का ढांचा किस प्रकार का रहा है यह लोक गीतों, लोककथाओं और लोकोक्तियों से भली-भाँति समझ में आ जाता है। सास बहू का कटु संबंध, ननद भावज का वैमनस्य, विप्रयुक्ता तथा विधवा की दशा का मार्मिक एवं याथातथ्यपूर्ण वर्णन किसी लिखित रूप में उतना मार्मिक नहीं मिलेगा! भाई बहन के निरीह निश्छल कोमल प्रेम के उदाहरण क्या कल्हण की राजतरंगिणी,

अष्टादश पुराण और टॉड राजस्थान आदि महान ग्रंथों में देखने को मिलेंगे? शिशु जन्म पर होने वाले सामाजिक कृत्यों के प्रति क्या इतिहास-लेखकों का ध्यान कभी गया है? इन सबके समीचीन अध्ययन के लिए लोक साहित्य ही तो एक मात्र साधन है।

३ शिक्षा विषयक महत्व

ज्ञान एवं नीति की दृष्टि से यह साहित्य पर्याप्त समृद्ध है। ग्रामों में चाहे स्कूल, कालेज एवं उच्च शिक्षा का समुचित प्रबंध न हो, चाहे ग्रामीण जनता को अक्षर ज्ञान की कोई सुविधा न हो परन्तु जनता के ज्ञान में बराबर वृद्धि होती रहती है। इस ज्ञान को ग्रामीण जनता आँखों द्वारा न लेकर कानों द्वारा ग्रहण करती है। इस प्रकार यह शिक्षा दिन और रात का, प्रात और मध्याह्न का, तथा सन्ध्या व प्रदोषकाल का कोई ध्यान न कर सहज रूप में वायु और आकाश के परों पर चढ़ नारद की भाँति जन-जन के द्वार पर अलख जगाती है। ग्राहक को इस शिक्षा के हृदयंगम करने के लिए किसी विशेष वातावरण एवं परिस्थिति की आवश्यकता नहीं पड़ती। यह कहना अनुचित न होगा कि ग्रामों में मौखिक विश्व विद्यालय खुले हुए हैं। परस (चापाल) और पूअर (अलाव) इस ज्ञान-वितरण के लिए बड़े उपयुक्त स्थल हैं। इन संस्थाओं में शिक्षा के अलग अलग स्तर हैं जहाँ आबालवृद्ध को आयु के अनुसार शिक्षा मिलती है। शिक्षार्थी को समयानुसार सब चीजें सीखने को मिलेंगी। कोर्स (पाठ्यक्रम) आयु के अनुसार चलता है। बचपन में बाल सुलभ और बुढ़ापे में वृद्ध सुलभ।

इस शिक्षा वितरण के सर्वोत्तम साधन लोक-कथाएँ हैं। यों तो बालक की शिक्षा जननी की गोद में ही आरम्भ होती है। वहीं से वह चन्दामामा, झूँ झूँ के म्याऊ के, आटे बाटे के द्वारा कुछ सीखता चलता है। कैसा सुन्दर ढङ्ग है, शिक्षा की शिक्षा और मनोविनोद का मनोविनोद। घर घर में किंडर गार्टन और मांटेसरी शालाएँ लगी होती हैं। माता-पिता, भाई-बहन, दादी-दादा, अड़ोसी-पड़ोसी अबोध बालक की ज्ञान झोली में कोई न कोई रत्न बिना माँगे डालते रहते हैं। बालक कुछ बड़ा होता है तो दादा नाना की घरेलू कहानियाँ बालक को हँसाने के साथ कभी आश्चर्य, कभी उत्साह और कभी उदासी के पाठ पढ़ाती चलती हैं। इन कहानियों में बालक के लिए परिचित कुत्ता, बिल्ला, कौआ, मोर, तोता, सारस, गीदड़ और लोमड़ी आदि पात्र जीवन की व्याख्या बालक की मातृभाषा में करते चलते हैं। ये कहानियाँ बालकों को सामाजिक व्यवहार का ज्ञान भी

देती रहती हैं। इन ग्रामीण घरेलू कहानियों में और पाठ्य पुस्तकों में स्थान पाने वाली आधुनिक कहानियों में एक मौलिक अन्तर है। स्कूली कहानियों में पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति लहरें लेती है जब कि घरेलू कहानियों का पट उन्हीं तन्तुओं से निर्मित है जो पूर्णतया भारतीय हैं। वही—'एक राजा था। उसके सात छोरे थे और सात छोरियाँ थीं'—आदि पूर्व परिचित बातें हैं।

बालिकाओं के दृष्टिकोण से देखें तो लोकसाहित्य बड़ा उपयोगी मिलेगा। उनके लिए सामाजिक एवं कौटुम्बिक शिक्षा का समुचित प्रबन्ध यहाँ मिलता है। उदार जननी एवं सद्गृहस्थ बनना भारतीय पुत्रियों का प्रथम व पुरातन उद्देश्य रहा है। बालिकाएँ जीवन के आरम्भ से ही गुड़ियों के साथ खेल-खेल कर अपना मनोरंजन करती हैं और गृहस्थ के अनेक रहस्यों को अनायास सीख लेती हैं, समझ लेती हैं। कुछ सयानी होती हैं तो गीतों की दुनिया में पदार्पण करती हैं। यह संसार उन्हें पर्याप्त मात्रा में शिक्षित कर देता है। यहीं से उन्हें ऐसे असत्य नुसखे (योग) मिलते हैं। जो भावी जीवन के लिए लाभप्रद एवं हितकर सिद्ध होते हैं। जिन बातों को ये गुड्डे गुड़िया के रूप में कहती सुनती हैं उन्हीं से अपने भावी जीवन की दिशा निर्धारित करती चलती हैं। डा० वेरियर एलविन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'फोक्सांग्स् आफ मैकलहिल्स्' में एक स्थान पर लोक गीतों की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए लिखा है कि—'इनका महत्व इसीलिए नहीं है कि इनके संगीत, स्वरूप और विषय में जाता का वास्तविक जीवन प्रतिबिम्बित होता है, प्रत्युत इनमें मानवशास्त्र (सोशियोलाजी) के अध्ययन की प्रामाणिक एवं ठोस सामग्री हमें उपलब्ध होती है'। डा० एलविन के मत में एक सार है, एक तथ्य है।

४ आचारिक महत्व

लोक में आचार का बड़ा महत्व है। लोकसाहित्य में आचार सम्बन्धी बातें यत्र-तत्र बिखरी मिलेंगी। यहाँ आचार सम्बन्धी कितने ही अध्याय खुले पड़े हैं जिनमें एक लोकोत्तर नैतिक एवं आचारिक अवस्था का वर्णन है। सतीत्व का कितना ऊँचा आदर्श यहाँ उपलब्ध होता है यह चन्द्रावल के कथा-गीत में स्पष्ट है। लोक साहित्य में जिन उच्चादर्शों का वर्णन है जिन लोकोत्तर आदर्शों की कल्पना है उनमें राम कृष्ण शिव और सीता राधा पार्वती को नहीं भुला सकते। ये हमारे आचार के केन्द्र हैं। इन्हीं आदर्शों को अपनाकर भारत भारत रह सकता है।

५ भाषा वैज्ञानिक महत्व

यह सत्य बात है कि 'भाषा शास्त्री' के लिए शिष्ट साहित्यिक भाषाएँ

उतनी उपयोगी नहीं है जितनी कि बोलचाल की भाषाएँ। इसलिए लोक-साहित्य लोक भाषा की वस्तु होने के कारण भाषा-वैज्ञानिकों के लिए बड़ा महत्व पूर्ण है। यही वह धरातल है जहाँ पर भाषातत्ववेत्ता भाषा के परतों को उघाड़कर देखते हैं और गंभीर से गंभीर स्तरों में प्रवेश पाते हैं।

अर्थ परिवर्तन को समझने के लिए तथा शब्दों के इतिहास की खोज के लिए लोक-साहित्य सर्वाधिक उपादेय है। प० रामनरेश जी त्रिपाठी का यह कथन पूर्णतया सत्य है कि 'आधुनिक हिन्दी के जन्मदाता गाँव वाले हैं और उनका साहित्य इस भाषा को गढ़ने के लिए टकसाल का काम दे रहा है। संस्कृत के शब्द जिस प्रकार साधारण जन के लिए उपयोग सुगम हुए हैं यह सब इस टकसाल का ही परिणाम है।' जब एक साधारण ग्रामीण किसी नई वस्तु या किसी नूतन प्राकृतिक व्यापार को देखता है तो उसे अपनी समझ से कोई न कोई नाम देना चाहता है। इसके लिए किसी पंडित व पुरोहित की अपेक्षा उसे नहीं होती। उसने साइकिल देखा। कभी नहीं सोचा कि यह अंग्रेजी अथवा ऐंग्लो-सैक्सन भाषा का शब्द है और उसके क्या माने हैं। उसने देखा केवल एक नूतन व्यापार कि एक गाड़ी है और वह पैर से चलती है। अतः वह कहता कह देता 'पैरगाड़ी'। यह एक साधारण शब्द है लेकिन कितना मधुर एवं उपयोगी है। समस्त संस्कृत का धुरंधर वैयाकरण इतना सार्थक शब्द निर्माण न कर सकता। यदि करता तो उस शब्द की दशा 'मनचानून निर्दोषा यान' होती अर्थात् ननिर्मित शब्द मूलशब्द से भी दुरूह होता।

लोकमानस की शब्द निर्माण शक्ति का परम प्रमाण क्रिया-विशेषण बनाने में सफलता हो जाता है। जेर से गिरने के लिए 'धड़ाम से गिरा' अधिक सार्थक एवं स्पष्ट मालूम है आदि। यदि हम किसी ग्रामीणजन को बोलता सुन लें हम सहज ही ज्ञात हो जायेगा कि वह कितने ही ऐसे शब्द प्रयोग में लाता है जो भारतीय वातावरण में पनपे हैं यथा पौन (पवन) पौरुष (पौरुष) बारि (वारि) आदि ऐसे शब्द हैं जिनके अन्तस् में भारतीय वातावरण हिलोरें ले रहा है। एक सफल निवचन में हम यह देख पाते कि लोकभाषा शिष्ट भाषा से अधिक सुन्दर और सरलता है। इसके अध्ययन से हमारी भाषा सुन्दर बनेगी और सरल भी बनेगी। हरियाना लोकसाहित्य का अध्ययन भी हिन्दी शब्दकोष की पर्याप्त अभिवृद्धि करेगा। इस बात के उजियार (प्रकाश), लहास (Co-operative league) तथा लाई (पंचात कर के) आदि ऐसे शब्द हैं जो हिन्दी का भाव प्रकाशित कर सकेंगे।

६ सांस्कृतिक महत्व

लोकसाहित्य का सांस्कृतिक पक्ष बड़ा निगूढ़ है। विश्व की संस्कृतियाँ

कैसे उद्भूत हुई, कैसे पनपी, इस रहस्य की कहानी अथवा इतिहास हमें लोक साहित्य के सम्यक् अध्ययन से मिलता है। संस्कृतियों के पुनीत इतिहास की परख अनेकांश में लोकसाहित्य से संभव है। सच पूछा जाये तो लोकसाहित्य ही संस्कृति की अमूल्य निधि है। महात्मा गांधी के निम्नलिखित शब्द जिनमें लोकसाहित्य के सांस्कृतिक पक्ष की महत्ता प्रकट की गयी है, चिरस्मरणीय रहेंगे—'हाँ, लोकगीतों की प्रशंसा अवश्य करूँगा, क्योंकि मैं मानता हूँ कि लोकगीत समूची संस्कृति के पहरेदार होते हैं।' गुजराती मनीषी काका कालेलकर ने लोकसाहित्य के सांस्कृतिक पक्ष को इन शब्दों में व्यक्त किया है—'लोकसाहित्य के अध्ययन से, उसके उद्धार से हम कृत्रिमता का कवच तोड़ सकेंगे और स्वाभाविकता की शुद्ध हवा में फिरने डोलने की शक्ति प्राप्त कर सकेंगे। स्वाभाविकता से ही आत्मशुद्धि संभव है'[1]। अंत में यदि हम यह कहें कि लोक साहित्य जन-संस्कृति का दर्पण है तो अत्युक्ति न होगी।

संस्कृति की आधारशिला पुरातन होती है। इसके मूलतत्वों के संबंध में जो तत्व सबसे महत्वपूर्ण एवं विचारणीय हैं, वह है विगत का प्रभाव। आज भी हमारा आदर्श हमारा अतीत है। झूला झूलते, चाकी पीसते, यात्रा करते हमारे आदर्श राम-लक्ष्मण के पुण्य चरित्र ही हैं। यही लोकसाहित्य का सांस्कृतिक पक्ष है।

---

१ 'राजस्थानी लोकसाहित्य'—पारीक पृष्ठ १६।

प्रथम अध्याय

अ हरियाना प्रदेश का इतिहास और क्षेत्र-विस्तार

आ हरियाना लोकसाहित्य के विविध रूप

अ हरियाना प्रदेश का इतिहास और क्षेत्र-निस्तार

१ हरियाना प्रदेश का इतिहास, नामकरण व प्राचीनता

विषय प्रवेश म हमने लोकवार्ता और लोकसाहित्य के रहस्य, पारस्परिक सम्बन्ध तथा लोकसाहित्य की विशेषताओं को जानने का प्रयत्न किया है। "हरियाना प्रदेशीय लोकसाहित्य का अध्ययन" नामक विषय पर पहुँचने से पहिले हरियाना प्रदेश की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर विचार करना अनुपयुक्त एव अप्रासंगिक न होगा। अत इस अध्याय के प्रथम अर्द्धभाग में हरियाना प्रदेश की प्राचीनता, उसका क्षेत्र विस्तार एव सीमाओं पर विचार करेंगे और उत्तरार्द्ध में हरियाना प्रदेश मे प्राप्त लोकसाहित्य के विविध रूपों का वर्णन करेंगे।

हरियाना प्रात का इतिहास एक रूप से उपेक्षित रहा है। प्रागैतिहासिक काल से लेकर अब तक का इतिहास इस प्रदेश के विषय में मूक बना हुआ है। शक, मालव आदि तक्षशिला को केन्द्र बनाकर विकसित हुए। उनके समय म मथुरा नगर ऐतिहासिक प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था किन्तु तक्षशिला और मथुरा के मध्यवर्ती इस प्रदेश को कोई ऐतिहासिक महत्ता नहीं मिली। खेद का बात है कि जिस महान् प्रदेश को आज हरियाना के नाम से पुकारा जाता है उस प्रदेश का प्राचीन ग्रथों में इस नाम से कहा वर्णन तक नहीं मिलता। ऋक् सहिता ६ २ २५ २ म 'रजत हरयाणे' पाठ में एक शब्द मिलता अवश्य है किन्तु यह शब्द देशवाची नहीं है।[1] यह शब्द वहाँ पर एक राजा के विशेषण के रूप म प्रयुक्त हुआ है जिसका अर्थ है "सदैव यान (रथ) चलता रहता है जिसका।" परन्तु इस प्रदेश की स्थिति से यह सहज ही ज्ञात हो

१ निरुक्त—नैगम काड, अध्याय ५, खड १६, पृष्ठ ५२६ (दुर्गाचार्य की टीका)।

मूलपाठ—हरयाणो हरमाणयान। रजत हरयाण इत्यपि निगमो भवति। भाष्य—हरयाण इत्यनवगतम्। हरमाणयान इत्यवगम।

ऋजमुक्षण्यायने रजत हरयाणे। रथ युक्तमसनाम सुषामणि—ऋक् सहिता ६ २ २५ २

अर्थ—इसमें यान की स्तुति की गई है। घोड़ो से युक्त, चादी से मढ़े चार सरल, सुखद गतिवाले रथ को हमने, यान सदैव चलता रहता है जिसका और साम शोभायमान है जिसका ऐसे उक्षण्यायन नाम क राजा के यजमान और महादक्ष दाता होने पर, प्राप्त किया।

साता है कि यह प्रदेश विगत युगों में आर्य सभ्यता का केन्द्र रहा है। इस प्रदेश की परिमामा मनुस्मति और महाभाष्य म वर्णित ब्रह्मावर्त, ब्रह्मर्षि, मध्य-देश तथा आर्यावर्त ने प्रचुर भूमाग को अपने म समेटे हुए है।[१] चाहे जो कुछ हो इतना तो स्पष्ट है कि मनुस्मृति, महाभाष्य, बौधायन धर्मसूत्र, वशिष्ठ धर्मसूत्र और विनयपिटक आदि म वर्णित मध्य देश तथा आर्यावर्त की पश्चिमी सामा आधुनिक हरियाने की पश्चिमी सीमा रही है।[२] आज भी हरियाने की पश्चिमा सामा पर सरस्वती तथा दृषद्वती (घग्गर) नदी बहती है।[३]

उपरोक्त वर्णन से पाठकों को यह विदित हो गया है कि यह प्रात एक प्राचीन प्रदेश एवं कई प्राचीन जनपदों की लीलाभमि रहा है। महाभारत म जनपदों का वर्णन मिलता है। उन जनपदों में कुरुवन एक विशेष ख्याति प्राप्त प्रदेश था। आधुनिक हरियाना कुरुवन प्रदेश का वह भूमाग है जो कौरवों ने पाडवों को दिया था। इसी प्रदेश म पाडवों ने अपनी इतिहास प्रसिद्ध राजधानी इन्द्रप्रस्थ बसाई थी। हरियाना प्रदेश में ही पाणिप्रस्थ (आधुनिक पानीपत) श्रोणिप्रस्थ (आधुनिक सोनीपत) वे ऐतिहासिक स्थान हैं जिनकी माग पाडवों

१ (i) सरस्वती दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्।
त देवनिर्मित देश ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥ मनुस्मृति २ १७
सरस्वती और दृषद्वती देवनदियों के बीच के देवताओं से बनाये गये देश को ब्रह्मावर्त नाम से कहा जाता है।

(ii) कुरुक्षेत्र च मत्स्याश्च पञ्चाला शूरसेनका ।
एष ब्रह्मर्षि देशो वै ब्रह्मावर्तादनन्तर ॥ २ १९
कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पचाल और शूरसेन देश ब्रह्मर्षि देश कहलाते हैं जो ब्रह्मावर्त से भिन्न हैं।

(iii) हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्य यत्प्राग्विनशनादपि ।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेश प्रकीर्तित ॥ २ २१
हिमालय और विन्ध्याचल के बीच म विनशन नदी से पूर्व और प्रयाग से पश्चिम देश को मध्यदेश कहा जाता है।

महाभाष्य—क पुनरार्यावर्त ? फिर आर्यावर्त कौन सा देश है ?
प्रागदर्शनात् प्रत्यक् कालकवनाद् दक्षिणेन हिमवन्त उत्तरेण पारियात्रम्।
अदर्शन नदी से पूर्व में, कालक वन से पश्चिम म, हिमालय से दक्षिण और पारियात्र से उत्तर म आर्यावर्त देश है।—
निर्दिष्टप्रकरण एकशेषप्रकरणम् १, पृष्ठ २३७

२ इण्डियन एण्टीक्वरी १९०२, पृष्ठ १७१ पर कविराज शेखर पर नोट।

३ गजेटियर जिला हिसार—पृष्ठ ५, पर हिसार की नदियाँ।

ने पारस्परिक कलह की उपशांति के लिए की थी। इनके आसपास ही दो अन्य छोटे-छोटे ग्राम हैं, पाचवा ग्राम इन्द्रप्रस्थ था।

इन्द्रप्रस्थ से पाडवों ने पश्चिम दिग्विजय प्रारभ की थी। यह प्रदेश एक समय बड़ा समृद्ध था। यहा के कइ नगर प्राचीन युग में राजधानी रहे हैं। प्रारम्भ में यौधेयों ने रोहतक को अपनी राजधानी बनाया था जो प्राप्त सिक्कों से विदित है। उस समय इस प्रदेश का नाम 'बहुधान्यक' प्रसिद्ध था। होशियारपुर, भरतपुर और सहारनपुर से प्राप्त सिक्कों से भी यह प्रकट है कि यह प्रदेश बड़ा समृद्ध एव सम्पन्न रहा होगा। पीछे से इस प्रदेश पर वर्धनवश का राज्य रहा और हर्षवर्धन ने स्थानेश्वर (थानेसर) को अपनी राजधानी बनाया। अत उपरोक्त विवरण से यह अवगत हो जाता है कि यह भूभाग चिरकाल तक भारतीय इतिहास में बड़ा प्रमुख रहा है। इस प्रदेश के ऐतिहासिक मूल्य को जानकर भी हम उस युग तक नहीं पहुच पाये हैं जिस युग में इसे '*हरियाना*' *नाम से पुकारा गया। इस नाम का सर्वप्रथम उल्लेख विक्रम* की चौदहवीं शताब्दि के अंतिम भाग में (१३८४) एक शिलालेख में मिला है। इसमें हरियाना देश को पृथ्वी पर 'स्वर्ग सन्निभ' कहा गया है और यहा का 'ढिल्लिका' दिल्ली नाम्नी पुरी तोमरवंश द्वारा निर्मित बताई गई है।[१] एक दूसरे स्थान पर 'हरियानक' शब्द प्रयुक्त हुआ है। बलबन के राजत्वकाल के एक शिलालेख में यह शब्द आया है। यह शिलालेख उपरोक्त शिलालेख

[१] यह शिलालेख सुलतान मुहम्मद बिन तुगलक के समय का है, जो दिल्ली से ५ मील दूर दक्षिण स्थित 'सारवन' नामक गाँव से मिला है और इस समय दिल्ली के म्यूज़ियम बी० ६ में रखा हुआ है। इस शिलालेख में तिथि स० १३८४। ८१ विक्रमीय फाल्गुन शुक्ल ५ मगलवार अंकित है। कुल १६ श्लोक हैं। यहाँ पर उद्धृत अंश तृतीय श्लोक है —

देशोऽस्ति हरियानाख्य पृथिव्या स्वर्गसन्निभ।
ढिल्लिकाख्या पुरी तत्र तोमरैरस्ति निर्मिता।
तोमरानन्तर तस्या राज्य हितकण्टकम्।
चाहमाना नृपाश्चक्रु प्रजापालनतत्परा॥

अ 'राइज़ पाल आफ हिन्दु इंडिया'—मा० वी० वैद्य, तृतीयभाग, पृष्ट ३१६।
आ 'कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इन्डिया' तृतीय भाग, पृष्ट ५०७,५१०।
इ 'अग्रवाल जाति का इतिहास' पृष्ट २१ २२
ई 'एपाग्राफिआ इन्डिका' भाग १३ पृष्ट।
उ पालगुप्त गुप्त स्मारक ग्रन्थ पृष्ट १।

से ४७ वर्ष पुराना है। यह पालम की एक बावड़ी से मिला है और उसका समय विक्रम सम्वत् १३३७ दिया हुआ है। परन्तु यह शब्द कोई नूतन नहीं प्रतीत होता वरन स्वार्थ में 'क' प्रत्यय करके 'हरियान' से हरियानक शब्द बना लिया गया जान पड़ता है।[1]

एक अन्य स्थान पर इस प्रदेश के लिए 'हरिवाणक' शब्द का प्रयोग मिला है। यह शब्द जिला हिसार की यादास्त रिपोर्ट सन् १८९३ में उद्धृत एक श्लोक में आया है। वहां पर निर्देश है कि यह श्लोक प० धरनीधर हामीवाल ने अपनी पुस्तक 'अखण्ड प्रकाश' में इस प्रकार दिया है।

अभोजितोमरैरादौ चौहाणैस्तदनन्तरम् ।
हरिवाणकभूरेषा शकेन्द्र शास्यतेऽधुना ॥

अर्थ यह है कि यह हरिवाणक देश आरम्भ में, तोमरों ने और पीछे चौहानों ने अपने अधिकार में रखा और अब शकेन्द्र इस प्रदेश के हाकिम हैं। इस स्थापना के अनुसार हरियाना—हरिवाणक अथवा हरियन का परिवर्तित रूप है। इसी पुस्तक, 'अखण्ड प्रकाश' में हरियन प्रदेश की पूर्व पश्चिम की सीमा भी एक श्लोक में दी हुई है —

पालम ग्रामपूर्वे तु कुशुभ ग्राम पश्चिमे ।
हरिवाणकभूरेषा मखसस्यादिवर्द्धिनी ॥

पालम गांव अर्थात् हवेली पालम जिसके पूर्व में है और कुसुम गांव अर्थात् पटियाला रियासत का कोहन गांव जिसके पश्चिम में है, यह भूभाग हरिवाणक देश है।

उपरोक्त विवरण से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यह प्रदेश सदा से धनधान्य सम्पन्न रहा है और तोमर एवं चौहान राजाओं ने ८ वीं शताब्दी से १३ वीं शताब्दी तक इसे भोगा है।[2] अतः इस प्रदेश के लिए यह नाम

---

१ एपीग्राफिका इंडो मुस्लिमिका—पृष्ठ ३५ पर दिल्ली के तुर्क सुल्तानों के शिलालेख पाठ—

अभोजितोमरैरादौ चौहाणस्तदनन्तरम् ।
हरियानकभूरेषा शकेन्द्रै शास्यतेऽधुना ॥

२ अनंगपाल (प्रथम) ने सन् ७३६ ईस्वी में जो तोमरवंशीय सर्वप्रथम राजा है, दिल्ली को अपनी राजधानी बनाया। आगे चलकर ११५१ ई० में बीसलदेव अथवा विग्रहराज ने (चौहानवंशीय राजा) अनंगपाल द्वितीय से दिल्ली को छीनकर अपनी राजधानी बनाया। दिल्ली के सिंहासन पर चौहानवंशीय अन्तिम राजा पृथ्वीराज हुए जिनकी मृत्यु मोहम्मद गोरी के हाथों हुई।

इसी आठवीं शताब्दी में प्राप्त हुआ होगा। हाँ, इसका उल्लेख, सर्वप्रथम, पाठक का एक शिलालेख में जो चौदहवीं शताब्दी का है, मिलता है।

हरियाना प्रदेश जो दिल्ली से पश्चिम में घग्घर नदी के काँठे तक चला गया है, तीन उपभागों में बटा हुआ है। एक—मूल हरियाना जो वर्तमान हिसार जिले के पूर्व दक्षिण भाग में घग्घर नदी से पूर्व में फैला हुआ है जिसके अन्तर्गत पूरी हाँसी तहसील, हिसार तहसील का पूर्वार्द्ध भाग और फतहाबाद तहसील का कुछ पूर्वी भाग आता है। दूसरा—बागड़ के नाम से बोला और लिखा जाने वाला भूभाग है।[1] यह ऊँची भूमि है जो अरब सागर की ओर को बहनेवाली तथा बंगाल की खाड़ी की ओर बहने वाली नदियों के बीच जल-विभाजक (Water shed) का काम देता है। तीसरा और सबसे छोटा भाग जमना खादर के नाम से विख्यात है। खादर और बागड के बीचो-बीच ग्राण्ड्रक रोड (G T Road) है। इन तीनों भू-खण्डों को आज हरियाना के नाम से पुकारा जाता है। इस प्रबन्ध के द्वारा हमारा उद्देश्य इसी प्रदेश के लोकसाहित्य का अध्ययन प्रस्तुत करना है।

आज हरियाना को वह समृद्धि तथा गौरव प्राप्त नहीं है जो उसे विगत युगों में मिला है। कहाँ चौदहवीं शताब्दी के शिलालेखों के वचन जिनमें इस भूमि को 'स्वर्ग सन्निभ'[2] कहा गया है और कहाँ आज का पिछड़ा हुआ हरियाना। आज परिस्थिति पूर्णतया विपरीत है। इस विषमता को जब हम विगत युगों का समकक्षता में रखते हैं तो आश्चर्य होता है। इतिहास की खोजों से यह प्रमाणित हो गया है कि यह भूभाग एक समय यौधेय वीरों का जनपद रहा है। यौधेयों के इतिहास को खोजना हमारा उद्देश्य नहीं है किन्तु इतना तो जान ही लेना चाहिए कि यौधेयों का प्रसङ्ग पाणिनीय अष्टाध्यायी में आया है[3] और यह एक प्राचीन जनपद है। इन्हीं यौधेयों की प्रभूत जन्मभूमि का वर्णन अपभ्रंश कवि पुष्पदन्त ने अपने 'यौधेय भूमि वर्णन' में किया है।

१ 'बागड़' और 'बागद' भिन्न शब्द हैं। बागड़ वाकट या वाकड़ से माना जाता है अर्थात् वह प्रदेश जहाँ बकरियाँ अधिक हों। हिसार जिले का यह वह भूभाग है जो बीकानेर को छूता है। इस प्रदेश में बागड़ी जाटों की अधिकता है। हरियाना में देसवाल जाट अधिक हैं। बिश्नोई जाति भी बागड़ में बसी है।

२ पृष्ठ ३५ (यही उद्धृवाम) पर पाद टिप्पणी (१)

३ अष्टाध्यायी "न प्राच्यभर्गादि यौधेयादिभ्य" ४ १ १७८। पाणिनि का समय ४ ५ शताब्दी ईस्वी पूर्व माना जाता है।

पुष्पदत ने लिखा है कि यौधेय देश पृथ्वी (धरणी) पर दिव्य वेश धारण किये हुए है और वह प्रदेश धनधान्य से परिपूर्ण है। वहाँ के नगर, ग्रामादि सब बड़े शोभायमान हैं।[१]

रोहतक यौधेयों की राजधानी रहा है और इस रोहतक राज्य के दो भागों—मरु और बहुधान्यक—का स्पष्ट वर्णन आता है। कैप्टिन कन्ले के द्वारा प्राप्त यौधेयों के सिक्के बहुधान्यक टकसाल के हैं। महाभारत काल तक यह प्रदेश अवश्य सम्पन्न रहा है। नकुल दिग्विजय में आता है कि नकुल दिल्ली के पश्चिम की ओर गया और वह रोहतक होता हुआ मेहम (महेत्थ) और सिरसा (शैरीषक) तक गया है। उस वर्णन में भी इस प्रदेश को बहुधनवाला और धनधान्य सम्पन्न कहा गया है।[२] प्रोफेसर जयचन्द विद्यालकार ने नकुल की पश्चिम दिग्विजय का वर्णन करते हुए ऐसा ही कहा है कि नकुल खाण्डवप्रस्थ से बड़ी भारी सेना लेकर चला। उसे रोहतक सिरसा के समूचे प्रदेश में कुछ अंश मरु और कुछ बहुधान्यक मिले।

हरियाना प्रदेश की प्राचीनता, सम्पन्नता और समृद्धि का देख लेने और समझ लेने के उपरान्त यह जिज्ञासा होती है कि इस प्रदेश का यह 'हरियाना' नाम किस आधार पर है। यह यह जानना अप्रासंगिक भी नहीं है।

हरियाना नामकरण के इतिहास में सबल प्रमाण तो अधिक नहीं मिलते परन्तु जो किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं अथवा जो कुछ लिखा मिला है, उसी

१ 'हिन्दी काव्य धारा'—राहुल जी, पृष्ठ १६०
जोहेयउ णामि अत्थि देसु। णं धरिणए धरियउ दिवदेसु।

जहिं णवधणसय परिपुण्णणाम। पुरवयर सुणामा रामसाम॥
पुष्पदत महाराज कृष्णराज का दरबारी कवि था। इसका काल १०वीं ११वीं शती माना जाता है।

२ 'भारतीय अनुशीलन ग्रन्थ' हिन्दी साहित्य सम्मेलन से प्रकाशित, नकुल का पश्चिम दिग्विजय पाठ—
ततो बहुधनं रम्यं गवाढ्यं धनधान्यवत्।
कार्तिकेयस्य दयितं रोहितकमुपाद्रवत्॥ सभापर्व, अध्याय ३५
यह श्लोक कुम्भघोण संस्करण के अनुसार ३५वाँ अध्याय है और सुब्रह्मण्य शास्त्री के मद्रास संस्करण के अनुसार २८ वाँ अध्याय है।

को आधार माना जा सकता है। उनमें से कुछ का निष्कर्ष इस प्रकार है —

प्रथम —जिला हिसार की सीमा पर रियासत जींद में 'राम हृदय' नामक एक स्थान है जहाँ पर हिन्दुओं का एक तीर्थ स्थान (सरोवर) है। यह लोक विश्वास है कि इसी स्थान पर परशुराम ने क्षत्रियों का इक्कीस बार ध्वस्त (कत्ल) किया था। अब यह एक बलिभूमि है, जहां पर हरि (हरि के अवतार परशुराम एवं हरति प्राणानिति हरि मारनेवाला) ने आर (यान के अर्थ हैं स्थान या एकत्रित करना) क्षत्रियों को एकत्रित कर इक्कीस बार परशुधार पर उतार दिया था। इस आधार पर यह हरियाना नाम पड़ा है। इसका शब्दार्थ यह हुए कि परशुराम जी द्वारा क्षत्रियों के बलिदान की भूमि।[1]

द्वितीय —यह भी लोकोक्ति है कि महाराजा हरिश्चन्द्र एक बार अपनी राजधानी अयोध्या से परिभ्रमण करते हुए इस ओर आये थे। उस समय यह समस्त भूभाग जंगल पड़ा था। उन्होंने इसे आबाद किया। अतः हरिश्चन्द्र के नाम पर 'हरि (हरिश्चन्द्र) का आना' से इस प्रदेश का नाम 'हरिआना', 'हरियाना' प्रसिद्ध हुआ।[2]

तृतीय —एक प्रचलित किंवदन्ती है कि ब्रज से द्वारका को जाने के लिए हरि (कृष्ण) के यान का यही निर्दिष्ट मार्ग था। अतएव यह भूभाग हरियाना कहलाया।[3] इसी से मिलता जुलता एक अन्य उक्ति है कि कौरवों और पाण्डवों के युद्ध में श्रीकृष्ण जब सम्मिलित होने आये तो सर्वप्रथम इसी प्रदेश में ठहरे थे। उनकी सेना भी इधर ही एकत्रित रही थी। इसलिए हरि (कृष्ण) के आना से यह प्रदेश हरिआना >हरियाना कहलाया।[4]

चतुर्थ —यह भी कहा जाता है कि इस प्रदेश में जो जंगल या वन था उसका नाम 'हरयावन' प्रसिद्ध था। पश्चात्, इसमें आबादी हो जाने के कारण इस प्रदेश को भी 'हरियावन' प्रदेश कहा जाने लगा। फिर यही हरियावन >हरियाअन >हरियान >हरियाना हो गया।

पंचम —पं० धरणीधर हासावाले ने अपनी पुस्तक अखण्ड प्रकाश में इस प्रकार लिखा है कि इस पुस्तक का नाम 'हरियापुर' था। पाठ्य में

[1] सैटलमेन्ट रिपोर्ट, जिला हिसार सन् १८८३
[2] सैटलमेन्ट रिपोर्ट, जिला हिसार, सन् १८८३
[3] यालमुकुन्द गुप्त स्मारक ग्रंथ—पृष्ठ ९
[4] सैटलमेन्ट रिपोर्ट, जिला हिसार, सन् १८८३

उच्चारण भेद से यह 'हरियाना' हो गया। 'हरिआणक' शब्द का व्युत्पत्तिजन्य अर्थ है जिस देश में हरि (इन्द्र) की अधिक आकांक्षा हो। योगरूढ़ि में यह शब्द प्रदेशवाची बन गया है। आज भी हरियाना पानी की बूँद के लिए तरसता है और इन्द्र भगवान् की ओर आशा भरी दृष्टि से देखता है।[1]

पाठ —जैसा कि पहले कह चुके हैं, ऋग्वेद में 'हरयाण' शब्द वरु राजा के विशेषण के रूप में आया है।[2] परन्तु 'वेद धरातल' के लेखक व्याकरणाचार्य पंडित प्रवर गिरीशचन्द्र जी अवस्थी इस शब्द का सम्बन्ध हरियाणा प्रदेश के साथ जोड़ते हैं। उनका कहना है, 'ऋग्वेद' में 'हरयाण' शब्द एक राजा के विशेषण के रूप में आया है। 'हरयाण नित्यकालमेवाभिप्रस्थितयान' अर्थात् जिसका रथ सदैव चलता रहे। इससे उस राजा का नाम हरयाण भी प्रसिद्ध था, यह प्रतीत होता है। फिर आगे चलकर हरयाण राजा के नाम पर उस प्रांत का नाम हरयाण पड़ गया जो आज भी पंजाब में 'हरियाना' नाम से प्रसिद्ध है। हरियाने के बैल आज बड़े प्रसिद्ध हैं।[3] इससे यह पंजाब के 'हरियाना' का नाम पड़ गया है।

उक्त कल्पना का आधार यह स्पष्ट किया गया है कि एक ही स्थल पर 'हरयाण' और 'उक्षण्यायन' दो शब्द एक राजा वरु के विशेषण हैं। पं० अवस्थी 'उक्षन्' शब्द से 'तत्रसाधु' ४।४।६८ सूत्र से 'यत्' करके उक्षण्य शब्द व्युत्पन्न करते हैं जिसका अर्थ होगा 'बैलों के लिए कल्याणकारक'। अन उक्षण्य अयनम् यह अस्य' इस विग्रह में बहुव्रीहि समास होकर 'बैलों के लिए कल्याणकारक है घर जिसका' इस अर्थ में उक्षण्यायन शब्द निष्पन्न होता है और यह राजा का विशेषण है, जिसका एक विशेषण 'हरयाण' भी है। अत बहुव्रीहि समास से सदैव चलता रहता है रथ जिस प्रदेश में' इस अर्थ में यह हरयाण शब्द भी देशवाची बन गया और इस प्रांत का नाम भी हरयाण पड़ा जो आगे चलकर 'हरयाणा' और 'हरियाना' हो गया। पुरुष के नाम से भी देश का नाम पड़ सकना संभव है यथा, महाराजा भरत के नाम पर 'भारत' और महाराजा कुरु के नाम पर 'कुरु प्रदेश' पड़ा।

पं० अवस्थी की यह स्थापना इस बात पर आधारित है कि दुर्गाचार्य एवं सायणाचार्य केवल कर्मकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड को लेकर चले हैं। उद्ध

१ पं० धरणीधर द्वारा लिखित 'अमर प्रकाश' में हरिआणक शब्द का इतिहास।

२ ऋग्वेद संहिता ६।२।२२।२

३ 'वेदधरातल'—पृष्ठ ७०६, लेखक श्रीगिरीश चन्द्र जी अवस्थी व्याकरणाचार्य, प्रधानाध्यापक, संस्कृत प्राच्य विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

भौगोलिक खोज नहीं करती थी, किन्तु विद्वान् इस स्थापना को स्वीकार करने में असमर्थ हैं।

सप्तम —वासुदेव शरण अग्रवाल ने प्राचीन आभीरायण (अहीरों का घर या स्थान) शब्द से हरियाना शब्द की व्युत्पत्ति अधिक सम्भाव्य माना है। आभीरायण > अहिरायन > हीरायन > हिरियान > हरियान > हरियाना।

अष्टम —महापंडित राहुल जी का सुझाव है कि हरियाना शब्द 'हरिधान्यक' से हरिहानक > हरिआनक > हरिआनअ > हरिआन > हरियान > हरियाना आदि प्रक्रिया से अपभ्रंश की चक्की में पड़कर बना है।[1] इसकी पुष्टि में यह कहा जा सकता है कि नकुल को पश्चिम दिग्विजय करते समय रोहतक में मत्तमयूरों से भयंकर युद्ध करना पड़ा था और उसने बहुधान्यक प्रदेश को अपने वश में किया था। प्रो० जयचन्द्र विद्यालंकार बहुधान्यक को रोहतक राज्य का एक भाग मानते हैं। इसी बहुधान्यक भूभाग का नामान्तर 'हरिधान्यक' भी मिलता है। 'बहुधान्यक' शब्द का अर्थ है 'प्रभूत धनवाला' और इसी सादृश्य पर 'हरिधान्यक' का अर्थ होगा हरित एवं धनधान्यपूर्ण। यह प्रदेश प्राक्काल में हराभरा रहा होगा। यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है जबकि सरस्वती नदी इस प्रदेश की हरीतिमा तथा सुषमा बखेरती हुई बहती होगी। आज हरियाना निस्सन्देह अपने उस रूप में नहीं है परन्तु फिर भी हमारी राष्ट्रीय सरकार इस प्रदेश को वही पुराना हराभरा रूप प्रदान करने के लिए कटिबद्ध है। भाखड़ा की नहरों का जाल अवश्य ही इस प्रदेश की कायाकल्प कर देगा और पुनः एक बार कृष्ण की वंशी की मृदुल स्वर लहरियां हरयानी गौओं को सुनाई पड़ेंगी।

(२) हरियाने का क्षेत्र विस्तार

हरियाना प्रदेश की परिसीमाएँ निर्धारित करना बड़ा कठिन है। क्योंकि मध्ययुग से पूर्व हरियाना नाम से किसी प्रदेश का वर्णन नहीं मिलता। मध्ययुग में जो 'हरियाना' नामक देश का वर्णन मिला है[2] उससे एक बात निश्चितरूप से समझ में आती है कि 'स्वर्ग सन्निभ' यह प्रदेश 'दिल्ली' नगरी को अपनी परिधि में समेटे हुए है। किन्तु हरियाने की साम्प्रतिक स्थिति को ध्यान में रखकर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि 'दिल्ली' हरियाने के किस भाग में स्थित थी? यह भी अनुमेय है कि तोमरादि से सम्बंधित यह नगरी इस प्रदेश की राजधानी भी अवश्य रही होगी। परन्तु राजधानी का देश की

१ यह सुझाव महापंडित राहुल जी ने लखक को मथुरा से लिखे गये एक पत्र के द्वारा दिया है।

२ 'देशोऽस्ति हरियानाख्य' आदि, पृष्ठ ३५ पर।

हरियाना प्रदेश का
भाषायी मानचित्र

सरस्वती

दृषद्वती

नदी

कुरुक्षेत्र

थानेश्वर

कैथल

टोहाना

करनाल

नरवाना

फतहाबाद

पानीपत

जींद

हिसार

हाँसी

सिरसा

गोहाना

सोनीपत

रोहतक

सांपला

बहादुरगढ

दिल्ली

पालम

रेवाड़ी

मेवाती

संकेत

सीमा हरियाना प्रदेश

हरियानी बोली के आदर्श स्थान जिनको आधार बनाया गया है

भ्रमण किये गये स्थान

प्रदेश के अन्य स्थान

पैमाना

1 इंच = 21 मील

सीमा पर स्थित होना सुरक्षा के दृष्टिकोण से अच्छा नहीं है। तो फिर क्या दिल्ली को 'हरियाना' का केन्द्र मान लें? यह बात मैंने तो 'दिल्ली तीन हरियाना' नामक जनोक्ति से पुष्ट हो जाती है। परन्तु इस स्थापना में आधुनिक हरियाने के साथ प्राचीन कुरु तथा शौरसेन प्रदेश भी सम्मिलित हो जायेंगे किन्तु यह अभी खोज का विषय है। अतः किसी निश्चय के अभाव में हम दिल्ली को हरियाना की पूर्वी सीमा मानकर ही आगे चलेंगे। डा० ग्रियर्सन ने भी दिल्ली के उन मुसल्मानों की भाषा को जो देसवाली चमार हैं, 'चमरवा' नाम दिया है और इसे बागड़ी हरियाना के अन्तर्गत माना है। इससे यह विदित होता है कि दिल्ली हरियाने की पूर्वी सीमा पर स्थित है और यह इस प्रदेश का प्रमुख नगर है।

जैसा कि पीछे कहा भी गया है, 'अखण्ड प्रकाश' पुस्तक को आधार मानकर जिला हिसार की १८६३ की बन्दोबस्त रिपोर्ट में हरियाना (हरियाणक) प्रदेश का पूर्वी और पश्चिमी सीमाएँ इस प्रकार निर्धारित की गई हैं—"पालम (समवत हवेली पालम) जिसके पूर्व में है, और कुसुम ग्राम (पटियाला इलाके का कोहन ग्राम) जिसके पश्चिम में है, वह विशाल भूभाग हरियाणक (हरियाणा) है।" इसी रिपोर्ट में एक स्थान पर हरियाना की सीमाएँ इस प्रकार दी गई हैं—"पूर्व में झज्जर व बहादुरगढ़ (जिला रोहतक) और पश्चिम में अगरोहा व भूना (जिला हिसार), उत्तर में जींद व सफेदों इलाका, राजा जींद व कोहन इलाका, राजा पटियाला और दक्षिण में दादरी इलाका, राजा जींद।" राजस्थान के इतिहास के सफल मर्मज्ञ पृथ्वीसिंह जी महता हरियाने को राजस्थान के उत्तर में सिरसा से पालम तक फैला मानते हैं। उनका कहना है कि सिरसा से पालम तक उत्तर पूर्वी सीमा पर हरियाने का नागरू माना है।[1] डा० ग्रियर्सन ने अपने 'भाषामैप' में हरियानी, जाटू व बाँगड़ू बोली का मानचित्र देते हुए गुड़गाँव जिले के फर्रुखनगर व बल्लभगढ़ स्थानों को भी उसमें सम्मिलित किया है। परन्तु ये स्थान भाषा, स्थानीय प्रथाएँ एवं परम्परा आदि किसी भी दृष्टिकोण से हरियाने के भाग नहीं माने जा सकते। अतः हमारी स्थापना जो इस इलाके के परिभ्रमण पर आधारित है यह है कि हरियाने की पूर्वी सीमा पालम नजफगढ़, बहादुरगढ़ और दिल्ली को छूती है। फिर यह रेखा 'टुहाना' को छूती हुई नारनौल पहुँचती है। यहाँ से भाषा भिवानी, हाँसी, हिसार होकर और सिरसा की ओर आगे बढ़कर अग्रसर होती हुई टोहाना पहुँचे

[1] पृथ्वीसिंह मेहता—'हमारा राजस्थान', पृष्ठ ६।

जाता है। वहा से कैथल, करनाला, पानीपत होकर दिल्ली आ मिलती है।[1]

बदोबस्त रिपोर्ट जिला हिसार में हरियाने की लम्बाई बहादुरगढ से अगरोहा तक पूर्व पश्चिम '६५ कोस' (१०४ मील) और चौड़ाई जींद से दादरी तक उत्तर दक्षिण ५७ मील दी हुई है। इस आधार से हरियाना का क्षेत्रफल ५६२८ वर्गमील बैठता है, परन्तु भाषा के रूप और शैली के आधार पर हमने अपने भाषायी मानचित्र म जो हरियाना का भाषायी क्षेत्र स्थापित किया है, उसका क्षेत्रफल इससे कइ गुना अधिक है।[2]

इस विशाल प्रदेश के रोहतक, मेहम, हासी, दादरी, हिसार, जींद, सफीदो, कैथल और नरवाना प्रधान नगर हैं। इनम रोहतक, मेहम और जींद केन्द्रीय स्थान हैं।

यह सामान्य धारणा है कि 'बारह कोस पर पानी और बानी' बदल जाते हैं। यह बात अन्य बोलियों की भाँति हरियानी पर भी चरितार्थ होती है। यहा भी लोकसाहित्य सग्रहकर्ता को स्थान स्थान की बोली में भिन्नता मिलेगी परन्तु इस स्वाभाविक बदल के बावजूद भी एक छोर से दूसरे छोर तक वही उच्चारण (लहजा), क्रियाओं के वे ही रूप, विशेषण एव क्रिया विशेषण बनाने की वही प्रक्रिया बराबर मिलती है। सामाजिक दशा, परम्परा, रीति रिवाज सब एक ही जैसे हैं। इस प्रदेश की जनता का सबसे अधिक भाग देसवाली जाटों से मिलकर बना है। इन्हीं लोगों की सस्कृति के दर्शन हरियाना सस्कृति के रूप म पाठक को मिलेंगे। यों दूसरी जातियाँ भी पर्याप्त मात्रा म हैं किन्तु प्रधानता जाट जाति की है।



१, २ देखिये—पृष्ठ ६० पर सलग्न हरियाना का भाषायी मानचित्र।

आ हरियाना लोकसाहित्य के विविध रूप

हरियाना प्रदेश के लोकसाहित्य के संग्रह का काम हमने स्वयं किया है। इस संग्रह-कार्य में हमारी अपनी योजना रही है और अपना ढंग। हमने इस वीर भूमि का चप्पा-चप्पा छाना है। इस प्रयास में हमने लोकसाहित्य रूपी गंगोदक प्राप्ति के लिए हरियाना प्रदेश का न कोई तीर्थस्थान छोड़ा है और न कोई घर। हमारे सामने इस कच्ची सामग्री की एक विपुल राशि पड़ी है। उसमें से रत्नों को चुनकर उनके मूल्यांकन एवं पारायण का अवसर इस पुस्तक के द्वारा मिला है।

आगे बढ़ने से पूर्व यह कहना भी अनुचित न होगा कि पाठक को हरियाणा लोकसाहित्य का अध्ययन एवं अवलोकन करते समय चाहे मैथिली लोकसाहित्य जैसा माधुर्य, भोजपुरी लोकसाहित्य जैसा गाम्भीर्य, अवधी लोक साहित्य जैसा अर्थ-गौरव, ब्रज-लोकसाहित्य जैसी सरसता और अर्थ बहुलता, गुजराती लोकसाहित्य जैसी भव्यता और राजस्थानी लोकसाहित्य जैसा लोच न मिले, परन्तु इन गुणों के आंशिक आकलन में उसे निराश होना नहीं पड़ेगा। हरियाणा लोकसाहित्य में वीर प्रसवा भूमि की शौर्यपूर्ण जनता की उस ओजस्विनी भावना के दर्शन होंगे, जो रूक्ष होते हुए रुचिकर एवं आकर्षक है।

हरियाणा प्रकृति पटरानी द्वारा उपेक्षित वह प्रदेश है जहाँ न तो मिथिला प्रदेश जैसे गंगा के कुंजों में छिपी गिलहरियों के प्रेमालाप हैं, न अभिराम कुसुमोद्यान, न सुविकसित पशु-पक्षी हैं। न यहाँ भरभर करती बलखाती नदियों की अठखेलियाँ, न धान से हरे भरे लहलहाते खेतों की क्यारियाँ हैं और न यहाँ भागपुर प्रदेश जैसे हरित भरित मैदान, न पिक कलकूजन को जाग्रत करने वाले रसाल के रम्याराम, न सरस फल सम्पन्न पर्वत उपत्यकाएँ हैं। यहाँ गढ़वाल जैसी तुषाराच्छन्न पर्वत श्रेणियाँ भी नहीं हैं और न यहाँ हैं ब्रजभूमि के ललित कुंज। रासलीलाओं की मृदु ध्वनि भी यहाँ नहीं है। यह भूमि एक कर्मभूमि है। यहाँ की अभिप्रिय जातियों ने सदैव भारत भाग्य चक्र को गतिमान् किया है। यहाँ के कुरुक्षेत्र जैसे धार्मिक क्षेत्र, पानीपत के मैदानों तक फैले हुए रणक्षेत्र, आज भी यहाँ की जनता को कर्तव्य के लिए आह्वान करते रहते हैं। यहाँ के जलवायु में ऐसे तत्त्व विद्यमान हैं जो शक्ति एवं उत्साह देते हैं। यहाँ की अशिक्षित जनता रण में अपने भुजबल पर

कमर कसे रही है। ऐसे प्रदेश में किस प्रकार का लोकसाहित्य मिलेगा, यह पाठक अगले पृष्ठों में झाँककर देखेंगे।

आज तक लोकसाहित्य का सर्वांगीण एवं सर्वमान्य लक्षण दे, कोई विवेचक कृतकार्य एवं सत्य-सङ्कल्प न हो सका है। अतः यहाँ लक्षण देने का आग्रह छोड़, प्राप्त लोकसाहित्य के विविध रूपों की जाँच-पड़ताल कर उसका विवेचन हम करेंगे।

(१) लोकसाहित्य के मूलतत्व

ग्रामीण लोगों की बोली न तो कीनखाप से जड़ी सजीह उर्दू होती है और न तत्सम शब्द संयुक्त पंडिताऊ संस्कृत। वे अपनी टूटी-फूटी, सीधी-सादी असंस्कृत बोली में सहज भावों को जो स्वर-लहरी का रूप प्रदान करते हैं, बस वही सहज स्वाभाविक अभिव्यक्ति लोकसाहित्य की पदवी पा जाती है। इस साहित्य में जो तत्व मिलते हैं उनके आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि —

१ लोकसाहित्य संतति परम्परा से चलता रहता है अर्थात् औलाद दर औलाद चलता है।

२ लोकसाहित्य मनोरंजन, शिक्षा या ज्ञानवर्धन का सरल मार्ग है।

३ लोकसाहित्य लोक के संस्कार, व्रत पूजादि से सबंधित हैं।

४ लोकसाहित्य ग्रामीण खेलों एवं वाक्प्रचार से सम्बन्धित है।

५ लोकसाहित्य में लोकजन सुलभ विश्वास, श्रद्धा आदि के लिए स्थान है।

६ लोकसाहित्य लोक भाषा में लिपटा रहता है और पूर्णरूप से लोक वातावरण से ओतप्रोत होता है।

इन बातों के गम्भीर विवेचन से पता चलता है कि लोकसाहित्य बड़ा उपयोगी है। यह हमारी राष्ट्रीय सम्पत्ति है। अतः इसके समुद्धार के लिए राष्ट्रव्यापी योजना होनी चाहिए। हरियाने के लोकसाहित्य का क्षेत्र बड़ा विशाल है। उसके रूप विविध हैं एवं अनेक प्रकार हैं। उनके विभाजन की भी कई शैलियाँ हैं। इन सबको हम आगे की पंक्तियों में देखेंगे।

(२) हरियाना लोकसाहित्य का वर्गीकरण

सर्वप्रथम, शास्त्रीय प्रणाली पर हरियाना लोकसाहित्य का विभाजन कर हम निम्न प्रकार से उसका विस्तार प्रस्तुत कर सकते हैं —

- दृश्य (लोक नाट्य— सांगीत, नौटंका, गोरख, भगत, रामलीला आदि)
- श्रव्य
  - गद्य
    - लोककहानी
    - बुझौवल कहानी
    - चुटकले
    - लघुछन्द कहानी
  - पद्य
    - लोकगीत
      - मुक्तक
        - संस्कार संबंधी
          - जन्म
          - विवाह
          - मृत्यु
        - ऋतु संबंधी व्रत, पर्व, त्योहार, देवी, माता, जाता मल्हार, भजन आदि
        - कृषि संबंधी
        - राजनीति संबंधी गीत
        - अन्य
          - पनघट, चुचकी, हास्यरस के गीत
      - कथात्मक (प्रबंधगीत)
        - राग, किस्सा, गाथा व अवदान
        - पवारा
        - देवी की यात्रा
    - अन्य (प्रकीर्ण)
      - पहेली
      - मुहावरा
      - सूक्ति
      - लोकोक्ति
      - खेलों में वाणी विलास

विशेष व्याख्या इस प्रकार है —

अभिनयात्मक (दृश्य) लोकसाहित्य के अन्तर्गत ग्रामीण साग, भगत, नौटकी और सोरठ आदि आते हैं। इन दृश्य रूपों के अभिनय के लिए किसी विशेष आडम्बर की आवश्यकता नहीं होती। बस, अभिनेतृ मडली, खुले मैदान में एक तख्त और साधारण से साज-बाज की आवश्यकता है। इतने से ही ग्रामीण टाकीज का निर्माण हो जाता है। नगाड़े में चोब पड़ते ही हरियानी ग्रामीण युवक सब तजकर, टेढ़ा साफा पहन, हाथ म लट्ठ ले नगाड़े का अनुसरण करता हुआ चल पड़ता है। ऐसे मनो रजक अवसर पर वृद्ध लोग भी दादा लखमी व प० मांगेराम का खेल देखने का लाभ सवरण नहीं कर पाते और युवकों से भी आगे बैठे मिलते हैं।

श्रव्य लोकसाहित्य के गद्य और पद्य दो भाग हैं। इनमे से कहानिया, चुटकले, बुझौवल, लतुकर, कहानिया आदि सामान्यतया गद्य की वस्तुए हैं। पद्य के अन्तर्गत गीत (मुक्तक व प्रबन्धात्मक), पहेलिया और सूक्तिया आदि गेय वस्तुएँ होती हैं। गीत—छोटे गीत और बड़े गीत—दो रूपों म विभक्त किये जा सकते हैं। छोटे गीत वे गीत हैं जो विभिन्न उत्सव, त्योहार, विवाहादि शुभ कार्यों के अवसर पर गाये जाते हैं यथा—होलर (पुत्र जन्म के) लोरिया, भात (विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले गीत), जिकड़ी के गीत, ढोला, ढोला[1], देवी की यात्रा के छोटे छोटे भजन, मल्हार (वर्षाकाल के गीत) तथा कार्तिक स्नान के गीत।

गद्य-पद्य के अतिरिक्त एक तीसरा विभाग 'मिश्र गीत' नाम से भी किया जा सकता है। लोकसाहित्य की इस विधा में वह सामग्री आयेगी जो बाल जगत् म प्रचलित 'बाल्य विलास' है। बालक खेल खेलते समय कुछ अश तो गद्य म कहते हैं, शेष कुछ पद्य में। इसे हम छोटे गीतों में भी स्थान दे सकते हैं। ऐसे अवसरों पर उन गीत अंशों में ही तो विशेषता है बाकी सब तो छूछ है।

राग या प्रबन्धात्मक गाथाएं भी गाते ही हैं किन्तु अंतर इतना है कि गीत गेयत्व प्रधान होता है और आकार म लघु होता है। गाथा कथाप्रधान गान है और यह आकार म बड़ा होता है। कुछ गाथाए तो जैसे आल्हा, ढोला मारू, निहालदे, गूगा का युद्ध, देवी की यात्रा इतनी विशाल हैं कि

[1] ढोला घरो म महिलाओं द्वारा भी गाया जाता है, जो आकार म कुछ छोटा होता है। किसी शुभ अवसर पर गीत समाप्त करते समय स्त्रियाँ ढोला गाती हैं। 'ढोला मारू' इससे भिन्न एक लोक प्रबन्ध है, जो आकार में बड़ा विशाल है।

गायक इनको पूरा गाने के लिए कई-कई मास का समय लेते हैं। राजस्थान में 'ढोला मारू' को गाने के लिए दुलैया तीन-तीन मास लगा देते हैं। ढोला गाने की एक विशेषता है। एक गायक पहिले गाता चलता है, फिर स्वरैना उसे अपनाता है। इस प्रकार उसकी व्याख्या होती चलती है और गवैये को विश्राम मिल जाता है। बीच-बीच में चिलम-तमाखू का दौर भी आना जरूरी होता है। एक बैठक में एक पड़ाव को समाप्त किया जाता है और दूसरे दिन दूसरे पड़ाव से प्रारम्भ करते हैं। इस प्रकार किस्से का निस्तार हो जाता है।

गाथा के अन्तर्गत जिन गीतों की गणना की जाती है, वे हैं—अनगिनत (ऐतिहासिक पुरुषों के चरित्र को लेकर चलने वाले किस्से) तथा अर्द्ध ऐतिहासिक अथवा काल्पनिक पुरुषों के चरित्र पर आधारित ख्यातें, आल्हा, पवारा[1] आदि लोक-ग्रन्थ। देवी की यात्रा के गान भी 'बड़े-बड़े गीत' में ही स्थान पाते हैं। पुण्य श्लोक सर आर० सी० टेम्पल ने अथक परिश्रम से पंजाब के ५८ अनदान लेखबद्ध मिलते हैं। इनके अतिरिक्त बहुत से किस्से अभी हरियाना की वृद्ध जनता के पास हैं जो टैम्पिल जैसे कमठ व्यक्तियों के वरणन की प्रतीक्षा में हैं। इन पंक्तियों के लेखक ने भी बहुत से किस्से लेखबद्ध किये हैं जिनमें कुछ तो नवीन हैं किन्तु गायकों के संकोच तथा निराधार भय के कारण बहुत-सी सामग्री हाथ न आ सकी है।

पहेली, पद्य के वे ज्ञानपूर्ण गढ़ हैं जिनसे बाल-जगत् की बुद्धि पर शान चढ़ाई जाती है। इन्हें बुझौवल भी कहते हैं। बुझौवल का अर्थ है जिज्ञासा। बुझौवल के द्वारा दूसरे साथी की ज्ञान-गठरी की तलाशी ली जाती है। पहेली को हरियानी बोली में 'फाली' या 'गाहा' भी कहते हैं। फाली का तात्पर्य है वह प्रश्न जिसे पूछकर प्रश्नकर्ता तुरन्त उत्तर (फल) चाहता है। फाली कहने के लिए किसी अवसर-विशेष की आवश्यकता नहीं। बस, दूसरे की चमत्कार की परीक्षा लेनी हो तो फौरन फाली कह कर प्रश्न कर दीजिए।

---

[1] क पवारा (वीरगीत) वीर और शृङ्गार के साथ करुण, अद्भुत और बीभत्स रस को लेकर चलता है। हरियाना लोकसाहित्य में 'हर फूल जाट' एक प्रसिद्ध पवारा है। 'जगदेव का पवारा' तो हिन्दी वाङ्मय की अपनी निराली विभूति है।

ख हिस्ट्री को राजस्थानी में 'ख्यात' कहते हैं, यथा जयसिंह की ख्यात। प्रसिद्ध राजाओं के रासो लिखे जाते थे और अन्य प्रसिद्ध राजाओं की 'ख्यातें' लिखी जाती थीं।

न स्लेट और पन्सिल की आवश्यकता है और न पेपर तथा पेन की। यदि फाली या गाड़ा खुल गया तो वाह-वाह नहीं तो बच गये। डा० सत्येन्द्र ने पद्य का गीत और अगीत दो भागों में बाँटा है और अगीत के अन्तर्गत पहेलियाँ, क्रमबद्ध कहानियाँ, पखाक्ले आदि रखे हैं।

सूक्तियों में ग्रामवासियों के शताब्दियों के अनुभवों का निचोड़ एवं सार भरा होता है। ये खेत क्यार के मामले में तथा पशु पक्षी सम्बन्ध में यथोचित मार्ग-दर्शन कराती हैं और गुरु मन्त्र का काम देती हैं। घाघ और भड्डरी के नाम से बहुत-सी सूक्तियाँ प्रसिद्ध हैं। इन सूक्तियों ने उस समय लोगों की अत्यधिक सहायता दी होगी जब कि देश में आज की भाँति अन्तरिक्ष विज्ञान के केन्द्र न थे। यों तो आज भी इनका मूल्य कुछ कम नहीं है। इनमें बड़ी तथ्यपूर्ण एवं रहस्यात्मक बातें भरी पड़ी हैं। दैनिक जीवन और उसमें काम आने वाली बातों की गम्भीर जानकारी इनसे प्राप्त होती है।

ग्रामों में (लोक में) व्याप्त लोकसाहित्य को और कई प्रकार से भी बाँटा जा सकता है। श्रीमती सोफिया बर्न ने लोकवार्ता में अन्तर्धान होनेवाले लोक साहित्य की रूपरेखा इस प्रकार दी है —१ कहानियाँ, २ गीत, ३ कहावतें।

१ कहानियाँ—(क) वे जो सच्ची मानकर कही जाती हैं।
(ख) जो मनोरंजन के लिए कही जाती हैं।

२ गीत तथा गाथायें (बैलेडस्)

३ कहावतें—तुकबन्द कहावतें, स्थानीय कहावत तथा बुझौवल।[1]

बर्न का उक्त विभाजन बाहरी नापजोख मात्र ही देता है और एक साधारण सी रूपरेखा प्रस्तुत करता है। किसी स्थान विशेष के लोकसाहित्य की पूरी परख के लिए यह विभाजन अपूर्ण ही रहेगा, पर इससे पृष्ठभूमि अवश्य तैयार हो जाती है।

हरियाना प्रदेश से संगृहीत सामग्री के आधार पर हमने उसका विभाजन इस प्रकार किया है —

क गीत—[१] लघुगीत—लोकसाहित्य में गीतों की ही प्रधानता है और गीत ही लोक साहित्य की अनुप्राणिका शक्ति है। हरियाना गीतों का विस्तृत वर्णन एवं मूल्यांकन इस

---

१ दन हैंड्बुक आव फोकलोर, पृष्ठ ४ तथा डा० सत्येन्द्र, ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ ७।

पुस्तक के तृतीय अध्याय में मिलेगा। वहां पर सभी प्रकार के गीतों की परख की गयी है।

२ प्रबन्ध-गीत—ये बड़े-बड़े गीत हैं जिनमें कथानक मुख्य होता है और वीरता, साहस एवं रोमांच का सम्मिश्रण आवश्यक होता है। इनमें गेय पक्ष प्रबल रहता है। हरियाना में राजा रसालू और शीलादे का आख्यान (किस्सा) सुविख्यात है। गूगा या जाहरवीर यहां की वीर-जनता के वीरत्व-भाव का इष्टदेव है और 'निहालदे' यहां का एक रोमांचकारी राग (किस्सा) है।

ख कथा—ये लोक कहानियां हैं जो बच्चे, बूढ़े और जवानों का एक समान मनोरंजन करती हैं। हरियाना का लोक मानस कथा के दृष्टिकोण से बड़ा सरस है। कहानी वह रोचक-साहित्य है जिसका शिशु के मन पर एकाधिकार है। शिशु ने इनसे साथ परिचय नानी-दादी की गोदी से ही प्राप्त किया है।

ग सगीत—इस भाग में हरियाना के प्रमुख सगीत आते हैं जिनमें सामाजिक एवं धार्मिक चित्र बड़ी सुन्दरता से उभरे हैं।

घ प्रकीर्ण—हरियाना प्रदेश में उस साहित्य का भी पर्याप्त प्रचार है जो उपरोक्त विधाओं से बाहर पड़ता है जिनमें शिशुओं का मनोविनोद पहेलियां, सूक्तियां और लघु छन्द कहानियां (झाल्ले) आदि मुख्य हैं।

उक्त विभाग को हम दूसरे शब्दों में लघु गीत, बृहद्गीत, सगीत, अगीत एवं कथा का नाम देकर भी गिनवा सकते हैं। डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने भोजपुरी लोकसाहित्य को इस प्रकार वर्गीकृत किया है— १ लोकगीत २ लोकगाथा, ३ लोक-कथा, ४ प्रकीर्ण।

आयु के आधार पर हरियाने के लोकसाहित्य को तीन बड़े विभागों में बांटा जा सकता है—१—बाल लोकसाहित्य, २—युवक लोकसाहित्य, ३—वृद्ध लोकसाहित्य।

बाल लोकसाहित्य में आंखें-वन्दे अटकन-बटकन, चदा मामा आदि से लेकर लोरी व वाक् प्रयोग तथा पहेलियां और बुझौवल तक का साहित्य सम्मिलित है। मनोरंजक कहानियां भी बाल-साहित्य का ही अंग बनेंगी। वास्तव में बाल लोकसाहित्य में वह सभी आ जाता है जिसके द्वारा प्रति-भासम्पन्न अबोध शिशु को जीवन जगत् का परिचय तथा ज्ञान कराता

है । चाहे वह पद्यबद्ध एवं ताल लययुक्त हो, चाहे कोरी गद्य की शैली में कहा गया हो । बाल-साहित्य में खेल के गीतों का, मनोरंजक कहानियों का और पहेली का विशेष स्थान है ।

युवक लोकसाहित्य में वह समस्त साहित्य आ जायेगा जो यौवन की रंगरेलियों एवं अठखेलियों से पूर्ण है । इस लोकसाहित्य का पट वीर, शृङ्गार, करुण एवं त्याग के विविध रंगों से अलङ्कृत है । वियोग-संयोग की सरस झांकियां इस साहित्य का विषय है । सांग, नौटंकी, पवाड़े, आल्हा, अवदान, सतीत्व के प्रहरी चन्द्रावल आदि गीत इसकी परिधि में समा जाते हैं । युवक लोकसाहित्य समस्त लोकसाहित्य का एक प्रमुख अंग है । जीवन का वैविध्य इसमें आद्यन्त परिलक्षित होता है । प० रामनरेश त्रिपाठी जी 'नौजवानों का लोकसाहित्य' की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि "नौजवानों के कंठ में जवानी की उमंग को जगाने वाले प्रेम और शृंगार रस के गीत, पूर्वजों के सच्चे अनुभवों को बतलाने वाली नीति की कहावतें, स्वास्थ्य के लिए चुटकले और धनोपार्जन के लिए खेती की कहावतें आदि ज्ञान-वर्द्धक पाठ सदा मौजूद रहते हैं ।"[1]

वृद्ध लोकसाहित्य में जीवन सन्ध्या की वह शांति, पावनता एवं निस्तब्धता भरी मिलती है जो स्वतः स्पष्ट एवं व्यक्त है । जीवन तथा जगत् का सुखोपभोग करने के पश्चात् आत्मानंद प्राप्ति की जो अभिलाषा प्राणी को होती है वह समष्टिरूपेण वृद्ध लोकसाहित्य में व्यक्त मिलेगी । इसके विषय हैं—भजन, हरजस, तथा महात्यागी गोपीचंद, भर्तृहरि आदि के उदात्त चरित्र का गान एवं भक्त पूरनमल की लोकोत्तर सदाचारिता की महिमा । घर घर अलक्ख (अलक्ष्य) जगाने वाले भिखमंगे, इकतारे पर भजन गाने वाले जोगी तथा चिमटा बजाकर जनता का ध्यान आकर्षित करने वाले साधु फकीर इस साहित्य के प्रचारक हैं । वृद्ध साहित्य का प्रमुख रस शांत है । इंद्रियां शांत, आकांक्षाएं शांत, बस शेष है मनस् की उपशांति और निरंथरा' के प्रचार से यह भी पूरी हो जाती है ।

लिंग-भेद के आधार पर भी लोकसाहित्य का वर्गीकरण किया जा सकता है । इस प्रकार इसके तीन उपविभाग होंगे —

१ पुरुषों का लोक-साहित्य, २ महिलाओं का लोक-साहित्य, ३ बालकों का लोकसाहित्य । इसका विस्तार वृक्ष द्वारा इस भांति समझा जा सकता है —

१ प० रामनरेश त्रिपाठी, 'ग्राम साहित्य की रूपरेखा' (भूमिका भाग) ।

- लोकसाहित्य
  - पुरुषों का लोकसाहित्य — राग रागनी, किस्से, वीर, शृङ्गार, रहस्य, रामायण का बड़ी कथाएं, कुमौवल, लोकगाथा, आल्हा, पवाड़ा सोरठ, साग आदि।
  - महिलाओं का साहित्य — सभा घरेलू गीत, संस्कार विवाह, व्रत, त्यौहार आदि के, व्रत उपवास आदि की कथाएं, हर-जस, टोना आदि गीत।
  - बच्चों का साहित्य
    - बालिकाओं का साहित्य — खेलों के गीत, अन्य छोटे छोटे गीत जो मनोरंजक होते हैं और किसी त्यौहार से सम्बन्धित होते हैं, बच्चों का लघु कथा कहानियाँ आदि।
    - बालकों का साहित्य — खेलों के गीत, खेल में बारा विस्तार और छोटी-छोटी कहानियां

१ पुरुषों के लोकसाहित्य में वह समस्त सामग्री आयेगी जो हम अपनी टोलियों में सुनने को मिला है और समाज के वृद्ध गायक ने सारंगी, इकतारा अथवा चिमटा बजा कर जो प्रसारित की है।

पुरुषों के गीतों—राग रागनियों—में अधिकतर वीरता और नीति के भाव रहते हैं। किन्हीं रागनियों में—विशेषकर हरियाने के युवकों की रागनियों में—स्त्रियों के प्रति प्रेम आकर्षण दिखाई पड़ता है। उनमें शृंगार रस छलछलाता है।

पुरुष लोकसाहित्य में स्त्री लोकसाहित्य से एक पार्थक्य स्पष्ट मिलता है। पुरुष ने लघु गीतों को अपनाया नहीं है। पुरुष पक्ष के अनुष्ठान आदि का बहुत सा भाग पुरोहित शास्त्रीय विधि से करा देता है। इसके विपरीत महिलाओं को अपना पक्ष स्वयं गीत गा-गाकर ही पूरा करना पड़ता है। इसी से स्त्रियों के गीत इतने व्यापक हो गये हैं जितना कि मानव जीवन। स्त्री भावना के लिए जीवन का कोई पक्ष अछूता नहीं है। पुरुष लोकसाहित्य की सामग्री—लोक प्रबन्ध (लोक गाथाएं), चोरों और डाकुओं की कहानियां, रागनी, अद्भुत वीर, शृंगाररसपूर्ण वृहद् ग्रन्थ आदि से पूर्ण है। वृद्धावस्था के

आगमन पर भजन, हरजस, भक्ति के पद आदि पुरुषों के कंठाभरण बन जाते हैं।

२ *स्त्री लोकसाहित्य* में गीतों की प्रधानता है क्योंकि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों ने अपने कामों में गीतों की सहायता अधिक ली है। स्त्री-जगत् के गीत जीवन की प्रत्येक अवस्था का वर्णन करते हैं। इन गीतों में गुड्डे गुड़ियों की सृष्टि के बालसुलभ गीतों से लेकर, प्रिय वियोग तक के मार्मिक गीतों तक का समावेश है। इस प्रकार न हो नन्हो बच्चियां बचपन से ही घर गृहस्थी के रहस्य की जानकारी कर लेती हैं। किस प्रकार मधुर व्यवहार कन्या को गृहरानी अथवा गृहलक्ष्मी बना देता है? किस प्रकार बहू सास ससुर की लाडली बन जाती है आदि बातें कन्याएँ सुन्दर व सरल रीति से इन गीतों द्वारा सीख लेती हैं।

स्त्रियों के लोकगीतों में प्राय शृंगार और करुण रस ही प्रमुख मिलते हैं। परन्तु इन गीतों के विश्लेषण से यह आश्चर्यजनक तत्व एक अध्येता को अवश्य मिलता है कि ये गीत सास के जीवन को स्पर्श करके ही चुप हो जाते हैं और उससे आगे नहीं बढ़ते मानो सासपन ही स्त्री-जीवन की चरम परिणति हो। स्त्री गीतों में त्याग और वैराग्य भावना की खोज तो एक दुराशामात्र है।

३ *बच्चों के लोकसाहित्य* में शिशु की काकली से प्रारम्भ होकर वयस्कता की छटा भरी मिलती है। यह वह साहित्य है जिसमें हृदय का निश्छल प्रदर्शन होता है।

अभी तक हमने लोकसाहित्य के वर्गीकरण की शैलियों के बारे में बतलाया है। *अब हम हरियाना प्रदेश के लोकसाहित्य के विविध रूपों की परिगणना* नीचे की पंक्तियों में कुछ विस्तार से करेंगे —

१ हरियानी लोकगीत

लोकगीतों में वे सभी गीत समाविष्ट हैं जो भिन्न भिन्न अवसरों पर घरों में, कुओं पर और बावड़ियों पर एवं खेत खलिहान में गाये जाते हैं। लोक साहित्य का यह वह अंश है जो कलात्मक दृष्टि से समुन्नत है। कहीं-कहीं तो ये गीत शिष्ट कविता के भी कान काटते दिखाई पड़ते हैं। रतिगोपन का यह कलापूर्ण उदाहरण किस साहित्य मर्मज्ञ को आश्चर्य सागर में नहीं डुबा देगा।

गोरी सारी रात की कहाँ गई, कहाँ लगाई सारी रात,
ए री बनजारी, नवल बनजारी, दस्स मेरिये।

राजा थके नेग के रतजगा, को ए यहीं गवाई सारी रात,
ए री बनजारा, नवल बनजारा, टाटा गेरिये ।
गोरी ना तेरे हातन महन्दी रच रहे, को ए नाते रे नैना नींद,
ए री बनजारा, नवल बनजारा, टाटा गेरिये ।
राजा महन्दी की विरियाँ मो गइ, को ए न्यू आ नैना नींद,
ए री बनजारा, नवल बनजारा, टाटा गेरिये ।
गोरी कालजा मेरा धड़क रह्या, को ए पैर रहे थराय,
ए री बनजारा, नवल बनजारा टाटा गेरिये ।
राजा नाचत कालजा धड़क रह्या, को ए पैर रहे थराय,
ए री बनजारा, नवल बनजारा, टाटा गेरिये ।

इसी प्रकार का एक से एक निराला सूझ इन गीतों के आंचल में पाठक को मिलेगा ।

हरियाने में जितने प्रकार के गीत उपलब्ध हुए हैं उनकी समष्टि पर विचार करते हम उन्हें पहिले दो भागों में बांटते हैं —अ गीत (लघु गीत), आ प्रबन्ध गीत। इन गीतों की संख्या बहुत अधिक है। छोटे गीतों के अध्ययन के लिए हम उन्हें निम्नप्रकार से बांट सकते हैं —

१ संस्कार-सम्बन्धी गीत —
 क पुत्र-जन्म के सम्बन्ध में गाये जानेवाले गीत ।
 ख विवाह के समय गाये जानेवाले गीत ।
 ग मृत्यु समय गाये जानेवाले गीत ।
२ ऋतु-गीत —
 क तीर्थ, व्रत, पर्व-त्योहार, देवी माता जाता आदि अवसरों के गीत ।
 ख सावन और फागन में गाये जानेवाले मल्हार आदि गीत ।
३ कृषि-गीत —बैल, गौ, खेती (ईख, कपास) यात्रा आदि से सम्बन्धित गीत ।
४ राजनीति सम्बन्धी गीत —राजनैतिक प्रभाव के गीत ।
५ अन्य गीत —बचे-खुचे गीत ।

अ लघु गीत

१ संस्कार-सम्बन्धी गीत —

क पुत्र-जन्म के गीत —सन्तान प्राप्ति का महान् विशेषता है। इस अवसर पर मनुष्य प्रकृति में एक विशेष उल्लास होता है, किन्तु इन

हरियानी लोकसाहित्य में इस अवसर को शुभाशुभ भावों से समन्वित पाते हैं। यहाँ पर पुत्र-जन्म के अवसर पर जो आनन्द उत्साह मनाया जाता है वह कन्या जन्म पर नहीं। इसके विपरीत कन्या-जन्म पर शोक का वातावरण छा जाता है और गीत आदि नहीं गाये जाते। पुत्र-जन्म पर अनेक प्रकार के गीत गाये जाते हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं —निश्राइ, मै (बैमाता), स्यावढ (सोमर), दाइ, पालने के गीत, छठी, पीला, जच्चा आदि।

ख विवाह के गीत —सगाइ के गीत, लगन, हल्दी, तेल, बनड़ा, बनड़ी, घोड़ी, फेरों के गीत, गारी, कन्या की विदायगी के गीत। इसी अवसर पर 'भात' नाम के गीत भी गाये जाते हैं।

ग मृत्यु सस्कार पर भी शोकपूर्ण गीत गाये जाते हैं।

२ ऋतु गीत —

क देवी देवता तीज-त्यौहार सम्बन्धी गीत —महादेव की, माता (शीतला माता), भैरा, सेदलमाता, हनुमान, पचपीर, जहारपीर आदि के। इनमें से कइ गीत रतजगे के समय विशेष रूप से गाये जाते हैं। मांगलिक अवसरों पर भी गीत गाने की प्रथा है। तीज गणगौर, होली, नगरकोट की यात्रा के गीत, सिंढारा की यात्रा के गीत, सिद्ध पुरुषों के गीत—गूगा, पचपीर, भूमिया आदि के।

ख ऋतुओं के सामान्य, कार्तिक, होली, बारहमासा आदि के गीत।

३ कृषि-गीत —खेती, किसान और बैल गऊ आदि के गीत।

४ राजनैतिक गीत —देश प्रेम के गीत, युद्ध में भरती होने के गीत आदि।

५. अन्य गीत —इस विभाग म शेष सभी बचे खुचे गीत आ जाते हैं —

१ पणिहारी के गीत — पणिहारी, कुआ, सरवर आदि के।

२ हुचकी गीत।

३ चरख और चाकी पर भी बड़े भावात्मक गीत गाये जाते हैं। इधर हरियाने की वयस्काएँ चरखा कातती हुइ गीत गाती हैं— "उड जा रे कागा बाँधू तेरे ताणा, कैद तो कद म्हारा बाप कै ?" आदि।

४ परभाती —भजन, हरजस, कृष्णलीला और रामायण सम्बन्धी पद जो प्रातःकाल से आत प्रोत होते हैं।

५ धमालें —धमाल विशेषकर फाल्गुन म गाइ जाती हैं। इनम घोर शृंगार और शांत रस दोनों आ जाते हैं। जैसा समय

और जैसी अवस्था का गाने-वाला अथवा सुनने वाला होता है उसी के अनुसार धमाल का गान छिड़ जाता है।

६ हास्यरस —व्यंग गीत, छोटा, पति, खटमल आदि पर बने गीत।

७ नाट्य गीत —जिन्हें नियागात भी कहा जाता है और इनमें छाया का अभिनय भी रहता है। वास्तव में अभिनयात्मक पक्ष ही इनमें प्रधान होता है। इसके बिना ये निष्प्राण हो जाते हैं।

८ निकड़ी के भजन व गीत —इनमें सार्थक एवं निरर्थक भावनाएं एक स्थान पर निबद्ध होती हैं। इसी आशय में इन्हें चकड़ा या निकड़ी के भजन कहते हैं। ये आकार में नड़े होते हैं।

आ प्रबन्ध-गीत

हरियाना में प्रबन्ध-गीतों की संख्या बहुत अधिक है। ये आकार में बड़े होते हैं और इनमें इतिवृत्तात्मक तत्त्व प्रधान होता है। वैसे ऐसे भी प्रबन्ध गीत हैं, जिनमें ऐतिहासिक पुरुष को छोड़कर अनैतिहासिक पुरुष का आश्रय लिया गया होता है। इन गाथा में राजा रिसालू, गूगा, गोपीचंद, भक्त पूरनमल, निहालदे, रामकिशन गोपाल, जसवत, हरफूल और आल्हा आदि मुख्य हैं।

२ लोक कथा

लोक-साहित्य में लोक-गाथा की प्रधानता होती है और पाठक का मन अधिकाधिक गीत-साहित्य में ही रस लेता है, परन्तु इतना होने पर भी समस्त वाङ्मय की जननी कथा ही होता है। चाहे उस कथा में कोई आख्यान व्यक्त हुआ हो, चाहे कोई पराक्रमपूर्ण कृत्य का रोमांचकारी वर्णन रहा हो, अथवा किसी पशु-पक्षी का आश्रय लेकर जीवन की कोई पहेली सुलझाई गई हो किन्तु इतना निश्चित है कि कथा ही लोक अभिव्यक्ति की मनप्रथम वस्तु है। गम्भीर विवेचन द्वारा देखें तो यह सत्य ही ज्ञात हो जायगा कि गीत और पद्य गाथाएँ भी अपने मूल रूप में कहानियाँ या कल्पना के प्रयोग ही हैं। इन कहानियों अथवा प्रसंगों को लोक प्रतिभा ने छन्द, लय से पुष्ट किया है तभी वे ही गीत और गाथा बन गई हैं। यही विविध या प्रकार लोक साहित्य, उसमें भी अलग-अलग कल्पना तत्त्व ही दृष्टिगोचर होता है। गुरुग्रन्थ ना

कहानियों के सारभूत परिणाम हैं ही। गीत कथाओं में एक सूक्ष्म सी कहानी कह कर ही शेष भाग को गीत रूप में रखा जाता है। अत हमें यह मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि कहानी ही लोकसाहित्य, क्या शिष्ट साहित्य की भी उत्पादिका शक्ति है।

हरियाने म लोककथाएँ प्रचुर मात्रा में मिलती हैं। ये कथाएँ लोक जीवन मे व्याप्त हैं। इनके कहनेवाले भी अनेक समुदाय हैं। वृद्धाएँ बच्चों को कथा सुनाकर रात्रि म उनका मनबहलाव किया करती हैं। वृद्ध किसान चौपाल पर या ग्वाड म पूर पर बैठा हुआ नाना प्रकार की सुन्दर कहानियाँ कहता सुनता है। बालक अपनी मित्र मडली म कहानी कहते हैं और स्त्रियाँ व्रत पर्वा पर कहानियाँ कहती हैं। कई व्रत तो ऐसे हैं जो तद्विषयक कहानी सुनकर ही समाप्त होते हैं। अत हम हरियानी लोककहानिया के कई प्रकार मिलते हैं —

क मनोरजनात्मक कहानियाँ —वैसे तो लोककहानियों में उपदेश और मनोरजन दो ऐसे तत्व हैं जो न्यूनाधिक परिमाण में सभी कहानियों म मिलते हैं किंतु फिर भी कुछ कहानियाँ ऐसी हैं जिनमें मनोरजन तत्व की प्रधानता है। इनमें आश्चर्यजनक बातें रहती हैं यथा, परियों की कहानियाँ, दाने आदि की कहानियाँ, आदि।

ख उपदेशात्मक कहानियाँ —इनमें तन्त्रस्थान या पशु-पक्षी सम्बन्धी कहानियाँ आती हैं।

ग साहस एव शौर्यपूर्ण कहानियाँ —हरियाने में इन कहानियों की संख्या बहुत अधिक है। इन कहानियों को 'जान जोखा की कहानी' भी कहते हैं। इनम बुद्धि चातुर्य के साथ जान को हथेली पर रखने का साहस प्रदर्शित किया जाता है। इन कहानियों म भूत, डायन, और दाने आदि पात्र होते हैं। इनका उद्देश्य श्रोताओं म साहस एव शौर्य भावना भरना होता है। घोर आपत्काल में भय तथा घबड़ाने से नहीं, रोदन एव विलाप से नहीं अपितु अदम्य साहस से काम चलता है। ये कहानियाँ बच्चों के लिए नहीं होती। युवकों एव जवान पुरुषों के स्नायुजाल मे ओज-सचार करना इनका काम होता है।

घ बुझावल कहानियाँ —बुझौवल वे कहानियाँ हैं जिनमें बड़े चातुर्य से बात पूछी जाती है। ये बड़ी रोचक, मनोरजक एव ज्ञानवर्धक कहानियाँ होती हैं। हरियाने म बुझौवल के दो रूप मिलते हैं। एक—पहेली का, दूसरा—कहानी का।

ङ देव विषयक कहानियाँ —इनमें किसी धार्मिक देवता का करतब दिखाया गया होता है। 'शिव पार्वती' की कहानी में पार्वती की उपासना दिखाई गई है। यह शिव का विवरण करता है किसी गृहस्थ का संकट हरने के लिए शिव जी गात चलते हैं। अधिक आग्रह पर शिव संकट दूर करते हैं और दर्शन देकर अन्तर्धान हो जाते हैं। इस प्रकार की असंख्य कहानियाँ यहाँ मिलती हैं

च व्रतात्मक या त्यौहार विषयक कहानियाँ —ये वे कहानियाँ हैं जो व्रत या त्यौहार के मूल और मूल्य पर प्रकाश डालती हैं। इनमें से बहुत-सी व्रत तथा त्यौहारों का अंग बन गई हैं। ये कहानियाँ स्त्रियों में विशेषकर प्रचलित हैं। कई व्रत तो कहानियों सुनने के उपरान्त ही समाप्त होते हैं। यथा, करवा चौथ तथा अहोई-आठें का व्रत तद्विषयक कहानी सुनकर ही समाप्त होता है। ऐसी ही प्रवृति शनिश्चर के व्रत के सम्बन्ध में भी है।

छ विश्वास सम्बंधी कहानियाँ —इनमें अंधविश्वास का अंश काम करता है। कई स्थानों पर प्रकृति के किसी व्यापार का रहस्य जानने के लिए कहानियाँ कही जाती हैं। यथा, गीदड़ क्यों रोते हैं अथवा हरियाने में नया कुआँ बनाते समय हनुमान मढ़ी क्यों बनाई जाती है, आदि।

ज पद्यबद्ध अथवा लघु छन्द कहानियाँ —ये कहानियाँ पद्यात्मकता लिए होती हैं, यथा, हरियाने का 'स्यामी और सौन' की कहानी। ये बच्चों में प्रचलित होती हैं।

चतुर्थ अध्याय में हमने हरियाना लोककहानियों के सभी भेद प्रभेदों का स्थान दिया है और उनका विश्लेषणात्मक अध्ययन किया है।

३ अभिनयात्मक लोकसाहित्य

साग, नौटंकी, स्वांग आदि साहित्य का यहाँ बहुत अधिक प्रचार है। सांग के मूल का पता करना वास्तव में बड़ा कठिन है। किन्तु इतना तो कहा जा सकता है कि सांग हरियाने में आकर समृद्ध हुआ है। हरियाने का सांग अपना एक विशेषता रखता है। यह बड़ा प्रभावशाली है। सांगियों के तन्मयपूर्ण रागियाँ गाने में जादू का काम करता है। हरियाने के सांग उत्तर प्रदेश और राजस्थान में दूर-दूर तक बुलाये जाते हैं। इनमें दीपचन्द, लखमी, मान और धनपत के सांग बड़े प्रसिद्ध और शिक्षाप्रद होते हैं। आजकल अवश्य इनमें यौन अपील (Sex appeal) पैदा किया जाता है जो साहित्यिक

४ प्रकीर्ण लोकसाहित्य

क बालकों के वाक् प्रचार —इसम ने समस्त तुकबदियाँ आयँगी जो बालकों के मनोरजनार्थ दूसर लोग कहते हैं अथवा बालक स्वय खेल खेलते समय प्रयोग म लाते हैं। ये निरर्थक एव सार्थक दोनों प्रकार की होती हैं। यथा—अटक्न, नटकन आदि।

ख पहेलियाँ —हरियाने म इनको, 'फाली' कहते हैं। इन म पूर्व पक्ष बताकर उत्तर पक्ष की आकाक्षा रहती है कहीं-कहीं तो गम्भीर समस्या ही रख दी जाती है। 'गाहा, इनका दूसरा नाम है। यथा—

सासू की मैं सीमू लागू सुसरे की मं मा।
मेरा पीय की दादी लागू इसका अर्थ बता॥

कैसी विषमावस्था म पाठक पड़ जाता है

ग कहावतें और लोकोक्तियाँ —ये शाब्दिक 'नाविक के तीर' हैं जो देखने म छोटे लगते हैं मगर गम्भीर घाव करने वाले हैं। हरियाने म अनेक सारगर्भित लोकोक्तियाँ मिलती हैं जो इस जाति की समृद्धि को प्रमाणित करता हैं।

घ मुहावरे —मुहावरा उस सुगठित लघुपद समू" को कहते हैं किसी साधारण अर्थ के बजाय विशिष्ट अर्थ की प्रतीति होता है।

ङ सूक्तियाँ —घाघ और भड्डरी की ज्ञानोक्तियाँ हैं।

द्वितीय अध्याय

हरियानी बोली का अध्ययन

१ भाषा-विज्ञान की दृष्टि से

पूर्व पीठिका

प्रथम अध्याय में हमने हरियाना प्रदेश के सांस्कृतिक इतिहास का सिंहावलोकन किया है। उसके लोकसाहित्य का सर्वांगीण अध्ययन हमारा मुख्य लक्ष्य है। परन्तु हरियाना प्रदेशीय लोकसाहित्य के बीहड़ एवं अद्यावधि उपेक्षित वन प्रांत में प्रवेश करने से पूर्व यह अनुपयुक्त न होगा कि उस बोली से परिचय प्राप्त कर लिया जाये जिस बोली की यह थाती है। अतः हमें यहाँ निम्नलिखित प्रश्नों पर संक्षेप में कुछ गहराई के साथ विचार करना होगा—भारतीय भाषाओं में हरियानी का स्थान, नामकरण, क्षेत्र विस्तार, तथा सामान्य एवं स्थूल व्याकरण आदि।

भाषा के अध्ययन से हम एक बात अच्छी तरह देखने को मिलती है कि वाणी और लेखनी की दौड़ में लेखनी कदापि वाणी के साथ कदम से कदम मिलाकर नहीं चल सकी है। वाणी का स्वतन्त्र प्रसार और विकास हुआ है और लेखनी वाणी को भाषा का रूप दे उसे पंगु बना देती रही है। यह सत्य है कि लेखनी का प्रसाद जिस भाषा को मिला बस, उसकी प्रगति रुक गई, उसका विकास धीमा हो गया। उसे साहित्य की गद्दी (सिंहासन) अवश्य मिली परन्तु उसकी अनुप्राणिका शक्ति क्षीण हो गई। इस दृष्टि से जब हम मध्यदेशीय भाषाओं पर विचार करते हैं तो भाषा-विज्ञान की खोज इस ओर स्पष्ट संकेत करती है कि विक्रम की नवमी-दशमी शताब्दी में अपभ्रंश भाषाएँ साहित्य की सुखशय्या पर निद्रा निमीलित हो रही थीं और बोल-चाल की भाषाएँ अपने-अपने जनपदों में स्वतन्त्र रूप से विकास प्राप्त कर रही थीं। अपभ्रंश भाषा से अलग हटती हुई बोलियों का यह स्वतन्त्र विकास ही हमारी आधुनिक आर्यबोलियों का आधार है। हिन्दी इस प्रकार मध्यदेश की विकसित बोलियों के समुदाय का नाम है।

मध्यदेश की शौरसेनी अपभ्रंश से विकसित पांच बोलियाँ—खड़ी बोली (कौरवी), हरियाना, ब्रज, कन्नौजी और बुन्देली पश्चिमी हिन्दी के नाम से पुकारी गई हैं। अर्द्धमागधी अपभ्रंश की तीन बोलियाँ—अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी—पूर्वी हिन्दी के नाम से 'भाषा सर्वे' में दी गई हैं। हमारी आलोच्य बोली हरियानी पश्चिमी हिन्दी की सबसे पश्चिमी बोली है।

डा० धीरेन्द्र जी वर्मा ने इस बोली को 'सरहदी' नाम से पुकारा है।[1] सरहदी से तात्पर्य म यदेशीय भाषा बोलियों की पश्चिमी हद की (सीमा की) बोली से है। यह एक विस्तृत प्रदेश की बोली है। इसका क्षेत्र दिल्ली, करनाल, रोहतक, हिसार, गुड़गांव[2] जिला और पड़ोस के पटियाला, नाभा और जींद रियासतों के गाँवों में फैला पड़ा है।

उपरोक्त विवरण से यह तो स्पष्ट हो गया है कि हरियानी बोली भारतीय आर्य भाषाओं की एक प्रमुख बोली है। इस बोली को किसी साहित्य महारथी की लेखनी का प्रसाद नहीं प्राप्त हुआ है, अत इसके प्राचीनतम रूपों की खोज करना कठिन है। इसमें आज जो साहित्य उपलब्ध है वह केवल गीत (घरेलू गीत), लोककथाएं, अवदान (साके) तथा लोकोक्तियां आदि हैं। इस बोली में मुहावरों की एक अपनी विशेषता है जो श्रोता को एक साथ अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। इस बोली के मुहावरे बड़े सम्पन्न एवं अर्थगाम्भीर्य पूर्ण हैं। यथास्थान इनका वर्णन दिया गया है। लगभग पिछले ३०,४० वर्षों से कुछ 'सांगीत' की किताबें अवश्य इस बोली में लिखी मिलती हैं जिनमें भी बोली का शुद्ध रूप नहीं आ पाया है। उर्दू फारसी के विदेशी शब्द जो जनमानस में अपनी पैठ नहीं कर पाये हैं, पर्याप्त मात्रा में इन सांगीत पुस्तकों में मिलते हैं। स्वतन्त्रता आन्दोलन को लेकर लिखे गये बहुत से नाटक भी मिले हैं जिनमें शास्त्री तारादत्त (हिसार) का 'ग्राम सुधार' नामक नाटक हरियानी बोली का एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है। आर्य समाजी ढंग पर लिखे गये 'भजन' भी भजनीक मंडलियों के अखाड़ों में देखने को मिले हैं परन्तु इनमें विशुद्ध हरियानी बोली न होकर उर्दू अंग्रेजी के साथ हरियानी की खिचड़ी पकाई गई है। फिर भी सांगियों, भजनीकों एवं नाटक रचयिताओं की यह निकासमान् बोली भाषा विज्ञान के विद्यार्थी के लिए अध्ययन की खासी सामग्री जुटाती है।

हरियानी बोली में ब्रज, अवधी, मैथिली, बंगला और भोजपुरी की वह सरसता एवं मधुरता भले ही न मिले परन्तु इस बोली के स्वरों के उच्चारण की दीर्घता एवं फैलाव (Broadness) इसकी अपनी वस्तु है और अवश्य ही

१ डा० धीरेन्द्र वर्मा 'ग्रामीण हिन्दी' नवीन संशोधित संस्करण, १६५० का परिचय भाग पृष्ठ ११।

२ जिला गुड़गाँव के उस भाग में हरियानी बोली जाती है जो पालम रेलवे स्टेशन से लेकर गुड़गाँव के पश्चिम में पड़ा है और जिसमें दहियावाली जाट बसे हैं।

इसकी विशेषता कही जायेगी। हरियाना प्रदेश की शक्ति सम्पन्न जातियों का बलिष्ठ उच्चारण उनकी वाणी के प्रत्येक स्वर और व्यंजन से फूटा पड़ता है जो अपनी कर्कशता में भी आकर्षक एवं दीर्घता में भी मधुर है। आगे का विश्लेषण इस बात को स्पष्ट कर देगा कि इस बोली में कई ध्वनियाँ बड़ी प्राचीन हैं और कई अंश ऐसे हैं जिनमें अपभ्रंशकालीन अवशेष विद्यमान हैं जो शब्दों की प्राचीनता का इतिहास बतलाते हैं। इन्हीं सब प्रमाणों से यह कहा जा सकता है कि हरियानी बोली एक प्राचीन बोली है और अपना स्वतंत्र अस्तित्व लिए हुए है।[1]

अ नामकरण

हरियानी बोली को विद्वानों ने कई नामों से अभिहित किया है। यथा— बागड़ी, जाटू, देसवाली या देसारी तथा चमरवा आदि। इनमें से हरियानी और बागड़ी दो देश परक नाम हैं जो हरियाना और बागड़ देश के नाम पर पड़े हैं। यथा—बंगाली, मराठी, गुजराती आदि। शेष दो नाम जाटू और चमरवा दो जाति—जाट और चमार—के नाम पर हैं। इन्हीं दो जातियों की प्रधानता के कारण इस बोली में इनके व्यक्तित्व, उच्चारण और संस्कारों की छाप है। देसवाली या देसारी भी जाति परक ही है। देसवाल जाटों की भाषा ही यह भाषा है। अन्य जाट बागड़ी हैं जो बीकानेर की ओर से आये हैं और बागड़ी बोलते हैं। उनकी संख्या नगण्य है और उनकी बोली पर

१ डा० ग्रियर्सन मौजूदा हरियानी को खड़ी बोली की ही एक शक्ल मानते हैं। परन्तु हरियानी खड़ी बोली से अधिक प्राचीन है। यहाँ 'तारीख जबान-ए उर्दू' के लेखक डा० मसूदहसन का कथन विचारणीय है कि 'खड़ी बोली' हिन्दुस्तानी का अपना मयार स्तर (Standard) उस वक्त कायम होता है जब वह एक तरफ बन्दा, लोट्टा और गड्डी (हरियानी व कौरवी) के बजाय बादल, लोग और गाड़ी को कबूल करती है और जोरी, तरी, लराइ (ब्रज आगरा, मथुरा की) के बजाय जोड़ी, तेरी, लड़ाई को कबूल करती है। अतः ग्रियर्सन की खोजों के विपरीत यह माना जाना चाहिए कि हरियानी खड़ी बोली की एक शक्ल नहीं है, बल्कि इसके विपरीत खड़ी बोली, हरियानी और ब्रज का विकसित रूप है। फिर 'खड़ी बोली' नाम भी तो बहुत पुराना नहीं है। 'प्रेमसागर' की भूमिका में सम्वत् १८६० के लगभग लल्लूजी लाल ने सर्वप्रथम इसे यह नाम दिया है।

देसवाल जाटों की इस बोली का प्रभाव बढ रहा है। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने इसे दो नाम दिये हैं—बागरू और हरियानी। डा० पी डी गुणे ने केवल एक नाम—बागरू से इसे अभिहित किया है। डा० धीरेन्द्र वर्मा ने इसे तीन नाम—बागरू, हरियानी और जाटू के नाम से पुकारा है। डा० मसूद हसन ने भी इसी अनुकरण पर इसे उपरोक्त तीन नाम दिये हैं। केवल डा० ग्रियर्सन ने इस बोली को उपरोक्त तीन नामों के अतिरिक्त एक नाम 'चमरवा' भी दिया है जो इस बोली के देहली के उन मोहल्लों में प्रचलित होने के कारण जिनमें चमारों की आबादी है, इसे मिला है। परन्तु यह नाम प्रचलित नहीं है।

अब तक के विश्लेषण से एक बात स्पष्ट है कि डा० पी डी गुणे के अतिरिक्त सभी विद्वानों ने इस बोली का बागरू नाम देकर—जाटू और हरियानी इसके लिए दो नाम और दिये हैं। किन्तु यह नामकरण डा० ग्रियर्सन के भाषा-सर्वे के आधार पर ही हुआ है। सर्वे के प्रकाशन तक ज़िले के गजटीयरस् ही स्थानीय भाषा और इतिहास जानने के साधन थे। इसीलिए करनाल और रोहतक की ऊँची और सूखी भूमि जो बागड़ कहलाती है, उसकी भाषा बागरू कहलाई और इस प्रदेश में जाटों की अधिक आबादी होने के कारण वही भाषा जाटू भी कहलाई। हिसार जींद जिलों के हरियाना खण्ड की भाषा हरियानी के नाम से पुकारी गई। अतः दो भूभागों के नाम पर दो नाम भाषा को मिले—बागड़ खण्ड के नाम पर बागरू और हरियाना खण्ड के नाम पर हरियानी। इन दोनों खण्डों में जाटों की अधिक सख्या होने के कारण उसे जाटू नाम भी दिया गया। परन्तु यह कल्पना उपयुक्त नहीं प्रतीत होती। खोज से पता चलता है कि हरियाना और बागर की सभी जातियाँ—बावरिया आदि एक-दो नीची जातियों को छोड़कर-एक ही भाषा बोलती हैं। न्यूनाधिक भेद है अवश्य, परन्तु वह स्थानीय प्रभाव के कारण है और नगण्य है। दूसरे, देश के नाम पर ही बोलियों के नाम होते हैं परन्तु ग्रियर्सन की जाटू और अहीरी अपनी निराली खोज है जो ससार के भाषा चित्र में दूर से खटकती है। अतः जाटू नाम अनावश्यक (Super Fluous) मालूम पड़ता है। बागरू नाम भी इस भाषा के लिए देना ठीक नहीं है क्योंकि जिस बोली का विवेचन हमारा लक्ष्य है वह बागर के बाहर भी बोली और समझी जाती है—पूर्व की ओर भी और पश्चिम की ओर भी। फिर बागर नाम भी जातिवाचक है। कोई भी ऊँचा एवं सूखी भूमि बागर के नाम से भूगोल शास्त्र में पुकारी जाती है। इस प्रकार बागर खण्ड कई हो सकते हैं और सब बागर खण्डों की बोली बागरू कहलायेगी। भूगोल के अध्ययन से ज्ञात होता है कि जैसी ऊँची और

सूखी भूमि कर्नाल और रोहतक जिले की है वैसी ही बलिया जिला (उत्तर-प्रदेश) में ऊँची और सूखी भूमि है। उसे भी बागर के नाम से पुकारा जाता है। फिर वहाँ की बोली भी बागरू कही जायगी। इस प्रकार यह बागरू नाम अतिव्याप्त हो जायगा। अत हम स्पष्टता के लिए इस बोली को हरियानी बोली के नाम से पुकारेंगे। आज हरियाने की परिसीमाएं खोजकर निश्चित की जा सकी हैं।[1] इस विस्तृत प्रदेश की भाषा, परम्परा एव रीति-रिवाज प्राय सब स्थानों पर एक से हैं, अत हरियाने की बोली को हम हरियानी नाम से अभिहित करेंगे और बागरू को हरियानी की उप-बोली मानेंगे।

आ हरियानी का अध्ययन (आवश्यकता)

किसी भाषा (बोली) का अध्ययन एक रोचक विषय है। आजकल इस ओर विद्वानों का ध्यान विशेष रूप से लगा है। वैसे आधुनिक भारोपीय भाषाओं के वैज्ञानिक अध्ययन का इतिहास भी बहुत पुराना नहीं है। आज से लगभग एक शताब्दि-पूर्व सर रामकृष्ण भडारकर और डा० बीम्स के अनुसधानों से इसका श्रीगणेश हुआ। अनेक बोलियों पर विवेचनात्मक अनुसधान हुए हैं, परन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि हरियानी बोली को अभी तक उपेक्षा भाव से देखा गया है। डा० ग्रियर्सन के भाषा सर्वे में भी इस बोली के साथ ट्रमात की गई है। न इसके व्याकरण की पर्याप्त छानबीन करके व्यापक नियम निर्धारित किये गये हैं और न शब्द-सूची ही गम्भीर ध्यान के साथ तैयार की गई है। श्री ई जोसेफ, आई सी एस, डिप्टी कमिश्नर, रोहतक ने अवश्य जाटू बोली का स्थूल व्याकरण एव विस्तृत शब्द-सूची (ग्लोसरी) दी है।[2] हमने हरियानी के 'स्थूल व्याकरण' नामक उपखड को तैयार करते समय इसे देखा है। इस दिशा में लेखक को जो कमी अनुभव हुई उसे उसने हरियाना प्रदेश के पर्यटन काल में भिन्न भिन्न उपायों द्वारा प्राप्त साहित्यिक सामग्री से पूरा किया है।

इ हरियानी का क्षेत्र विस्तार

हरियाना प्रदेश कई भाषा बोलियों का सधि-स्थल है। एक ओर यह प्रदेश पटियाला (पप्सू राज्य)[3] के क्षितिज से सटा हुआ है और दूसरी ओर

१ 'अखड प्रकाश' का प्रमाण, पृष्ठ ३९ पर।

२ देखिए 'जनरल आव रोयल एशियाटिक सोसाइटी बङ्गाल' पष्ठ खड, सन् १९१० पृष्ठ ६६५, प्रभृति।

३ पटियाला पेप्सू (Patiala and East Panjab States Union) अब वर्तमान पजाब राज्य में विलीन हो गये हैं।

राजस्थान, अहीरवाल, ब्रज और कुरु प्रदेश की सीमाओं को छूता है। इसलिए हरियानी का भाषा-पट पूर्वी पंजाबी, बीकानेर की बागड़ी, राजस्थान की मेवाती और अहीरवाल की अहीरवाटी बोली, ब्रज की ब्रज बोली और कुरु प्रदेश की खड़ी बोली के धागों से निर्मित है। हरियानी लगभग ६,००० वर्गमील में फैली हुई बोली है। इसकी सीमांत रेखाएँ किसी एक प्रांत की राजनैतिक सीमाओं से संबद्ध नहीं हैं। हरियानी के प्रधान केन्द्र रोहतक, मैहम, हांसी, दादरी, दुजाना और नरवाणा हैं। हांसी, रोहतक और मैहम की बोली आदर्श हरियानी मानी जाती है। डा० मसूद हसन के ये शब्द तथ्यपूर्ण हैं कि "शहर देहली संयोग से इन तमाम बोलियों के संगम पर स्थित है अतः भाषा का स्टैन्डर्ड एक दीर्घकाल तक स्थिर नहीं हो सका। परन्तु मीर अब्दुल वासे हांसवी की 'गरायबुललुगात हिन्दी' (हिन्दी के विदेशी शब्दों का कोष) की रचना के पश्चात् हम कह सकते हैं कि हांसी के इर्द गिर्द की हरियानी बोली स्टैन्डर्ड की मानी जाने लगी थी।[1] हरियानी बोली बोलने वालों की संख्या १९३१ की जनगणना के अनुसार २२ लाख थी।[2]

ई हरियानी का समीपवर्ती बोलियों से पार्थक्य

भाषा बोलियों में सदैव आदान प्रदान चलता रहता है। भाषाएँ अपनी पास पड़ोस की बोलियों से बहुत कुछ सीखती चलती हैं। इसके प्रतिफल या शुल्क में भाषाएँ भी बोलियों पर पर्याप्त प्रभाव छोड़ती हैं। अतः पास-पड़ोस की बोलियों में भी चाहे वे एक ही उद्गम की क्यों न हों स्थान, स्थिति, जल-वायु से उच्चारण एवं मूल ध्वनियों में अन्तर आ ही जाता है। कभी-कभी तो यह अंतर इतना स्पष्ट होता है कि उन बोलियों को एक ही जननी की दो सहोदराएँ कहते भी संकोच होता है। उनके रूप आदि सब परिवर्तित हो जाते हैं। अगले पृष्ठों में हम देखेंगे कि हरियानी का अपनी अड़ोस-पड़ोस की बोलियों से कितना साम्य अथवा वैषम्य है।

क हरियानी और पंजाबी

हरियानी पर सबसे अधिक प्रभाव पंजाबी और राजस्थानी का है। यों तो

१ डा० मसूद हसन 'तारीख जबान ए उर्दू' पृष्ठ ३०।

२ डा० धीरेन्द्र वर्मा 'ग्रामीण हिन्दी' पृष्ठ १६

१९५१ की जनगणना में पंजाब में विशेषकर पंजाबी, हिन्दी और उर्दू के आंकड़े पृथक् पृथक् नहीं दिये गये हैं। अतः प्राचीन रिपोर्ट को आधार माना गया है।

ब्रज और कौरवी भी समीपवर्ती बोलियाँ हैं किन्तु पारस्परिक एवं अन्योन्य प्रभाव जानने के विचार से पहिले हम पंजाबी के साथ मिलान करेंगे —

हरियानी और पंजाबी बोलियाँ बहुत-सी बातों में समान हैं। ध्वनि, स्वराघात और ध्वनि परिवर्तन आदि बातें दोनों में प्रायः एक-सी हैं। यथा —

१ दोनों में पुल्लिंग चिह्न 'आ' और स्त्रीलिंग चिह्न 'ई' का इतना अधिक प्रचार है कि कृदन्त क्रियाओं तथा विशेषणों के साथ ही ये लगाये जाते हैं। यथा —हरियानी—छोरा दौड़्या, छोरी दौड़्यी। पंजाबी—मुंडा दौड़्या, कुड़ी दौड़्यी। मा बोल्ला, बापू बोल्ला, लील्ली घोड़ी, च्चट्टी धोती, 'लील्ला (घोड़ा) का अस्वार' चिट्टा कापड़ा आदि।

२ दोनों में सकर्मक क्रियाओं के भूत कृदन्तों (Past Participles) से बनी हुई क्रिया केवल कर्मवाच्य अथवा भाववाच्य में प्रयुक्त होती है। यथा— राम ने पैसा दिया, (पंजाबी) दित्ता, मन्ने इकन्नी दी। इन दो वाक्यों में 'दिया' (दित्ता) 'दी' इन क्रियाओं के वाच्य (Subjects) पैसा और इकन्नी हैं जो 'दिया' (दित्ता) और दी इन क्रियाओं के कर्म हैं। कर्म प्रयोग की विशेषता यह है कि क्रिया के कृदन्त अंश का लिंग और वचन इसके कर्म के लिंग और वचन के अनुसार होता है। क्रिया के कृदन्त भी एक प्रकार के विशेषण ही हैं[1] और इनका विशेषण प्रयोग बड़ा पुराना है। वैदिक भाषा में भी ऐसे प्रयोग मिलते हैं। जिस प्रकार विशेषण का लिंग और वचन विशेष्य के अनुसार होता है,[2] इसी तरह कृदन्त का लिंग और वचन भी वाच्य के

१ (अ) तत्पद पश्यन्ति दिवीव चक्षुराततम्। ऋक् १ मण्डल, १ २२ सूक्त
They see that step like an eye fixed in haven
तद्विष्णो परम पद सदा पश्यन्ति सूरय । दिवीव चक्षुराततम् ॥
१,२२ ७

१ (ब) माकिर्नेशन्माकीं रिषन्माकीं स शारि केवटे। अथारिष्टाभिरा गहि॥
६ ५४ २०

Let none be lost, let none suffer harm, None incur fracture in a pit, but come back with them uninjured.
—Vedic Grammar
'Macdonel'

२ संस्कृत व्याकरण का यह नियम है—

यल्लिंग यद्वचन याद्यी विभक्ति विशेष्यस्य।
तल्लिंग तद्वचन ताद्यी विभक्ति विशेषणस्यापि ॥

अनुसार होता है। भावे प्रयोग में सकर्मक धातु 'कर्मकर्तृ प्रक्रिया' के रूप में आती है, यथा—राम ने आगली तोड़ दी। राम ने आगली के तोड़ दी, आगली आपेह टूटगी आदि।

३ विशेष्य विशेषण प्रयोग में—विशेषण विशेष्य का विशेषक होता है और विशेषण विशेष्य से पहिले आता है। यथा—काला घोड़ा, चिट्टी धोती, विशेष्य विशेषण प्रयोग में विशेषण ही विधेय होता है। यथा—घोड़ा काला है। दोनों बोलियों में एक-सा प्रयोग मिलता है।

४ विकारी कारकों के बहुवचन के रूप 'आं' लगने से बनाये जाते हैं। यह प्रक्रिया दोनों बोलियों—हरियानी, पंजाबी में समान है जबकि साहित्यिक हिन्दी में अन्तर है। हिन्दी में सब शब्दों के विकारी कारकों के बहुवचन 'ओं' से बनाये जाते हैं अथवा उनके अंत में 'ओं' होता है 'यथा'—

पंजाबी		हरियानी	
बहुवचन		बहुवचन	
कर्तृकारक	विकारी कारक	कर्तृकारक	विकारी कारक
मुंडे	मुंडेआं	माणस	माणसां
डाक्कू	डाक्कुआं	खेत	खेतां
		"खेतां की रुखाली बैठा सूं"	
कुरीआं	कुरीआं	छोर्‌या	छोर्‌आं

साहित्यिक हिन्दी

बहुवचन

कर्तृकारक	विकारी कारक
लड़के	लड़कों ने
माली	मालियों ने, से, पर
बालक	बालकों ने
नदी	नदियों पर
माता	माताओं
बहु	बहुओं आदि

५. स्वराघात—स्वराघात का प्रयोग प्रायः दोनों में एक जैसा होता है—

(क) द्वयक्षर वाले शब्दों के यदि दोनों अक्षर स्वर वाले हों, तो स्वराघात प्रथम अक्षर पर होता है। यथा —हाथी झोली, ढोली, माली आदि।

(ख) त्र्यक्षर वाले शब्दों के यदि अंत के दोनों अक्षर दीर्घ स्वर वाले हों तो स्वराघात प्राय मध्यम अक्षर पर होता है। यथा —मिटोड़ा पुराणा आदि।

(ग) प्रेरणार्थक धातु के (क्रिया के) अंतिम अक्षर पर ही स्वराघात होता है। यथा —करा, जगा, हगा, लिखवाओं आदि।

(घ) द्वयक्षर वाले शब्दों का अंतिम अक्षर यदि दीर्घ स्वर वाला हो और स्वराघात मुक्त भी हो तो उससे पहिला अक्षर ह्रस्व स्वर वाला होता है। यथा —टका, मरा, शुदा आदि।

६ स्वर से आरंभ होने वाले शब्दों से पहिले दोनों भाषाओं में कई बार 'हकार' का आगम होता है। यथा—

संस्कृत	प्राकृत	पंजाबी व हरियानी
ओष्ठ	ओट्ठ —	होंट, होट
अस्थि	अट्ठि	हड्डी
अरघट्ट	हरअट्ट	हरट
		रहट (अक्षर विपर्यय से)

७ कर्ता और सम्प्रदान का क्रम से 'नै' और 'नू' कारक प्रत्यय पंजाबी में मिलता है। हरियानी का 'नै' प्रत्यय दोनों कारकों के लिए समान रूप से व्यवहृत है जबकि खड़ी बोली में 'नै' का 'ने' रूप केवल कर्ता के लिए रह गया है। यथा —राम ने मारा।

दोनों में इतना साम्य होने पर भी कई स्थानों पर बड़ा भेद है। उस भेद को परखने का प्रयत्न निम्नलिखित पंक्तियों में किया जायेगा—

(१) इन दोनों बोलियों की कई ध्वनियों में पर्याप्त भेद है। इसी ध्वनि भेद के कारण एक बोली का जानने वाले व्यक्ति के लिए दूसरी बोली के समझने में कठिनाई होती है और कभी-कभी समझ भी नहीं आती।

मूल ध्वनियों में भेद—घ, झ, ठ, ध, थ, भ का उच्चारण
GH JH, TH DH TH BH
दोनों में भिन्न है। इनके पंजाबी उच्चारण में (H) ह् की ध्वनि बहुत मंद होती है और प्राय सुनाई नहीं पड़ती। एक पंजाबी सिक्ख जब भ्राता शब्द का उच्चारण करता है तो आदि भ्रा की ध्वनि 'प्रा' या 'प्रा' की सी होती है। वही सिक्ख 'घर' को 'क्ह्र' इस तरह उच्चारण करता है कि ह 'H' की अति सूक्ष्म ध्वनि सुनाई पड़ती है। धरती शब्द 'दैरती' जैसी सुनाई पड़ती है। हरियानी में इन ध्वनियों की ज्यों की त्यों स्थिति है। इस बोली में चौड़ाव या फैलाव (Broadness) के गुण के कारण इन ध्वनियों का एक विशेष स्थान है।

हिन्दी की 'ढ' ध्वनि पंजाबी और हरियानी में नहीं मिलती। इसके स्थान 'ढ' हो जाता है। 'ड़' की भी यही दशा है। उसके स्थान 'ड' हो जाता है। यथा—(हिन्दी) पढ़ना (हरियानी पंजाबी) पढना (अध्ययन)
(हिन्दी) पड़ना (" ") पडना (गिरना)
यह 'ड़' सदैव ही हरियानी में 'ड' हो जाता है जबकि पंजाबी में इसके दोनों रूप 'ड़' और 'ड' मिलते हैं। यथा—जेड़ा (जिस), उडा दित्ता (समाप्त करना) आदि।

मूर्द्धन्य ' ळ ' हरियाना की अपनी विशेषता है। इसी प्रदेश से यह ध्वनि उत्तर भारत में फैली है। पंजाबी में भी मिलती है। यहाँ 'काला घोड़ा' के स्थान 'काळा घोड़ा' बोला जाता है[1]। इसी प्रकार 'ण' बहुल प्रयोग दोनों बोलियों में होते हैं। यथा—हरियाणा, 'खाणा' खाणा, पंजाबी में हुण आदि।

२ ध्वनि परिवर्तन—पंजाबी में संस्कृत के ह्रस्व स्वर के पीछे आने वाले संयुक्त व्यंजनों के स्थान में द्वित्व दिखाई देता है और पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वर स्थिर रहता है, जहाँ हरियानी में द्वित्व के स्थान में एक ही व्यंजन रह गया है और प्रतिकार में पूर्ववर्ती स्वर दीर्घ हो गया है। यथा—

संस्कृत	पंजाबी	हरियानी
लक्ष	लक्ख	लाख
हस्त	हत्थ	हाथ

१ ळकार की मूर्द्धन्य ध्वनि 'अग्निमीळे पुरोहितम्' आदि प्रयोगों में वैदिक काल से ही है और मराठी में 'तिळक' जैसे शब्दों में आज भी अपना अस्तित्व पृथक् रखती है, किन्तु उत्तर भारत की बोलियों में इसका प्रसार इन दो बोलियों के द्वारा हुआ है।

मस्तक	मत्था	माथा
शुष्क	सुक्खा	सूखा
कर्म	कम्म	काम

यह द्वित्व प्रवृत्ति पंजाबी की अपनी विशेषता है और खड़ी बोली के सम्पर्क में रहने वाले व्यक्तियों का ध्यान अचानक अपनी ओर आकर्षित करती है।

३ हरियानी में हिन्दी की भाँति संस्कृत 'क्त' प्रत्यय के 'त' का सर्वत्र लोप हो जाता है। पंजाबी में इसका लोप विकल्प से होता है। यथा —

संस्कृत	हरियानी व हिन्दी	पंजाबी
दत्त	दिया	दित्ता
सुप्त	सोया	सुत्ता
गत	गया	गया (गत्ता नहीं)
कृत	किया	कीत्ता

४ पंजाबी के विशेषण में विकार संज्ञा की नाईं होता है। यह प्रवृत्ति स्त्रीलिंग बहुवचन में बड़ी स्पष्ट दिखलाई देती है। वहां विशेषण में विशेष्य (संज्ञा) की भांति विकार हो जाता है। हरियानी या हिन्दी में यह बात नहीं पाई जाती।

पंजाबी

एकवचन	बहुवचन
चिट्टी धोती	चिट्टीआं धोतीआं

हरियानी या हिन्दी

एकवचन	बहुवचन
काली धोती	काली धोतियां
	(कालीआं धोतीआं नहीं)

पुल्लिंग बहुवचन में दोनों में विकार होता है।

	एकवचन	बहुवचन
पंजाबी	मोटा घोड़ा	मोटे घोड़े
हरियानी	मोटा घोड़ा	मोटे घोड़े

५. 'व' से आरम्भ होने वाले शब्दों में पंजाबी में 'वकार' शेष रह जाता है, जबकि हरियानी में वह अपभ्रंश की भांति 'ब' में बदल जाता है। यही दशा खड़ी बोली की है। यथा —

पजाबी	हरियानी
वैर	वैर
विरोध	विरोध
वाट	बाट (पगडडी)
वारी	बारी (खिड़की)
वगा	बर्गा (सदृश)
	(तेरे बर्गी हूर मिलैना भइय्या की सूँ)
वेचणा	बेचणा
विरला	बिरला आदि

६ पजाबी से हरियानी में एक अतर और है। सम्बन्ध कारक का चिह्न पजाबी में 'दा' है जबकि हरियानी में इसके स्थान पर 'का' का प्रयाग किया जाता है। खड़ी बाली हिन्दी में भी यही प्रयोग है। 'दा' का प्रयाग पजाबी की अपनी विशेषता है जो दूर से चमकती है।[1] यथा —

पजाबी	हरियानी
चाच्चे दा मुण्डा	चाचा का छोरा
भ्राता दी हट्टी	भ्राता की दुकान

७ व्यक्तिवाचक सर्वनामों के उत्तम पुरुष और मध्य पुरुष के रूपों में बड़ा अंतर है। हरियानी म ये रूप तुम (तम) और हम हैं और पजाबी में असीं और तुसीं (तुसा) हैं। पजाबी के ये सर्वनाम प्राचीन लहदा के अवशेष हैं।

८ हरियानी और राजस्थानी

पजाबी और हरियानी के मर्म का समझकर अब हम राजस्थानी की ओर बढ़ते हैं। हरियानी पर राजस्थानी का प्रभाव कई रूपों में दृष्टिगोचर हाता है। हरियानी बाली, उच्चारण, ध्वनि परिवर्तन, लिंग और वचन के दृष्टिकोण से राजस्थानी से पर्याप्त साम्य रखती है। उदाहरणों से पाठक सरलतया समझ जायँगे।

---

१ पजाबी का 'दा' और हरियानी का 'का' दोनों संस्कृत 'कृत' से निकले हैं जा प्राकृत किदश्रो या किदो की परम्परा से वर्तमान रूप का पहुँचे हैं। विशेष विवरण के लिए देखिए—डा० ग्रियर्सन "भाषा सर्वे" पजाबी भाषा अध्याय।

उच्चारण

१ हरियानी की भाँति राजस्थानी म भी 'ल' का उच्चारण दत्य और मूर्द्धन्य दोनों प्रकार का मिलता है। आजकल प्राय मूधन्य 'ल' का दत्य 'ल' लिखने की प्रवृत्ति बल पकड़ रही है परन्तु यह भाषा शास्त्र की दृष्टि से एक हानि है। जिन शब्दों के आदि अथवा मध्य में मूर्द्धन्य 'ल' आता है। बहुधा उस 'ल' को दत्य कर देने से अर्थ में यद्यपि कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता, यथा—काला और काळा में तथापि उच्चारण की अशुद्धि तो माननी ही पड़ेगी। परन्तु बहुत से मूर्धन्य 'लकारात' शब्द ऐसे भी हैं जिनको दत्य लकारात कर देने से उनका अर्थ बिल्कुल बदल जाता है। यथा —

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
पाल	बाघ	पाल	बिछाने का कपड़ा
माली	जाति विशेष	माली	आर्थिक (फारसी)
महल	स्त्री	महल	राज प्रासाद
खाल	परनाला (नहर)	खाल	चमड़ा

२ इन दोनों बोलियों में 'ष' का उच्चारण 'स' होता है और 'श' का भी 'स' होता है। कहीं-कहीं पर 'ष' का उच्चारण 'ख' भी होता है। प्राय राजस्थानी में ऐसा होता है। यथा—

सस्कृत	हरियानी	राजस्थानी
वर्ष	बरस	बरस
वर्षा	बरखा	बरसा, बरखा
भीष्म	भीसम	भीसम
शेष	सेस	सेस
केश	केस	केस 'सार करूँ सिर केस'—मीरा
दुश्मन	दुसमन	दुसमन
क्षीण	छीन	खीण (यहाँ हरियानी में 'क्ष' का छ हो गया है जब कि राजस्थानी में 'ख' हुआ है। यथा—"घूंघट में गोरी जलै खीन पुरस की नार।")

३ हरियानी और राजस्थानी दोनों में 'य' का उच्चारण 'ज' और 'य' दोनों प्रकार से होता है। जब 'य' किसी शब्द का पहिला अक्षर होता है तब

इसका उच्चारण प्राय 'ज' किया जाता है और 'ज' ही लिखा जाता है। परन्तु जब 'य' शब्द के पहिले अक्षर के पश्चात् आता है तब वह अविकृत अवस्था में रहता है, यथा —

आदि यकार	मध्य यकार या अन्त्य यकार
युद्ध—जुद्ध	काया
यात्रा—जात्रा	माया
यमराज—जमराज	और जाया आदि

वर्णागम और वर्ण प्रत्यय

१ हरियानी में 'ऋ' के स्थान में 'रि' सुना और लिखा जाता है। यह प्रवृत्ति राजस्थानी में भी है। कहीं-कहीं राजस्थानी में मूल रूप में भी मिलता है। यथा —

ऋषि	रिसी
ऋतु	रितु
स्मृति	समृति (राजस्थानी में)

२ हरियानी में 'रेफ' का प्रयोग नहीं होता। यह रेफ पूरे 'रकार' में बदल जाता है। राजस्थानी में इसका स्थान्तरित रूप भी प्रयोग में है। यथा —

सस्कृत	हरियानी व राजस्थानी	राजस्थानी में स्थानान्तरित प्रयोग	
वर्ण	बरन		
दुर्लभ	दुरलभ		
धर्म	धरम	धर्म	ध्रम
कर्म	करम	कर्म	क्रम आदि

३ हरियानी और राजस्थानी में सुखोच्चारण के लिए शब्द के आरम्भ में कभी-कभी कोई स्वर जोड़ देते हैं जिसे स्वरागम कहते हैं। यथा —

हरियानी	राजस्थानी
रथ अरथ	याण आयाण
सवार (असवार) (अस्वार) यथा —	रण आरण आदि

लीली के अस्वार आदि

४ इन दोनों बोलियों में 'स' का 'छ' और 'व' का 'ब' हो जाता है। यथा—

'स' का 'छ'		'व' का 'म'	
सुदामा	छुदामा	सावन	सामण, छामन (माघ)
तुलसी,	तुलछी	रावण	रामण
समा	छमा	सुहावणो	सुहामणो

५ इन दोनों भाषाओं में णकार बहुला प्रवृत्ति पाई जाती है। नकारांत शब्द प्राय णकारांत कर लिए जाते हैं। यथा —

कहना	कहणा
गहना	गहणा
रानी	राणी
जीवन	जीवण आदि

६ राजस्थानी में अकारांत पुल्लिंग तथा अकारांत स्त्रीलिंग शब्दों का बहुवचन अन्त्य स्वर में 'आ' लगाने से बनता है। यही प्रवृति हरियानी में भी मिलती है। यथा—नर नरा, खेत खेता, रात राता, आँख आँखा, "आँखा नै क्यूँ फोड़े सै"—हरियानी।

राजस्थानी के आकारांत, इकारांत और ऊकारांत शब्दों के बहुवचन हरियानी और खड़ी बोली मे प्राय नहीं मिलते। यथा —

हिन्दी		हरियानी	राजस्थानी
एकवचन	बहुवचन	बहुवचन	बहुवचन
घोड़ा	घोड़े	घोड़ा	घोड़ा
घोड़ी	घोड़ियाँ	घोड़ीआ	घोड़्य
बहू	बहुएं	बहुआ	बहुवा

७ दोनों बोलियों में छुटपन लाने के लिए अथवा प्रेम-प्रदर्शन के लिए अपभ्रंश की भाँति संज्ञाओं के अंत में 'ड़ा', 'ड़ा', 'ड़' जोड़ते हैं यथा —

गोरी (सुन्दरी)	गोरड़ा	(अधिक सुन्दरी, एक खास सुन्दरी)
छोरी (लड़की)	छोरड़ा	(अप्रधानता द्योतन के लिए)

उपरोक्त विवरण से यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि हरियानी और राजस्थानी में पर्याप्त साम्य है। इस भ्रम के लिए भी स्थान हो सकता है कि हरियानी राजस्थानी का ही एक रूप है किन्तु वस्तु स्थिति ऐसी नहीं है। राजस्थानी का प्रभाव अवश्य पड़ा है और यह कोई दोष भी नहीं है। भाषाएँ सभी एक-दूसरी से लेती देती रहती हैं। फिर इन दोनों बोलियों की कारक प्रतिया, क्रियाएँ, सर्वनाम और

क्रिया-विशेषण आदि में प्रचुर परिमाण में वैषम्य है। राजस्थानी का व्याकरण उसे अपनी पड़ोसी बोलियों से जुदा कर देता है। परन्तु भाषा विज्ञान के दृष्टि कोण से यह वैषम्य कोई चिंता का द्योतक नहीं है। इस वैषम्य में भी एक साम्य के दर्शन भाषा शास्त्री को होंगे। कारण कि राजस्थानी स्वयं अन्तवर्ती चक्र की भाषा है जिसकी हरियानी, ब्रज, पंजाबी, कौरवी और गुजराती आदि हैं। डा० ग्रियर्सन ने भाषाओं का विभाजन उच्चारण और व्याकरण के आधार पर किया है। उच्चारण क्षेत्र में इन दोनों बोलियों में बहुत कुछ समानता है किन्तु व्याकरण भिन्न है। हरियानी के व्याकरण का वर्णन हम आगे चलकर विस्तार से करेंगे। राजस्थानी के व्याकरण पर दृष्टिपात करना इस लेख का विषय नहीं है।

ग हरियानी और ब्रज

हरियानी और ब्रज पश्चिमी हिन्दी की शाखायें हैं और इन दोनों बोलियों की सीमाएँ भी एक दूसरी से मिलती हैं। इस विचार से इन दोनों में पर्याप्त साम्य की अपेक्षा की जा सकती है किन्तु वैषम्य के लिए भी स्थान है।

उच्चारण की दृष्टि से इन दोनों में कोई विशेष उल्लेखनीय अन्तर नहीं है। बस ब्रज में मूर्धन्य 'ण' 'ड़' और 'ल' का प्रयोग नहीं होता है जो इन दोनों बोलियों के खड़ापन और पड़ापन का कारण है। यथा—हरियानी—खाणा, ब्रज में खाना और हरियानी सड़क ब्रज में सरक बोली जाती है आदि। ब्रज में दंत्य सकार के स्थान पर भी 'रकार' हो जाता है। यथा—बादर, मतवारो, करडारो आदि में रकार ही सुनाई पड़ता है। 'श' के स्थान में 'स', 'य' के स्थान में 'ज' तथा आदि वकार को बकार की प्रवृत्ति दोनों में एक सी है। विशेष विवरण अधोगत है—

१ सर्वनाम

(अ) उत्तम पुरुष एक वचन में ब्रज में 'मैं' और 'हौं' दोनों का प्रयोग होता है। हरियाना में हौं का प्रयोग नहीं होता। ब्रज का कर्म 'मो' और 'मोहिं' हरियानी में 'मनै' और 'मन्नै' हो जाता है। यथा—'मन्नै के ब्यौरा भइ, (हरियानी) मोका पतो (ब्रज)।

(आ) मध्यम पुरुष (एक वचन व बहुवचन) ब्रज म 'तो' 'तौं' के साथ-साथ 'तें' 'तैं' भी आते हैं। हरियानी में 'तें' 'तैं' मिलते हैं। हरियानी के 'तेरा' और 'थारा' ब्रज में 'तेरो' और 'तुम्हारो' हो जाते हैं। ब्रज में इसके दूसरे रूप 'तिहारो' और 'तिहारी' भी मिलते हैं। 'आयेगी लाल तिहारी।'

हरियानी के 'थमैं' की जगह 'तुम्हारो' 'म्हारा' के स्थान में 'हमारो' और 'मेरा' की जगह ब्रज में 'मेरो' मिलते हैं।

२ वचन

संज्ञा का बहुवचन हरियानी में पंजाबी, दक्खिनी और राजस्थानी की भाँति 'आ' लगाने से बनता है जैसा कि उपरोक्त उदाहरणों से व्यक्त है। ब्रज में बहुवचन 'न' के योग से बनता है।

हरियानी		ब्रज	
एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
घोड़ा	घोड़ा	घोड़ो	घोड़न

"बैलन नाज, घोड़न राज"
(बैलों के द्वारा अनाज और घोड़ों के द्वारा राज कायम होता है।)

३ क्रिया

ब्रज में क्रिया का साधारण रूप धातु में 'बो' 'वा' या 'नो' की वृद्धि से बनाया जाता है। हरियानी में यह रूप 'णा' या 'ण' के द्वारा बनता है।[1] ब्रज की धातुएँ—करिबो, होनो, बूझनो, खानो, चलनो, करनो आदि हरियानी धातुएँ—करणा, होणा, खाणा, जाणा, कहणा, जाण आदि (जाण लाग रहा सूं आदि)।

सामान्य वर्तमान या हेतुहेतुमद्भूत (फेलमुजारा) बनाने के लिए ब्रज में धातु में 'अत' लगाया जाता है। हरियानी में खड़ी बोली की भाँति 'ता' लगता है। यथा, ब्रज—करत, परत, जात, खात आदि

हरियानी—करता, जाता, खाता आदि।

ब्रज में भूतकाल हरियानी की भाँति मारा या मार्‌या नहीं बनता वरन् मारो या मार्‌यो होता है। यथा, ब्रज—'तोकूं कौन नै मारो'

हरियानी—'तन्नै कन्नै मार्‌या'।

ब्रज में भविष्यत् 'गा' के लगाने से बनाया जाता है। यही काल 'हो' की वृद्धि से भी बनता है। यथा, ब्रज—मिलूंगा, खाऊँगा, रामूंगा, चलिहौं,

---

१ ब्रज और हरियानी में एक अन्तर बड़ा स्पष्ट है—ब्रज ओकारांत शब्द बहुला है और हरियाणा 'आ' कारांत बहुला है। यह विशेषता इसे व्यवहित धरित्र के कारण प्राप्त हुई है।

करिहौं। हरियानी में इसके विपरीत—खागा, करागा, चलागा, इब्बै चलागा (अभी चलते हैं) आदि में 'गा' लगाने से बनता है।

सहायक क्रिया के वर्तमान काल में हरियानी में 'सै' 'स' आदि रूप आते हैं। ब्रज में हिन्दी खड़ी बोली की भाँति 'है' के विभिन्न रूप प्रयोग में लाये जाते हैं। ब्रज में 'हूँ' का उच्चारण 'हौं' हो जाता है। यथा —जात हौं बाबू (ब्रज) 'जाऊँ सूं' हरियानी (मैं जाता हूँ)। हरियानी में भूतकाल के लिए 'था' के भिन्न रूप काम में लाये जाते हैं। ब्रज में 'हो' और 'हतो' के रूप प्रयोग में आते हैं।

तू कड़े गया था ? (हरियानी)

तू कहाँ गयो हो ? (ब्रज)

इस प्रकार हम देख सके हैं कि दोनों बोलियाँ एक सीमा पर मिलती हुई भी कितनी भिन्न हैं।

घ कौरवी और हरियानी

हरियानी की पूर्वी सीमा पर जमना के उस पार कुरुजन प्रदेशी की 'कौरवी बोली' बोली जाती है। जमना के खादर में कौरवी और हरियाना का मिश्रण रूप मिलता है। इन दोनों के मध्य में ग्राड ट्रंक रोड खिंची है। निम्नलिखित अध्ययन के द्वारा हम इन दोनों बोलियों के अन्तर एवं साम्य को समझ सकते हैं —

ध्वनि

१ कौरवी में दो स्वर मध्यवर्ती 'ह' का लोप हो जाता है। हरियानी में यह प्रवृत्ति नहीं है। उसमें तो 'हकार' की अधिकता मिलती है। यथा, कौरवी में "सैर कितनीक दूर औ ?"। यहाँ सहर (शहर) शब्द के बीच में आने वाली 'ह' ध्वनि का लोप हो गया है और यह 'ऐ' में परिवर्तित हो गई है। इसी प्रकार तुमारी (तुम्हारी) में 'ह' का लोप हुआ है।

हरियानी में "आड़े तै सहर कितणीक दूर सै ?" में 'हकार' ज्यों का त्यों रह गया है। "हमल्हुक छिप आई न्हाण" आदि स्थलों पर 'ल्हुक' (लुक) एवं न्हाण (स्नान) 'ह' का बहुल प्रयोग दर्शनीय है।

२ कौरवी में महाप्राण ध्वनियाँ बहुधा अल्प प्राण मिलती हैं। हरियानी में ये ध्वनियाँ सुरक्षित हैं।

यथा —

कौरवी में —	मुझे दो	(मुझे दो)
	तुझे	(तुझे)
	हात	(हाथ)
	जाव	(जाम) 'जीव मच्चलावे'
	देक	(देख) "देक के चल"
	बड	(भई) "रहन दे बड"

हरियानी में —मझै के ? (मुझे क्या ?)
तझै के चाहना से ? आदि में महाप्राण ध्वनियों में कोई परिवर्तन नहीं आया है।

३ दोनों बोलियों में 'ड' और 'ट' साहित्यिक बोली की तरह 'ड़' और 'ढ़' नहीं बोले जाते, यथा —बड़ा। परन्तु इनके स्थान पर प्राय 'ड' और 'ढ' ही मिलते हैं। यथा—बडा, गाढा आदि।

वचन

१ कौरवी में संज्ञा का बहुवचन ब्रज की भाँति 'न' जोड़ने से अथवा खड़ी बोली की भाँति 'ओं' लगाने से बनता है, यथा—

नैलन पे मूल गेर दी ?
नैलों पे मूल गेर दी ?

हरियाना में संज्ञा का बहुवचन 'आ' लगाने से बनता है। यथा— धुलदा (नैला) का बोझी।

२ इकारांत स्त्रीलिंग शब्दों के बहुवचन केवल 'इकार' को अनुनासिक कर देने से बन जाते हैं। यह प्रवृत्ति अकर्मक धातुओं के कर्ता के रूप में विशेष मिलती है। यथा—'कितना घाड़ीं हैं'। सकर्मक धातुओं के कर्मरूप में आने वाले शब्दों में 'न' लगाने से बहुवचन बन जाता है। यथा—घाडान कूं पानी पिला दा (कौरवी)। हरियाना में 'आ' लगाने से बनता है। यथा—घाडिया नै पाणी पिलाद्या (हरियानी)।

क्रिया

१ कौरवी की धातु का साधारण रूप हिन्दी की भाँति 'ना' की वृद्धि से अथवा 'ब्रज' की भाँति 'नो' के लगने से बनता है। यथा—

कौरवी —खाना < खाना, जना < जाना आदि

हरियानी धातु में 'णा' अथवा 'ण' के द्वारा रूप बनते हैं। यथा — खाणा, जाणा, देखण, कहण, मूलण आदि।

२ सामान्य वर्तमान या हेतुहेतुमद्भूत बनाने के लिए दोनों बोलियों—कौरवी और हरियानी—में 'ता' जोड़ा जाता है। यथा—करता तो क्यूं मरता।

३ सहायक क्रिया के रूप में कौरवी में साहित्यिक हिन्दी की भाँति 'है' के विभिन्न रूप प्रयोग में आते हैं। हरियानी की सहायक क्रिया की भाँति 'सै' 'सू' आदि रूप प्रयोग में नहीं आते। यथा—आऊँ हूँ, वह आ है आदि।

सर्वनाम

१ इन दोनों बोलियों में सर्वनाम शब्दों की बहुरूपता मिलती है—

हरियानी	कौरवी
मन्नै, मन्नै	मुज, मुजको, मुजक्, मुजे
तन्नै, तन्नै	तुज, तुजको, तुजक्, तुजे

२ कौरवी में अन्य पुरुष 'वह' का बहुवचन विकारी और अविकारी दोनों विभक्तियों में 'उनन' आदि है। हरियानी में 'उन्हानैं' बनता है।

३ परवाचक सर्वनाम और समुच्चय बोधक अव्यय 'और' में साहित्यिक खड़ी बोली में कोई भेद नहीं किया जाता, पर हरियानी और कौरवी में परवाचक सर्वनाम तो 'और' है तथा समुच्चय बोधक 'अर'। यथा—राम अर स्याम आदि।

कौरवी में 'ही' का स्थान बहुधा 'ई' ले लेती है, पर हरियानी में 'ए' ही के स्थान में प्रयुक्त होता है। यथा—

आपी आप	(कौरवी)
आप्पै आप	(हरियानी)

ड दक्खिनी और हरियानी

हरियाना का समीपवर्ती भाषा बोलियों से सम्बन्ध जान लेना ही पर्याप्त नहीं है। इसका महत्व इस रूप में और भी अधिक है कि इसने संसार की दो महान् भाषाओं—हिन्दी (खड़ी बोली) और उर्दू को बल प्रदान किया। यह हरियानी बोली ही इन दोनों भाषाओं की पालिका के रूप में रही है।

हिन्दी खड़ी बोली के ऊपर इसका सीधा उपकार है। इन दोनों का सम्बन्ध इतना घनिष्ठ है कि कहीं-कहीं तो अन्तर सूक्ष्म अवलोकन से ही ज्ञात होता

है। उर्दू को तो इस बोली ने दक्षिण में जाकर स्तन्य-पान कराया है[1] और वहीं वली औरंगाबादी की कविताओं द्वारा इसे सजीवन मिला है। इस स्थान पर इन दोनों बोलियों—दक्खिनी और हरियानी—के विषय में कुछ मोटी-मोटी बातें जानने का प्रयत्न करेंगे।

१ हरियानी और पुरानी दक्खिनी में कई स्वर साम्य पाये जाते हैं। हरियानी में 'ड़' और 'ढ़' के स्थान में 'ड' और 'ढ' का प्रयोग पाया जाता है। दक्खिनी की भी यह प्रवृत्ति है। यथा —'कुतब मुश्तरी' में छोड़>छोड, पढ़े>पढे, बड़ा>बडा, चढ़ना>चढना आदि प्रयोग आते हैं।

२ हरियानी भाषा की साधारण प्रवृत्ति के अनुसार 'अ' 'इ' 'उ', 'आ' 'ओ' 'ई' 'ऊ' में परिवर्तित हो जाते हैं। यथा — रखे>राखे, लहू>लाहू, हड्डी>हाड आदि। दक्खिनी भाषा में भी ये सब शब्द प्रायः इसी रूप में मिल जाते हैं। इसी प्रकार अन्य उदाहरण—लगा>लागा, मिट्टी>माटी, चलें>चालें आदि दक्खिनी साहित्य में भरे पड़े हैं।

३ क्रियाओं के मूल रूप (Infinitive) में अनुनासिक की प्रवृत्ति दोनों भाषाओं में पाई जाती है। यथा —चलना>चलना, खाना>खाना आदि।

४ स्टैंडर्ड खड़ी बोली में जहाँ शब्द के मध्य का दीर्घ व्यंजन ह्रस्व हो गया है और प्रतिकार में पूर्ववर्ती स्वर दीर्घ, वहाँ दक्खिनी में बहुधा व्यंजन दीर्घ ही पाया जाता है और पूर्ववर्ती स्वर ह्रस्व और हरियानी में इसके विपरीत स्वर भी दीर्घ हो जाता है और व्यंजन भी दीर्घ। यथा —

खड़ी बोली	दक्खिनी	हरियानी
हस्ता हाथी	हत्ती	हात्थी

---

१ डा० मसूद हसन—'तारीख जबान ए उर्दू' पृष्ठ २३२ प्रभृति।

प्राचीन उर्दू से सम्बन्ध बतलाते हुए भाषायी खोजक सिलसिले में प्रो० जूलियस ब्लाक ने अपने एक लेख "हिन्दी आर्यायी भाषाओं की कुछ समस्याएं" में हरियानी का महत्व प्रदर्शित किया है—(बुलेटिन स्कूल आफ ओरियन्टल स्टडीज़ पृष्ठ ११२८ ३०) उन्होंने कहा है कि पूर्वी पंजाब के जिलों की भाषा पानियों के जरिये दक्खिन तक पहुँची है और इसने समय के व्यतीत होने पर साहित्यिक भाषा का रूप ले लिया है। डा० जूर ने अपनी पुस्तक 'लिसानियात' (भाषा शास्त्र) में भी यही विचार व्यक्त किया है। उनका कहना है कि उर्दू पर बांगड़ या हरियानी का भी प्रभाव है। 'प्रो० शीरानी ने हरियानी जबान को उर्दू की पुरानी शक्ल कहा है। इनका तात्पर्य यह है कि उर्दू हरियानी को मुख्य आधार बनाकर विकसित हुई है।

स्वर्ण	सोना	सुन्ना	सौन्ना
पीका		पिक्का	पिका, पाक्का

वचन

१ दक्खिनी और हरियानी में बहुवचन बनाने की एक ही रीति है। दोनों में हिन्दी खड़ी बोली की भांति 'ओं' के स्थान में 'आं' लगाते हैं। यथा —

हिन्दी	हरियानी व दक्खिनी
टुकड़ों	टुकड़ां
किताबों	किताबां
ऊटों	ऊटाँ
गरीबों	गरीबां

(प्रेसियां, औरतां, खातिर आदि [1]।)

२ स्त्रीलिंग संज्ञाओं की अविकारी विभक्ति का बहुवचन साहित्यिक खड़ी बोली में 'ए', 'एं' जोड़कर बनाया जाता है, पर हरियानी और दक्खिनी में 'आं' ही जोड़कर रूप बहुधा बनाये जाते हैं यथा —किताबें>किताबां।

क्रिया

१ हिन्दी की क्रिया खाकर, जाकर, आकर, सोकर के स्थान पर दक्खिनी में खाय, जाय, आय, सोय मिलते हैं। हरियानी में इनके रूप खाकै, जाकै, आकै, सौके हैं।

२ सहायक क्रिया के रूप में हरियानी में 'सूं' 'सै' मिलते हैं परन्तु दक्खिनी में ये रूप नहीं मिलते। वहाँ 'हूं' और 'है' ही मिलते हैं।

३ साधारण भूतकाल बनाने के लिए हिन्दी की तरह 'आ' के स्थान पर 'या' लगाने से दोनों बोलियों में क्रिया बनती है। यथा —

धातु	हिन्दी	हरियानी, दक्खिनी
मारना	मारा	मार्‌या
चलना	चला	चल्या
कहना	कहा	कह्या
लगना	लगा	लग्या

हरियानी में इनके दूसरे रूप मारा, चला, कहा, लगा भी मिलते हैं जिन पर खड़ी बोली का प्रभाव प्रतीत होता है।

---

1 डा० बाबूराम सक्सेना—'दक्खिनी हिन्दी' पृष्ठ ४८

सर्वनाम

हरियानी और दक्खिनी में सर्वनामों के रूप प्राय एक जैसे हैं, यथा—

	हरियानी	दक्खिनी
उत्तम पुरुष बहुवचन—	हम, हमें	हम, हमें
मध्यम पुरुष बहुवचन—	तम, तम्हें	तम

अन्य सर्वनाम भी दोनों भाषाओं में एक से हैं।

परसर्ग

हरियानी और दक्खिनी दोनों भाषाओं में दीर्घ काल से 'ने' विभक्ति 'कर्ता' और 'कर्म' दोनों को बतलाती है। हिंदी में 'ने' केवल कर्ता के साथ आता है और वह भी सकर्मक क्रिया के साथ।

हरियानी — मन्नै साहब नै मार्‌या (मुझे साहब ने मारा)
(कर्ता, कर्म का एक ही प्रयोग) अथवा
(मैंने साहब को मारा)

दक्खिनी—कर्ता—'इस खातिर बुलैगा ने क्या करी।'[1]
कर्म—'आदमी बरा अच्छे तो शराब ने क्या करना।'[2]

अव्यय

परवाचक सर्वनाम और समुच्चयबोधक अव्यय 'और' में खड़ी बोली में, कोई भेद नहीं किया जाता पर दक्खिनी में परवाचक तो 'और' है तथा समुच्चयबोधक 'होर'। हरियानी में परवाचक 'और' एव समुच्चयबोधक 'अर' है। यथा, राम अर स्याम दोन्‍नू भाइ भाई सैं।

७ हरियानी और समीपवर्ती बोलियों के नमूने

गत पृष्ठों में हरियानी और समीपवर्ती बोलियों का साधारण-सा अध्ययन हमने किया है। अब इन बोलियों के नमूने दिखाकर इस अध्याय को समाप्त करते हैं जिससे पाठकों को भाषागत अन्तर समझने में सुविधा हो।

हम यहाँ हरियाना के प्रख्यात विद्वान् प० शम्भुदयाल जी दादरीवाले के साहित्य से कुछ अंश उद्धृत करेंगे। पंडित जी बहुभाषाविद् थे और उनकी 'रसतरंगानी' 'भाषा सप्तक' इस प्रदेश में बड़ी प्रसिद्ध है। विशेषता यह है

1 डा० मसूद हसन—'तारीख जबान ए उर्दू' पृष्ठ ५६ (सब रस किताब)
2 डा० मसूद हसन—'तारीख जबान ए उर्दू' पृष्ठ १६ (सब रस किताब)

कि एक ही भाव को लेकर भिन्न प्रदेशों की महिलाएँ अपनी अपनी नाली में कृष्ण के प्रति अपने हृदयोद्‌गारों को व्यक्त करती हैं। कृष्ण बालचापल्य वश यमुना में स्नान करती हुई महिलाओं के वस्त्र लेकर समीपस्थ कदम्ब पर चढ गए हैं। महिलाएं विवश अवस्था में प्रार्थना करती हैं —

१ ब्रज गोपिका—

तुम वस्तर दो ब्रजवासी, करो मत हांसी, श्याम थारी दासी। टेक।
रिसभरी भयी ब्रजबाल, कहा नन्दलाल बजावत बैन।[1]
पुजी आ जमुना के तीर, हर्‌यो मेरो चीर कपटकर सैने।
इक तू ही अनोखो छैल, भयो बद फैल लगा दुख दैने।
चल ठौर घरा दिन रैने, सखियन [illegible] खरा मत सैने।
हम जल में खरी बेचैने।
दई[2] मारे दुख दियो गाढो[3], चुराकर चीर कदम पै भाढो।
ह्वै गयो त्रासी[4] ह्वै गयो त्रासी, तुम वस्तर दो ब्रजवासी।

२ पजानन—

मुण्डे चक[5] कुरती कछु अगिया, लवले सानु[6] नगिया खडा हसदावे।
फड लेजो कस दे नाल[7] नन्ददागवाल[8] तू की दमदावे[10]।
सखिया नु सुहावदी न गल्ल,[11] हरे तेरा बल भी नसनसदावे।
मुण्डा हुणे[12] तों[13] दिन दमदावे, की अनल[14] विच फसदावे।
का नार्यां भोग रगरसदावे।
त्यादी[15] हुण गल्ला नहीं मानदी, मुण्डे तनु पजानण समझावदी।
छड दे बदमासी, छड दे बदमासी, तुम वस्तर दो ब्रजवासी। टेक।

३ मारवारण (राजस्थानी)—

म्हे[16] थाधीनता रै साथे,[17] स्याम थाक[18] आगे वीनती करस्या।
जो पड़ै[19] ही म्हा[20] कै ग्याल, लाल ना धुरै हाल दुखमरस्या।

---

१ चाबा। २ दुभाग। ३ कठिन। ४ भयानक। ५ उठाकर, चुराकर। ६ हमें। ७ पकडकर। ८ कम के पास। ९ नन्द का पुत्र। १० कहता है। ११ बात, हरकत। १२ अभी। १३ नु। १४ मौत। १५ तरी। १६ हम १७ साथ। १८ तुम्हारे। १९ पड़ता है। २० हमको।

हुआ कैस्या[1] नीर से न्यारी, थारी लाचारी भारी भरस्या।
ऊठै उसी[2] आप बिसरस्यों, जल बाहर पगना धरस्या।
डर बाइ[3] जी रै डरन्या।
काई भरोस्यो वाको, मानको[4] करवाटे पीव मैं म्हा क्को[5]।
याको काइ[6] आस्मी, याको काइ आस्मी तुम बस्तर गे ।टेक।

४ हरियाणी—

कुही[7] की मोहीं राम गाम तेरी दोही रे, दोही[8] रे।
हम लुक[9] छिप आइ म्हारा जलेप कहँ आए टोही रे।
यो मैं भालिर मैं होर, पड़ो बेपीर निरोधोही[10] रे।
बिरा या के तन्नै सोही रे, म्हारो कद को जलै लोहीरे।
नामान्नै निर्मोही र।
तौं भाइये म्हारै हेर,[11] रायडका, क्रिमीक प्यारु फेर,
देख तन्नै रहास्मी,[12] रेम तन्नै रहास्मी, तुम बस्तर दो ।टक।

५ अहीर वाटी—

तू ऐंदा[13] के बोल्ला सा, असो खोयो दोल्ला सा कह को?
बिरा मैं सू भरयं मास, जमा ग गाम जाम सा जह को।
स्या मेरो लूघडो[14] देदे फेर चाहे बेसक भेदे पूर को।
यो जी[15] तम मं दिल दहको, मेरे पडँ कानडै उँ न्हको।
नू नाल लिया कर बहको[16]।
आ क्यू मनाक हाक्का, छोड कै लाड म्हाक फाक्कामा।
काल की गास्मा,[18] काम की गास्मा, तुम बस्तर दो ।टेक।

६ पूरबन—

हँसे मन्द मन्द मुस्कात गाम मञ मन्द २७ क छैया[19]।
कहा लग[20] भरा उमरा मैं थाक पमरी[21] मे रही रे ग्या[22]।
मोरें उम्न कलजवा[23] पीर, धरत ना धीर नेक निरम्या।

---

१ हँसे। २ बड़ा हुड। ३ ननद। ४ मजब। ५ म्हारे। ६ क्या।
७ बहुत देर से। ८ दुहाई है। ९ लुक। १० निगुरा। ११ ओर मरर
१२ रही, मरूगा। १३ इस तरह। १४ खोग्या। १५ जीवन। १६ धड़का।
१७ उस भगवान का। १८ प्राम, लुकम। १९ लड़का। २० विशेष
स्वरराक्षा। २१ पमञा। २२ जिन्य, त्रिमर्दो मा मर गइ हो।
२३ कलेजा।

पहो सुनहो धैन घरैया, कहा थिरकत[1] ताता थैया।
तेरी रोय मरैगी मैया।
मैं ठाडो भरी कर जोरे, पहो रे सुन पाहि नृप[2] मोरे।
तोरे तोहि फासी तारे तोहि फासी, तुम बस्तर दो । टेक।

दिल्लीवाली—

हरदम हजूर रहते हैं दूर किम दम[3] जनाय के दम से।
दम कोई दमका महमान र फिर ये जान मिले या हमसे।
दमसाज[4] मन मत चढा, दिल आइना रहो इस दम से।
मुश्फक[5] मुश्ताक[6] कदम से गोया लौटी जान अदम[7] से।
दे सबको फवन[8] एक दम से।
दम पर दम शम्भु[9] रटे सरासर यम का सीना फटे।
कटे चौरासी कटे चौरासी तुम बस्तर दो ब्रजवासी । टेक।

आशा है इस तुलनात्मक अध्ययन से पाठकों को हरियानी बोली का विशेषताएं स्पष्ट प्रतीत हो गई होंगी। यह बोली अपने आप में समृद्ध एव व्यापक है।

ऊ हरियानी में साहित्य सृजन के अभाव के कारण

शौरसेनी अपभ्रंश की परिनिष्ठोत्तरा बोली हरियानी एक प्राचीन बोली है और दिल्ली के समीपवर्ती प्रदेश में एक सुदीर्घकाल से जनपदीय जनता के व्यवहार की भाषा रही है। इस बोली के प्रति इसके बोलने वालों का अगाध प्रेम है, परन्तु यह एक आश्चर्य की बात है कि इस बोली में कोई साहित्यिक कृति उपलब्ध नहीं है। इसके कई कारण हैं —

१ (क)—यह रोहतक, हिसार, करनाल, दिल्ली तथा जींद आदि जिलों की बोली है। यह प्रदेश दिल्ली राज्य के अन्तर्गत रहा है। मध्य युग में दिल्ली पर तोमरवंशीय तथा पीछे चौहानवंशीय राज होने से इस प्रदेश की बोली को कोई गौरव नहीं मिला। राजपूतों के शासनकाल में राजस्थानी बोली राजभाषा के पद को सुशोभित करती रही और उसी बोली में तत्कालीन वीरगाथा साहित्य की सृष्टि हुई।

---

१ नाचना। कस। ३ किसी समय को। ४ धोखा। ५ दोस्त, मित्र। ६ प्रेमी। ७ परलोक से। ८ सौन्दर्य, गति। ९ शम्भुदास जी, निर्माता।

(ख) इतिहास साक्ष्य से प्रमाणित है कि हरियाना के सैनिक दिल्ली की सेना में बहुत अधिक संख्या में रहते रहे हैं, परन्तु वे केवल सैनिक ही थे। अत उनकी मातृभाषा जिसका प्रयोग वे करते होंगे, छावनी-क्षेत्र तक सीमित रही। उसे राजाश्रय न मिला और वह उपेक्षित पड़ी रह गई।

(ग) दिल्ली के राजनैतिक परिवर्तनों का बड़ा गहरा प्रभाव इस इलाके पर पड़ा। फलस्वरूप इस इलाके की भाषा में कोई स्थायित्व न आ पाई और साहित्य-सृजन में बाधा पड़ी।

२ मुसलमानों ने जब लाहौर छोड़कर दिल्ली को राजधानी बनाया तो भाषा के इतिहास में एक नया अध्याय आरम्भ हुआ। दिल्ली के राजप्रासादों (शाही महलों) से बाहर 'उर्दू ए मुअल्ला' में एक अजीबोगरीब भाषा ने जन्म लिया और उसमें स्थानीय बोलियों के साथ विदेशी शब्दों का मिश्रण प्रारम्भ हुआ। इस मिश्रण में हरियानी का बड़ा प्रभाव था। कहीं-कहीं पूर्वी पंजाबी की छाप भी था किंतु नगण्य रूप में। हरियानी के प्राचीन अवशेष दक्खिनी के 'वली औरंगाबादी' की कविताओं में देखने को मिलते हैं। यह काल हरियानी के भाग्योदय का था। यदि इस समय यह भाषा दक्खिनी के रूप में मुसलमानों द्वारा बहुत देर तक अपनाई गई होती तो आज हमें हरियानी की बड़ी सुन्दर सुन्दर बानगियाँ मिल जातीं। परन्तु दिल्ली और लखनऊ के फारसी शब्दावलि के प्रति विशेष रुचि रखने वाले लेखकों ने उस दक्खिनी पर नश्तर लगाना प्रारम्भ किया और परिणाम जो होना था वही हुआ। हरियानी जो उर्दू की धाय के रूप में थी उसे गंवारू बोली कहकर बहिष्कृत कर दिया गया। इस प्रकार, हरियानी साहित्य के आसन से सदा के लिए पदच्युत हो गई।

३ धार्मिक आन्दोलन काल में ब्रजभाषा के द्वारा साहित्यिक प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेने के कारण हरियानी को फिर एक प्रबल आघात पहुँचा। इस प्रदेश में किसी धार्मिक परम्परा के अभाव में यहाँ की भाषा उपेक्षित रह गई। हरियाना प्रदेश के संतों ने अपनी वाणियों के लिए स्थानीय बोलियों का आश्रय न ले उसी साहित्यिक क्षेत्र में लब्ध-प्रतिष्ठ ब्रज और राजस्थानी को प्रश्रय दिया। गरीबदास सम्प्रदाय इस ओर एक ऐतिहासिक कार्य कर सकता था परन्तु उस संस्था ने भी इस बोली को नहीं सवारा। यों इन सभी संतों की वाणियों में हरियानी के उदाहरण तो यत्र-तत्र बिखरे मिलते हैं परन्तु उनसे इसके साहित्यिक महत्त्व का कुछ अनुमान नहीं होता।

४ यह भी विचारणीय है कि इस प्रदेश के किसी प्रभावशाली पंथ

प्रतापी नरेश का पता नहीं मिलता। इस प्रदेश में अधिकतर ग्रामीण किसानों की ही बस्तियाँ हैं जो खेती-बाड़ी के काम में व्यस्त रहते हैं और साधारण एवं संतोष का जीवन व्यतीत करते हैं। उनमें प्रतिभा का नवनवोन्मेष कहाँ? परिणाम स्वरूप किसी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति का प्रसाद न मिलने से हरियाना का साहित्य समृद्ध न हो सका। ब्रज को सूर और बिहारी का कला-वैभव प्राप्त था। अवधी को जायसी और तुलसी ने आश्रय दिया। विद्यापति को पाकर मैथिली धन्य हुई और बंगला को "कोमलकांत पदावलि प्रदाता" चंडीदास मिला। राजस्थानी को चन्द्र और नाल्ह के रूप में दो उपासक मिले। पंजाबी को बुल्लेशाह के बोलों पर गर्व है। परन्तु हरियानी को न तुलसी की प्रतिभा प्राप्त हुई और न बिहारी की वाग्विभूति, न विद्यापति का पिककण्ठ और न चंडी दास का मधुर-पद विन्यास। ऐसी दशा में हरियानी का समृद्ध साहित्यिक भाषा के रूप में न पनपना स्वाभाविक ही है। हरियाना में पं० शम्भुदयाल जी जैसे प्रतिभा-सम्पन्न कवि अवश्य हुए परन्तु उनमें युग प्रवर्तक नेता के महान् गुण न थे। उन्होंने अपनी प्रतिभा के प्रकाश के लिए लोकमान्य ब्रज भाषा को ही अर्घ्य दिया।[१] उनके 'रुक्मिणी मंगल' आदि ग्रंथ जो ब्रज की सम्पत्ति हैं, उत्तम ग्रंथों की कोटि में आते हैं। यही प्रतिभाशक्ति यदि हरियानी के सवारने में व्यय होती तो इस भाषा का कितना उपकार हो जाता?

परन्तु इन सबसे यह न समझ लेना चाहिए कि हरियानी में भाव प्रकाश की शक्ति नहीं रह गई है। इस बोली का लोक-साहित्य बड़ा समृद्ध है। विशेषकर अवदान (बैलेड्स) और किस्से जो यहाँ के जातीय गायकों के पास सुरक्षित हैं, सम्पन्न कोटि के हैं। उनसे इस बोली की अभिव्यंजनाशक्ति का यथार्थ ज्ञान हो जायेगा। वस्तुतः हरियाना के किस्सों (गाथाओं) पर पृथक ही अध्ययन की आवश्यकता है।

यहाँ तक तो बात हुई हरियानी में साहित्यिक कृतियों के अभाव की, परन्तु इस स्थान पर यह भी देख लेना चाहिए कि इस बोली में भाषा शास्त्र के विद्यार्थी के लिए बड़ी रोचक सामग्री भरी पड़ी है। कुछ पुराने नमूने भी हैं। इनमें ओरियण्टल कालेज, लाहौर, मैगज़ीन नवम्बर १९३१ और फरवरी १९३२ में प्रकाशित प्रो० शेरानी के लेख मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त हमारे

१ पं० शम्भुदयाल जी दादरी के रहनेवाले थे जो रियासत जींद की तहसील है और महाराजा जींद के राजकवि थे। इन्होंने तीन पुस्तकें ब्रज भाषा में 'रीति शैली' पर लिखी हैं। पुस्तकें हैं—१ रुक्मिणी मंगल, २ कृष्ण लीला, और ३ जोगन लीला।

सामने हरियानी के कई प्राचीन लेखकों के साहित्यिक नमूने भी हैं जिनमें शेख अब्दुला अन्सारी, शेख महबूब आलम, फ़ख्र निवासी, अकरम रौहतकी उपनाम 'कुतबी', शाह अब्दुल हकीम, शाह गुलाम जीलानी रौहतकी के लेख उल्लेखनीय हैं।[1] उपरोक्त लेखकों के अतिरिक्त भाषायी दृष्टिकोण से सबसे अधिक माननीय लेख आलमगीर काल के मशहूर फारसी विद्वान् मीर अब्दुलवासे हासवी की 'समदबारी' और 'फरहंग गरायबुल लुगात' हैं। किन्तु ये सब भाषा विषयक सामग्री से पूर्ण कुछ लेख मात्र ही हैं। इन्हें हम स्थायी साहित्यिक कृतियों में स्थान नहीं दे सकते।

---

1 डा० मसूदहसन "तारीख जबान व उर्दू" पृष्ठ २३५

२ व्याकरण की दृष्टि से

हरियानी बोली का घर और क्षेत्र विस्तार जानने के पीछे अब उसका स्थूल व्याकरण देख लेना शेष है। इन पंक्तियों में इसी की पूर्ति का प्रयत्न किया गया है।

उच्चारण

हरियानी बोली का समीपवर्ती भाषा बोलियों से शैली की दृष्टि से कोई विशेष अन्तर नहीं है परन्तु स्वर एवं उच्चारण की दृष्टि से यह इन पड़ोसी बोलियों से पर्याप्त मात्रा में भिन्न है। शब्द का आरम्भिक 'अकार' सदैव विलम्बित खिंचा हुआ हो जाता है अर्थात् उसका उच्चारण खुला, मन्द एवं रूखा-सा होता है। ((a 'is pronounced with broadness' coarseness and with a drawl) हरियाने का निवासी 'अच्छा' शब्द का 'आच्छा' ही नहीं बल्कि 'आऽऽच्छा' उच्चारण करता है। यह प्रवृत्ति मध्यम एवं अंतिम अकार में भी देखी जाती है। आनेवाले या व्यतीत दिन के लिए जो 'कल' शब्द है वह भी 'काल' ही नहीं 'काऽऽल' बोला जाता है। पंजाबी भाषा में सुनाई पड़नेवाला 'जट' यहां केवल जाट ही नहीं 'जाऽऽट' हो गया है। और देखिए, 'जमना' उत्पन्न होना 'जामना', 'चलना' (जाना) 'चालना', और 'नहीं' निषेधार्थक 'नाहीं' हो जाता है।

स्वराघात युक्त दीर्घ स्वर के बाद के व्यंजन का इसमें द्वित्व हो जाता है। तब दीर्घ स्वर प्रायः ह्रस्व हो जाता है। इस प्रकार द्वित्व व्यंजन के पूर्व के स्वर ई, ऊ, ए, ओ क्रम से ह्रस्व इ, उ, ऍ, ओ में परिणत हो जाते हैं। इसका अपवाद केवल 'आ' है। यथा—गाड्डी, ताप्पू, बुज्झा, सिक्खा (सीखा), बेट्टा, राट्टी।

अकार के अतिरिक्त दूसरे स्वर भी परिवर्तित होते हैं। यथा 'पीछे' हरियानी में 'पाच्छे' हो जाता है। 'सीधा' शब्द 'सूधा' और 'उठना' शब्द 'ऊठना' हो जाता है। पंजाबी 'टब्बर' (बालक बच्चे) हरियानी में 'टाबर' होता है।

हरियानी बोली में संस्कृत तथा प्राकृत के शब्दों का प्रयोग बहुत होता है। यह आश्चर्य होता है कि खेतिहर किसान ने कितनी श्रद्धा से अपने

पुराने शब्दों को पानी देकर हरा रखा है। भूमिहर के मुल में निवास करता हुआ बलद (बलिवर्द) तथा 'गेहुआ की रास ठाली के।' में रास (राशि) शब्द का ही फूहड अंश है।

क नाम प्रक्रिया

(अ) कारक विभक्ति

१ साहित्यिक हिन्दी की भांति कर्ताकारक 'ने' लगाने से और सम्बन्ध कारक 'का' लगाने से बनता है किन्तु सम्प्रदान कारक की विभक्ति भी 'ने' है, हिन्दी की भांति 'को' नहीं लगती। अपादान कारक हिन्दी 'से' के स्थान में ब्रज की तरह 'ते' 'तैं' या 'के धोरेते' के प्रयोग से बनता है। अधिकरण कारक का चिह्न भी ब्रज की तरह 'में' तथा 'प' है। 'पर' का प्रयोग नहीं होता। एक विचित्रता यह है कि कर्मकारक या तो कर्तृकारक की भाँति होता है अथवा सम्प्रदान कारक की भांति जिसमें 'ने' विभक्ति लगी होती है। अत ऐसे स्थानों पर जहां कर्म और करण दोनों कारकों में 'ने' विभक्ति का प्रयोग हुआ है वहां अर्थ प्रकाश में कठिनाई होती है क्योंकि क्रिया के कर्ता और कर्म का एक ही जैसा रूप होता है यथा—'मन्ने साहब ने मारा'। इस वाक्य से पता चलना कठिन है कि किसने किसको मारा अर्थात् साहब ने मुझे मारा या इसके विपरीत मैंने साहब को मारा। इस स्थान पर श्रोता भ्रम में पड जाता है।[1] यह कठिनाई एक प्रकार बच जाती है जहां सकर्मक क्रिया है वहां कर्म को कर्तृवत् और कर्ता को करण की भांति रखना होता है। यथा—'मैं साहिब न मारया' अथवा 'छोरा साहब ने पकडया'। उन स्थानों पर जहां क्रिया का अकर्मक प्रयोग है, वहां कर्म को सम्प्रदान रूप में और कर्ता को कर्तृकारक में रखें, यथा—'छोरे ने पोनास ले गई' आदि।

२ हरियानी में अपादान कारक को व्यक्त करने के लिए 'से' के स्थान में 'मेरेते' और 'मेरे धोरेते लिया' में कुछ अन्तर नहीं है। जहां अपादान का भाव करणकारक द्वारा व्यक्त किया जाये वहां 'धोरेते' का ही प्रयोग

१ इस स्थान पर एक घटना स्मरण हो आती है कि हरियाने में चालीसा काल पड़ा हुआ था और जालंधर डिवीजन में प्लेग की महामारी आई हुई थी। जनता घरों को छोड़ शिविरों में पड़ी थी। उस समय इस अकाल पीड़ित जनता को सहायनार्थ जालंधर में ले जाकर लगाया। परन्तु वहां भारतीय एवं अभारतीय अधिकारी वर्ग उनकी बात नहीं समझ पाते थे और यह उद्देश्य पूरा न हुआ जिसके लिए उन्हें भेजा गया था।

—'जिला रोहतक गजेटियर' भाषा विषयक भाग, सन् १९१०

२ व्याकरण की दृष्टि से

हरियानी बोली का घर और क्षेत्र विस्तार जानने के पीछे अब उसका स्थूल व्याकरण देख लेना शेष है। इन पंक्तियों में इसी की पूर्ति का प्रयत्न किया गया है।

उच्चारण

हरियानी बोली का समीपवर्ती भाषा बोलियों से शैली की दृष्टि से कोई विशेष अन्तर नहीं है परन्तु स्वर एवं उच्चारण की दृष्टि से यह इन पड़ोसी बोलियों से पर्याप्त मात्रा में भिन्न है। शब्द का आरम्भिक 'अकार' सदैव विलम्बित खिंचा हुआ हो जाता है अर्थात् उसका उच्चारण खुला, मंद एवं रूक्ष-सा होता है। ((a 'is pronounced with broadness' coarseness and with a drawl) हरियाने का निवासी 'अच्छा' शब्द का 'आच्छा' ही नहीं बल्कि 'आऽऽच्छा' उच्चारण करता है। यह प्रवृत्ति मध्यम एवं अंतिम अकार में भी देखी जाती है। आनेवाले या व्यतीत दिन के लिए जो 'कल' शब्द है वह भी 'काल' ही नहीं 'काऽऽल' बोला जाता है। पंजाबी भाषा में सुनाई पड़नेवाला 'जट' यहां केवल जाट ही नहीं 'जाऽऽट' हो गया है। और देखिए, 'जमना' उत्पन्न होना 'जामना', 'चलना' (जाना) 'चालना', और 'नहीं' निषेधार्थक 'नाहीं' हो जाता है।

स्वराघात युक्त दीर्घ स्वर के बाद के व्यंजन का इसमें द्वित्व हो जाता है। तब दीर्घ स्वर प्रायः ह्रस्व हो जाता है। इस प्रकार द्वित्व व्यंजन के पूर्व के स्वर ई, ऊ, ए, ओ क्रम से ह्रस्व इ, उ, ऍ, ओं में परिणत हो जाते हैं। इसका अपवाद केवल 'आ' है। यथा—गाड्डी, बाप्पू, बुभ्भा, मिश्र्या (सीत्ता), बेट्टा, राट्टी।

अकार के अतिरिक्त दूसरे स्वर भी परिवर्तित होते हैं। यथा 'पीछे' हरियानी में 'पाच्छै' हो जाता है। 'सीधा' शब्द 'सूधा' और 'उठना' शब्द 'ऊठना' हो जाता है। पंजाबी 'टब्बर' (बालक बच्चे) हरियानी में 'टाबर' होता है।

हरियानी बोली में संस्कृत तथा प्राकृत के शब्दों का प्रयोग बहुत होता है। यह आश्चर्य होता है कि खेतिहर किसान ने कितनी श्रद्धा से अपने

पुराने शब्दों को पानी देकर हरा रखा है। भूमिहर के मुख में निवास करता हुआ बलद (बलिवर्द) तथा 'गेहुआ की रास ठाली के ?' में राम (राशि) शब्द का ही फूहड़ अर्थ है।

क नाम प्रक्रिया

(अ) कारक विभक्ति

१ साहित्यिक हिन्दी की भांति कर्ताकारक 'ने' लगाने से और सम्बन्ध कारक 'का' लगाने से बनता है किन्तु सम्प्रदान कारक की विभक्ति भी 'ने' है, हिन्दी की भांति 'को' नहीं लगती। अपादान कारक हिन्दी 'से' के स्थान में ब्रज की तरह 'तै' 'तैं' या 'के धोरेतै' के प्रयोग से बनता है। अधिकरण कारक का चिह्न भी ब्रज की तरह 'में' तथा 'पै' है। 'पर' का प्रयोग नहीं होता। एक विचित्रता यह है कि कर्मकारक या तो कर्तृकारक की भाँति होता है अथवा सम्प्रदान कारक की भांति जिसमें 'ने' विभक्ति लगी होती है। अत' ऐसे स्थानों पर जहां कर्म और करण दोनों कारकों में 'ने' विभक्ति का प्रयोग हुआ है वहां अर्थ प्रकाश में कठिनाई होती है क्योंकि क्रिया के कर्ता और कर्म का एक ही जैसा रूप होता है यथा—'मन्ने साहब ने मारया'। इस वाक्य में पता चलना कठिन है कि किसने किसको मारा अर्थात् साहब ने मुझे मारा या इसके विपरीत मैंने साहब को मारा। इस स्थान पर श्रोता भ्रम में पड जाता है।[1] यह कठिनाई एक प्रकार बच जाती है जहां सकर्मक क्रिया है वहां कर्म को कर्तृवत् और कर्ता को करण की भांति रखना होता है। यथा—'मैं साहिब ने मारया' अथवा 'छोरा साहब ने पकडया'। उन स्थानों पर जहां क्रिया का अकर्मक प्रयोग है, वहां कर्म को सम्प्रदान रूप में और कर्ता को कर्तृकारक में रखें, यथा—'छोरे ने पोलीस ले गई' आदि।

२ हरियाना में अपादान कारक को व्यक्त करने के लिए 'से' के स्थान में 'मेरेतै' और 'मरे धोरेतै लिया' में कुछ अन्तर नहीं है। जहां अपादान का भाव करणकारक द्वारा व्यक्त किया जाये वहां 'धोरेतै' का ही प्रयोग

1 इस स्थान पर एक घटना स्मरण हो आती है कि हरियाने में दुर्भिक्ष काल पड़ा हुआ था और जालधर डिवीजन में प्लेग की महामारी फैली हुई थी। जनता घरों को छोड़ शिविरों में पड़ी थी। उस समय इस कष्ट-पीड़ित जनता को सहायतार्थ जालधर में ले जाकर बसाया। परन्तु ... भारतीय एवं अभारतीय अधिकारी गण उनकी बात नहीं समझ ... यह उद्देश्य पूरा न हुआ जिसके लिए उन्हें भेजा गया था।

—'ज़िला रोहतक गज़ेटियर' भाषा विषयक ...

नहीं होता। केवल 'मेरेते' का ही प्रयोग होता है यथा—'मेरे ते नाहीं हो सके' अथवा 'मेरे ते नाही दिया जा' आदि।

(३) (क)—'मारना' क्रिया के कर्म के साथ पुल्लिंग सम्बन्धवाचक विभक्ति लगाई जाती है। यथा—मनै इस छोरे के मार्या, मनै इस छोरी के मार्या, मनै इसके थप्पड़ मार्या आदि।

(ख) यह अवस्था तब भी दिखाई पड़ती है जब हिंदी सम्बन्ध सूचक विभक्ति 'उसके पास' के स्थान में पुल्लिंग सम्बन्धसूचक विभक्ति लगाई जाती है। यथा, इस प्रश्न के उत्तर में—"क्या तुमने मेरा बलद देखा है?" उत्तर होगा 'मन्नै इस पाली के देख्या' अर्थात् मैंने इसे ग्वाले के पास देखा।

(४) कर्मकारक का चिह्न जहाँ दिशा का भाव द्योतित हो, छिप जाता है यथा 'गाम गिया', 'रोहतक गिया', आदि।

(आ) संज्ञा के रूप या विकार

१ संज्ञा में विकार प्राय हिन्दी की भाँति होता है। विशेष अधोलिखित हैं—

(क) विकारी कारकों (Oblique Cases) पुल्लिंग अथवा स्त्रीलिंग संज्ञाओं के बहुवचन के रूप 'आं' लगाने से बनते हैं, अन्त में हिन्दी की भाँति 'ओं' नहीं लगता। यथा—

पुल्लिंग

छोरा (लड़का)

	एकवचन	बहुवचन
संबोधन—	ऐ छोरे	ऐ छोरो
विकारी कारक	छोरे	छोरां

स्त्रीलिंग

छोरी (लड़की)

	एकवचन	बहुवचन
संबोधन—	ऐ छोरी	ऐ छोर्या
विकारी कारक—	छोरी	छोर्यां

(ख) स्त्रीलिंग संज्ञाओं के कर्तृकारक में एकवचन और बहुवचन के रूप समान होते हैं, यथा—

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता कारक—	छोरी गई	छोरी गईं

आपके कितनी लड़कियाँ हैं ? उत्तर मिलेगा 'तीन छोरी सैं' । यहाँ 'छोरी' शब्द में विकार नहीं आया है ।

(ग) 'आ' लगाकर विकारी कारक बहुवचन बनाने की इस प्रक्रिया में एक अपवाद भी मिलता है । यथा—'घरां आ', 'घर जाओ' में एकवचन में भी यह विकार आया है ।

८. सर्वनाम के रूप

पुरुषवाचक सर्वनाम

सर्वनाम प्रक्रिया में हरियाना में हिन्दी से पर्याप्त अन्तर है । उत्तम पुरुष और मध्यम पुरुष के करण कारक और कर्म कारक एकवचन और बहुवचन में 'ने' विभक्ति का विकल्प से प्रयोग होता है । सम्भवत 'ने', 'में' और 'तैं' के अनुनासिक का ही अंश बन गया है, यथा —

उत्तम पुरुष

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता कारक	मैं	हम
कर्म कारक	मैं, मन्ने	हम, हमने
करण कारक	मैं, मन्ने	हमा, हमने
सम्प्रदान कारक	मन्ने	हमने
अपादान कारक	मेरे ते, मेरे धोरै ते मत्ते	म्हारे ते, म्हारे धोरे ते, हमते
सम्बन्ध कारक	मेरा	म्हारा

मध्यम पुरुष

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता कारक	तू, तु	तुम
सम्बोधन कारक	तू, तु	तुम
कर्म कारक	तू, तु, तन्ने	तुम, तुम्ने
करण कारक	तैं, तन्ने	तुमा, तुम्ने
सम्प्रदान कारक	तन्ने	तुम्ने
अपादान कारक	तेरे ते, तेरे धार ते, तुत्ते	थाम्ते, थारे धारे ते, तुमते
सम्बन्ध कारक	तेरा	त्यारा

हरियानी में 'तुम' के स्थान पर 'तम' और 'थम' दोनों बोले जाते हैं।

संकेतवाचक सर्वनाम

(योह) (यह), ओह (वह)

यहाँ पर हिन्दी से विशेषता यह है कि कर्ता कारक एकवचन में स्त्रीलिंग सर्वनाम का रूप अपना पृथक् अस्तित्व रखता है। यथा —

योह (यह)

		एकवचन	बहुवचन
कर्ता कारक		योह पुल्लिंग, याह स्त्रीलिंग	ये
कर्म कारक	क	योह	ये
	ख	हीने, ईन्ने	इनने
करण कारक		इसने, हीने	इनने
सम्प्रदान कारक		हीने	इनने
अपादान कारक		हीते, हीं धोरे ते	इनते, इन धोरे ते
सम्बन्ध कारक		इसका, हींका	इनका

ओह (वह)

		एकवचन	बहुवचन
कर्ता कारक		ओह पुल्लिंग, वाह स्त्रीलिंग	वे
कर्म कारक	क	ओह	वे
	ख	उसने	
करण कारक		उसने	उनने
सम्प्रदान कारक		उसने	उनने
अपादान कारक		उसते, उसते धोरे ते	उनते, उन धोरे ते
सम्बन्ध कारक		उसका	उनका

सम्बन्ध सूचक सर्वनाम

जो

कर्ता कारक	जो	जो

—

कर्म कारक	क जो	क जो
	ख जिसने, जीने	ख जिस, जिसने

शेष, यथा—संकेतवाची सर्वनाम।

प्रश्नवाचक सर्वनाम

कौन

एकवचन 'कौन' सदैव सम्बन्धवाचक सर्वनाम 'जो' के साथ आता है। विकारी कारकों में इसका रूप 'कौं' या 'किस' होता है।

के (क्या)

कर्ता कारक	के
कर्म कारक	के
सम्बन्ध कारक	क्या का

अनिश्चयवाचक सर्वनाम

कोइ

इसका कर्म कारक का रूप 'काई' या 'किस्से ने' होता है। विकारी कारक 'किस्से' के साथ विभक्तियाँ लगने से बनता है।

विशेष १ करण कारक में जब 'ने' विभक्ति के बाद में निषेधवाचक शब्द हो तो 'ने' विभक्ति सर्वनाम में एकीभूत हो जाता है। यथा—किस्सा ना कहा। (यह किसी ने नहीं कहा)।

२ हिन्दी 'किसी ना किसी' के लिए हरियानी में 'किस्से ते किस्सै' का प्रयोग होता है।

३ कर्तृकारक में ही इसका बहुवचन होता है और किसी कारक में नहीं।

कुछ

इसके प्रयोग में 'वास्ताना' 'कुछ नहीं' से अच्छा माना जाता है।

ग क्रिया-विशेष

हरियानी में क्रिया-विशेषण अपना विशेष स्थान रखते हैं। यथा—काल—(आनेवाला या गया हुआ दिन) इब्बे, धार, पाछे, इब (अब), जिब, (जब, तब), कद् (कब) कढे (कहाँ) जित, कद, कितोड, कोंध (किधर) अढे,

आड़े, इत (यहाँ), इव, ईवे (इधर), उव, ऊड़े (वहाँ), उत (उधर), न्यू (इस प्रकार, अत)।

घ क्रिया (कर्तृवाच्य)

भाव्यवाचक (The infinitive)

अविकृत भाव्यवाचक क्रिया में (The uninflected infinitive) हिन्दी की नाई 'ना' अंत में आता है। यथा —सच बोलना आछ्या सै।

विकृत भाव्यवाचक क्रिया में अंतिम अक्षर का लोप कर दिया जाता है और मधुरता लाने के लिए कभी-कभी अंतिम 'न' से पहिले ह्रस्व 'अ' का आगम कर लिया जाता है। यथा —पीवन के लाइक पाणी।

खान जोग, मरन आला, सोअन आला, ऐह जाअन आला।

भविष्यत्कृदन्त (The Future participle)

भविष्यत्कृदन्त बनाने के लिए विकृत भाव्यवाचक क्रिया में 'आला' जोड़ा जाता है। यथा — करना करन आला
मरना मरन आला

वर्तमान कृदन्त (The Present Participle)

वर्तमान कृदन्त के रूप में हिन्दी की तरह होते हैं, यथा —जाता, खाता आदि। आना क्रिया के रूपों में अपवाद है। इस क्रिया के रूप होते हैं—आम्ता, आम्ते आदि।

भूत कृदन्त (The Past Participle)

भूत कृदन्त बनाने के लिए धातु और अंतिम 'आ' के बीच 'न' के स्थान पर 'य' कर दिया जाता है। यथा —

मारना	मार्या
गाडना	गाड्या
करना	कया
सींमना	सींम्या

इस नियम में अपवाद भी है, यथा, होना—'हुआ' कहीं 'होया' भी देखने को मिलता है। यथा —'राजा के पुतर होया'।

देना	दिया
लेना	लिया
जाना	गिया

आज्ञार्थक क्रिया (The imperative)

आज्ञार्थक क्रिया का एकवचन हिन्दी की भाँति शुद्ध धातु का रूप होता है। यथा—मार, खा, जा आदि।

बहुवचन में भी हिन्दी जैसे रूप होते हैं। यथा—मारा अथवा मार्यो या मारिया।

सहायक क्रिया (The auxiliary verb)

वर्तमान

एकवचन	बहुवचन
मैं सू	हम सा
तु सै	तुम सो
आह सै	वे सैं

भूत

भूत सहायक क्रियाएँ हिन्दी जैसी होती हैं, केवल इतनी विशेषता है कि स्त्रीलिंग बहुवचन का रूप 'थी' होता है, न कि 'थीं'।

सामान्य वर्तमान काल

इसके रूप होते हैं—'मैं करू सू' या 'मैं करू' 'हम चला सा' अथवा 'हम चला'। ये हिन्दी के 'मैं जाता हूँ' अथवा 'मैं जाता' के ढंग के हैं।

निश्चित वर्तमान काल

एकवचन	बहुवचन
मैं कर रिहा सू	हमकर रिहे सा
तु कर रिहा सै	तुम कर रिहे सो
आह कर रिहा सै	वे कर रिहे सैं

विशेष—यदि इस काल में से सहायक क्रिया को हटा दें तो सामान्य वर्तमान का भाव हटकर पूर्ण वर्तमान का भाव आ जाता है, यथा—'ओ आ रिहा' का तात्पर्य—वह आ चुका है।'

भविष्यत् काल

यह काल 'गा' जोड़ने से बनता है जैसा कि हिन्दी में होता है। उत्तम पुरुष बहुवचन का रूप होता है, 'करागे', 'करेंगे' नहीं होगा।

अपूर्ण भूत

मैं करू था	हम करा थे
तुम करे या	तुम करो थे
ओह करे था	वे करें थे

सभाव्य भविष्यत्

यह काल भी हिन्दी की तरह बनाया जाता है।

क सामान्य भूत के प्रयोग द्वारा, यथा —
जे पछवा चल जाय तो समे की आस हो जाय।

ख भविष्यकाल के प्रयोग द्वारा, यथा —
जे तु काट लेगा तो मैं मारूगा।

इन रूपों के अतिरिक्त कुछ मुहावरेदार प्रयोग भी मिलते हैं जिनकी तालिका नीचे दी जाती है —

१ भूत कृदन्त का प्रयोग, यथा —मरे पाछे (हिन्दी—मरने के पीछे)
उसने गये ने कै साल हूए ?

२ लेना क्रिया अकमक धातु के साथ मिलकर अकर्मक क्रिया बन जाती है और इस प्रकार पूर्णता का अर्थ देती है, यथा —
क हो लिया (समाप्त हो गया)
ख आ लिया (आ चुका है)

३ प्रभावशाली बनाने के लिए मुख्य क्रिया के साथ 'रखना' जोड़ा जाता है। यथा —अर्जी दे रखना, बाड़ी बो रखना, मेज ररवना, खोल रखना।

४ आज्ञार्थ क्रियाओं के साथ दो नकारात्मक शब्द जोड़े जाते हैं। यथा —
मत ना चलियो।

५ 'रखना' क्रिया का भूतकालीन रूप एक विशेष मुहावरे के रूप में प्रयोग किया जाता है जिसका अर्थ होता है—समाप्त होना, रुकना, या छोड़ देना। यथा—देखन ते बैठरिहे सँ (देखना समाप्त हुआ)।
रूख होअनते बैठ रिहासे [होना (बढ़ना) रुक गया है]।
कहन ते बैठ रिहास् (कहना भी छोड़ा)।

कर्मवाच्य

कर्मवाच्य का बनाना हिन्दी की तरह होता है। परन्तु हिन्दी का 'मैं मारा जाता हू' हरियानी में 'मैं मारा जाऊ सू' हाता है।

कर्मवाच्य का प्रयोग बहुत ही कम होता है। ग्रामीण लोग इस प्रयोग के स्थान में कर्तृवाच्य प्रयोग करते हैं। अपवाद स्वरूप एक दो स्थानों पर इसका प्रयोग आता है। यथा—मैं मारा किया। ग्रामीण जन इस वाक्य को 'वृक्ष वायु द्वारा उखाड़ा गया, को कर्मवाच्य में नहीं प्रयोग करते बल्कि वे बोलेंगे कि 'वायु ने पेड़ को गिरा दिया' या वृक्ष वायु से गिर गया आदि।

यह हरियानी बोली का स्थूल व्याकरण है। हरियानी बोली समझने में कुछ कठिन है। यह पैले उच्चारण के साथ विलम्बित गति से बोली जाती है। प्रत्येक व्यक्ति इसका अभ्यास नहीं कर सकता।

तृतीय अध्याय

लोक-गीत

अ लघुगीत

पूर्वपीठिका

हरियाना प्रदेश में लोक-गीत साहित्य प्रचुर मात्रा में मिलता है। उसका प्रस्तार एवं विस्तार इतना अधिक है कि जीवन का कोई पक्ष, भाव तथा व्यापार ऐसा नहीं जो लोक-गीतों के चयन में न आता हो। प्रत्येक भाव को वहन करने की क्षमता इन लोक-गीतों में विद्यमान है। परिष्कृत मेधा की ऊहापोह भले हा इनमें न दीख पड़े, पर कोमल से कोमल भाव इन गीतों के अंग बने हुए हैं। संस्कृत के एक विवेचक ने जिस बात को—

न स शब्दो न तद्वाच्यं न स न्यायो न सा कला।

जायते यन्न काव्यांगमहो भारो महान् कवे॥—कहा है। वह हरियानी लोक-गीतों के ऊपर यथार्थरूप से घटित होती है।

लोक-गीतों की दुनिया की यह विशेषता है कि ये जीवन के साथ घुले-मिले हैं। शिशु नव अतिथि के रूप में आता है। उस समय से लेकर जीवन भर वह गीतों के संसार में खेलता है और अंत में गीतों में ही लिपट कर अपनी ऐहिक लीला समाप्त कर जाता है। गीतों की इस समष्टि का एक स्थान पर पूर्ण गवेषणायुक्त अध्ययन इस प्रकार की चेष्टा है जिस प्रकार एक गगरिया में सागर भरने का प्रयास। फिर भी हम हरियाने के लोक-गीत साहित्य का स्पष्ट अध्ययन पाठकों के सामने उपस्थित करते हैं।

जैसा कि हमने पीछे कहा है हरियाने के लोक-गीतों के विभाजन की कई शैलियां अपनाई जा सकती हैं। सर्वप्रथम इन गीतों को हम स्त्री समाजगत लोक-गीत एवं पुरुषसमाजगत लोक-गीत—नाम से दो रूपों में बाँट सकते हैं। इनमें स्त्री लोक-गीत प्रायः सभी मुक्तक होते हैं तथा पुरुषसमाज में प्रचलित लोक-गीत अधिकतर कथात्मक हैं जो लम्बे-लम्बे होते हैं। अतः हम इनका अध्ययन मुक्तक और कथात्मक रूप से भी कर सकते हैं। यह विभाजन गीतों के रूप की दृष्टि से है। हमने पीछे यह भी बताया है कि गीतों के विषय की दृष्टि से भी एक विभाजन किया जा सकता है। कुछ गीत ऐसे हैं जो संस्कारों के अवसर पर प्रचलित हैं। इनमें भी उद्देश्य के आधार पर कुछ तो अनुष्ठान के अंग होते हैं और शेष मनोरंजन, हर्षोल्लास एवं आनन्द की भावना से पूर्ण होते हैं। यथार्थ में, इन गीतों के बिना संस्कार पूरा नहीं होता। यों कहें तो और अच्छा होगा कि कोई भी संस्कार उस शोभा, उस स्फूर्ति एवं उस हृदय-हारिता से

वचित रह जायगा जो अवसरोपयोगी इन गीतों के द्वारा सस्कार को प्राप्त होती है।

हमारे यहाँ शास्त्रों में षोडश सस्कारों का प्रतिपादन है। हिन्दू शास्त्रोक्त ये सोलह सस्कार मानव के पूर्ण एव सही-सही विकास के लिए अत्यावश्यक हैं। पर आजकल इन सस्कारों में तीन सस्कार—जन्म, विवाह और मृत्यु—विशेष प्रचलित हैं। परिस्थितिवश कई सस्कार विलुप्त हो गये हैं और कई सस्कारों का महत्व घट गया है। लोकवार्ता की दृष्टि से उपरोक्त तीन सस्कारों के अतिरिक्त 'मुडन' सस्कार का कुछ महत्व अवशिष्ट है। कर्णवेध और जनेऊ (यज्ञोपवीत) आदि ऐसे सस्कार हैं जो शास्त्रोक्त विधि विधान के सहारे खड़े हैं। उपनयन सस्कार के समय गीतों का प्रचलन हरियाना प्रदेश में है परन्तु वे सभी गीत आर्यसमाजी ढग के हैं जिनमें सुधारवाद की ही प्रधानता है। उनमें लोकवार्ता के पावन तत्व प्राय विलुप्त हैं। उनमें गुरुकुल और ब्रह्मचर्य की साधारण-सी महिमा वर्णित होती है। वस्तुत, देखा जाये तो इन तीन प्रमुख सस्कारों में ही प्रकृति में क्रियाशीलता के दर्शन होते हैं, विकास और ह्रास के द्वारा। इनमें भी प्रथम दो सस्कार प्रकृति के औत्सुक्य को लेकर चले हैं। अत हमें जो गीत सम्पदा उपलब्ध हुई है वह प्रथम दो सस्कारों—जन्म और विवाह—पर गाये जाने वाले गीतों की ही अधिक है। अवसान अवसर के गीत भी मिले हैं परन्तु अल्प सख्या में और महत्व भी उनका नगण्य है।

उक्त गीतों के अतिरिक्त कुछ गीत वे हैं जिनमें सास्कारिक भावना नहीं है, अपितु वे ऋतु विशेष पर गाये जाते हैं। बहुत सी ऐसी बात हैं जो अपने समय पर फबती हैं और 'बिन अवसर नीकी पै फीकी लगत'। भला, मल्हार और कजली की जो बहार सावन के मनभावना मास में है वह जेठ के छाहौं चाहती छाह' के भीषण ग्रीष्मकाल में कहाँ? वृद्ध-वृद्धाओं तक को मस्त बनाने वाले फाल्गुन मास में जो ओजपूर्ण एव उन्मत्त गाने गाये जा सकते हैं वह अघन-पूस के ठिठराते शीतकाल में कहाँ सभव है? कार्तिक मास में गगा-यमुना स्नान के समय जो हरजस या परभाती गाई जाती है वे अन्य मासों में कहा शोभा देती हैं? चैत मास में स्त्रियों द्वारा देवी और देवताओं के दरबार में यात्रा और पूजा के रूप में जो फरियाद भरे गीत गाये जाते हैं, उनकी अपनी निराली छटा है। अत हम इस दूसरी श्रेणी में उन गीतों का स्थान देंगे जो ऋतु सम्बन्धी हैं। इन ऋतुपरक गीतों में व्रत, पर्व, त्यौहार एव देवी देवताओं के गीत आते हैं। भारतीय सस्कृति ही कुछ ऐसी है कि उसका रूप नाना व्रत पर्वों में निहित है। प्रत्येक ऋतु का पट विविध प्रकार

के सांस्कृतिक एवं धार्मिक कृत्यों से निर्मित हुआ है और इन्हीं विभिन्न ऋतुओं में भारतीय संस्कृति का स्फुरण होता है।

संस्कार एवं ऋतु सम्बन्धी गीतों के अतिरिक्त एक तीसरी श्रेणी उन गीतों की है जिनमें किसान की आत्मा की झंकार है और कृषि एवं धरती माता की दुहाई है। इन गीतों को हमने कृषि विषयक गीत नाम दिया है। एक बहुत बड़ा भाग जो बच गया है उसे अन्य नाम से अभिहित किया है।

मुक्तक गीतों के विभाजन की शैली को जानकर 'कथात्मक गीतों' की ओर भी ध्यान जाता है। इस विभाग में जैसा ऊपर कहा गया है पुरुष समाज के गीत हैं, जिन्हें पुरुष ने अपने रिक्त समय में मनोरंजन के लिए, विशृंखल इतिहास की कड़ियों को जोड़ने तथा पौराणिक महापुरुषों की स्मृति को सजग रखने के लिए गाया है। इनमें बड़े-बड़े कथागीत—अवदान, पवारे एवं साके आदि आते हैं।[1] कई गीत तो इतने बड़े-बड़े हैं कि जिन्हें प्रवीण गायक भी महीनों में गाकर समाप्त कर पाते हैं। 'निहालदे' ऐसा ही अवदान अथवा गाथात्मक गीत है। 'शालादे' भी पर्याप्त लम्बा गीत है। आल्हा की प्रसिद्धि तो अपने विस्तार के लिए समस्त उत्तर भारत में है। आल्हा विशेषतः पावस काल की अपनी वस्तु है। एक किंवदन्ती में उसके गाने के विषय में इस प्रकार कहा गया है, 'आल्हापवारा उस दिन गाओ, जिस दिन भारी हो बरसातो'। आल्हा की समस्त कथावस्तु एक विख्यात युद्ध पर आधारित है जिसमें माहबे के बनाफरियों का शौर्यपूर्ण वर्णन है।

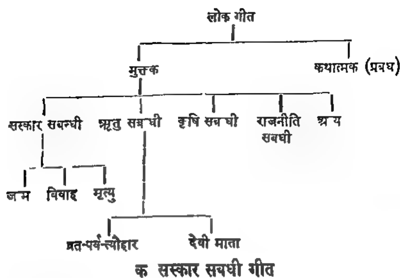
उपरोक्त विवरण को हम एक वृक्ष की सहायता से इस प्रकार समझ सकते हैं।

---

१ क साका किस्सा या गाथा नाम से भी विख्यात है। इनमें ऐतिहासिक वीरचरित्र का वर्णन होता है यथा राना रसालू आदि। विशेष प्रसिद्ध राजाओं की 'रासो' होती है।

ख अवदान—पौराणिकजनों से पूर्ण कथा होती है। यथा—गुग्गा, शालादे' निहालदे आदि।

ग पवारा—स्थानीय वीरों के किस्से जिनमें उनके शौर्य एवं विक्रम का वर्णन होता है। 'जगदेव' का पवारा, तथा हरफूल जाट जुलाणीवाला, आदि।



क संस्कार संबंधी गीत

जन्म के गीत

यों तो बच्चे के जन्म से पहिले भी कई संस्कार—गर्भाधान, पुंसवन एवं सीमन्तोन्नयन का शास्त्रों में वर्णन मिलता है पर वे आजकल प्रचलित नहीं हैं। लोक गीतों में गर्भावस्था के नौ महीनों का सांगोपांग वर्णन आता है जिनमें गर्भिणी की अवस्था, दोहद आदि की चर्चा होती है। समाज में उन्हीं स्त्रियों का मान होता है जो आशावती एवं गर्भवती हो सकने की सामर्थ्य रखती हैं। इस प्रक्रिया में उन्हें वर्णनातीत यन्त्रणा सहनी पड़ती है परन्तु माता बनने की प्रसन्नता सब कष्टों को भुला देती है। इसके विपरीत बन्ध्या स्त्रियों का वह आदर समाज में नहीं होता। उनका स्थान सामाजिक दृष्टि से कोई उच्च एवं शुभ नहीं माना जाता। उनके जीवन में एक उपेक्षा एवं नीरसता रहती है। इस प्रकार स्त्री जीवन की सफलता ही जननी बनने में व्यक्त हुई है। इस विवेचन में एक विचित्र बात यह दिखलाई पड़ती है कि कन्या का जन्म हर्ष एवं उल्लासदायक नहीं होता, अपितु कन्या की उत्पत्ति एक भार स्वरूप मानी जाती है। संस्कृत के कवि (पंचतंत्रकार) ने भी पुत्री-जन्म को एक संकट बतलाया है —

पुत्रीति जाता महती हि चिंता,
कस्मै प्रदेयेति महान् वितर्क
दत्वा सुखं प्राप्स्यति वानवेति,
कन्या पितृत्वं खलु नाम कष्टम्। मित्रभेद, कथा ९,
× × × श्लोक २२२

जननीमनोहरति जातवती परिवर्धते सह शुचा सुहृदाम्।
परसात्कृतापि कुरुते मलिन दुरतिक्रमा दुहितरो विपद ॥ श्लोक २९

हरियाना तथा उत्तरी भारत के सभी लोकगीतों में इस अवसर को शुभ नहीं माना जाता। कन्योत्पत्ति पर पिता परदेश चलने की सोचता है। माता का निरादर होता है, न खाने को दिया जाता है। और तो और एक शाक-सा छा जाता है और कोई आनुष्ठानिक कृत्य भी नहीं होता। जहाँ पुत्रोत्पत्ति पर प्रथम १०-१२ दिन आनन्द उत्साह के दिन होते हैं, गाना-बजाना और आनन्द बधावा होता है वहाँ पुत्री-जन्म पर एक ठेकरा फोड़ दिया जाता है। हरियाने का छोरी ने इसी बात को एक गीत में इसी प्रकार कहा —

म्हारे जनम में बाजै ठेकरे माई के मैं पाली।
बुड्ढा की रोवै बुढ़िया बी रोवै रोए हाळी पाळी।

परिणामस्वरूप लोकगीतों की दुनिया में जन्म के गीतों में पुत्र जन्म के ही गीत मिलते हैं।

गर्भिणी की नौ मास की अवस्था तथा दोहद आदि का वर्णन इस गीत में बड़ी खूबी से हुआ है —

जी पहला मास जै लागिया दूध दही मन जाय,
मेरे अगणा में अमला बोदिया।
दूजा मास जै लागिया मेरा निंबुआ में मन जाय,
मेरे अगणा में अमला बोदिया।
तीजा मास जै लागिया मेरा बेरों में मन जाय,
मेरे अगणा में अमला बोदिया।
चौथा मास जै लागिया मेरा लाडुआ में मन जाय,
मेरे अगणा में अमला बोदिया।
पचवा मास जै लागिया मेरा खीर पूड़ में मन जाय,
मेरे अगणा में अमला बोदिया।
छटा मास जै लागिया मेरा गूद गिरी मन जाय,
मेरे अगणा में अमला बोदिया।
सातवा मास जै लागिया मेरा पकिया में मन जाय,
मेरे अगणा में अमला बोदिया।
आठवा मास जै लागिया मेरा धाणों[१] में मन जाय,
मेरे अगणा में अमला बोदिया।

[१] धाणा—भुने हुये जौ।

नौवा मास जे लागिया मेरा होलड सबद सुखाय,
मेरे अगणा में अमला बोदिया।

गर्भिणी की इच्छा को हरियानी मे 'ओजणा' कहते हैं। इस दोहद (ओजणा) का एक दूसरा गीत है जिसमें गर्भिणी अपने पारिवारिक पुरुषों से—श्वसुरादि से—हरी हरी किशमिश मागती है, परन्तु वे बात को टाल जाते हैं —

सुसरै तै अरज करू थी म नै हरी हरी दाख[1] मगादयो,
थारी प्यारी कै ओजणा लाग्या।
थम लाडू पडा खाल्यो, हरी हरी दाख नहीं सैं
थारी प्यारी कै ओजणा लाग्या।

इसी प्रकार जेठ देवर भी क्रमश दूध मलाई, खीर खाने के लिए कहते हैं। अंत में पति के दरबार में 'विनय पत्रिका' पहुँचती है वहा उस पर अमल होता है—

कन्था तै अरज करू थी म नै हरी हरी दाख मगादयो
थारी प्यारी के ओजणा लाग्या।
सहरा में दाख घणी सैं, तमनै भाँवै उतनी खाल्यो,
थारी प्यारी ओजणा लाग्या।

ठीक है इस यन्त्रणा का कारण भी तो पतिदेव है उसी को सहानुभूति होनी चाहिए।

इस प्रकार चलते चलते एक दीर्घ प्रतीक्षा के पीछे वह दिन भी आ पहुँचता है जब आसन्न प्रसवा के गर्भ से पुत्ररत्न का जन्म होता है। ठीक उस समय जब बच्चा होता है 'बे' गाई जाती है। यह 'बेमाता' विधिमाता ही है जो प्रजनन की अधिष्ठात्री देवी है। इस अवसर के गीतों मे मातृकाओं से बच्चे की सुरक्षा के लिए प्रार्थना भरी होती है। हरियाना में 'बे' का जो गीत गाया जाता है उसकी प्रमुख पंक्तिया इस प्रकार हैं—

"बे दीख्या बै दीख्या हरियल रूखडी, तरपना सी म्हारी माता बे बस।
बे भरोसै मैं दास बलाल कानी।"

प्रसव काल में, प्रसूता के लिए विशेष प्रकार के खान-पान का प्रबंध किया जाता है। सास 'चरुआ' चढाती है। चरु मिट्टी का छोटा घडा अथवा कमोली होती है जिसमें बच्चा के लिए औषध डालकर पानी औटाया जाता है। यह कार्य सास करती है। सूतिकागृह, जिसे हरियाने में 'स्यावड' कहते हैं, के द्वार पर अग्नि प्रज्वलित रखी जाती है। घर की बूढ़ी स्त्री बराबर सूतिका-

[1] दाख—(द्राक्षा) मुनक्का या किशमिश।

गृह की रक्षा करती है जिससे कोई हानिकारक प्रभाव नवजात शिशु पर न होने पावे। इन दिनों स्यावड़ में बिल्ली का आना बड़ा निषिद्ध माना जाता है। विश्वास है कि बिल्ली बच्चे की आँखें निकाल लेती है। बिल्ली के रूप में शिशु का यमराज छू जाता है, यह विश्वास भी कहीं-कहीं प्रचलित है।

पुत्र उत्पन्न होने पर घर-बाहर सर्वत्र एक आनन्द की लहर दौड़ जाती है। गानों के निर्झर फूट पड़ते हैं। स्त्रियों के श्रुतिमधुर स्वर चाव भरे गीत गा-गाकर नवागतुक का स्वागत करते हैं। इस अवसर के गीतों के प्रमुख गान 'स्यावड़ के गीत' जिन्हें हरियाने में 'दाई', विहाइ अथवा हालड़' नाम से अभिहित किया जाता है, गाये जाते हैं। इन गीतों का भावपट पुत्रकामना, पीड़ा, विविध नेग, माता की अभिलाषा और आनन्दबधावा आदि से निर्मित होता है।

कामना —भारतीय ललना की पुत्रासक्ति की साथ उसकी श्रद्धासमन्वित कामनाओं का सुफल परिणाम है। इस अवसर पर रमणीय गीतों को सुना सुनाकर स्त्रियाँ बच्चा का मनरंजन किया करती हैं। कामना गीतों में कई गान हमें मिले हैं। एक गीत में 'सत्युग की रानी' माता शातला से पुत्रेच्छा की गई है —

तेरी माता तू सतजुग की कहिए रानी, रमने में बाग लुगाया माता सतजुगकी।
पाळा वा फिरक मेरो रे लोगो बल्ब भर बीबू झड़न लागे माता सतजुग की।
माता क राह में बांझ पुकारे माता देहरा पुत्तर घरआए माता सतजुग की।
पाछा तो फिर के मेरो रे लोगो पुत्तर खिलाती घरआए माता सतजुग की।
कितना प्रभुत्व है शातला माता, यह इस गीत से स्पष्ट है।

एक दूसरे गीत में, एक स्त्री सन्तान के दुःख से दुःखी है। जब उसकी सखियाँ पूछती हैं कि क्या उसे सास का दुःख है अथवा वह प्रोषितपतिका है। तो वह उत्तर देती है कि उसे कुछ भी दुःख नहीं है, केवल 'कुखी का कष्ट' है। भला सखियाँ उस नायिका के मन को नहीं जान पाती और प्रस्ताव करती हैं कि वह अपनी बहन के सात पुत्रों में से एक उधार ले ले। पर पुत्र उधारा कहाँ मिलता है? वह मनाहत होकर लुहार से छुरा घड़ाने और अपनी कोख को चीरने की बात सोचती है। वह धुम मराकर उसमें आग लगा देने के लिए समुद्यत है। किन्तु एक सुदीर्घ प्रतीक्षा के पीछे उसे पुत्रफल के दर्शन होते हैं—

क्या दुःख्या तन्ने सास का, क्या तेरे पिया परदेस।
ना दुःख्या मन्न सास का, कोए ना मेरे पिया परदेस।

इक दुखरी मनै कोख का, कोए या मेरे मारे मैं मान।
तेरे री राहण के सात पुत्तर, कोए एक उधारा जै लेय।
सुनै री चाँदी मिलैंसें, उधारे, कोई लाल उधारे ना देय।
गेहूं चावल मिलैंसें उधारे, कोए लाल उधारे ना देय।
मेरे पिछोकड़ै[1] खाती का, कोए ल्याऊ छुरीश्र घड़वाय।
चीरू श्र फोड़ या कोखनै, या कोए मेरे मारे सैं मान।
खाल कढ़ा के भुस भराऊँ, कोए भुस म दिलादयूगी श्राग।
बारह बरस में कोख बाहड़ी[2], जनमे स श्ररजन सरजन से लाल।
सास बुलाऊँ नणद बुलाऊँ, कोए नेग दिलादयू जी श्रान।

यहाँ वन्ध्यात्व के कलक से छूटने में स्त्री की पुत्र कामना झलक रही है। वन्ध्यात्व से मुक्ति, फिर यदि पुत्ररत्न के रूप में मिले तो कहना ही क्या है?

प्रसव पीडा —प्रथम प्रसव के श्रवसर पर गर्भिणी को विशाप पीड़ा व चिंता रहती है। पूर्वानुभव के श्रभाव में ऐसा होना स्वाभाविक ही है। एक गीत में इसी प्रकार की पीड़ाजन्य चिंता का स्पष्टीकरण हुश्रा है —

घमड घमड श्रावै पीड़ कदीक तै कोइ आवैगी।
जागैगा सास म्हारी वाहू तै म्हारे श्रावैगी॥

एक श्रन्य गीत में प्रसव की पीड़ा से व्यथित गर्भिणी श्रपने पति से पीड़ा में भाग लेने के लिए कह रही है। पतिदेव मौन साधे बैठे हैं। श्रत कोई उत्तर न प्राप्त कर वह घर छोड़ जाने की धमकी देती है। देवरानी श्रौर जिठानी उस हास परिहास के द्वारा उसे चिढ़ाती हैं। उस समय सास ननद सात्वना देती हैं श्रौर प्रिय देवर दाइ को बुलाकर कष्ट दूर कराता है। इस गीत में देवर को एक श्रच्छा पारितोषिक भी मिला है। नायिका कृतज्ञतास्वरूप श्रपनी कनिष्ठ भगनी से देवर का विवाह करायेगी —

कौदणी कौड्ढी चगड़ सुहाग दद उग से कमर म हो राजीड़ा[3],
इबना रहूगी तेरे घर में।
श्यार निगती मेरी चोटली ठोस्सा मारें जिठाणया सावै थी बगल म हो राजीड़ा,
इबना रहूगी तेरे घर म।
सास नणद मेरा घोर बधावें होस श्रावै से जगत में, हो राजीड़ा,
इबना रहूगी तरे घर में।

---

१ घर क पाछे। २ जीते सफल हुई। ३ राजा तात्पर्य पतिदेव से है।

छोटा देवर खरा रसीला दाई नै बुलावै इक छन में, हो राजीडा,
डूबना रहूगी तेरे घर में।
छोटा देवर नै वाहया विवाहादयू, दाई बुलाई इक छनम, हो राजीडा,
डूबना रहूगी तेरे घर में।

एक अन्य गीत है। आसन्न प्रसवा को दर्द है। पति ने उसके कष्ट म कोइ हाथ नहीं बटाया और न कोई सहानुभूति ही प्रदर्शित की है। प्रसव के उपरात पति को पजीरी[1] खाने का लालच होता है। वह साझे की पजीरिया खाने का प्रस्ताव करता है परतु पत्नी का उत्तर बड़ा तथ्यपूर्ण एव स्पष्ट है —

मेरे उठे थी पीड़ तन्ने आवैथी नींद ठोस्सा[2] खाले,
ना दयू ना दयू पजीरिया।
मेरे उठे था गुस्सा तेरा बाजै था हुक्का ठोस्सा खाले,
ना दयू ना दयू पजीरिया।

हरियानी पति की क्रूरता का मीठा परिहास है। ब्रजबाला का पति तो एक मीठी सहानुभूति प्रकट करता हुआ अपनी प्रेयसी का मन रख लेता है —

गोरी छपरु होइ उठाऊ, जने दस लाऊ, भैया दस लाऊ।
गोरी जे करतार गठरिया, सखिन बिचखोलो,
जाय रामु धुहावें, जाय कृष्ण सुहावें[3]।

बच्चा को उत्कट पीडा है। बच्चा हो नहीं रहा है। इस अवसर पर कृष्ण जन्म का बड़ा सुन्दर गीत है जिसमे जच्चा अपना भय प्रकट करता है। उसे आश्वासन दिलाया जाता है कि सूत का पलग देंगे, मखमल का गद्दा बिछायेंगे और प्यारा कृष्ण कह पुकारेंगे —

मैं पडीसू पीर की कैद खाल मेरी कैद छुड़ाओ जी महाराज।
मा मैं क्यकर जन्म जे दयू ?

टूटी खटिया फटी गुदड़िया, छोरटा[4] कह कै बोलो जी महाराज।
जो लाला यम जाम ज ल्यो, सूतों क पलका मखमल के गद्दा,
किरसन कह कै बोलें हर कह कै बोलें जी महाराज।
पापी सी रात अर खुले हैं किवाड़ पहरेदार सोये जी महाराज।

१ जच्चा का पौष्टिक भोजन। २ अगूठा जो खाने के रूप म दिया जाता है। ३ ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन—डा० सत्येन्द्र, पृष्ठ १३०।
४ छोरा लड़का

इसी प्रकार का प्रसग गूगा के जन्म के विषय में भी आता है। मा बाच्छल को बारह महीने का गर्भ हो गया है। बच्चा उत्पन्न नहीं होता। गूगा गर्भ से कहता है कि म ननसाल में कदापि जन्म नहा लूगा। मुझे कलक लगेगा। जेवर बाछल को अपने यहाँ मगा लेता है और गूगा का जन्म होता है।

प्रसवकाल के अवसर पर हरियाना में 'दाइ' नाम का एक प्रसिद्ध गीत गाया जाता है। गीत लम्बा है। स्त्री को पीड़ा है। वह अपने राजा को, जो चौपड़ खेल रहा है, बुलवाती है और दाई के पास भेजती है। वर्षा हो रही है। पतिदेव घोड़े पर चढ़ दाई बुलाने जाते हैं। दाइ शर्त रखती है —

राजा जी जे थारै जन्मैगा पूत मोहर हम पचास लेवा—हा जी हा।
जे थारै जनसेगी धीए, ओढा हम चुदड़िया—हा जी हा।

इसी बीच होलड जन्म ले चुका है। दाइ आती है और अपना नेग मांगती है —

राजाजी, कौल वचन करको जी याद, मोहर पचास हम लेवा—हां जी हा।

दाइ आग्रह करती है तो उसे कैसे धता बताइ गइ है —

दाइए ! पूत जनमा हमारी नार, तेरा दाइ क्यारे ल ।—हा जी हा।

पर दाइ भी उत्तर देने में चूक नहीं करती —

राजाजी ! दोण बरस की से बात दाइ के पैरा फेर पवो—हा जी हा।

दाइ को बुलाकर लाते समय राजाजी ने अपनी छतरी से वर्षा को रोका था। अब चलते समय दाइ उसी अनुग्रह की प्रार्थना करती है तो उत्तर मिलता है —

दाइए ! छिन मिन्न बरसै मेह, ओढो थारा[1] घाघरी—हा जी हा।

अंधेरी रात है, बादल छा रहे हैं। दाइ की इच्छा है कि उसके घर तक पहुँचा दिया जाये। परन्तु स्वार्थी पुरुष कितना निर्मम है —

राजाजी ! मह अंधेरी[2] हा रात
घनर दाइ कैसे चल—हा जी हा।
दाइए ! काली कुत्ती दोण गेलकरा—हां जी हा।

---

१ अपनी। २ अंधेरी घनी हुइ।

प्रसूता की कारुणिक स्थिति में भी सग की सहेलिया उपहास करने से नहीं चूकतीं। उपहास के बोल लीजिए—

जच्चा हाय मैय्या, हाय दैय्या करती फिरै,
हाडी सा पेट घुमाती फिरै।
दाई आवै होलड़ जमावै उसको भी नेग दिलाती फिरै,
जच्चा हाय मैय्या हाय दैय्या करती फिरे।

पुत्ररत्न की उत्पत्ति पर हरियाना का गृहपति बड़ा खर्च करता है। इन पक्तियों में इसी प्रवृत्ति की ओर सकेत किया गया है—

कहियो कहियो री होलड़ के दादा नै,
ज्योड़ा री जकोड़्या आन खर्च,
म्हारे बाप रहा बाल हुया नदलाल,
हुया नदलाल अर सूमी सूबेदार ॥'

पुत्र जन्म के पीछे कई प्रकार के आचार होते हैं और उनके साथ-साथ नेगों की झड़ी लग जाती है। यों तो नेग नाइ, ब्राह्मण और दाइ से लेकर देवरानी, जिठानी और सास तक सबको ही दिये जाते हैं पर नेग के गीतों में ननद को दिये जाने वाले नेगों का ही मुख्य वर्णन आया है। इससे पूर्व कि हम नेग के गीतों का विस्तृत वर्णन करें यह भी देख लेना अनुपयुक्त न होगा कि ये नेग किस उपलक्ष्य में किस-किसको दिये जाते हैं। गर्भिणी की सेवा-सुश्रूषा के लिए परिवार के सभी लोग उद्यत रहते हैं। यदि सास चरुवा चलाती है तो जिठानी पलग बिछाती है। देवरानी परदा लगा रही है तो बच्चा के स्तनों को धोकर शिशु के पाने योग्य करने के लिए ननद अपनी सेवाएँ अर्पित करती है। सबको कुछ न कुछ उपहारस्वरूप दिया जाता है। मगर प्यारी नणदल[1] के लिए तो पहिले से ही बदनी हुई होती है। वह खूब झगड़ झगड़कर नेग लेता है। जब 'बदना' की वस्तुओं के मिलने में देरी होता है तो वह हठ भी करती है। अधिकतर हरियानी नेग गीतों में ननद ने अभिलषित वस्तुएं प्राप्त तो कर ली हैं परन्तु वे उसे बड़ी मँहगी पड़ी हैं। ननद भावज का वह सौहार्द जो प्रसव से पूर्व था, अब नहीं रहा है। कहीं-कहीं तो ननद को अपमान भी सहना पड़ा है। एक गीत में परिवार के सभी लोगों के बच्चा के प्रति कर्त्तव्य एव उस उपलक्ष्य में मिलनेवाले नेगों का वर्णन हुआ है—

---

१ ननद

दाइ आवै होलड़ जनावै वानै भी नेग दिवावती फिरे।
जच्चा हाय मैय्या, हाय दैय्या करती फिरे।
सासड़ आवै सथिया धरावै वानै भी नेग दिवावती फिरे,
जच्चा हाय मैय्या, हाय दैय्या करती फिरे।
जिगनी आवै पलगा निछावै वानै भी नेग दिवावती फिरे,
जच्चा हाय मैय्या, हाय दैय्या करती फिरे।
दौरानी आवै दीवा बलावै वानै भी नेग दिवावती फिरे।
जच्चा हाय मैय्या, हाय दैय्या करती फिरे।
नणदल आवै दुद्धी धुलावै वानै भी नेग दिवावती फिरे,
जच्चा हाय मैय्या, हाय दैय्या करती फिरे।
पड़ौसन आवै गीत गवावै वानै भी नेग दिवावती फिरे।
जच्चा हाय मैय्या, हाय दैय्या करती फिरे।

किसी किसी स्थान पर इन कर्त्तव्यों में भिन्नता भी मिलती है। सास का प्रधान कर्त्तव्य 'चरुवा चढाना' है। एक दूसरे स्थान पर ननद का कर्त्तव्य साथिया लगाने का बतलाया गया है। दौरानी का परदा लगाने का नेग मिलता है।

भावज ने पुत्रेहा में ननद को कई वस्तुएं देने की प्रतिज्ञा की है। पान की थाली से लेकर 'डिब्बे का सीयल'[1], गले का कठला, कंगनवा[2], फूलगजरा फूलडडिया, गले की तिलड़ी और टिकावलहार तक देने की बदन[3] दी गयी है। एक स्थान पर यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि यदि पुत्र होगी तो ननद को कुछ नहीं मिलेगा। परन्तु भावज के सौभाग्य एवं ननद की शुभाकांक्षा से यथाकाल पुत्र जन्म लेता है। भावज के मन में भेद उत्पन्न हो गया है। वह चाहती है कि अच्छा हो ननद को पुत्र जन्म का पता ही न लगे। अतः वह सब की सुहेलियों एवं पास[4] पड़ोसिनों को 'निदाइ' गाने से रोकती है —

सुणोरी म्हारी पाड़पड़ोसन, सुणोरी म्हारी दौर जिठाणी।
नणदी तैं कोए मत कहियो थान म्हारे होलरिया हुए।

वह ढोलिया से भी कहती है कि वह ढोल न बजाये, पर बात छिपनेवाली

---

१ मूल्यवान् लहगा। २ आभूषण विशेष। ३ प्रतिज्ञा, ४ पड़ोस की स्त्रियों को।

करा है ! अन, ननद भावज को उसकी प्रतिज्ञा की स्मृति कराती है । भावन अपने वचनों से मुकर जाना चाहती है । वह अनुदार भी बन गयी है —

पड़ाया की छा नणदभावज दोनों बतलावै
हीरादन चून्डी जे ।
जे म्हारी नणदा धी जणागे, री बाइ न्यू आइ न्यू ए जा,
हीरादन चूनडी जे ।
जे म्हारी नणदो पूत जणागे, री बाई, ल्याते जिकावलदार,
हीरादन चून्डी न ।
ये नौ न मास मणदी, होलन सबन सुणाए,
हीरादन चून्डी जे ।

गायां में आच्छा वैडा नणद री,
जि मायवा, म्हारी बाइ नै द्यो,
गऊ री वैडा म्हारे घरां घणेरा,
जो वचन भरया सोइ द्यो ।
भोल्डी, ल्याते टिकावलहार, ल्याते टिकावलहार,
हीरादन चूनडी जे ।
भैंसा में आच्छी कोटी नणदरी,
जिमायवा, म्हारी बाई जीनें द्यो ।

इसी प्रकार नणद का एक बच्छेरा, 'टूमा में आच्छी हसला 'और' मा'रा में आच्छा रुपया' देने का प्रलोभन दिया जाता है । परन्तु ननद इन वस्तुओं को नहीं लेना चाहता । वह तो वचन भरी वस्तु ही लेगी । इस हठ के कारण ननद को एक अच्छा गाथा धमकी सहनी पड़ी है —

म्हारे री आगण कैरको लगे उसके रेसम डोर ।
नणद नणदड कम कै बापू , दीला बाइ जीरोवीर ।
हीरादन चूनडी न ।

बेचारी नणद आधा रात निशीथ वला में घर से भाग जाता है । 'लीलों का असवार' भाइ उसे सान्त्वना देकर वापस ले आता है —

'ले बेने जो बोल करया सोइ ल्यो ।

परन्तु भाभी का क्रोध अभी शान्त नहीं हुआ —

हार लिकावल लना नणदरा,
पर मन वादय म्हार बार जा—हीरादन चूनडा जे ।

इस समय बहन का आत्माभिमान सजग हो जाता है और वह सहोदर के स्नेहांचल को पकड़ कर कह उठती है —

> थारा री जावा अपणा बीर कै
> थारे ग्गरा[1] पै मारै लात री—हीराबद चूंदड़ी जे।

एक दूसरे गीत में भावज ने पुत्र होने पर ननद को गले की तिलड़ी देने के लिए वचन दिया है —

> बेब्बे पै हम होलद जनागी द्यागी गले की तिलड़ी,
> ओहो मन रजना।

ननद के कथनानुसार पुत्र उत्पन्न होता है। ननद भाभी से गले की तिलड़ी मांगती है, परन्तु भावज के निर्मम वचन हैं —

> बेब्बे तिलड़ी कहां से ल्याऊ,
> ले जाओ न भतीजा उठाय—ओहो मन रजना।

ग्लानि की कैसी अभिव्यंजना हुई है? परन्तु गीत की नणद बड़ी चतुर है। उसने वह उपहार स्वीकार कर लिया —

> या तो लेगी भतीना ए माय—ओ हो मन रजना।

भावज का मातृहृदय पराजित हो गया है —

> उमड़ उमड़ जिया आवै—ओहो मन रजना।
> बेब्बे होण ग्हारा हुलड़वा,
> ले जाओ गले की तिलड़ी—ओहो मन रजना।

परन्तु यह पराजय अधिक काल तक नहीं रही है। कुछ दिन पीछे ननद अपने घर जाती है। उसने अन्य आभूषणों के साथ वह तिलड़ी भी पहनी हुई है। चलते समय भावज से गले मिलना एक आवश्यकीय आचार है। भावज को अवसर की तलाश थी। उसने गले की तिलड़ी तोड़ ली है। उसने ननद से तिलड़ी ही नहीं ली इसके साथ कुछ ब्याज भी लिया है —

> भावज राणी नै मिलन सजोया, ओहो मन रजना।
> गले मिलती की तोड़ली तिलड़ी, ओहो मन रजना।
> पांव पड़ती की काढ़ली पाजेब, ओहो मन रजना।

भावज पाजेब लेकर प्रसन्न है। वह अपनी चतुराई भरी विजय की बात पतिदेव के सामने कहती है —

1 कूरहे पर।

रानीन्ग, ऐसो म्हारा चतराई, ओहो मन रजना।
मैं तैं दोन्नो काम कर ल्याइ, ओहो मन रजना।

परन्तु भावज की विजय क्षणिक रही है। उसके गर्व मृगशावक को एक तीक्ष्ण व्यंग्यबाण आहत कर देता है और यह नाटकीय दृश्य इस प्रकार समाप्त होता है —

गोरी देख्गी तेरी चतराई, ओहो मन रजना।
तेरे पीहर में ऐसी होती आई, ओहो मन रजना।

एक अन्य गान में ननद ने 'फूलडडिया' मांगा है। ननद को वांछित वस्तु तो मिल गयी परन्तु उसे एक तीव्र अवमानना भी सहनी पड़ी —

हठीली नणद हठमतभाड[1] या ल फूल डडिया,
फेरमत आइए मेरे द्वार।

एक दूसरे गीत में नणद ने हठ की है। भावज उसकी हठ से खिन्न होकर कह गई है —

जे मैं ऐसी जाण नणद हठीली होगी,
नणदल के बीरा सेती कदाए न सोती।
निच सोती निच करवट लेती,
नैणा तै नैणा लगण ना देती,
छाती तै छाती मिड़न ना देती।

दूसरी ओर हरियाना के नेग गीतों में जहाँ ननद की साध पूरी कर दी गयी है वहां वह भाई को शुभाशा देने में भी किसी से पीछे नहीं रही है —

रे तेरे दूधी[2] बधियो बेल
बीर ! मुनै[3] राजी कर दई रे।

नेग के इन गीतों के पीछे साधारण नेग के गीत भी कुछ मिलते हैं जिनका वर्ण्य-विषय इतना रोचक एवं भव्य नहीं है। एक गीत में गितनियां (गीतगान वालियों) के नेग की बात आई है —

मैं आई थी मीठियों की लालच,
फीकी दे भुआदई।
मैं आई थी गेहुंआ की खातर[4]।
बाजरा की दे भुआदई।

---

१ करना, जिद करना। २ दूध से। ३ मुझको। ४ लिए, कारण से।

मैं आई थी घणिया की मात्तर,
दो दो दे सुलादई।

गीतगानेवाली अगड़ पड़ोस की स्त्रियों का कैसा उपालम है? दो दो में
रूपणता का एक तीखा व्यग्य है।

इसी आनद में अभिलाषा का भी स्थान है —

धा घड़ी सुभ दिन आवैगी
मेरारी होलडिया अपणा दादा के घर जावैगा।
दादा के घर जावैगा र, दादी हसहस लाड लडावैगी।

इस गीत में माता की अभिलाषा का सजीव चित्रण हुआ है।

पुत्र जन्म के इस आनन्द उत्साहभरे समय में बधावे की बहार भी गाई
जाती है। एक बधावा गीत में कहा गया है कि आगन में बाजे बज रहे हैं,
भात की चर्चा है, 'पीला' ओढ़ा जा रहा है आदि आदि। इस आशय का
गीत निम्नाकित है। गीत कुछ बड़ा है। गीत की भाषा ठेठ हरियानी है।
समूचा वातावरण भी हरियाने का है —

म्हारे आगण बाजजा बाजियो जी म्हारा राज।
मैं तै नित उठ लिप्पा आगणों,
किण मोस्सर[1] लिप्पा पछली[2] पछीत,
बधावा म्हैं सुण्यो जी म्हारा राज।
म्हैं तो नित उठ राधा रीचड़ो जी,
किण मोस्सर ओ साण्या जिन्दवा का भात,
बधावा म्हैं सुण्यो जी म्हारा राज।
⊛ ⊛ ⊛
म्हैं तो नित उठ ओढ़ता चूँदड़ी जी,
किण मोस्सर ओ माण्या पीला का भेस,
बधावा म्हैं सुण्यो जी म्हारा राज।

'स्यावड' के गीतों का यह एक सूक्ष्म-सा वर्णन है। पुत्र जन्म के इन
गीतों में आनन्द और उल्लास का वर्णन होना स्वाभाविक ही है। इनके
अन्तर्गत जच्चा के हृदय को विभोर कर देनेवाले भाव लबालब भरे होते हैं।

आनद उत्साह का यह क्रम पाच दिन तक चलता रहता है। छठे दिन
छठी का सस्कार होता है। जन्म के सस्कारों में यह एक प्रमुख सस्कार है।

---

१ कारण से। २ पिछली दीवार।

उस दिन जच्चा और बच्चा स्नान करते हैं। घर लीपा-पोता जाता है और प्रातःकाल मीठा दलिया बांटा जाता है। देवर उसी दिन जच्चा को प्रसूतिका-गृह से बाहर निकालता है। इसके लिए उसे नेग मिलता है। इस संस्कार के पीछे और लोग भी प्रसूता और नवजात शिशु के पास आ जा सकते हैं। इससे पहले अपवित्रता मानी जाती है। यह विश्वास है कि छठी की रात को 'बमाता' नवजात शिशु का भाग्य लिखती है। उस रात को जच्चा और बच्चा की बड़ी सावधानी रखी जाती है। रात्रि भर जागरण होता है।

दसवें दिन नवागनक को उपयुक्त सामग्री भेंट की जाती है। खाती उसे गड़लना लाता है, कुम्हार स्नान के लिए नाद, तो लुहारिन पैंजनी भेंट करती है। डूम वंशावली गाता है और चमार तगड़ी प्रदान करता है। नाई दूब लाकर पुत्र और पिता के सिर पर रखता है। इससे यह कामना की जाती है कि उनका वंश दूबा घास की भांति बढ़े।

नवजात शिशु के स्वागतार्थ कैसा सुन्दर आचार व्यवहृत होता है? सभी उसे सम्मान, सहायता और सहानुभूति प्रदान करते हैं।

छठी के दिन प्रसूतिका-गृह के द्वार के दोनों कौलों पर सातिये मांडे (सातिये रखे) जाते हैं। यह कार्य सास करती है। कहीं-कहीं नणद भी करती है और उन्हें नेग मिलता है। दस देवताओं के गीतों के पीछे 'विहाद' गाए जाते हैं। छठी के अवसर पर गाया जाने वाला एक गीत निम्नांकित है —

> बड़ए बगड़तें[1] सती राणी नीसरी,[2] भर गोबर की हल[3]।
> गोबर छिड़का भोली राणी भोंपड़ी,[4] धरतो में हुवाए लिपाव।
> बड़ए बगड़तें सती राणी नीसरी, भर गोव्हा[5] की हेल।
> गीहूं छिड़का भोली राणी भोंपड़ी, धरती में शरयो ए बीज।
> बड़ए बगड़तें सती राणी नीसरी, भर लोटा जल नीर।
> गम्या तो छिटको भोंपड़ी, धरती हुयाए मिलाव।
>
> ❁ ❁ ❁
>
> इन रे गाना के वीरा गोरव[7] लम्बा-लम्बी ए खजूर।
> ने घड़ सती राणी सवलियो सुरग नेड़े घर दूर।
> मरा वीरा ए धोरा ढोलिया गहरा ढोल बजाय।
> बाहर सुणियो वीरा साम रै खाम्लड़ी[8] नणमाल।
> उतका तो उपावें वीरा चट्टा, उतका नागर पान।

१ मुरहना। २ निकली। ३ टोकरा। ४ भूमि पर गिर पड़ी। ५ गहूं। ६ छिड़कार ७ समीप। ८ प्रेमपूरक पाली गयी।

ओढ़ सुहागण रानी चूदड़ी, चाबो न नागर पान।
मीलै री हुयो सापूतड़ी, निह रै लिवाया म्हारा नाम।

इस गीत में सत्ती देवी की प्रशंसा की गयी है जो बच्चा और जच्चा को आशीर्वाद देती है। सत्ती देवी (छटी देवी) के स्वागतार्थ गोबर से स्थान लीपा जाता है। उस पर अनाज के दाने छिड़के जाते हैं और पानी से छिड़काव किया जाता है। फिर सत्ती रानी ऊँचे खजूर पर से उपासकों को शुभाशा देती है। यह ध्यान रखना चाहिए कि सत्ती रानी भाग्य निमातृ देवी है।

छठी के गीत कोई अलग नहीं हैं। सभी विहाइया, दाइया एवं होलर इसके विषय हैं। इस दिन के गीतों में एक गीत विशेष देखने योग्य है। इस गीत में बच्चे की तात्कालिक इच्छाओं की माग तथा उसकी पूर्ति की बात कही गयी है —

जनम लिया नन्दलाल लाला मेरा घूंगी मांगे जी राज।
एक घूंग दूजी चुंघी तीजी रै तेरा धाय लगादयां जी राज।
जनम लिया नन्दलाल लाला मेरा घूंगी मांगे जी राज।

गीत की अंतिम पंक्तियों में ननसाल के लोगों पर हास परिहास के छींटे भी आये हैं —

चल मामा के दरबार लाला तन्नै बनड़ी विह्वाया जी राज।
एक नानी दूजी मामी तीजी तन्नै मौसी विह्वाया जी राज॥

छठी के दिन जच्चा के पिता के यहा पुत्रोत्पत्ति की सूचना भेजी जाती है। सूचना के बोल इस प्रकार हैं —

जीयम सोयो क जागो म्हारै पीहर को तिल चावली जी।
जीयम कहो तो मेन्नें नाइ का पूत नाहीं तो परेवा[1] भेज द्यूं जी।

कुलवधू को उत्कंठा है। वह यथाशीघ्र पुत्रोत्पत्ति की सूचना दे देना चाहती है —

जीवा नाई का चलैगा ठुमरी[2] चाल,
परेवा चलैगा तावला जी।

परेवा भेजा जाता है और वह वृत्तांत कह सुनाता है। सर्वप्रथम परस (चौपाल) में बैठे हुए जच्चा के बाप से कहता है —

जो थारी धीहड़ के जायो सै लाडलपूत,
बधाइ लै घर आइयो।

---

१ कबूतर। २ मद्धी।

तदुपरान्त माता, भ्राता और भावज आदि को सूचित करता है। वे सब प्रसन्न होते हैं और सन्देशवाहक का सम्मान करते हैं —

जी थारे दूध पखालूँ परेवा पाव,
चौकी चावल थमन बैठगा जी।

भाई अपनी बहन के लिए छूछक तैयार करता है।

जन्म के गीतों में एक गीत खीचड़ी नाम का है। जच्चा पर जच्चा का एकाधिकार है। पति भी इस रत्न में साझा चाहता है। पत्नी ने शर्त रखी है। अमुक-अमुक वस्तुएँ यदि लाकर दी जायें तो होलड़ में साझा मिल सकता है। शर्त की वस्तुएँ हैं खिचड़ी (यह जच्चा की दुर्बल अनड़ियों के लिए लाभकारी वस्तु है), पीला (यह एक विशेष प्रकार का ओढ़ना की भाँति का वस्त्र है जिसे प्रथम प्रसव पर, विशेषकर पुत्र-जन्म पर हरियाने की स्त्रियाँ ओढ़ती हैं), गेर वृक्ष का गूंद, अजमेरा अजवायन, गडवे की खांड, सुरमा धन, खिचड़ी पकाने के लिए हांडी तथा खिचड़ी चखने के लिए छोटी ननद आदि। गीत के बोल इस प्रकार हैं —

हम धनी[1] नी खिचड़ी की साध,
खिचड़ी हाल मंगा दो जी।
खिचड़ा ए गोरी मायड़[2] आवन पै माग,
हम पै मेरा मीमरा जी।

हम धन जी पीला की साध,
पीला हाल मंगा दो जी।
पीला ए गोरा मायड़ आवन पै माग,
हम पै नौरंग चूंदड़ा जी।

इस विशद शर्तावलि के पीछे पत्नी कथंचित् पुत्र में साझा देने का भाव मानता है —

इतनी ऐ म्हारी साध पजोय[3] फिर होलड़ म्हैं सीरज्या[4]।

पर भले पति का उत्तर भी बड़ा मार्मिक है —

मूंजी री धण[5] समझगवार,
होलड़ सारा म्हारा सीर का।

---

१ स्वामी, पति। २ माता। ३ पूर्ण करना। ४ साझा। ५ पत्नी।

शायद पत्नी को पुत्रोत्पत्ति का रहस्य समझ आ गया है और वह चुप हो गयी है। यह गीत जच्चा के साथ उपहास के गीतों की शैली पर है। उनमें भी इसे स्थान दिया जा सकता है।

जन्म के इन आचारों के पीछे १०वें दिन या जैसी प्रथा हो आगे पीछे 'स्यावड़' निकाली जाती है। पुरोहित यज्ञ आदि कराता है। नामकरण भी इसी दिन किया जाता है। जच्चा के कंठी बांधी जाती है। 'दशोटन' होता है जिसमें विशेषकर प्रथम पुत्र की उत्पत्ति पर कौटुम्बिक भाइयों को भोज दिया जाता है। शुभ मुहूर्त पर दसवें दिन अथवा किसी अन्य दिन जलवा[1] पूजन अथवा 'कुआ धोकण'[2] जिसे कुआ पूजना कहते हैं, होता है। इस अवसर पर पीला ओढ़ना ओढ़ा जाता है जो पुत्रवती स्त्रियों के लिए एक गौरव की वस्तु है। यह पीला जच्चा की माता के यहाँ से 'छूछक' के रूप में आता है। छूछक में जो भेंट दी जाती है उसमें वस्त्र, आभूषण, मिठाई और कुछ धन होता है। 'कुआ पूजन' के अवसर पर जो गीत गाया जाता है वह गीत पीला के नाम से विख्यात है। गीत कुछ बड़ा है —

पीला तो ओढ़ म्हारी जच्चा सरवर चाली जी,
सारा सहर सराही पति प्यारा जी,
पीला रंगा दयो जी।
पीला तो ओढ़ म्हारी जच्चा मुड्‌ढे बैठी,
सास नणद न मुख मोड़या पति प्यारा जी,
पीला रंगा दयो जी।
के पीला तेरी माय रंगाया
के नणसाला तैं आया, पति प्यारा जी,
पीला रंगा दयो जी।
सासू का जाया भोली[3] बाई जी का बीरा,
उन म्हारी माथ पनोई, पति प्यारा जी,
पीला रंगा दयो जी।
आर्यां ना देखें जच्चा मुसदै ना बोल्लै जी,
कन रै निरासी नजर लगाई, पति प्यारा जी,
पीला रंगा दयो जी।
दिल्ली सहर तैं साहरा बैद बुलादयो जी,
जच्चा की नबज दिखादयोजी, पति प्यारा जी,
पीला रंगा दयो जी।

---

१ जल का स्थान, कुआ। २ पूजन। ३ बहन, ननद।

झाड़े तो झाड़े बेदा रोक रुपैया जी,
मुख तै बोल्ली मोहर पचीसी जी, पति प्यारा जी,
पीला रगा दयो जी।

अपणा चदण का साहवा घुड़ला बकस्यो जी,
जच्चा के जीव की बधाई, पति प्यारा जी,
पीला रगा दयो जी।

तू रे बेदका बेटा बहुत ठगोरिया[1] जी,
भोले हाकिम[2] नै ठग लिया पति प्यारा जी,
पीला रगा दयो जी।

यहा ग्रामीण नायिका दृष्टिदोष (नजर) से हत हुई है। दूर-दूर से वैद्य बुलाये गये हैं। दिल्ली शहर के वैद्य ने अपना महनताना बड़ा कराड़ा लिया है। एक दूसरे गीत में नायिका ने चूँदड़ी ओढी है। उसे नजर लग गई है। देहली से फिर वैद्य बुलाया गया है। इस वैद्य ने अपना पारिश्रमिक विलक्षण ही मागा है। वह न पाच रुपया चाहता है, न पच्चीस। वह चाहता है नायिका का 'यौवन'। उसी यौवन को शुल्क (फीस) मे लेने का आग्रह वह करता है —

पाँच दे दूँगी पचीस दे दूँगी वैद का झाड़ो मेरी नजरिया।
पाँच नहीं लेता पचीस नहा लेता
हे गोरड़ी[3] ! मैं तो लूगा 'जोबनिया।'

नायिका अपना बचाव करती हुए एक युक्ति से काम लेती है —

सास दे दूँगी ननद दे दूँगी,
हा वैद का झाड़ो मेरी नजरिया।
सास नहीं लता ननद नहीं लेता,
हे गोरड़ी ! मैं तो लूगा 'जोबनिया।'

नायिका का यौवन अपूर्व है।

जन्म के अनुष्ठानों एव तत्सबधी गीतों का यह एक सक्षिप्त-सा अध्ययन दिया गया है। ये आचार एव अनुष्ठान सामान्य परिस्थिति में उत्पन्न होने वाले पुत्र के जन्म से सबधित हैं। जब बच्चा 'मूल' नक्षत्र में जन्म लेता है तो जन्म के आचारों एव अनुष्ठानों में कुछ अंतर आ जाता है। मूल शाति की

---

[1] छलिया, ठग। [2] पति, स्वामी। [3] सुन्दरी के लिए प्यारभरा सम्बोधन।

जाती है। मूल का शांति के लिए विभिन्न आचारों का आश्रय लिया जाता है। उनका संक्षिप्त विवरण यहां दिया जाता है।

मूल में उत्पन्न पुत्र का मुख पिता तब तक नहीं देखता जब तक कि मूल शांति नहीं हो जाती। इसकी शांति के लिए पिता सत्ताईस पेड़ों की लकड़ी एकत्र करता है, सत्ताईस कुओं का पानी लाता है और सत्ताइसवें दिन हलकी हलस पर बैठकर उस पानी से स्नान करता है। फिर तेल में बच्चे की परछाई देखकर उसके मुख को देखता है। पीछे एक टाटी से जो फूस की गोलकुण्डलाकार बनाली जाती है, बच्चे को निकाला जाता है। पिता जैघड़ (जलघट) में मूसल मारकर भागता है जो सामने आ जाता है मूल उसी पर चढ़ जाते हैं और पहले के शांत हो जाते हैं।

यह विश्वास है यदि मूल शांत नहीं कराये जाते तो बच्चा बहुत ही क्रोधी होता है और उससे अनिष्ट की आशंका रहती है।

विवाह के गीत

विवाह के गीतों का अपना अलग महत्व है। विवाह-संस्कार पर गाये जाने वाले गीतों का क्षेत्र बड़ा विस्तृत है। इसमें एक परिवार नहीं अपितु कई परिवारों का आनंद सम्मिलित होता है। इस संस्कार में अनेक आचार शास्त्रीय एवं लौकिक दोनों प्रकार के सम्पन्न होते हैं। अतः इस अवसर पर अनेक प्रकार के गीतों का प्रचलन पाया जाता है।

विवाह-संस्कार जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। यह इतना व्यापक है कि सभ्य-असभ्य सभी जातियों में समान रीति से मनाया जाता है। इस उत्सव पर गीत गाने की प्रथा प्रायः संसार के सभी देशों में पाई जाती है। विवाह की धूमधाम महीनों पहले से प्रारंभ हो जाती है। इसका विस्तार देखें तो वर के रोकने से लेकर वधू के सुसराल से पीहर लौट जाने तक होता है। पूरा विवरण इस प्रकार है —

विवाह संस्कार का आरंभ वर को रोकने से होता है। इस प्रथा के अनुसार वर को और उसके पिता को भेंट दी जाती है। फिर टीका भेजा जाता है जिसमें अंगूठा और कुछ मिठाई वस्त्र आदि होते हैं। इसके पीछे विवाह से एक-दो मास पूर्व पीली चिट्ठी जाती है जिसमें विवाह की तिथि शोध कराकर वर के यहाँ भेज दी जाती है। विवाह से ७, ९, ११ या १५ दिन पूर्व लग्नपत्रिका भेजी जाती है। लग्न चढ़ जाने के पीछे विवाह के कार्य गंभीरता से आरंभ हो जाते हैं। दोनों पक्ष, वर पक्ष व कन्या पक्ष, में विवाह

से पूर्व के विभिन्न कृत्यइ लग्नतवान, उबटण आदि होने लगते हैं। लग्न पत्रिका में ही वान, छेड़ तथा फेरों आदि का विवरण दिया होता है। लग्न के पीछे किसी दिन वर और कन्या की माता अपने भाई को विवाह का निमन्त्रण देने जाता है जिसे भात न्यातना (भ्रातृ निमन्त्रण) कहते हैं। फिर विवाह दिन तक इसी प्रकार आनन्द एवं उत्साह मनाया जाता है। बरात (वरयात्रा) जाने से पहिले वर पक्ष में ज्यौनार होती है। भोज दिया जाता है। उसी दिन माण्डारोपण (मढा गाडा) जाता है और भात लिया जाता है। यह एक प्रथा है कि लग्न आने के बाद से लेकर जब तक भात नहीं दे दिया जाता, भातइ अपनी बहन के यहाँ नहीं आता। वह भात देकर ही घर जाता है और भोजन करता है। यथासमय, बरात चलती है जिसे निकासी कहते हैं। इस समय कई आचार किये जाते हैं। वर मौड़ बाधकर घोड़े पर चढकर देवी देवताओं की पूजा के लिए चलता है। इसे घुड़चढी कहते हैं। इस समय वह समस्त ग्राम की परिक्रमा करता है। घुड़चढी पर बहन चावल बखेरती है। मा दुदधा पिलाती है। इन कृत्यों से माता और भगिनी का प्रेम प्रदर्शित किया जाता है। इस समय हरियाना में एक गीत गाया जाता है जो बड़ा ही मार्मिक है। इसी दिन अर्थात् विवाह वाले दिन कन्या-पक्ष में चाक-पूजन होता है। बरात निश्चित समय पर कन्या के यहाँ पहुँचती है और जानलवासे (जनवासे) में ठहराइ जाती है। यहाँ पर वर एवं बरात का स्वागत होता है। कन्या में दुकाव (बारौठी) सत्कार होता है। वर घोड़ी पर चढकर कन्या के गृहद्वार पर पहुँचता है। यहा पर साली आरता करती है। वर अपनी छड़ी से द्वार पर लगी ३, ५, या ७ चिड़िया को छुवाता है जिसे तारण[1] चटकाया कहते हैं। यह एक युद्धस्थल का प्रतीक है। ऐसा विश्वास है कि एक पिता ने अपनी छोटी-सी कन्या को बात-बात में चिड़ा से ब्याहने की बात कह दी। कन्या बड़ी हुई। कन्या ने पिता को पुरानी बात स्मरण कराइ और आग्रह किया कि वह उसी से विवाह करायेगी। चिड़े भी बरात लेकर आ पहुँचे। निर्णय हुआ कि जो शक्तिशाली हो वही कन्या ले जाये। अत वर आजतक इन चिड़ियों से लड़ता दिखाया गया है। यह प्रथा हरियाना प्रदेश में प्राय सभी जातियों में प्रचलित है।

लग्न जाने के पीछे से बरात पहुचने तक कन्या पक्ष में भी तेलवान आदि नियमानुसार होते हैं।

१ तोरण का अर्थ है 'द्वार'। पर इस संस्कार के लिए तोरण से अभिप्राय लिया जाता है—द्वार पर लगी एक काठ की चिड़ी जिस पर ३, ५ या ७ काठ की चिड़ियाँ लगा होती हैं। इनको वेग से रख दिया जाता है।

ढुकाव के पीछे प्रधान संस्कार 'फेरों' की बारी आती है। यह संस्कार पौरोहित्य संस्कार है और पुरोहित ही शास्त्रोक्त विधि से इसे सम्पादित कराता है। परन्तु लौकिक संस्कार भी होते चलते हैं। महिलाएँ अवसरोचित गीत गा-गाकर उस संस्कार प्रक्रिया को अधिक रोचक, मार्मिक एवं कारुणिक बना देती हैं। संभवतः जब से महिलाओं का वेद पठन-पाठन छूट गया था तभी से उसकी (छन्दस की) पूर्ति उन्होंने अपने सुरीले गीतों से की। परन्तु गीतों की प्रथा तो और भी पुरानी प्रतीत होती है। निस्सन्देह, यह उतनी ही पुरानी है जितनी विवाह संस्था। ठीक भी है, भाव तिरेक में हृदय जब खिलता है वह गीतों की भाषा का रूप ले लेता है। फेरों के पीछे वर को 'देवघर' में ले जाते हैं। वहाँ देवताओं का पूजन कराया जाता है। वर को भेंट मिलती है। दूसरे दिन ही मढार का दिन होता है। उस दिन कोई विशेष आचार नहीं होते। तीसरे दिन अथवा दूसरे दिन ही जैसी प्रथा हो, बरात कन्या को साथ ले वापिस जाती है। उस दिन भी कई आचार होते हैं। वर को घर बुलाकर टीका किया जाता है। बंद खुलाया जाता है। वह मट्टी में पैर मारकर एक ईंट गिरा देता है। इसके पीछे वह मट्टी काम में नहीं लाई जाती।

बरात जब कन्या को साथ लेकर वर के यहाँ पहुँचती है तो वधू का स्वागत किया जाता है। बन्नी से घर के दस देवता पुजवाए जाते हैं। अगले दिन गठजोड़े से वर बन्नी दोनों फिर ग्राम देवताओं को पूजते हैं और छरी खेलते हैं। इन्हीं दिनों 'कागण जूआ' खेला जाता है। तीन दिन बन्नी अपनी ससुराल में रहती है। इसके पीछे बन्नी वर के साथ अपनी माता के यहाँ लौटता है। एक दिन के पश्चात् दोनों वापिस चले जाते हैं। इसे गौना कहते हैं।

इस समस्त आचार को लोकवार्ता तत्वों के विचार से इस प्रकार दिया जा सकता है —

मगाई (टीका) —१ चौक पूरा जाता है। एक कलसा पानी भर के रखा जाता है। वह उस चौक पर सादा रखता है जिसे नाइन लेती है।

२ टीका में जो सामग्री मिलती है वर उसे अपनी मां की गोद में देता है।

३ गीत गाया जाता है —

सुइया सार की तागा पाट[1] का पोया,
पोता टीकिया[2] दास्य उल्लुराम का कहिए।
सुइयां सार की तागा पाट का पोया,

---

१ रेशम। २ टीकिया, जिसका टीका चढ़ाया जा रहा है। विशेषण है पोते का।

इस गीत को बनाकर गाने के लिए स्त्रियाँ दादा के स्थान पर काका, भाऊ, भाइ शब्द लगाकर कई-कई बार गाती हैं।

लगन

लग्न के आचार एव अनुष्ठान दो रूपों मे मिलते हैं—कन्या पक्ष के तथा वर-पक्ष के। लग्न कन्या के पिता द्वारा भेजी जाती है, अत कन्या-पक्ष के आचार मुख्य होते हैं।

कन्या-पक्ष—१ कन्या का सिर धुलाया जाता है। आभूषण प्राय सब उतार लिए जाते हैं। केश खुले रखे जाते हैं। विदा समय ही 'बेणी सहार' होता है।

२ लग्न-पत्रिका जिसे पडित या पुरोहित लिखता है, उसमें २ सुपारी, हरी दूब, ५ या ७ हल्दी की गाठ और चावल होते हैं। साथ में दो पैसे भी रखे जाते हैं। इस लग्न-पत्रिका को कन्या की गोद में रखा जाता है। वह इस पत्रिका को अपनी मा अथवा बूआ को लाकर देती है।

३ प्राय हसने के लिए निषेध होता है। हसना अपशकुन माना जाता है। ऐसा विश्वास है यदि लग्न पर कन्या हसेगी तो अकाल पड़ेगा।

४ गीत गाये जाते हैं। इस समय के गीतों में इष्ट-देवताओं के गीत आरम्भ म गाये जाते हैं। एक गीत भूमिया का यह गाया जाता है —

ऊँची तेरी साह ऊँचा नीचा कोट,
दाया[1] बसै बाबा भूमिया की ओट।
काहे का दिवला काहे की बात,
काहे का घी बलै सारी रात।
अगर चदन का दिवला निर्मल बात,
सुरही को घी बलै सारी रात।
तेरी बाबा भोमिया उत्तम जात,
तू जन्मो इष्ट[2] चौदस की रात।
बेटिया को बाबा आदयर बाप,
बहुआ को सै बाबा रिछपाल[3]।

वर-पक्ष—१ लड़का को चौकी पर बैठाया जाता है। पडित मत्रोच्चारण के साथ लग्न-पत्रिका को लड़के की गोद में देता है। वह इसे अपने दादा की

---

१ ग्राम विशेष। २ ठेठ, ठीक। ३ रिछपाल (रक्षपाल), श्री सयाना रखनेवाला।

को दे देता है। फिर पंडित उसे खोलकर पढ़ता है और सब पंचों को सुना देता है। तेल, बान, फेरे आदि का कार्यक्रम इसमें लिखा होता है। उसी के अनुसार कार्य होते हैं।

२ इस अवसर पर भी गीत गाये जाते हैं। उनका प्रारंभ भी देव विषयक गीतों से होता है। एक गीत यह गाया जाता है —

काहे की तेरी ओबरी[1], काहे का जड़ाए किवाड़,
सच्चा हनुमान बली।
अगड़[2] चंदन की ओबरी, चन्दन जड़ाए किवाड़,
सच्चा हनुमान बली।
करै चढ़ै तेरै देहरै, केरै तुम्हारा भेंट,
सच्चा हनुमान बली।
सवाए तो सवा को रोट से, सवाए रपय्या की भेंट,
सच्चा हनुमान बली।
बैराड़ा[3] तो मारकै दूर करो, छारा के सिर सै नीत,
सच्चा हनुमान बली।

भात न्यौतना

१ बहन नन्नोद भात का निमन्त्रण देने जाते हैं। साथ में एक गुड़ की भेली, चावल और एक रुपया जाता है। इस सामग्री के साथ बहन चलती है। साथ में दोराना जिठाना भी जाते हैं।

२ घर से चलते समय गीत गाती है —

कोरे घड़ियों बीरा पाली हल्दी नौतण आई भाइ।
मेरे घर आइये बीरा मेरा माका जाया मेरे घर निरद[4] उपाइये।
क्योंकर आऊं मेरी मां की जाई ढेर[5] पड़ा मेरी लावणी[6]।
गेर दे बारा मजूर चढ़ाद गाड्डी लगा द ढोवणी।
मेरा घर आइये निरद उपाइये।
क्योंकर आऊं मेरी सासण[7] [illegible] मेरे घर बालक रोवणा।

---

१ अगरी के रूप में बनाया गया छप्पर। २ अगर, एक सुगंधित पदार्थ। ३ शत्रु। ४ प्रशंसा। ५ ऊसर, बालू की भूमि जिसमें फसल बहुत अच्छी होती है। ६ पकी फसल। ७ जन्मदाता (पिता) की पुत्री अथ दूसरे दिया बहन।

बालक रै वीरा घाय लगा दू पलणा[1] घाल्यू वारा मूलणा।
आती जाती वीरा लोग लगा दूँ मेरे घर अइये विरद उपावणी।
मेरे घर अइये वीरा मेरा माका जाया मेरे घर विरद उपाइये।
क्यूँकर आऊ मेरी माकी जाई मेरे घर नार सुलाखनी[2]।
अपणा वीरा न धारण विह्वाल्यू दो गोरी दो सावली।
सावली तो वीरा तपै रसोई गोरी टोलै बीजणा।
मेरे घर अइये वीरा मेरा माका जाया मेरे घर विरद उपाइये।

३ बहन गाँव की अन्य महिलाओं के साथ भाई के ग्राम में पहुँचती है। उधर से स्त्रियाँ जलपूर्ण कलश लेकर स्वागत के लिए आती हैं।

४ बहन अपने भाई के घर पहुँचती हुई यह गीत गाती है —

क्या तै[3] नन बावल राजा,
क्या तै नूनू काका ताऊ,
क्या तै नूनू जामण जाया वीर, जिसतै मैं ऊजली[4]।
मेली नूतू बावल राजा,
बलाए नूतू काका ताऊ,
मिश्री रै कूंनै हजारी वीरा, जिसतै मैं ऊजली।
क्यां चढ़ आवै बावल राजा,
क्यां चढ़ आवै काका ताऊ
क्यां चढ़ आवै हजारी वीरा, जिसतै मैं ऊजली।
अरथी[5] आवै बावल राजा,
बहली आवै काका ताऊ,
हाथी होदै जामण जाया, जिसतै मैं ऊजली।
के बरसैगा बावल राजा,
के बरसैगा काका ताऊ,
के रै बरसै हजारी वीरा, जिसतै मैं ऊजली।
रोक रपय्या बावल राजा,
टका बरसै काका ताऊ,
पीवला[6] मौर[7] हजारी वीरा, जिसतै मैं ऊजली।

---

१ पालना। २ सुलक्षणा (व्यंग्य से)। ३ निमंत्रण देना। ४ यशस्वी।
५ रथ, स्यंदन। ६ पीली, सुनहरी। ७ मौर = मोहर (अशरफी)।

किते उतरैगा बाबल राजा,
किते उतरै काका ताऊ,
किते उतरै जाम्मण जाया, जिसते मैं ऊजली।
परसों[1] उतरै बाबल राजा,
पौलड़ी[2] काका ताऊ
महला म उतरै हमारी बीरा, जिसते मैं ऊजली।
के जीम्मेगा बाबल राजा,
के रै जीम्मै काका ताऊ,
के रैन जीम्मै जाम्मण जाया, जिसते मैं ऊजली।
दूध बतासा बाबल राजा,
झिनवँ[3] काका ताऊ,
सरस मलीदा[4] हमारा बीरा, जिसते मैं ऊजली।

५ भात न्यौत कर लौटती हैं। गीत गाती हैं —

बीरा थे[5] दाम्मण[6] भल ल्याइयो,
चूंदड़ी पर रतन जड़ाइयो।
म्हारा रिमक[7] झिमक भाती आइयो।
बेसर[8] थे भल ल्याइयो।
झुम्मर पर रतन जड़ाइयो।
म्हारा रिमक झिमक भाती आइयो।
चुड़लो[9] थे भल ल्याइयो।
बोरले[10] पै रतन जड़ाइयो।
म्हारा रिमक झिमक भाती आइयो।

हलदात थान

१ चौक पूरा जाता है।
२ छोटा पटड़ा या छोटी चौकी चौक पर स्थापित की जाती है।
३ सात हल्दी की गांठ और थोड़े से जौ लिए जाते हैं।
४ सात स्त्रियों के हाथ में, जिनमें कोई गर्भिणी नहीं होनी चाहिए, चलाया बाधा जाता है। उन्हें 'सात सुहागन' कहते हैं।
५ पाँच सेर गेहूँ लिए जाते हैं।

१ चौपाल। २ दुवारी। ३ चावल। ४ चूरमा। ५ तुम। ६ लहँगा। ७ शान के साथ। ८ नथ। ९ चूड़ी। १० माग पर पहना जानेवाला आभूषण।

६ सात मूसलों में कलावे बाँध जाते हैं।

७ ऊखल में जौ डाले जाते हैं और सात सुहागनें क्रम से सात-सात चोट लगाती हैं।

८ दो-दो सुहागण मिलकर कोरे माट में दो दो खान[1] जौ डालती हैं।

९ यह ऊखल और सातों मूसल परस में विवाह की समाप्ति तक रख दिये जाते हैं।

रतजगा[2]

१ स्थान को पवित्र कर लिया जाता है।

२ कोरा झाल या मूण (बड़ा मटका या गोल) भरा जाता है।

३ एक कोरा घी का दीपक जलाया जाता है।

४ इस दीपक पर घरवाले सवा रुपया डालते हैं। अन्य स्त्रियाँ दो-दो पैसे दीपक में डालती हैं। भूआ या बाह्मण आरती करने वाली उस धन को लेती हैं।

५ सारी रात भूमिया आदि हुई देवताओं के गीत गाकर प्रायः सभी अन्य गीत गा दिये जाते हैं। विवाह से पहिले वाले रतजगे में भूमिया, देवी, माता, देवता, घरवत (गृहाधिष्ठात्री देवी), बधावा, दीपक और मेंहदी तथा दामन के गीत गाये जाते हैं।

६ थापे लगाये जाते हैं। शुभदिशा की ओर मुह करके, वर के यहाँ, वर घी का थापा लगाता है और कन्या अपने यहा मेंहदी का थापा लगाती है।

उपटणा (तेल)

१ चौक पूरा जाता है।

२ गाँव या मोहल्ले में सूचना दी जाती है। सम्मिलित होने वाली स्त्रियां थोड़ा-थोड़ा अनाज साथ लाती हैं।

३ वर या कन्या को बुलाया जाता है। चौक पर दो पटड़िया बिछाई जाती हैं।

* लड़के के साथ छोटा अविवाहित लड़का बैठाया जाता है। वह क्वारा लड़का बिनायक या लोकड़िया कहलाता है।

---

1 ऊखसा। २ रतजगा—वर के यहां दो बार होता है, तेल में पहिले और वधू आने पर। कन्या-पक्ष में थाक-पूजन के दिन एक बार होता है।

स कन्या के साथ भी एक छोटी लड़की निठाइ जाती है।

४. जौ का आटा और हल्दी मिलाकर रख ली जाती है। उसमें तेल डाला जाता है। दून से अंग स्पर्श किये जाते हैं।

५. दो राखड़ी[1] बनाकर गडरनी लाती है। राखड़ी में लोहे का छल्ला, लाख का छल्ला, कौड़ी, कद का टुकड़ा और उस टुकड़े में नूणराइ होता है। ऊन की रस्सी (धागा) में बांध दिये जाते हैं। एक राखड़ी वर के बांध दी जाती है और दूसरी को बरात के साथ ले जाते हैं। ऊन की रस्सी काली होती है।

६. पंडित आकर सात सुहागणों के कलावे बांधता है। ऊखल और कलश को भी कलावा बांधता है।

७. दून से सात सुहागन तेल चढाती हैं और फिर सातों हल्दी चढ़ाती हैं। गीत गाती हैं —

जौ गीहूंआ को उबटणो राय चमेली को तेल,
बन लाग्ने बैठ्यो उबटणे।
मैल झड़े झड़ भू[2] पड़े नूर चढ़े गोरे अंग,
बन लाडो बैठ्यो उबटणे।
था मेरी मायड़ देखले सब देख्या सुख होय,
बन लाग्ने बैठ्यो उबटणे।
था मेरी भुआ भायणो[3] देखल्यों सबने आरतड़ा[4] रो चाव,
बन लाडो बैठ्यो उबटणे।

८ भुआ या बहण रोली से अथवा हल्दी से टीका करती हैं। फिर आरता करती हैं। गीत गाया जाता है —

हेरो हरयो ए पीपल सुपल फलियो बेलड़ी फलगाइयो।
एक दूर देसां से मेरी भुआ ए आइ कर बड़ गोसण आरतो।
एक दूर देसां से मेरी भायल आइ कर मेरी माऊ जाइ आरतो।
एक आरता की मैं भेद न जाणू कै विध का जो मैंल्यो आरतो।
एक हाथ लोगे गोद बेगे कर मेरी माऊ जाइ आरतो।
एक हाथ कसीदो गोद भताजो कर बड़ गोतण आरतो।
एक आरता की गाय लेस्यां और न अलल[5] बछेरिया।
उस गाय को हम दूधो रो पीवा अलल बछेरा म्हारो पिवचढ़े।

१ राखी, पहुँची। २ भूमि पर। ३ बहनो। ४ आरते का। ५ घना, हृष्ट-पुष्ट।

बातो इतणो सो लेकै राई धरवी थाली दे मेरो मा की जाइ असीसड़ो ।
सम तो लदियें रै बधियो मेरी माका रै जाया फलियो कड़वा नीम ज़ु ।
तेरी सास नणद रल बूझरा लागी के रै ज लाग्यो वहुयड़ थारते ।
ये तो पान तो रै पचास लाग्या सुपारी तो लागी पूरी ड्योड़ सै ।

उबटना साधारणतया सौंदर्य-सज्जा का एक उपाय है, परन्तु वैवाहिक कृत्या में इसने आचारिक स्थान ले लिया है । पितृष्वसा अथवा भगाना अपने भाइ भतीने को उबटना लगाती हैं और हरे पीपल के वृक्ष की भाँति उत्तर बढ़ने की आशा करती हैं । शुभ शकुन के लिए वे जलपूर्ण लोटा लेकर आरता उतारती हैं अथवा पुत्र को गोद में लेकर । इस उपलक्ष्य में उन्हें यथाशक्ति नेग दिया जाता है । प्रस्तुत गीत म 'धनल बच्छेरी' नेग में दी गयी है । गाय भी नेग में मिली है जिसका दूध बड़ा पुष्टिकर है । बहन वांछित नेग मिल जाने पर आशी देती है । वह अपने भाइ को कड़वे नीम के सदृश बन्ना देखना चाहती है । लोकगाता में नीम ने अपना शुभ स्थान बना लिया है और उसका कड़वाहट दूर हो गयी है ।

इस गीत की भाषा और लहजा ठेठ हरियानी है परंतु पड़ोस की अहीर वाटी का यत्किंचित् प्रभाव झलकता है जो नगण्य है । हरियानी का स्वरूप आदर्शरूप में इस गीत में आया है ।

६ स्नान कराया जाता है ।

विशेष —तेलों की संख्या पंडित बतलाता है । यह लग्न के दिन ही बतला दी जाती है और वरपक्ष के लिए लग्न-पत्रिका में लिख दी जाती है । तेल चढ़ाने के लिए शनिवार शुभ दिन माना जाता है । रविवार को तेल नहीं चढ़ाया जाता ।

गोरवा पूजन[१] —[२] यह तेल वाले दिन ही पूजा जाता है । अपने घर के गोरवे का न पूजकर सार्वजनिक गोरवे को पूजते हैं । बनड़ा या बनड़ी को आग बन्द करके या चादर उढ़ाकर ले जाते हैं । साथ में यह सामग्री होती है—चून का चारमुख वाला दीवा, एक गुड़ की डली, हल्दी की गराइ, एक पैसा और एक तकुआ । यह सामग्री थाल में रखकर ले जाइ जाती है ।

२ गोरवे पर पानी छिड़ककर सातिया करते हैं । हल्दी से पूजते हैं । दीवा प्रज्वलित करके घर वापिस आ जाते हैं । चावल चारों दिशाओं म फेंकते हैं ।

१ धूरा ।

३ लौटते समय एक साथ रेत उदड़ा या उदड़ी लाती है और उसे अटोक (मुख से कुछ उच्चारण किये बिना) भडारे में रख देते हैं। यह विश्वास है कि इस गोरवे के रेत के कारण भण्डारा एक कूड़ी की भाति अक्षय हो जाता है और जय रहती है।

४ दीया देइ देवताओं के सम्मुख रख दिया जाता है।

माढा रोपण[1]

१ बरात आने वाले दिन प्रात काल पडित आता है। एक हाल[2] (हलस) मगाई जाती है। इसके साथ ही खाती के यहा से तिखुटा[3] या चौखुटा बजारा जो लकड़ी का बना होता है, लाया जाता है। कुम्हार के यहा से पाच सात सराई और एक करवा[4] मगाया जाता है। दर्जी डोवटी[5] से माढा (म डप) बनाकर लाता है। दर्जी को नेग दिया जाता है।

२ हाल और बजारे को, जो लकड़ी का बना होता है, गेरू मे रग दिया जाता है।

३ चौक पूरा जाता है।

४ लड़की बुलाई जाती है।

५ नवग्रह पूजन होता है।

६ कन्या के हाथ से माढा रोपण के स्थान पर तेल और चावल छुकवाये जाते हैं।

७ कन्या और उसका मामा रभा[6] से धरती खोदते हैं।

८ गढे में हल्दी की गाठ, सुपारी, टका डाला जाता है। कुटुम्ब की शेष स्त्रियाँ गढे में मूग और चावल छोड़ती हैं।

९ बजारे के साथ पडित तुली से बना धनुष बाण जिसका मुँह दखिन की ओर हो बाधता है।

विशेष—सराइयों को सपुटित करके ऊपर की सराइ का मुँह ऊपर को रखकर कलावे में बाधकर माढे की ५वीं तणी में बाध दी जाती है। वर के

---

१ गाड़ना। २ हल का वह भाग जो लम्बी लकड़ी का बना होता है और जिसे जुआ से बाधते हैं। ३ त्रिकोण या चतुष्कोण कटघरा। ४ मिट्टी का पात्र। ५ लाल कपड़ा, कद। ६ धरती खोदने वाला लोहे का यन्त्र।

यहाँ केवल सराइया को सपुटित करके एक स्थान पर बाध दी जाती है।

भात भरना

१ भाती एक साथ घर म नहीं जाते और न अपनी बहन से मिलते हैं। तभी मिलते हैं जब भात पहना लिया जाता है।

२ निश्चित लग्न पर भातीं भात भरते हैं।

३ बहन दूसरी स्त्रियों के साथ थाली में चौमुखी दीपक (प्रज्वलित), हल्दी, चावल, लड्डू और जितने भाई हों उतने रुपये डालकर द्वार पर आता है।

४ नाइन जलपूर्ण गडवा लेकर खड़ी होती है। भाती उसम कुछ पैसे डालता है।

५ जिस द्वार पर भात लिया जाता है। वहा एक चौक पूरा जाता है। उस पर एक पटड़ा रखा जाता है। उस पटड़े पर ही भाती आकर खड़ा होता है। बहन तिलक करती है। भाई बहन को चूदड़ी उढ़ाता है। चूंदड़ी का गीत गाया जाता है —

आज सीमा में रे बीरा जगमगो।
आया री मेरी माका जाया बीर हीरायद ल्याया चूदड़ी जी।
जैरे मोढ वो हीरा झड़ पड़े, डिब्बे भर लो जरजें जी।
साढ़ी सी क्यू ना ल्याया चूदड़ी जी।

आज बागां में रे बीरा जगमगो।
आया मरी री माका जाया बीर, हीरायद ल्याया चूदड़ी जी।
जैरे मोढ वो हीरा झड़ पड़े, डिब्बे भर लो लरजें जी।
साढ़ी सी क्यू ना ल्याया चूदड़ी जी।

इसी प्रकार—आज परसा में |
आज पोल्यां में | रे बीरा जगमगो।
आज चौक में |

आया री मेरी माका जाया बीर हीरायद ल्याया चूदड़ी जी।
जैरे मोढ़ वो हीरा झड़ पड़े, डिब्बे भर लो जरजें जी।
साढ़ी सी क्यू ना ल्याया चूदड़ी जी।

इस गीत में बहन का मर्यमिश्रित औत्सुक्य व्यक्त हुआ है।

६ भाती यथाशक्ति धन बहन के थाल में डालता है। इस धन को लेकर बहन लौटती है। भाई भी साथ ही घर में जाता है। दोनों मिलते हैं।

७ भात की समाप्ति पर जब भाई खूब लुट पिट लेता है तो उससे उपहास स्वरूप एक गीत गाया जाता है। आदि में भाई की प्रशंसा है परन्तु अंत के बोल परिहासयुक्त हैं —

ऊंचड़ी तो घर की पोल[1] नीच्चा रे घर का बारना।

❀ ❀ ❀

जीम्मण लाग्या देवर जेठ दलक[2] पड़ा मेरो टोकणो।
जीम्मण लाग्या माई जाया वीर उफन[3] पड़यो मेरो टोकणो
सारो तो पीगयो माइ जाया भाइ मूतभरो मेरो ओबरो[4]।
भाग्यो सैं टाटी[5] पाड़, मूसल मारयो कारव में।

कैसी सांसारिकता है 'पैसा रहा न पास यार मुख से ना बोलै'! मौके का मजाक है।

ब्याह का दिन (अ) घरपक्ष में

घुड़चढ़ी या निकासी

(१) चौक पूरकर उस पर चौकी बिछाई जाती है।

(२) स्त्रियाँ मिलकर स्नान कराती हैं। स्नान के समय गीत गाया जाता है —

हलधल[6] हलधल नदी बहसै रायजादा न्हाण सिजोया जी राज।
गैर वखत मत न्हाओ रायजादा, न्हाओ रायजादा कन्नि कनारो[7]
होय सै जी राज।
सांझ वखत मत रायजादा न्हाओ,
रायजादा वास सुगन की होय सै जी राज।
स्त्रियां को सै रतन कचौड़ी,
स्त्रियों का सै मोतीडारा[8] हार जी राज।
समधी की सै रतन कचौड़ी,
समधन जी का सै मोतीड़ारा हार जी राज।

---

१ दुवारी। २ रिक्त हो गया। ३ भर गया। ४ उमारा, छप्पर। ५ टट्टो। ६ झुलझुल करती। ७ घाट। ८ मोतियों का।

हार सोहवे हीवड[1] के ऊपर,
मोतीड़ा लूँगा किनाराजी राज ।

३ पंडित यज्ञ पहनाता है और मौड़ बाँधता है। मौड़ का गीत गाया जाता है। मुँह सेहरा भी बँधता है जिसका गीत यह है —

कन्या की से मालण्या थार कठे लाम्बा बिनुए ए,
इन गूंथ मालण सेहरो ।
गढ़ दिल्ली की मालणी थार दाणा म लाम्बी बिनुए ए,
इन गूंथ मालण सेहरो ।

❁ ❁ ❁

अंत म गान है,

थारे घर[2] लाम्प सेहरो थार पड़िया[3] में चारों राव,
इन गूंथ मालण सेहरो ।
दिल्ली को पड़ियो बादशाह थार साभर को सिरदार,
इन गूंथ मालण सेहरो ।
चारों तो राव बादशा[4] थार ब्याह ल्यायो जैना का पूत,
इन गूंथ मालण सेहरो ।

मुकुट और सेहरा बन्ने के विशेष आभरण हैं। इनके द्वारा बन्ने को सम्राट के रूप में चित्रित किया जाता है। प्रस्तुत गीत में सुन्दरी नायिका के लिए दिल्लीश तथा साभर नरेश भी आए हुए हैं परन्तु जैना के पुत्र के प्रताप के आगे सब झुक गये हैं और उन्हें लौटना पड़ा है। बन्ने के गौरव का द्योतक एक सुन्दर उदाहरण है।

४ मौड़ में ५ सुइयाँ चुभने से लगा दी जाती हैं।

५. छात करना—लाल वस्त्र के टुकड़े को वर के ऊपर फैलाता है। इस क्रिया को छात करना कहते हैं। नाई को नेग मिलता है।

६ भाभी स्याहा लगाती है और आरता किया जाता है।

७ मा या घर की प्रतिष्ठित स्त्री कलेवा, जिसमें सात गाँठ लगी होती हैं, पहनाती है। कलेवा पहनाने का कार्य सुहागिन करती है। यह निरंतर[5] विवाह के अंतिम दिन तक पहनना होता है।

८ घुड़चढ़ी होती है और बन्ना घोड़ा पर चढ़कर चलता है। इसे निकासी भी कहते हैं। इस समय अनेक गीत गाये जाते हैं। कुछ

१ हृदय, वक्ष। २ तेरे लिए। ३ खड़े हैं। ४ बादशाह एक साथ।
५. लगातार।

गीतों का विषय वैवाहिक वातावरण के इर्द गिर्द घूमता है और उनमें कुछ सरसता होती है। कुछ में बनी की ओर से निमन्त्रण भी गाया जाता है। माता और बहन के हृदय को छू-छू जानेवाले भाव भी एक गीत में आये हैं। इन गीतों का मार्मिक विवेचन आगे होगा। यहाँ हम केवल एक गीत जो हरियाने का जातीय निकासी गीत है, दे रहे हैं —

घुड़ला[१] तै बल ल्याइयो, घुड़ला रे लायक थाथो,
अनोखा लाडला हो राइ वर धीरे धीरे चाल,
मजलै मजलै चाल।

करवा[२] तै बल ल्याइयो, करवा र रबकत आयो,
अनोखा लाडला हो राइ वर धीरे धीरे चाल,
मजलै मजलै चाल।

धूप पड़ै धरती तपै करू अघायी छाए,
मजल मजल डेरा दिया, तम्बू दिया तनकाय,
मजल मजल कै चालणे, हो राई वर धीरे धीरे चाल,
मजलै मजलै चाल।

धमड़ा[३] तै बल ल्याइयो समधी की पौल बखेर,
अनोखा लाडला हो राई वर धीरे धीरे चाल,
मजलै मजलै चाल।

महदी तै बल ल्याइयो बदड़ी रै हाथ रचाए, अनोखा
काजल ये बल ल्याइयो बदड़ी रै नैन घुलाए, अनोखा
गहणा ये बल ल्याइयो गहणा पाट[४] बलाय, अनोखा
बदड़ी ये बल ल्याइयो बदड़ी सै हस बतलाय,
अनोखा लाडला हो राई वर धीरे-धीरे चाल,
मजलै-मजलै चाल।

इस गीत म बन्ने के चाव का वर्णन है। औत्सुक्य के कारण उसे त्वरा है। परन्तु गीत में इस प्रकार की उत्सुकता को समाचीन नहीं माना गया है। अत बारबार प्रार्थना की गई है कि मध्यम गति से चला जाये।

६ दूल्हा घोड़ी पर सवार होता है। मा चूची पिलाती है। बहन हाथ में सींक लेकर भाड़ती है और चावल बखेरती है। इस समय एक

---

१ घोड़ा। २ ऊँट। ३ दाम। ४ रेशमी तागे से बलवाकर।

हृदयस्पर्शी गीत माता और बहन की ओर से संवादात्मक रूप में गाया जाता है। कुछ पंक्तिया नीचे उद्धृत हैं —

दूधाँ की धार मारू, माता नै कदे तू गुमानी[1] भूल नहीं जा।
याद दिलाऊ म्ह अक आवेगी इब नइ बहू रानी बेग भूल नहीं जा।
माइ का सुसी है शरीर, जुग जुग जीवो मेरा वीर।
याद दिलाऊ सू अक मा जाइ की याद निसानी बीरा भूल नहीं जा।

१० मदिर में जाते हैं। पुजारी आशीर्वाद देता है।

११ मदिर से लौटकर भूमिया धोकणे[2] जाते हैं। वहीं पुरोहित मौड़ खोलता है। बरात गाँव से चलती है। बहन या बहनोई बन्ने का मार्ग रोकते हैं। उन्हें नेग दिया जाता है। इसे 'बाग पकड़ना' कहते हैं।

१२ बरात चलती है और सब स्त्रियाँ मिलकर गीत गाती हैं —

बन्ना ए कित बाजा रै बाजियो,
बन्ना ए कित बारे निसान,
ढोटा ढैल उतरयो बाग में।
तेरी बदड़ी रै नूकै रै बन्ना,
तू ए सवेरी आय, ढोटा ढैल उतरयो बाग में।
बदड़ी गहणा घड़ावन मैं गया,
सुनरे[3] नै लादइ बार रै ढोटा ढैल उतरयो बाग में।
बदड़ा गहणा घड़ावें तेरा दादा जी, तेरा ताऊ जी,
तू तड़के ए तड़के आय ढोटा ढैल उतरयो बाग में।
बन्नी कपड़ा सिमावण[4] मैं गया,
दर्जिया नै लादइ बार रै, ढोटा ढैल उतरयो बाग में।
बदड़ा कपड़ा सिमावै, तेरा बाबल[5] जी तेरा चाचा जी,
तू सवेरी[6] ए सवेरी आय ढोटा ढैल उतरयो बाग में।
बदड़ी मेंहदी बिसावण, मैं गया,
पसारी ने लादइ बार, ढोटा ढैल उतरयो बाग में।
बदड़ा मेंहदी बिसावै तेरा बीर जी, तेरा मामा जी,
त रे सवेरी ए सवेरी आय ढोटा ढैल उतरयो बाग में।
बदड़ा बदड़ी को ब्याहण मैं गया,

---

1 अभिमानी। 2 पूजने। 3 सुनार। 4 खरीदना, व्यवसाय करना।
5 पिता। 6 सबह।

मेरे साथिडा ने लादइ चार छोटा छैल उतरयो बाग में।
वन्ही तो व्याहे तेरा कूणगा वडडा,
वन्हा तो व्याहे तरो कूणवा,
तू रे सम्हेरी ए सम्हेरी आय छोरा छैल उतरयो बाग म।

खोडिया

बरात चला जाने के बाद घर पक्ष के घर में कई आचार होते हैं। उनमें एक प्रमुख आचार 'खोडिया' मनाने का है। यह वर के घर पर स्त्रियों द्वारा मनाया जाता है। इस आचार के द्वारा स्त्रियाँ कृत्रिम विवाह रचती हैं। विवाह के समस्त कार्यो की आवृत्ति करती हैं। इस प्रथा से कई लाभ होते हैं —

१ मनोरजन हो जाता है।
२ जागरण होने से घर बार की रखवाली हो जाती है।
३ विवाह सम्बन्धी शिक्षा मिल जाता है।

इस आचार म लोकवार्ता क कई तत्व निहित हैं। आजकल भी आसाम बगाल की आदिवासी जातियों म यह प्रथा चला आ रही है कि कन्या बरात बनाकर वर क यहाँ जाती है। बहुत सम्भव है कि उसी प्रथा के अवशिष्ट चिह्न इधर भी इस रूप में बँधे हुये हों।

यह ध्यान देने की बात है कि इधर बरात म कन्या का शामिल होना बुरा माना जाता है। यह हो सकता है कि समाज म पितृसत्ता युग आने के बाद इस प्रथा को घर की चार दीवारी म बन्दकर दिया गया हो।

बरात की पहुँच

१ बरात पहुँचने की सूचना बरात का नाई देता है। यह जाल (वृक्ष विशेष) की हरी टहनी के साथ कन्या के पिता के यहाँ जाता है। इस आचार को 'हरा डाली ल्याणा' कहते हैं। उसके पीछे बरात को जाजलवाला (जनवासा) में पहुँचा दिया जाता है।

२ दुकाव—सायकाल, वर घोड़ी पर चढ़कर कन्या के द्वार पर जाता है यहाँ पर साला आरता करती है और उसको ताी गालता है। सा गाल से तात्पय लड़के न बन को देखकर स्वास्थ्य आ करते है। लड़का अपने ीग द्वार पर लगा ९, ५ या ७ निडियाओं का आ काट का नना हाता है, गेरू ने रगी हाती हैं, हुवाता है। इसे '[illegible]'

ब्याह का दिन—कन्या पक्ष में

१ माता पिता, ज्येष्ठ भ्राता, भावज सब व्रत रखते हैं। मटा रोपने के पीछे पानी पिया जा सकता है।

२ भात लिया जाता है।

३ मामा चाँदी की बाली (मुरकी) लाता है जिनकी संख्या चार होती है। ये लाहे की बालियों के स्थान में पहना दी जाती हैं। यह एक महत्वपूर्ण प्रथा है और इसे 'मामा बाली' नाम से पुकारा जाता है।

४ मामा कन्या को चौला पहनाता है। चौला पीले रेजे का बना हुआ लँहगा और चुन्नी होती है। इसे 'मामा चौला' कहा जाता है।

विशेष —यदि मामा निर्धन भी है तो 'चौला और बाला' अवश्य लाता है। लड़के के विवाह में 'मौड़' अवश्य देता है।

५ चाक धोवणा—कन्यापक्ष की स्त्रियाँ एक थाली में कुछ मिठाई, सवा रुपया, पानी का लोटा, हरा दून, कड़ाई में भीगी हुई हल्दी और कलावा लेकर कुम्हार के यहाँ जाती हैं। चाक का टीका लगाया जाता है और सातिया काढ़ा जाता है। मिठाई और सवा रुपया चाक पर रख दिया जाता है। लौटते समय कुम्हारिन अपने सर पर मूण (माल या बड़ा मटका) उसके ऊपर मिट्टी का करवा, सोना या चाँदी का कठला मूण के गले में डाल कर यजमान के यहाँ लाती है। कठले को उतार लिया जाता है। मूण को मांढे की ठलय (थम्भी) के पास रख देते हैं और उसमें सात सुहागिन पवित्र पानी भर देती हैं। उसमें थोड़ा-सा गंगाजल भी छोड़ा जाता है। उसके पास ही आम या पीपल की टहनी रख दी जाती है।

६ जाजलवाला धोवणा (पूजना)—कन्या का भाई अपनी पत्नी के साथ गठ जोड़ा करके कन्या को चादर उढ़ाकर अपनी गोद में ले लेता है। लड़की अपने दोनों हाथों में कुछ पीले चावल ले लेती है। फिर पीछे-पीछे स्त्रियाँ गीत गाती हुई जाजलवासे के पास जाती हैं। यहाँ लड़की अपने हाथ से चावलों को छोड़ देती है। इस कृत्य का तात्पर्य यह है कि लड़की ने लड़के को फेरों के लिए आहूत किया है।

फेरे या चौंरी (भावर)

१ बेटेवाले की ओर से सजने का सामान आता है। इसमें टिक्का, बिन्दा, रोली, सिन्दूर, शीशा, रखड़ी (कंगन), मेंहदी, नाड़पूड़ा, सात

कलावे (नाल), सात बादाम, सात छुहारे, सात पताशे, सात सिंघाड़े, सात टके (पैसे) आदि गठजोड़ा की सामग्री होती है।

२ हसली लाई जाती है।

विशेष—दूजवर (दुहजवा) के विवाह में भावरों पर सोने या चांदी की छोटी माला लाई जाती है। ब्याहली को नथ के स्थान में पहना दी जाती है।

कन्या पक्ष की सामग्री—१ पाणिग्रहण संस्कार कराने वाला पंडित निम्न लिखित सामान बेटीवाले के यहां से लेता है। हवन की सामग्री, चावल, गोघृत, पत्थर का नाग, खाज, खील (लाजा), शमी पत्र, पत्ता, चंदोवा जिसमें पाँच गज कद का कपड़ा, कुछ लड्डू, एक नारियल, सवा रुपया और चार गरकोड़े होने हैं। इस चंदोवे को परिक्रमा के समय बेटी वाले की ओर से उनका भाणा (भाणजा या फूफ़ा का लड़का) और दूसरी ओर से लड़के वाले का भाणजा लेकर खड़े होते हैं। उसके नीचे से वर-कन्या परिक्रमा करते हैं।

२ कुम्हार चौरी का सामान लाता है। इसमें दो झावली (भाये) दस सराइ, पांच मटकणे होते हैं। सराइ मधुपर्क आदि के काम आती है। झावलियों को वेदी की रक्षा के लिए संस्कार समाप्ति पर औंधा मार देते हैं।

३ माली आहुति डालने के लिए सुवा, नाग गूंश, पीपल, शमी अथवा पलाश की समिधाएं लाता है।

४ वर को बुलाकर पटड़ा पर बैठाते हैं। पीछे से ब्याहली बुलाई जाती है। पहिले वर के दायें बैठना है फिर कन्या वामांग आ जाती है।

५ कन्यादान—ब्याहली के माता पिता का गठजोड़ा किया जाता है। फिर पिता लड़की के दाहिने हाथ के अंगूठे को अपने दोनों हाथों में लेता है। साथ में यह सामग्री पान, सुपारी, दूब, सवा रुपया, शंख और फूल भी लेता है। पंडित कन्यादान का संकल्प पढ़ता है। संकल्प के पश्चात् पिता यह कहकर कि हे विष्णु रूप वर लक्ष्मीरूपिणी यह कन्या तुझे भार्या रूप में देता हूँ, लड़की का अंगूठा वर के दोनों हाथों में पकड़ा देता है। स्त्रियां हथलेवा और फेरों का गीत गाती हैं। हथलेवे का एक गीत यह है —

हथलेवो, दादा की ए पोता कर हथलेवो कराइयो।
हथलेवो, ताऊ की ए बेटे कर हथलेवो कराइयो।
हथलेवो बाबल) बेटी)
हथलेवो भाइ } का ए भाण } कर हथलेवो कराइयो।
हथलेवो मामा) की ए भाणजी) कर हथलेवो कराइयो।

कन्यादान की महत्ता को प्रदर्शित करनेवाला नीचे लिखा गीत है —

सोना का दान, चान्दी का दान अर कन्या का दान दुहेला[1] हो राम।
कन्या का दान म्हारे बसाराम देना जैकी छाती भारया जी राम।

इसी प्रकार दूसरे नाम जोड़कर गीत बढ़ाया जाता है।

भावरों के समय एक गीत गाया जाता है। कन्या का वर के पास आते कुछ लज्जा है, कुछ विघ्नस्वरूप उसके पूर्वज तथा सेवक अड़े हैं। इसी बात को इस गीत का विषय बनाया गया है। वर उसे आशा दिलाता है और कन्या का फेरों के लिए बुलाता है —

गढ़ छोड़ रुकमण बाहर आइ, चौरी[2] तो छाइ म्हारे सासना।
इन सासना नै हम घाघ देसा, चौरी तो करसा लाडल निरोली।[3]
इन सासना नै हम दान देसा, चौरी तो करसा लाडल निरोली।
गढ छोड़ रुकमण बाहर आइ, चौरी तो छाइ म्हारे बामण्या।
इन बामण्या न हम नेग देसा, चौरी करसा लाडल निरोली।

इसी प्रकार नाइ, डूम और दाती को भी विविध नेग देकर अपना मार्ग अकण्टक कर लिया जाता है। बरना के उत्साह संचय कर लेने तथा वर के पास चलने पर सहेलियाँ एक मीठा चुटकी लेने से नहीं चूकतीं।

हौले हौले चाल म्हारा लाडो हमेशा सुहेलड़िया।
मोल ना बतवाइ म्हारी लाडो रान है पदारिया।

इस गीत ने घेरों में ग्रामीण-वातावरण बड़ा सुन्दर कर आया है जो चित्तात्मक है।

६ भावरों के समय माता पिता और ऊँचे रिश्ते के सभी पुरुष अलग हो जाते हैं।

७ छोटा भाई वर-कन्या के बीच में खड़ा होकर दोनों के हाथ में खीलें देता है और लाजा-होम कराया जाता है। इसके पीछे सब कार्य पंडित जी कराते हैं।

फेरा के पीछे

१ वर कन्या भीतर घर में जाते हैं। यहाँ दइ देवताओं का पूजा कराया जाता है।

२ गालादेला (सलज) दोनों का मुँह मीठा कराती है।

---

१ कठिन। २ मण्डप में। ३ निश्चित।

३ वर से छन्द कहलाये जाते हैं। एक छन्द नीचे दिया गया है

सड़क पै सड़क, सड़क पै इक्का।
एक तो ब्याह चले, दूसरी को देवे टिक्का[1]।
छन पर छन छन पर आरसी।
थारी बेट्टी राज करैगी, हम पढ़ागे फारसी।

यह समय हासी मजाक का होता है। इन छनों का विषय भी शृङ्गार से भरा होता है। किसी किसी छन्द में तो बड़ा ही अश्लील बयान होता है।

४ लड़का वापिस चला जाता है।

बढ़ार का दिन

१ गौर पूजन—(१) सात सुहागण अपना सिर धोती हैं और स्नान करती हैं।

(२) सात पत्तल मगाई जाती हैं। उन सातों पत्तलों पर मेंहदी, बिंदी, एक एक टका रखकर मढे के नीचे रख दिया जाता है।

(३) बरवाले के यहा से तील[2], काजल, बिंदी, मेंहदी, कघी और सिर बाधने के धागे आदि लाये जाते हैं।

(४) घर बुलाया जाता है और बीच में कपड़ा देकर एक ओर दूल्हा और दूसरी ओर दुल्हन बिठलाइ जाता है।

(५) पीली मिट्टी के गौरा और गौरी (शिव पार्वती) बनाते हैं। पहिले कन्या उनका पूजन करती है फिर घर की सब स्त्रियां पूजती हैं।

(६) मढे नीचे लड़का, कन्या और सात सुहागण घर के भीतर जिमाई जाती हैं।

२ बसोड़ (कवर कलेऊ) के लिए वर और उसके साथियों को बुलाया जाता है।

३ मध्याह्न की दावत के समय 'गस्समगस्सा विधि' होती है। सबसे वृद्ध बराती के मुह में गस्सा देते हैं।

४ पत्तल बाधना भी होता है। पंडित उसे किसी कविता से खोलता है। उसे इसका नेग मिलता है।

---

१ सगाई करना। २ लहगा।

विश

१ कन्या को शृङ्गार कराया जाता है, उसके बाल बांध दिये जाते हैं।

२ कन्या अपने पिता की देहली पूजती है। देहली पर छुहारे, बादाम, मखाने (बताशे) और पैसे रखे जाते हैं। हल्दी का टीका लगाया जाता है। इन पैसों आदि को नाइन ले लेती है।

३ लड़के को बुलाया जाता है। उससे मण्ढे में लात लगवाई जाती है। लड़के को नेग मिलता है।

४ लड़की विदा होती है। गीत गाये जाते हैं। इस समय का वातावरण करुणापूर्ण होता है। एक ओर कन्या अपनी माता, सहेलियों से गले मिलती है दूसरी ओर सबकी आंखें छोटे-छोटे करुणा-ताल बने होते हैं। पिता माता का एक ओर कन्या के हाथ पीले करने की प्रसन्नता, दूसरे लाडली के सर्वदा के लिए पराई हो जाने की टीस हृदय को हर्षशोक का क्रीड़ास्थल बना देती है। इस प्रकार शहनाई की मधुर ध्वनि और माता-पिता, भाई बंधु तथा सहेलियों की सिसकियों के बीच लाडो का अरथ चल देता है। इस समय बहुत से छोटे-बड़े गीत गाये जाते हैं जिनमें कन्या की मनोव्यथा व्यंजित होती है। इसका पूरा विवेचन आगे करेंगे। यहां दो गीत देते हैं। प्रथम गीत —

गाड़ा मेरा दादा गाड़ा रहिए आजकी रैन पहर दोए।
अपणा कन्या के डहरूँगी पार, थारा नगर सुबस बसो।

इसी प्रकार ताऊ, बाबल, चाचा, भाई और मामा का नाम लेकर गीत बनता चलता है। कन्या समझती है कि वह परकार धन है और वह भार-स्वरूप है। यहाँ कन्या अपने दादा आदि निकटस्थ के लोगों को सांत्वना दे रही है।

दूसरे गान में सहेलियां रथ में दुल्हन को बिठाती हैं और परवश अवस्था में यह गीत गाती हैं —

'परियण[१] की आगे परियण छोड़ कहां चली ?'

किन्तु कितनी कातरता है ? बालिका का मुग्ध चेतना उत्तर देती है। "मेरे दादा ने वचन व बल भावन घर हम चले"। यहां लाडो केवल इसलिए दूसरे के यहां जा रही है कि दादा जी ने वचन दे दिये हैं। माता जी के वचनों का पालन करना तो पुत्री का धर्म है। इस प्रकार वह ताऊ, चाचा, भाई, मामा आदि के वचनबद्धता के कारण पराई हो रही है।

१ कुटुम्ब।

५ लडकी का पिता कुटुम्बियों सहित गाव के जोहड तक अथवा सीमा तक बरात को छोडने जाता है। लडकी का पिता यथाशक्ति ५ या अधिक रुपये समधी को भेंट करता है और दोनों ओर से 'रामरमी' की जाती है।

वर के घर पहुँचने पर

१ बरात के आगमन की सूचना मिलने पर कुटुम्ब की सभी स्त्रिया मगल-कलश के साथ रथ के पास आती हैं। वर की माता कलश का से दूब के द्वारा वर-कन्या के ऊपर छींटे मारती है। स्त्रिया वधू का स्वागत करती हैं और गीत गाती हैं —

डोले से तले उतरिया है बहुअड करके नीची नाड़।
सासु जी के पाय छिए मैं लिए चरण पुचकार।
जीओ हे तेरे भाइ भतीजे, जया रहो भरतार।
मेरे बेटे की बेल बधाइ, जाम्मे हैं राजकुमार।

एक दूसरे गीत में नवीन अतिथि का स्वागत करते हुए स्त्रियाँ कहती हैं।—

आइये बहुअड इमवरा तेरी सासड आइ सुसरघरा।
आइये बहुअड इसवरा तेरी जिठाणी आइ जेठ घरा।

इस प्रकार स्वागत के साथ घर की ओर ले जाती हैं। गृह प्रवेश से पूर्व न द्वार रोकती है। नेग दिया जाता है।

२ पुआनेता होती है। लडके की भाभी वर को तीन बार और बधू को चार बार दलने जूए से तथा दूध बिलाने की नेती से नापती हैं।

३ सात सुहागणों को भोजन कराया जाता है। दइ देवताओं का पूजन कराया जाता है।

दई देवता पूजन (धोकना) और बहू नचाना

१ गठजोड़े ने बना-बनी भैया (भूमिया) पर जाते हैं। भूमिया की धोक लगाई जाती है। पुजाप को कुम्हारिन लती है।

२ इसके पाछे खान को सटकियों (पतली पतली कमचियों) से बहू-बदडा आपस म मार मारकर खेलते हैं। वर का मामा भी बदडा की ओर से खेलता है। इस प्रकार आनन्द मनाकर घर को लौटते हैं। बहन द्वार रोकती है, नेग दिया जाता है।

कांगण जूआ

१ वर-वधू को एक पटड़े पर पूर्वाभिमुख बैठा दिया जाता है। एक मिट्टी की कूंडी में दूध, पानी, दूब और सवा रुपया डालते हैं। वर की अंगूठी लेकर उस पानी में डाल दी जाती है। फिर वर-वधू अंगूठी को ढूंढते हैं। इस प्रकार यह कृत्य सात बार होता है। अंगूठी को पुरोहित डालता है। जो अंगूठी को चार बार चुगले उसकी जीत मानी जाती है। इस कृत्य से वर वधू की चतुरता का ज्ञान हो जाता है।

२ परस्पर एक-दूसरे का कांगणा और छांजड़ा खोलते हैं। उस कांगणे, छांजड़े और पानी को जोहड़ या कुएं में गिरा दिया जाता है। पुरोहित और नाई का नेग दिया जाता है।

३ कांगना खोलते समय यह गीत गाया जाता है —

खोल ऊधडी की कांगना, तेरी माय पांडया का मांगना।
खोल राणी के छोरिया, म्हारी मा चान्दू गोरिया।

नवागन्तुक अतिथि से बड़ा अद्भुत परिहास किया गया है।

दई देवता और माटा मिलाना

१ देवियों की मिट्टी को लड़की की मामी अन्य स्त्रियों के साथ परात में भरकर जोहड़ में गिरा आती है।

२ मौड़ को अपने घर में एक वर्ष तक सुरक्षित रखा जाता है।

३ कहीं-कहीं मौड़ को भी गिरा देते हैं। इसी पर सहृदय कवि रहीम ने कहा है —

समय पड़े पै और है समय पड़े पै और।
रहिमन मजा के परत, सदा सिरावन मौर।

यह हरियाणा प्रदेश के विवाह-संस्कार के लोकाचारों, रीतियों, अनुष्ठानों आदि का सामान्य परिचय है। वैसे जाति भेद से कहीं-कहीं अन्तर भी मिल सकता है।

इस विवेचन के पश्चात् हम विवाह-संस्कार सम्बन्धी गीतों का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हैं। विवाह-संस्कार का प्रारम्भ लग्न के पत्र भेजने से प्रारम्भ होता है। लग्न का हरियाणा में बड़ा महत्त्व है। एक ब्राह्मण वर पक्ष की दुहिता के पास लग्न निकलवाने के लिए सन्देश भेजता है परन्तु लज्जाशीला लोक के भार में दबी हुई कन्या विरहवश अवगुण्ठन करती है। नाना

प्रकार के प्रलोभन दिये जाते हैं परन्तु लाडो का अंतिम उत्तर बड़ा मार्मिक है। उसकी निश्छलता दर्शनीय है—"राय भर म्हानै लाजघणी आवै"। प्रलोभन की वस्तुएँ वही ग्राम की गुड़धानी, बताशे और ढाल नगारा रही हैं। ग्रामीण कन्याएँ प्रकृति की गोद में पलती हैं। उनके हृदय है पर वह वाणी कहाँ जो भावभार को सभाल ले? एक दूसरे स्थान पर लाडो कुछ मुखर है। वह लग्न लिखवाने के लिए दादा जी द्वारा सुबुद्ध ज्योतिषी बुलवाती है "दादा जी म्हारा लगन लिखाय, सच्चा ल्याओ बासियाँ जी"। दादा जी लाडो की बात को मानते हैं पर एक बात और कह गये हैं—"सच्चा म्हारी लाडो सच्चा सरजनहार करम लिखा सो पाइयो जी"। दादा जी ने लाडो के विवाह में जी खोलकर व्यय किया है, मामा जी ने यथाशक्ति भात भरा है और पिता ने दुधार गाय एवं बच्छेरा सहित श्रेष्ठ घोड़ियाँ दान में दी हैं। अंत में फिर सभी अपनी अपनी शुभकामनाएँ अर्पित करते दिखाये गये हैं—"फुड़ फुड़ म्हारी लाडो देन असीस, राज करो परिवार म जी"। माता पिता की यह इच्छा होती है कि उनकी सतान सदैव समुन्नत हो और सुखी रहे।

लग्न के पीछे और विवा० संस्कार के पहिले भी कई प्रथाएँ पाली जाती हैं, उनमें भात न्योतना और भात भरना मुख्य हैं। बहन भाई के अभिन्न प्रेम का उपमान संसार में नहीं है। भाई के ऊपर बहन का गर्व होता है। जब भी कोई भार अथवा आपत्ति आती है, भट भाई का आश्रय उसे मिल जाता है। भात के गीतों में भाई-बहन के इसी पवित्र स्नेह की निधि मिलती है। बहन के यहाँ पुत्र पुत्री का विवाह है। वह भात न्योतने जाती है। समस्त प्रकृति उसका स्वागत करती है। गीत की कुछ पंक्तियाँ हैं —

> ओ पिया आई सू बाप मेरे कै बाग, कोयल सबद सुणाइया।
> ओ पिया आई सू बाप मेरे की बाणी, घणी कुकारे[1] मोरणी।
> ओ पिया आई सू बाप मेरे कै गोरै[2], गोरै गऊवें धाइया।

शुभशकुनों का यह सुन्दर वर्णन है।

एक गीत मे बहन, भात में अतुल धनराशि देने वाले (बरसने वाले) भाई के समक्ष इन्द्र को ललकारती हुई कह रही है। हे इन्द्र! आज इधर-उधर बरस ला। हमारे यहाँ तो मेरा भाई बरस रहा है —

> बागा म मेहा बरसै, सरवर पै मेहा बरसै।
> मन बरसै इन्दर राजा, मेरी माका जाया बरसै।

१ कूकते हैं। २ ग्राम के समीप।

माला पै रंग बरसै, चम्पा पै रंग बरसै।
भव बरसै इन्दर राजा, थाली म बीरा बरसै।

भाइ के बरसने में कैसी सुन्दर व्यंजना है !

एक अन्य प्रबन्धात्मक गीत है। हरनदी भक्त प्रवर नरसी की इकलौती पुत्री है। हरनदी के यहाँ विवाह है। दौरानी-जिठानियों के व्यंग बाण चलने लगते हैं। इनसे आहत हो वह पिता के यहाँ भात न्यौतने सिरमागढ जाती है। विरक्त नरसी को पुत्र का अभाव खटकता है। वे पुत्री को धैर्य बँधाते हैं और निश्चित तिथि पर भात भरने के लिए चलते हैं। छकड़े में दो बूढ़े बैल हैं। जूनागढ (हरनदी की सुसराल) पास है। इस समय भक्त को अपनी दयनीय दशा की स्मृति हो आती है। दीनबंधु का स्मरण करते हैं। भगवान् उपस्थित होते हैं और स्वयं भाती बन जाते हैं। जूनागढ की समस्त जनता को यथेष्ट वस्तुएँ प्रदान की गयी हैं। काफी धावन के लिए सुरमा विशेष रूप से बरसाया गया है। इस गीत की एक विशेषता यह है कि इसमें ब्रज के 'भात गीत' की भाँति विषाद की रेखा नहीं आई है[1]—"मैना नैं बैंया पसारिये, और बीर न गये एँ समाय" आदि ब्रजगीत में एक ममाहत स्थिति का चित्रण हुआ है। यहाँ तो भक्त का भगवत्प्रेम मूर्तिमान् हो उठा है। परन्तु गीत में 'बहन को भाइ की कितनी प्रबल अपेक्षा होती है' सहज ही झलकाया है। पूरा गीत दे देना अनुचित न होगा —

ना मेरा सहा ना कोइ साथी ना कोइ येग मैं भाती हो राम।
धरती मैं पड़ूंगी बाबू नलके मारूँगी,
मैं सिरसागढ़ नहीं जागी हो राम।
दुराणी जिठानी बाउल बोला हो माँरै,
के नरसी पत्थर ल्यावैगा हो राम।
सासु ननदी बोली हो माँरै,
के नरसी चील पहराव हो राम।
देवर जेठ बोलो हो माँरै,
के नरसी माहर ल्यावै हो राम।
तेरा जमाइ बोला हो माँरै,
के नरसी भरयो म थारै हो राम।

---

1 'ब्रजलोक गीत साहित्य का अध्ययन'—डा० सत्येन्द्र, पृष्ठ १६३।

काफी सा धोरण बोल्ली हो मारे,
क नरसी सुरमा ल्यावे हो राम ।
भेली म्सार लेकर हरनन्दी चाली,
होली सिरसागढ़ की राही हो राम ।
बुझे सै उसनै हाला पाली,
नरसी भगत कित पावै हो राम ।
काका ताऊ कै चाली हे भाइ,
नरसी भगत अस्तल[1] में पावै हो राम ।
कूण किसै के काका ताऊ,
नरसी के मं जागी हो राम ।
बुझी मैं उसने कुए का पणिहार,
नरसी के मैं जागी हो राम ।
दूरें त हरनदी देखी आवती,
नरसी भगत खड़े हागे हो राम ।
दोनों हाथा सिर पुचकारा,
ह इश्वर तेरी माया हो राम ।
बेटी तै दइ राम ना देया भी दिण,
आज मनै बहुत रन आया हो राम ।
बेटे भी दई आइ भी दिए,
आज मैंने भाती आ चाहिए हो राम ।
टुटी सी गा ी मूढ़े से नारे,
आप नरसी गटयाला हो राम ।
टूटा गादी बैठगे नारे,
खडे कसावें नरसी भगत हो राम ।
धौले धौले नारे[2] बालणा सा रथ,
आप कृष्णगढ़ चालें हो राम ।
कित म्या ह हरनदी रानमाइ,
कढ़े सा रथ डटावैं हो राम ।
चार घड़ा लग सीज बरसी,
पहरी भरी नयाड़ा हो राम ।
चार घड़ी लग मोहर बरसीं,
बरतो सरे दुवर जड हो राम ।

१ वैरागी साधुओं का स्थान । २ नये-नये शक्तिशाली बैल ।

चार घड़ी रात पाछर रहमे,
महल बुहारो म्हारी दुनिया हो राम।
चार घड़ी उग सूरजा रहमा,
म्हारो कान्हा पोढ़िया हो राम।

इसमें के मन की भावना पर शुद्ध होती है परन्तु भोग विलासिनों के इच्छा में नन्द का पाँव निदान है —

दफेरदा जिन्दी कुम्हत रानाँ,
कुन्दा रे दराड़ी तत आइ हो राम।

इसकी दार्शनिक धुन में रचना है —

कौनों के चावँ भइ भतीजे,
मेरे कृष्ण जी आवे हो राम।

गीत की पृष्ठभूमि में आस्था, आस्तिकता एवं दयालुता की भावना दर्शनीय है।

भाई के गीतों का ताना-बाना प्रेम और सौहाद से मिलकर बना है। परन्तु कहीं कहीं लोभ ने उनकी दुर्कमल भावना पर कुठाराघात भी किया है। एक गीत में बहन ने भारी भात की माँग की है। भाई-बहन के मन का थाह लेने के लिए कहता है —

"जिन के हैं जिठजी इतना ना हो, वे क्य चावें हैं जिठजी भातइ।"

परन्तु बहन का स्वाभाव मन उसे कितना निर्भय बना गया है —

"अपणो रे बीरा अपणो जोयरा[1] ने बेच तू लाइये मेरे भातइ।"

ऐसा प्रतीत होता है कि बहन संभवत भाभी के दुर्व्यवहार का प्रतिशोध करना चाहती है।

एक स्थान पर भाभी की उदासीनता की पराकाष्ठा हो जाती है। भात नौतने जब ननद आती है तो भावज उसके स्वागतार्थ उठती भी नहीं है। ननद जब मिलना माँगती है तो उत्तर मिलता है —"री ननदल हम तें उठा ना जा, कौनी तो भरले बामकी जी"। इस कथन में मर्मांतक व्यंग्य है। स्तम्भ के आलिंगन में सहज अपनोहार्द का भाव भरा है। बहन लौट पड़ती है, परन्तु भाई ने बहन का मान रख लिया है —

---

[1] पत्नी।

री सुए के डोले ढलते बीरा भाज्या,
हे वे-ने भात भरागे पूरे सौ का, नारग ल्यावा चूंदड़ी ।

बहन को केवल एक ही शिकायत है कि भावी ओच्छे (तुच्छ) घर की है और वह तुच्छ बातें करती है —

"हे बीरा ओच्छे घर की ओछी भा-नो ओच्छी बोलै बोलणे ।"

भात के गीतों में कुछ उपहास की मात्रा भी मिलती है । एक भात की कतिपय पंक्तियाँ आगे दी जाती हैं, इनमें हास्य भाव व्यक्त हुआ है —

सारो तो पीगयो माइ जाया माउ मूलभरा मेरा ओबरा ।
भाज्जो से टाटी पाड़, मूसल मार यो काख में जे ।
बाह्मण भाई जाया बीर, मुस्सल छोर जिठानिया का सीरका ।
थोरे प बेत्रे की करया को बाग, थोर धड़ा ओ मूसल सीरका ।

भात समाप्त हो जाता है और भाई लुट पिट लेता है तो हँसी ठट्ठा की बारी आती है । गीत में मनोवैज्ञानिक सफलता दर्शनीय है ।

भात के गीतों में दौरानी जिठानी के भाइयों द्वारा दिये गये भात से तुलना करने का भाव भी रहता है । कभी-कभी यह एक तीखे व्यंग्य का भी कार्य कर जाता है और कौटुम्बिक कलह का कारण भी बन बैठता है ।

रतजगा

रतजगा, जिसमें रात्रि जागरण होता है, कई अवसरों पर मनाया जाता है । विवाह संस्कार में इसका विशेष महत्त्व है, क्योंकि वर कन्या दोनों पक्षों में इसका मान है ।

रतजगे में एक साथ अनेक कृत्य होते हैं । स्त्रियाँ रात भर जागती हैं । इस प्रकार एक दीर्घकाल उन्हें गीत गाने के लिए मिल जाता है । अत प्राय सभी प्रकार के गीत रतजगे की रात्रि के घुप्प अंधकार को चीरकर इधर उधर उड़ते रहते हैं । रतजगे के गीतों में विवाह के बदड़े, बदड़ी, घोड़ी और लाडो आदि विवाह के प्रतिदिन के साधारण गीतों से लेकर रतजगे के कृत्यों तक के गीतों का वर्णन होता है ।

हरियाना प्रदेश में सभी कृत्य देव देवताओं के गीतों से आरम्भ होते हैं । रतजगा भी इसका अपवाद नहीं है । हरियानी रतजगे के गीत घरवत (गृहाधिष्ठात्री देवी) के गीत से आरम्भ होते हैं । इसके पश्चात् दीपक गीत (दीवा गीत) गाया जाता है । एक घरवत गीत में रामचन्द्र जी गृहाधिष्ठात्री

देवी की स्थापना करते हैं। फिर 'रातजगा' 'बरना' गाना के लिए शब्द लाता है जिससे आगन में प्रकाश हो। रातजगा विविध वस्तुओं को लेकर चलता है। रामचन्द्र और लक्ष्मण के रातजगे में पहुँचना उसका लक्ष्य है। बरना का गीत एक लम्बा गीत है परन्तु उसे यहाँ दे देना उचित होगा —

ए वा मरुदे मोतियों का थाल पन्नत फूलन्द पण गई।
हो म्हारा घर का पलन घड़ा में मूरत साथ परवन माना सूबे धरे जे।
ए थे बाजे साईं बार पुकार एक चौदस मदरा खगया जे।
ए पूरणमासी पुन पूनम को बार दायज को दिन निरमलो जे।
ए थे चना-चना रमझ[1] सुजाण गारवा [2]धमक घलाइयो जे।
ए थे गज-बाज ईरपयाय गज ल्यायो सुजान का जे।
ए थे पाथणिया को धमर मुगान उपजा बालक वेदन जे।
ए थे ल्याया गाड़ी म थाल ल्या उतारी चौक म जे।
ए थे लाइण लाग्या सै गाय करण लाग्या सूनकी[3] जे।
ए थे हलकण लाग्या हल बाटण लाग्या गुड़ हलो जे।
ए थे बुलाया दसरथ का रामचन्द्र ने बरनी परवत मूवे धरे जे।
ए थे चिणी चिणाइ हुइ मजाग सा लिम्पण बालो लाड़िये[4] जे।
ए थे लिम्पे पाले थाल मद्दे हाय थारा दसरथ बुन्न भई जे।
ए थे चिणे माण्डे लिणे कराइ मोर थारी लिछमन भायली जे।
ए थ किणा चिणाइ हुइ सजोग कहा करणा लोड़िय जे।
ए थे कांधे कुहाड पाल के बणरा ड जोहड छीकड्यो जे।
ए थे कम हस रोवे बणराय यो माली किस जाय से जे।
ए थे म्हारे पिछोकड़े राम चन्दन को रूख वो रासी के चित्त चढ्यो जे।
ऐ थे हरहर हमे बणराय आयो मूरत टल गयो जे।
ए म्हारे इलीं बाली धूमरू लगा मगरो मोर नचाइये जे।
ए था चिणी चिणाइ हुइ सजाग रातगा डोहो[5] ल्याइये जे।
ए वा पूर्ण से नगरी का लोग या रातगा किस जाय से जे।
ए म्हारे रामचन्दर के रातजगे या सावण रतनाय मे जे।
ए था मालिका नै पिलग बिछायो रातगा पालोर बैठ्यो जे।
ए वा रातिका मैं पधारा पागड़ो[6] रातगा मोरग चूड़ी जे।
ए वा मालिका नै करो विदा, रातगा दिन दस राख्यो जो।
ए दस मला साली धर जा आपयो रातगा धड़ले काल्की जे।

१ नवयुवक। २ गारा। ३ डोरी। ४ आवश्यकता है। ५. फूलझड़ी बाधना। ६ पगड़ी।

ए हम घड़ स्यागा दो ए रै चार ओम्मी सातण ना मिले जे।
ए चा ओम्सी सातण दे सै असीस लघो बधो परवार में जे।
ए तम लछियो बधियो जसरथ का बेटा पोत्ता फलियो कड़वा नाम ज्यो जे।

घरवत माता की स्थापना के पश्चात् दीपक गीत गाया जाता है। इस प्रकार भवन निर्माण और गृहाधिष्ठात्री देवी के संस्थापन एवं आह्वान के उपरान्त लौकिक अभ्युत्थान के प्रतीक दीपक की आराधना बड़ी उपयुक्त है। इन दो मांगलिक गीतों के पीछे अन्य गीत आरम्भ होते हैं। यहाँ दीवा (दीपक) गीत देना भी अनुपयुक्त न होगा।

दीवा कै मण रै दीवा कैमण गाल्या लोहरै तो कैमण जाल्या कोयला जे।
दावा नौमण रै दीवा नौमण गाल्या लोहरै दीवा दसमण जाल्या कोयला जे।
थारी रै तेरे थान्त घाल्यू सवासेर की घड़ो ए उजेऊ[1] तेलकोजे।
भर चास्यू[2] रे भर चास्यू म्हारे शंकर की धमसाल[3] घर प्यारे के चादणो जे।
अर चास्म रे भर चास्यू म्हारे रामसिंह की धमसाल घर रामसरन के चादणो जे।

रात्रि के आरम्भ में मेंहदी, काजल आदि कृत्यों का उल्लेख रहता है। इनका उपयोग रात्रि में होता है। मेंहदी और काजल शृंगार के उपकरण हैं। विभिन्न त्यौहारों और उत्सवों पर सौभाग्यवती स्त्रियाँ अपने करतल और पदतल दोनों पर मेंहदी रचाती हैं। रमणियों को मेंहदी इतनी प्रिय रही है कि उस पर नाना प्रकार के लोकगीतों की सृष्टि हो चुकी है। मेंहदी इतनी शुभ एवं मांगलिक मानी गयी है कि विवाह संस्कार के पहिले दिन रतजगे में मेंहदी का गीत अवश्य गाया जाता है। बात यहाँ तक पहुँची है कि मेंहदी की गहरी रचावट मनोनुकूल एवं दाम्पत्य प्रेम का प्रतीक मानी जाती है।

मेंहदी के एक गीत में आगरा दिल्ली की मेंहदी अच्छी बताई गयी है। अजमेर भी इसका एक स्थान है। देवर देवरानी, जिठानी और नणद का वर्णन आया है। गीत की पंक्तियाँ निम्न प्रकार हैं —

मेंहदी बोइ दिल्ली आगरे नी कोइ रल पाग्यो अजमेर, मेंहदी रगभरी जी राज।
मेंहदी सींचण मैं गइ नी कोइ छोटा देवर साथ, मेंहदी रगभरी जी राज।
मेंहदी चोवण मैं गइ नी कोइ न्योर जिठाण्या साथ, मेंहदी रगभरी जी राज।
मेंहदी लावण मैं गइ नी कोइ छोटा नणन्द साथ, मेंहदी रगभरी जी राज।
छोटी बूझे ए बड़ा ममरहो रात की बात, मेंहदी किमीकर रची जी राज।
मेंहदी तो मैं लायलइ तू आइ न आधी रात मेंहदी अधिक रची जी राज।
दुयोरे निगना सब कोइ आइ त नहीं आइ आधी रात मेंहदी रगभरी जी राज।

१ उडेलना। २ बालना, जलाना। ३ शाला, पौला।

रतजगे के अतिरिक्त अन्य पर्व-त्योहारों पर भी मेंहदी रचाई जाती है। यह एक अलंकार तथा शुभ चिह्न माना जाता है। वात्सल्य पक्ष के एक गीत में माता अपने बेटे के लिए मेंहदी को हिरणी के दूध में घोलती है। 'हिरनी धाय' के दूध में मेंहदी का रंग अच्छा गहरा हो जाता है —

मेरी मेंहदी के चौड़े चौड़े पात रे, बीरा थारी वारी जा।
मैं तो पीसूंगी बहना के पास रे, बीरा थारी वारी जा।
मैं तो घोलंगी हिरणी के दूध रे, बीरा थारी वारी जा।
मैं तो लाऊंगी देवेन्द्र भाई के हाथ रे, बीरा थारी वारी जा।

प्रातःकाल के गीतों में 'दातन' का गीत मुख्य है। माता यशोदा ने रुक्मिणी जी से दातन माँगा है। रुक्मिणी आज्ञोल्लंघन कर जाती है। उसे इस अवहेलना का परिणाम भुगतना पड़ता है। 'दातन' का गीत एक लम्बा कथागीत है जिसमें आज्ञाकारी पुत्र एवं प्रियाप्रेम के व्यवहार की सुन्दर झाँकी देखने को मिलती है। सम्पूर्ण गीत दे देना समीचीन होगा।

हरजी उगने[1] तैं परभात आप जसोदा दातन मांगियो जे।
बाहर तै आया किसन मुरार माता तो बैठी उमण धूमणी[2] जे।
माता कहु तेरा मेला मैं अस कहु तू बैठी उमण धूमणी जे।
बहू दातन मांगी बरबार[3] बहू के हाथां दातन ना भई जे।
माता उपाड़ गगा-तट आर दातन ल्याऊं चारता बेला की जे।
बेटा था दातन रुक्मण नै दूरी जेता तो नाम ही भेल्या[4] हो गई जे।
माता कहो तो दयूं हैं बिदार कहो तो धालूं भेज न बाप कै जे।
रुक्मण उठो न करो ए सिंगार बिरहोसिंग्या[5] तेरे बाप कै जे।
हरी जी का कहा तब सुण बोल्या रुक्मण मार्मी बैठी निरख्यी।
रुक्मण उठो न करो ए सिंगार बेटा गो जायो तेरा बीर कै।
हरी जी हुण ना तब बोल्या सो मात आया[6] गो दहिया मेरी मावजे।
हरी जी आप घोड़ असवार रुक्मण नै पहल जुड़ाई बाघणा जे।
हरी जी रमस्यो[7] मैं मामला रान्न दिन उगायो सुखद मामरे जे।
रुक्मण म तेरा पीहरिया का देस ये धन भीगें आमण धूमणा जे।
हरी जी कैल घजन कर नाथ कर[8] हर आयो ह्वारे पहावणा[9] जे।
रुक्मण सामण बरसो मह मरमाइंद हरिया बन बर्गे।
रुक्मण आमीन पितर सतोप कानक आवै तो तारुण्या जे।

---

१ उगना, आरम। २ उदास। ३ बारबार, कई बार। ४ समाप्त।
५ विराहोन्माद। ६ गर्भ। ७ चलन। ८ कब। ९ अतिथि, मेहमान।

हरी जी आया सै रुक्मण घाल आगण बैठ्या ऊमण धूमणा जे।
मा मेरी क्या विण घोर अधेर क्या तिन लाग्गे आगण भिणभिणा[1] जे।
बेटा बहुआं बिन घोर अधेर पोता बिण लाग्गे आगण भिणभिणो ज।
हरी जी रमक्यो सै मामल रात सूरज उगायो सुघड़ सासरै।
हरी जी दूध परवालै[2] धारा पाव चौकी तो घालै थमनै बैठ्या।
हरी जी हरयाएँ मूगा की सै दाल चावल तो राधां हरनै ऊजला।
हरी जी बूरा की रैलमटेल[3] घी बरतावै हरनै टोकणी।
हरी जी जीमो न बढ़बढ़ गास रुक्मण देगी हरनै ओरहणा[4]।
हरी जी धो दिन करल्यो न याद ऊभी[5] तो छोडी सीला बकतलै।
रुक्मण धो दिन करल्यो न याद मात जसोदा दातल ना दई।
रुक्मण तू मत बेदल[6] होय मैं मन राख्यो बुन्दिया माय को।
रुक्मण तू मेरा माथा को मोड़ मात जसोदा सिरको सहरो जे।
रुक्मण ब्याहू तेरा बर्गी दो ए चार मात जसोदा बर्गीकुल म कोण नहीं।
रुक्मण उठो न करोण सिंगार तड़के तो चालां अपणा देस नै।
मा मेरी खोला न अजड़ किवाड़ मारल तो खोलो लोहा सार कीज।
माता महला तै नीच्चै उतर आये पाय पड़ै तेरी कुल वधू जे।
बेटा तम जीओ कोड़ बरास पाय पड़ैगी धपणी माय कै जे।
माता अनखा सा बोल न बोल पाय पड़ैगी सासु नणद कै।

रुक्मिणी पतिपरायणा सहधर्मिणी के रूप में कृष्ण जी के साथ लौट आती है, पर यशोदा के मन में अभी 'हुक्म अदूली' का गिला शेष है और वह उसकी सेवा स्वीकार नहीं करती। यहाँ पर यशोदा में कलहारी सास के स्वभाव की झाँकी मिल जाती है। सास के ललाट में पुत्र व पुत्रवधू दो नेत्र हैं परन्तु दोनों में इतना पक्षपात ! जीवन की कैसी विडम्बना है। इस गीत में कृष्ण के जीवन की एक और घटना की ओर पाठक का ध्यान जाता है कि यहाँ रुक्मिणी बहू के साथ देवकी सास का वर्णन नहीं है यशोदा सास का है।

ब्याह के रतजगे में, महंदी रचाते समय (तिलना) गीत भी गाया जाता है। इस गीत के पूर्वार्द्ध में तो नणद तिलकी खेती के विषय में वार्तालाप है, किन्तु अन्त में भाई के परकाया प्रेम का शिकायत बहन से की गई है। अंतिम भाग इस प्रकार है —

---

१ उदास, निर्जन। २ धोके। ३ अधिकता। ४ उपालम्भ। ५ खड़ी। ६ निराश।

भरने धोरा मैं बरजले मेरी नणदी बरजले अलबेली परघर धोरी जावें।
दयर हो तो बरजस्यां मेरी मायो बरजस्यां अलबेली, भइया न बरजे जावें।
घर की साड़ किरकली मेरी नणदी किरकली अलबेली पर घर रालो धाटप जावें।

इस गीत में भाई-बहन के सम्बन्ध के उस स्वरूप को दिखाया गया है जहाँ बहन का विशेष दखल नहीं है। वासनामयी चित्तवृत्तियों पर तो इतरवर्ती भाभी का अंकुश ही कार्य कर सकता है।

आश्चर्यभाव समन्वित बकड़ी के बड़े-बड़े गीत भी इस रात में गा लिये जाते हैं। इनमें कुछ बातें तो सार्थक एवं समझ में आने वाली होती हैं, पर निरर्थक, केवल एक आश्चर्यभाव की शान्ति उनसे होती है।

बकड़ी के गीत उन गीतों को कहते हैं जो अवसर-विशेष पर गाये जाने वाले गीतों के बीच-बीच में गा लिये जाते हैं। इस शैली के गीतों का आकार प्रायः विशाल होता है और भाव-पक्ष विस्मयकर तत्त्वयुक्त होता है। बकड़ी के इन गीतों में हास्यरस का भी सुन्दर समावेश मिलता है। अश्लीलता एवं यौन सम्बन्धी गीत भी इसकी परिधि में स्थान पा जाते हैं।

आश्चर्यभाव की उद्भावना कैसी अनहोनी बातों के संयोग से की गयी है, यह निम्नलिखित बकड़ी गीत में देखिए —

झूठ नहीं बोलूंगी झूठ की मैं म्हारे बाप।
पानीपत की सड़क ऊपर सिड़क बांदूर बाघ ॥ टेक ॥
चिड़ा तो म्हारे दूध पिलावै,
कुत्ता लावै शीतलिए, सिर पर धरके भार।
चिड़िया तो म्हारे करै लाजया मोरडाली दे।
झूठ नहीं बोलगी झूठ की मैं म्हारै बाप ॥ टेक ॥
कउवा तो म्हारे मैंस चरावै पाली बणकै,
मींडकी तो रोगी छैना बहु बणकै ॥ टेक ॥
पहाड़ पर तैं कीड़ी उतरी नौ मण पीगा तेल,
झूठ नहीं बोलगी है सिर पर धरी रेल ॥ टेक ॥
मरी पड़ी कीड़ी में सौ मन होग्या बोझ,
घामणिया ऐ घिसटी कोन्या, धीमए चले चमार।
सौ जोड़े तो जुत्ती बणग सांन्टे कई हजार ॥ टेक ॥
कीड़ा सो या दिल्ली वाला सिर पर धरला सोने की ईंट।
सहर का बाणिया न्यू उठ बोल्या लटग लगी या छौंट।

फेर नहीं बोल्लगी मठ को सै म्हारै श्याम ।
पानीपत की सड़क ऊप्पर मिडक बाट्टे बाण ।

एक दूसरे गीत में अनमेल वृद्ध विवाह के पक्ष में विलक्षण एवं अतर्कित समाधान किये गये हैं। सोलह शृङ्गार करके एक युवती अपने हृदयेश्वर के पास आशा दीप सजाने जाती है। पतिदेव जर्जरकाय हैं। नवोढा पत्नी को निराशा होती है। वह आत्मघात की बात सोचती है। इस अवसर पर वृद्ध महाराय वाद्धक्य की विशेषताओं की परिगणना कराने लग जाते हैं। अन्य विशेषताओं के साथ एक विशेषता यह भी बतलाई गई है कि वृद्ध की उत्पादन शक्ति प्रमाणित है। इस जकड़ी में लोकमेधा की तर्क (दलील) की उड़ान दर्शनीय है —

अमा मेरी री कर सोलहा सिंगार बूढ़े की सजा धारै गई ए मेरी मां।
ज्यानी मेरायो, पल्ला उघाड़कै देख सिराहनै खड़ी पदमनी ओम्हारा श्याम।
गोरी म्हारी ए दामण हाले नाड़, गोडा मैं पाणी¹ पड़ रह्या ए म्हारी नार।
अमा मेरी ए महंगी जहर विष गया, बूढे न बेगी क्यू दई ए मेरी मा।
गोरी म्हारी ए छैल अड़े अड़े बोल न बोल कदे सो कयड़ी दोलता ए म्हारी नार।
गोरी म्हारी ए छैल तो जाये परदेश, बूढा तो सोवै सेज में ए म्हारी नार।
ज्यानी मेरायो घर होती छैला नार इकली मैं तो सो जाती ओ म्हारा श्याम।
गोरी म्हारा ए छैला ना हाड बाक बूढे के टावर रोल ए म्हारी नार।
गोरी म्हारी ए दमड़ा की लोभा धारा बाप माया की लोभण माय़ड़ी ए म्हारी नार।

जकड़ी में इन गीतों में जुआरी, रोगी, काला और याणा (अल्पवयस्क) पति का भी वर्णन पत्नी की शिकायतभरी वाणी से हुआ है।

आश्चर्य के साथ हास्यभाव का एक चित्र हरियाणे की एक जकड़ी में अपूर्व ढंग से आया है। इसमें एक भोले जाट को हास्य का आलम्बन बनाया है। चित्र में एक सजीवता है —

मन्नै तो पिया गया न्हुवादे तारा सै सवार, हां ए तारा सै सवार।
तन्नै तो गोरी क्यूकर न्हुवादयू हालड़ पड़री भैंस, हां ए हालड़ पड़री भैंस।

एक जतन पिया मैं बतलादयू —

मुगी पै मेरा दामण लटकै चुंदड़ी छाप्पेदार, हां ए चुंदड़ी छाप्पेदार।
म्हले में मेरी माय धरी मैं पहर कढियो धार, हां ए पहर कढियो धार।
बाहर ते इक सोदिया आया,

---

१ राल टपक-टपक कर पैरों पर गिर रही है।

मध्य मिश्री डाल, हां ए बतसे मिश्री डाल ।
मध्य सो तरा म्हारागढ़ मैं,
जीजा काढ़ै धार, हां ए जीजा काढ़ै धार ।
सुण पाड़ोसी जेवड़ा सुहाणा मारवणी मैं भैंस, हां ए मारवणी मैं भैंस ।
इण लेरूं पाड़ै होलिया लेग्या गया था भैंस, हां ए लेग्या गया था भैंस ।
गाडी सुथार पल्ला उल्टया मूंछ मरोड़ के लैं, हां ए मूंछ मरोड़ के लैं ।
गलिया मैं या चरचा हो रही, देखी सुन्दर नार, हो ए देखी सुन्दर नार ।
कान्ठ पकड़े एक मारे कोई मत भेजो म्हारा, हां ए कोई मत भेजो म्हारा ।

इसप्रकार जकड़ी गान छोटे आकार के हैं, परन्तु इन गीतों में एक प्रबंध कथात्मक गीत भी गाया जाता है। 'रजमल' नामक राजकुमार अपना बहन 'गोरा' से विवाह का हठ करता है। सब लोग उसे इस अपकृत्य से विमुख करते हैं, पर वह अपना दुष्ट हठ को नहीं छोड़ता। गौरा स्वयं अपने सत की रक्षा करती है और कामांध रजमल को अपने पाप पर प्रायश्चित करने के लिए छोड़ जाता है —

एक राणा के बेटे मान कुंवर था।
साला विचारि दो ए बालक थीं।
एक पासे री एक रोटा भी पावै,
पीय पीय कै सकरे खाली।
घुड़ आइया नै रोटी का जीमी,
म्हा नीमा मेरे रजमल भाइ रा।
के पेट्टा रे ठरे हाथ चढ़ी,
के पेट्टा रे ठरे सिर में दर्द।
ना बाबू मरे सिर में दरद,
ना बाबू मर बाप धरा।
परा दिवा ए बापू गोरा आप मैं।
ऐसी मन सोचै रजमल हुइ ना जगत में।

कथा के उत्तर पक्ष की मार्मिकता दर्शनीय है —

हस हस कै रजमल न्हावण मनोवै,
रो रो कै वा गौरा न्हावण मनोवै।
हस हस कै रजमल कपड़ा भी पहरै,
रो रो कै वा गौरा कपड़ा भी पहरै।
हस हस कै रजमल पटका बहावै,

रो रो कैं वा गौरा सीस गुथा वै ।
हंस हंस कै रजमल घोड़ा पै बैठया,
रो रो कै वा गौरा अरथां में बैठी ।
एक पैंड चाला रजमल दो डग चाला,
एक पैंड चाली गौरा दो डग चाली ।
सीजी पै मरोए तिसाई ।
ना इस कुआ ना इस जोहड़, किते ल्याऊं जल भर झारी ।
फाटगो धरती, समा गई गौरा, खड़ा हे लखावै वा रजमल भाई ।
तेरी तो बेटी बापू सत की निकली, सत की निकली,
फट गई धरती समा गई गौरा, समा गई गौरा ।

गौरा के पावन चरित्र की कथा सतीश्वरी सीता के उदात्त चरित्र की परिधि को छू गई है। साम्प्रतिक इतिहास की यह वस्तु कितनी प्रभविष्णु है, यह अस्पष्ट नहीं है।

हरियाने का नवयुवक फौज का धनी है। उसका दृष्टिकोण नवीन तथा आधुनिक है। उसकी ग्रामीणा कुलवधू को भी नई रोशनी का चस्का लगा है। नई रोशनी के आगे उसको पुराना वैभव फीका जँच रहा है। गाड़ी, जम्पर और मोटरकार का मोह इतना तीव्र है कि वह अपनी पैतृक सम्पत्ति को भी बेच देने का सुझाव देती है —

ऊँची एडी बूट बिलाती पहरन खातर ल्यादे,
जै तेरे बसकी बात नहीं तो म्हारे घरां खदा[1] दे।
घाग बक दे बिरसा[2] बेक दे मनै रमझोल घड़ा दे,
जै तेरे बसकी बात नहीं तो म्हारे घरां खदा दे।
बैल बक दे भैंस बेक दे गाड़ी जम्पर ल्यादे,
जै तेरे बसकी बात नहीं तो म्हारे घरां खदा दे।
मौहरा[3] बेक दे महल बेक दे मोटरकार मगा दे,
जै तेरे बसकी बात नहीं तो म्हारे घरां खदा दे।

इस गीत की नायिका का नये फैशन का चाव दर्शनीय है। रतजगे के इन गीतों में कुछ काव्यमय गीत भी होते हैं। एक गीत में नायिका के प्रच्छन्न रतिगोपन का एक रहस्यमयी कहानी आई है। रतजगे के एक वर्णन से रतजगे की कहानी कही जा रही है। यह नीचे लिखे गीत से प्रकट है —

१ भेज दे। २ अपनी भूमि का भाग। ३ घर।

गोरी भइ साँझ की कहाँ गइ कोइ कहाँ गमाई सारी रात।
ओ री बनजारा, नवल बनजारा टाँगा गेरिये।
राजा बहे जग के रखवाले, कोइ वहीं गमाई सारी रात,
ओ री बनजारा, नवल बनजारा टाँगा गेरिये।
गोरी न तरी हाथन महल रचाए, कोइ ना तर नैनों नींद,
ओ री बनजारा, नवल बनजारा टाँडा गेरिये।
राजा महल की खिरियों सो गइ, कोइ ज्यू ना नैनों नींद,
ओ री बनजारा, नवल बनजारा टाँडा गेरिये।
गोरा कलेजा तरी धड़क रह्या, कोइ पैर रहे थराय,
ओ री बनजारा, नवल बनजारा टाँडा गेरिये।
राजा मावत कलेजा धड़क रह्या, कोई पैर रहे थराय,
ओ री बनजारा, नवल बनजारा टाँडा गेरिये।

लोकमानस किस प्रकार रस ध्वनि समन्वित ऐसे काव्यमय अर्थों की उद्भावना कर लेता है, यह बात भी उक्त गीत से प्रकट होती है।[1] यहाँ विपरिचित प्रयोगार्थ एक संस्कृत श्लोक तुलना के लिये उद्धृत है —

नि शेषच्युतचन्दनं स्तनतटं निर्मृष्टरागोऽधरो,
नेत्रे दूरमनञ्जने पुलकिता तन्वी तवेयं तनुः।
मिथ्यावादिनि दूति बान्धवजनस्याज्ञातपीडागमे,
वापीं स्नातुमितो गतासि न पुनस्तस्याधमस्यान्तिकम्॥

हे तन्वी ! तेरे स्तनतट चंदन रहित हैं, अधरों की लाली दूर हो गयी है, आँखों से अंजन पुछ गया है और तुम्हारा शरीर भी पुलकित हो रहा है। प्रतीत होता है कि तुम वापिका में स्नानार्थ गई थी।

संस्कृत श्लोक की नायिका दूती से हार मान गयी है, परन्तु लोक-गीत की नायिका अपने प्राणवल्लभ की कचहरी से भी छूट गयी है। उस पर हार स्थापित नहीं हो सका है।

इस अवसर के गीतों में एक गीत काली गोरी स्त्री का अन्तर स्पष्ट करता है। भले ही पत्नी सुजाति, सुलक्षणा एवं सुभूषिता हो, परन्तु उसका सुवर्णा होना परमावश्यक है। इसी कसौटी पर गोरी काली नायिकाओं की परख हो रहा है —

---

1 यह गीत लेखक को 'शिक्षा-संस्कार विहीन' चमारों के रतजगे में मिला है।

बेकार उनका जीना जिनकी काली हैं लुगाइया ।
जब वो काली पानी को चालीं काले काले कलसे उनकी काली हैं सुराहिया ।
बेकार उनका जीना जिनकी काली हैं लुगाइया ।
शाबाश उनका जीना जिनकी गोरी हैं लुगाइया ।
जब वो गोरी पानी को चालीं गोरे गोरे कलसे उनकी गोरी हैं सुराहिया ।
बेकार उनका जीना जिनकी काली हैं लुगाइया ।
जब वो काली रसोई म चालीं, काले काले बेलन उनकी काली हैं रसाइया ।
शाबाश उनका जीना जिनके गोरी हैं लुगाइया,
जब वो गोरी रसोइया म चाली, गोरे गोरे बेलन उनकी गोरी हैं रसाइया ।
बेकार उनका जीना जिनकी काली हैं लुगाइया ।
जब वो काली सेजा में चाली, काले काले टायर[1] उनका कौन करे सगाइया ।
शाबाश उनका जीना जिनकी गोरी हैं लुगाइया ।
जब वो गोरी सेजां में चाली, गोरे गोरे बालक उनकी हाल[2] करे सगाइया ।

कैसा अवमूल्यन है मानव का । सगाईमात्र ही उसका चरम लक्ष्य बन गया है । यह रतनगे के गीतों का एक साधारण रूपान मात्र है । वैसे इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों का बहुत विस्तार है ।

लाडो

विवाह सम्बन्धी गीतों में 'लाडो' का अपना एक विशिष्ट स्थान है[3] । इन गीतों में कन्या के हृदय म उमड़ती हुई भावनाओं को शब्दों म चित्रित किया जाता है । जितनी रसात्मकता एवं सामाजिकता इन गीतों में मिलती है, अन्य गीतों में नहीं मिलती । बनी की मनोदशा की जीवित मूर्ति इन गीतों म अंकित होती है । इनम पूर्वानुराग से लेकर वर की छाप, भावना सुन्दर हृदया की कल्पना और शिक्षा, शिव-पार्वती की पूजा आदि के गीत होते

---

१ बालक, बच्चे । २ तत्काल, फौरन ।

३ हरियाना म इन गीतों को 'सुहाग' और 'बदड़ो' या 'बन्नी' नाम से भी पुकारा जाता है । इन चारों नामों म से लाडो और सुहाग ही अधिक प्रचलित हैं । ये गीत कन्या-पक्ष म गाये जानेवाले गीत हैं । वर-पक्ष में जो गीत गाये जाते हैं वे घोड़ी, बना, बदड़ा अथवा लाडा के नाम से विख्यात हैं । इन दोनों प्रकार के गीतों की रूपरेखा तथा विषय सामग्री पूर्णरूपेण पृथक होती है ।

है, यह कहा जा सकता है कि सुहाग के गीत सौभाग्यकांक्षिणी कन्या के मनोविज्ञान के सच्चे चित्र हैं। कन्या के विवाहित जीवन की शुभ कामना इन गीतों का उद्देश्य है। परिवार के लोगों को इन गीतों द्वारा कर्तव्य का स्मरण कराया जाता है। यह गीत वर के प्रति प्रार्थना एवं आकांक्षाओं से पूर्ण होते हैं, इनमें वर-पक्ष के सदस्यों से कन्या के प्रति उदार एवं स्नेहपूर्ण व्यवहार की कामना की जाती है। विस्तृत विवरण आगे दिया गया है।

यौवन का उभार है। हरियानी पुत्री पिता से अपनी मनोदशा का वर्णन करती है। वह नींबू तोड़ने के लिए उद्यान में गई है। उस शांत एकांत वातावरण में उसकी मनस्कामना जाग्रत होती है। साथ की सहेलियाँ अपनी सुसराल में हैं, यह भाव उसे और भी चुभता है। अंत में, लज्जावरण में ढकी दबी हरियानी कन्या कह जाती है —

> थिर बावल हो थारे के कहू,
> मन कहती नै आवै रहाण[1], निंबुआ तोड़न मैं गई।
> म्हारा जोड़ा की सारा रे,
> कोई दर्सन दे परणाय[2], निंबुआ तोड़न मैं गई।
> बेटा, थारी[3] रह मेरा धीयड़ी,
> धीरा सब कुछ होय, निंबुआ तोड़न मैं गई।
> गाम्ही भर हूँ दायजा[4],
> थारै भूरी दे हूँगा भैंस, निंबुआ तोड़न मैं गई।
> बावल[5], आग लगाऊ तेरे दायजै,
> भूरा नै ले जा चोर, निंबुआ तोड़न मैं गई।
> बावल या जोबन दिन चार का,
> बावल बाजीगर का खेल, निंबुआ तोड़न मैं गई।

युवती पिता की शिक्षा की असारता प्रकट करती है। उसे अपने अनायास उमरते यौवन का चिंता है। युवती की भावनाओं का मार्मिक चित्र है —

> बावल, जे मैं ऐसा जाणती, जोबन धरती निमाय[6],
> महंगा करके बेचती, लूण मिरच के भाव, निंबुआ तोड़न मैं गई।
> बावल, चढता जोबन न्यू चढ़ै,
> जाणों, चिणा की राम, निंबुआ तोड़न मैं गई।

---

१ लज्जा। २ ब्याह कर दे। ३ शांत। ४ दहेज की वस्तुएं। ५ पिता के लिए सबोधन। ६ जमाकर रखती।

बावल, ढलता जोबन न्यू ढले,
जाणु, चिणा की राम, निंबुआ तोड़न मैं गई ।
बावल, जै मैं ऐसी जाणती,
जोबन नै धरती निमाय,
महगा करके बेचती, लूण मिरच के भाव, निंबुआ तोड़न मैं गई ।

युवती की चिंता में विवशता मिली हुई है —

बावल छींके धरूं तो ढै पड़े,
बावल, तलै धरूं तो बिलिया खाय, निंबुआ तोड़न मैं गई ।

अपने यौवन को छींके पर धरती हूँ तो गिरने का भय है, यदि भूमि पर धरती हूँ तो बिल्ली आदि धृष्ट रसिकों द्वारा खाये जाने का डर है ।

लाडो या सुहाग गीतों की मार्मिकता उस स्थल पर अवर्णनीय है जहाँ पुत्री अपने पिता से मनोवांछित वर खोजने के लिए प्रार्थना करती है । इन गीतों का संबंध उस युग से है अथवा ये गीत उस युग के अवशेष हैं, जब कि कन्या से स्वयंवर की स्वतन्त्रता छिन गई थी । परन्तु कन्या से उसकी रुचि अभिरुचि जानी जाती थी । कहीं कहीं पर स्वयंवर की प्रथा भी लोक गीतों के झीने पर्दे के पीछे झांकती प्रतीत होती है । एक गीत में वरवंर की विशेषताएँ कन्या अपने मुख से कह रही है —

अमरबेल उदय पर छाई जी राज,
जिस तलै म्हारा लाडो खेलण आई जी राज ।
कहो म्हारी लाडो कैसा वर टूँढें ?
काला मत टूंढो कुल नै लजावैगी राज,
भूरा मत टूंढो चलताण पदमी जी जी महाराज ।
लम्बा मत टूंढो गडाण सागर¹ तोड़ै जी राज,
छोटा मत टूंढो सब दिन खोटा जी महाराज ।
इसा वर टूंढो कवर कन्हैया जी राज,
कवर कन्हैया मथुरा बन का वासी जी राज ।

एक अन्य गीत में सुखद गृहस्थी के लिए आदर्श पात्रों की कल्पना भी नहीं अनूठी है । इस गीत में राम की सुखमय गृहस्थी को ही लौकिक आदर्श माना गया है । कन्या के सहज मनोविज्ञान का विश्लेषण इस गीत की सम्पत्ति है —

---

१ शमीवृक्ष की फलियां ।

मेरा लाडू ए खड़्या हथ जोड़,
लाडो हे कुछ माँग लिए।
मेरी सीता सी बनै सास,
सुसर मेरा दसरथ सा।
मेरा बालम मिलै भगवान,
छोटा री देवर लछमन सा।
धनु या को नगरी जै राम रचा॥

यहाँ राम के मातृपक्ष में से कौशल्या, सुमित्रा तथा कैकेयी को छोड़ सन्नारी माता में सास की भावना की कल्पना अपूर्व है। किसी-किसी गीत में पाठ 'कौसल्या सी दूजी सास' भी आया है। यहाँ, इस गीत के ऊपर किसी टीका-टिप्पणी, ननु नच की आवश्यकता नहीं। आर्य जाति के संस्कार एवं उसकी परम्परा ही इसका एकमात्र आधार है।

पंजाबी लड़की ने भी इसी प्रकार वर के विषय में अपनी बात कही है —

बाबल ! इक मेरा कहना कीज।
मिन्नू राम वरवर दीजे।

इन गीतों में वर के प्रतीक राम, देवर के प्रतीक लक्ष्मण और कन्या का आदर्श सीता मानी गयी है। श्वसुर के लिए दशरथ की कल्पना है। इनमें गौरवमयी भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं मर्यादा के चित्र प्राप्त हैं।

एक अन्य गीत में साँवले वर को देखकर लाडो को क्षोभ हुआ है। वह अपने दादाजी से शिकायत कर रही है। दादा जी उसे आश्वासन देते हैं।

छज्जै तो बैठी लाडो भँवर निरखै,
दादा हो वर साँवला।
हाँ तो बिचालै लाडो ताल खुदाद्या,
न्हाया तो धोया वर ऊजला।
कस्तूरी मंगाद्यो वर कै अंग लगाद्या,
चम्मर ढुराद्या वर नै घोड़े कै।

लाडो को अंत में यह भी बतला दिया गया है कि वर का साँवलापन स्थायी नहीं अपितु अस्थायी एवं सहेतुक है —

बराती के हलकै[1] लाडो गरद उड़ै,
गरद पै उड़ै वर साँवला।

---

1 समूह, झुण्ड।

विभिन्न उपचारों से भले ही वर गौर न हो पर सामयिक सांत्वना तो समुचित ही है। केवल इच्छामात्र से वर गौरांग नहीं मिलता। भारतीय कन्या उसके लिए तपस्या करती है, साधना करती है। उसकी इष्ट हैं पार्वती जी। प्राक्काल से ही भारतीय पुत्री श्रेष्ठवर के लिए पार्वती जी की साधना करती आई हैं। सीता ने भी ऐसा ही किया था। हरियाना की लाडडो भी गौरीशंकर की उपासना में रत हैं —

> मेरी छोटी सी नन्दड़ी पारवती शिव की पूजा करती है।
> अपने बावल के बागां में जाती, फूल तोड़ कर लाती,
> फूलां का हार बनाती शिव शंकर को पहनाती है।

इन 'लाडडो' गीतों में कन्या को उपयुक्त शिक्षा भी दी जाती है। यह जीवन के नये मोड़ पर होती है। अतः उसे कुछ अनुभव बतला दिये जाते हैं। ये सुहाग गीत 'लगन' के पीछे नित्यप्रति इसी कारण से सम्भवतः गाये जाते हैं कि उनका प्रभाव 'नन्दड़ी' के मन पर स्थायी रूप से पड़ जाये। उदाहरण —

> मैं समझाऊं समझ मेरी लाडो अपना धर्म निभाया है।
> भाइ भतीजे तेरे आवें रहजा, किसनै रोकै सुणाये है।
> जोहड़ बिराणा, कुआ बिराणा नीची नजर लगाया है।
> वारी[1] सोणा बखतै[2] उठना, यो हे परण[3] निभाया[4] हैं।

हरियाना में पानी की एक समस्या है। जल के साधन पोखर और कुएँ मात्र हैं। उन स्थानों पर जाने आने के आचार की एक सुन्दर सीख इन गीतों में दी गयी है और नववधू के ऊपर तो सबका आधिपत्य होता है। उसे सबकी सेवा करनी होती है। अतः ऐसी सेवा के लिए देर से सोना, प्रातः उठना लाभकारी होता है। जीवन-दर्शन की ऐसी अनेक व्याख्याएं इन गीतों में यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हैं।

सुन्दर वरकांक्षिणी कन्या को 'गेहूँ बाजरा' भक्षण की लाभ हानियां किस प्रकार इसी ढंग से समझा दी गया हैं —

> खाने बाजरे की रोटी मन न्या साजन काले आवेंगे,
> खाने गीहां के मावर[5] फन्ने न्या साजन गोरे आवेंगे।

---

१ देर। २ शीघ्र, प्रातःकाल 'अरली इन दि मोरनिंग'। ३ प्रण, प्रतिज्ञा। ४ पालन करना। ५ मोटी मोटी रोटियां।

एक कहावत है 'जैसा खावे अन्न वैसा हो वा मन, जैसा पीवे पाना वैसी हो वा बाना'। परन्तु यहाँ तो धरती के अन्न-विशेष के महत्त्व का ही प्रकाशन हुआ दिखाया गया है। लोक गीतों की दुनिया में अन्न-विशेषों का भी विशिष्ट स्थान है।

बन्दड़ा

वर-पक्ष के गान बन्दड़ा, बन्ना, लाडा, अथवा घोड़ी के नाम से पुकारे जाते हैं। पंजाबी गीतों में तो 'घोड़ा-गीत' वर-पक्ष के सभी गीतों का प्रतिनिधित्व करते हैं। पर इधर हरियाने में इन दो प्रकार के गीतों, बन्दड़ा और घोड़ा में कुछ अन्तर आ गया है। बन्दड़ा का विषय वर के स्वभाव, रूप, गुण, शिक्षा, वस्त्र और नखरे आदि को लेकर चलता है। उसके वस्त्राभरण की गणना भी इसके अन्तर्गत आ जाती है। घोड़ी में प्रायः घुड़चढ़ी के समय के गीत होते हैं। इसी समय सेहरा या मौड़ के गान भी गाये जाते हैं। घुड़चढ़ी के एक गीत में माता एवं भगनी अपने लाडले बन्ने के प्रति अपने-अपने संबंध की महत्ता प्रकट करती हैं। यह संवादात्मक गीत बड़ा ही रोचक है। माता कहती है —

दूधी को मारू धार, गुमानी वैरण मा नै करे भूल नहीं जा।
याद दिलाऊ मैं बक आवैगा तेरा बहू रानी वैरण भूल नहीं जा।

बहन भी इसी प्रकार कहती है —

गुड़िया मैं प्यारी मन्ने लाल,
बीरा खिलाया दिन रात, बीरा भूल नहीं जा।

'घोड़ी' मथुरा की श्रेष्ठ बतलाई गई है। उसका मूल्य भी बहुत अधिक है। नौ लाख का यह घोड़ी है। दादा जी से एक ऐसी अनमोल घोड़ी की माग निम्नलिखित गीत में की गयी है —

चचल घोड़ी चादणी मथुरा तै आइ।
ले म्हारा दादा जी मोल ले थारी होय बड़ाइ।
कै लख लीली का मोल कै एक लख चुकाइ,
दस लख लीली का मोल नौ लाख चुकाइ।
चढ म्हारा बहलाना[1] एड दे अब देखू तेरी चितराइ।

ठीक है ऐसी बहुमूल्य एवं चपल घोड़ी पर वर की परीक्षा का अच्छा अवसर रखा गया है।

[1] लाड्ला, दूल्हा।

एक अन्य घोड़ी में वर के सौन्दर्य की स्पष्ट झांकी मिलती है —

घोड़ी ले दीजो दादा जी म्हारा मोल है रस घोड़िया।
अगल बगल भरी निबुआ सें,
बाका हाथ रचा चोखी मेंहदी सें,
बाका नैण घुला चोखा सुरमा सें,
बाका ग्लिभर आया चागी बनड़ी सें,
ते सें वारी मैं वारी बन्ना जी थारा रूप से रस घोड़िया।

घोड़ियों में वर की शृंगारमयी मूर्ति का खुला वर्णन आया है। इन गीतों में वर की समता साक्षात् कामदेव के साथ की गयी है।

'बन्दड़ा' गीतों में 'घोड़ी' से कुछ अलग हटा हुआ वर्णन होता है। इनमें वर की सज्जा आदि का वर्णन आ जाता है। एक बन्दड़ा गीत में अल्पवयस्का बनी की युवकवर से प्रार्थना है और साथ ही चेतावनी भी है —

हरियाला बन्ना! काची कली मत तोड़िये माली को देगी गालियां।
सहजादा बन्ना! पाकण दे रस होण दे तेरे ताईं[1] नवा[2] दूगी डालियां।

इस बन्दड़ा गीत में साफा, पाजामा, अंगूठी का वर्णन है जो वर की सज्जा के लिए आवश्यक है, परन्तु वर को इनसे भी बढ़कर एक चाहना और है। वह है बनी की —

हरियाला बन्ना! बनड़ी तो ले दूं तेरी मौज[3] की,
पिलग चढ पौढ़ता[4] क्यू नाहे।

इस गीत में 'कमसिन बाला की लता होने तक' की प्रार्थना का भाव एक प्रतीक प्रयोग द्वारा सुन्दरता से कही गई है जो बड़ी प्रभावशाली है। इसके समक्ष अच्छे-अच्छे काव्य ग्रन्थ भी फीके लगते हैं।

कुछ गीतों में आधुनिक प्रभाव भी आ गया है। ब्रह्मचर्य की महत्ता और गुरुकुल की विशेषता इनका विषय है—

चलती मोटर नैं डाटै,
यायों से निमाना काटै,
साफा बोंधे भारी जी हमारा बनड़ा।
गुरुकुल का ब्रह्मचारी री हमारा बनड़ा।

---

१ ओर, प्रति। २ झुका दूँगी। ३ इच्छा की। ४ सोना।

दुकार

दुकार जिसका नाम बारोठी भी लिया जाता है 'स्वागत प्रवेश' नाम से सबद है। इसे 'तारण चरकाना' भी कहते हैं। इस अवसर पर गीतों में प्रायः गालियां होती हैं। कहीं मां को दहड़ा[1] बतलाया गया है, तो कहीं दूल्हे को काला। देवर सेठ का नौकर कहा गया है। जिठानी दौरानी भी निन्दा का भाजना भी एक गीत में हुई है।

उतरै बन्ना पौंढ़ियों साहेजादा बन्ना,
बन्ना की मायड़ होन्नी साहेजादा बन्ना,
हाथ पसेरम बूकड़ी साहेजादा बन्ना,
देइ तुली को चवला विलाइयू तो मेरा कामण सारया।
सारा तो सारी नाम बलाइयू तो म्हारा कामण सान्या,
एसा तो कामण म्हारा राड़ घर नै मोहै।
देइ मूग का बड़ी[2] उवाट सो मेरा कामण सारया,
सारा तो सारा नाम निमाइयू तो मेरा कामण सारया,
ऐसा तो कामण म्हारा राड़ घर मैं माहैं।
विया पडला की मेंद बरसाइयू तो मेरा कामण सारया,
सारी तो सारी राड़ घर नाम भिन्चाइयू तो मेरा कामण सारया,
एसा तो कामण म्हारा राड़ घर नै सोहे।
छोटग देवर पानी पोवै बड़ा भरैगा पानी,
दूधौर लियायो झुनझुन कांके, बदडी घर की रानी।

गीत में आश्चर्यजनक तत्वों का उद्भावना बड़ा खूबी से साम हुई है। 'देइ मूग का बड़ा' समस्त वनैत (नयात) का पयात है। अनोखी भावपूर्ण है।

दुका के एक गीत में वर का फौजी आफिसर के रूप में दिखलाया गया है —

बाजा रे नगाड़ा म्हारे रणजीत का जणु हाकम आया।
अपना मोमण छोडके बनदडी ब्याहया आया॥

एक दूसरे बारोठी के गीत में, जो हमें यमुना के खादर से मिला है, वर को काला और बनी को चांद सूरज की भांति उजली दिखाया गया है। भाषा अलबत्ता हरियानी नहीं है, खड़ी बोली है —

---

१ हाथवाला, अमणशीला। २ दहीबड़ा।

नहा ब्याहू राधे नी कन्हैया तेरा काला ।
तेरा कान्हा ऐसा काला, जैसा कम्मल काला ।
मेरी तो राधे ऐसी जिसी चदा पै उजाली, सूरज पै उजाली ।
नहा ब्याहू राधे नी कन्हैया तेरा काला ।
छीन छीन दुद्ध खाय मुलक का, मक्खन खा गया सारा,
कैसे करेगा री मेरी राधे का गुजारा ।

काला काला मत करै ग्वालन मुझको जगत उजाला,
औरों क दो चार कन्हैया, मेरे तो एक राम रे खिलौना ।
नहीं ब्याहू राधे जी कन्हैया तेरा काला ॥

एक अन्य गीत म वर को भैंसा जैसा काला और वरनी को कागज से भी धोली कहा गया है । दोनों स्थानों पर उपमान लोक के सहज जीवन से लिए गये हैं —

फेरां पै ना जागी बाहण मेरा निल्कुल टाला सै ।
बारौठा पै देख लिया मेरा दख्या भाला सै ।
कागज त बी धोली बाहण, वा मोट्टे त काला सै ।
फेरा पै ना जागी बाहण मेरा निल्कुल टाला सै ।

इस गीत में दुका प्रथा की उपयोगिता के विषय म भी सकेत मिलता है । कन्या वर को फेरा सस्कार से पहिले देख लेती है ।

फेरे

फर्रा पर गाय जाने वाले गातों म कन्या के विवाह मडप में आने की कठिनाइ आदि का वर्णन है । वर बड़ी चतुराई से उन पुरुषों का प्रलोभन देता है जो वरनी के मडप म आने में बाधक हैं । वरना के दादा को वह अपनी दादी देने की बात कहता है और ताऊ के साथ ताई दिवाहने की —

मैं क्यूकर आऊ मेरा राय दुल्हया आगे मेरा दादा अड रहया ।
थरा दादे न अपणी दादी दिवादा चौंरी[1] नै रावरा जगमगा ।

मैं क्यूकर आऊ मेरा राय दुल्हया आग्गे मेरा ताऊ अडरह्या ।
थारा ताऊ न अपणी ताइ दिवाद्या चौंरी नै रावरा जगमगी ।

फेरों पर कन्यादान का शास्त्रीय क्रिया होती है और कन्यादान की महत्ता का एक लोक गीत भी अवश्य गाया जाता है —

---

1 मडप ।

"माता को दान, चाँदी को दान और कन्या को दान दुहेला हो राम ॥"

एक गढ़वाली गीत में भी कन्यादान को सभी दानों से ऊँचा बताया गया है —

दरबा धुरा जी कन्या को दान,
दाना मा कु दान होलो कन्यादान ।

गीत में आगे कहा है कि हाथी, सोना, अन्न, धन, भूमि और गो गजदान तो सब कोई कर सकता है, कन्यादान का अवसर कठिनाई से प्राप्त होता है। इस महा संकल्प के बाद विवाह पूरा हो जाता है।

फेरों के लोक-गीतों में एक स्थान पर उस समस्त क्रिया की लोकवाणी में आवृत्ति हुई है जिसे पंडित शास्त्रीय रूप से कराता है —

पहला फेरा दादा की पोतड़ियाँ,
दूजा फेरा ताऊ की बेटड़ियाँ,
तीजा फेरा बाबल[1] की बेटड़ियाँ,
चौथा फेरा चाचा की बेटड़ियाँ,
पाँचवा फेरा भाई की भणलियाँ,
छठा फेरा मामा की भाणजियाँ,
सातवें फेरे लाडो हुई परायेड़िया ।

इस गीत में 'सप्तमं सप्तरात्रिम, सा मामनुव्रता भव' वाली सातवीं प्रतिज्ञा का उल्लेख हुआ है। 'लाडो हुई ए पराई' की मार्मिकता दर्शनीय है।

गाली

हरियाना में गाली के लिए 'सीठणा' शब्द का व्यवहार होता है। ये सीठणे कई अवसरों पर गाये जाते हैं। उबटणा मलने के बाद स्नान कराते समय समधन को गालियाँ दी जाती हैं। शादियों की रात में गाली का प्रयोग होता है। 'छला' में भी अश्लील कथन के प्रसंग होते हैं। हरियाना में 'कुसुम्भा' नाम की एक प्रकार की गाली बहुत प्रचलित है। बरात की दावत के समय अनेक गालियाँ दी जाती हैं। इन गालियों का कथापट बहुरंगा है।

विवाह के इन सीठणों में प्रेमातिरेक का प्रकाश होता है। इनकी यह विशेषता है कि जिसे गाली दी जाती है, उसे भी रुचती है और सुनने वाले को भी अच्छी लगती है। वस्तुतः विनोद की पूर्णता इसी का नाम है।

१ पिता।

जब भार पड़ चुकी है और समाज ने उसे लक्ष्मी रूप में सम्मानित कर लिया है तो वह अपने कौटुम्बिक जनों स्नेह सिंचित पर औदासीन्यपूर्ण आश्वासन देती है —

> ठाडा मेरा दादा ठाडा रहिये आज की रैन पहर दोए।
> अथवा कटक ले उतरयी पार, थारा नगर सुबल बसो।
> ठाडा मेरा ताऊ ठाडा रहिये आज की रैन पहर दोए।

इसी प्रकार पिता, भाई और मामा आदि से कहा जाता है। इस गीत में नैराश्यपूर्ण भावनाओं का चित्रण हुआ है।

इस गीत के भावपक्ष पर यह विवेचना भी दी जाती है कि विवाहोपरांत कन्या का कार्य क्षेत्र विशद एवं विस्तृत हो जाता है। उसके लिए यह समीचीन होता है कि वह यथाशीघ्र अपने पुराने स्थान को छोड़ दे। अतः वह बरात वाहिनी को लेकर चली जाना चाहती है।

एक अन्य गीत में, कन्या को अपने परिजन से बड़ा मोह हो गया है। उसे संभवतः हार-जीत के गाम्भीर्य की अभी प्रतीति नहीं है। अंत में, विदा की वेला में रहस्यमयी परिस्थिति का उसे ज्ञान होता है। वह विविध प्रकार से उपयोगिता की बात कहती है, परन्तु पिता जिसे वस्तु स्थिति का पूरा ज्ञान है अपनी पुत्री की प्रत्येक बात का समाधानिक उत्तर दे रहा है। बेचारी चिड़कली विवश है। उसका जन्म का घर छिन रहा है। आज उसके मौलिक अधिकारों का कोई महत्त्व नहीं है। उसकी सेवाएँ भी अपेक्षित नहीं हैं। उदाहरण —

> तुलिया का बगला हो बाबल खिड़ियें रोस गिर्‌या।
> मेरा गाड्डा अटक्या हो बाबल तेरा महल तलै,
> दो इट कढादयो हे धीयड़ घर जा आपणे,
> मेरा डोला अटक्या हो बाबल तेरे बागां में,
> दो पेड़ कटादया हे धीयड़ घर जा आपणे।
> तेरा पनघट सूना हो बाबल तेरा धीये बिना,
> म्हारा बहुयड़ भरगी पानी हे धीयड़ घर जा आपणे।
> तेरा गोबर सुकरै हो बाबल तेरा ठाणा में,
> म्हारै चूहड़ी भतेरी हे धीयड़! घर जा आपणे।
> मैं तो गुड़िया भूली हो बाबल तेरा आला में,
> म्हारी पोती खेलैगी धीयड़! घर जा आपणे।

यह एक 'उपेक्षा गीत' है। पुत्री विवश है क्या करे! अन्त में प्रतिस्पर्धी के आगमन से उसे क्षोभ होता है और वह अपने अन्तस् में बोल गई है —

"तेरी पौली मरियो हो बाबल! मेरी टोह गई।"

हे पिता जी तेरी पौली मर जाये जिसने मेरा स्थान अपहरण कर लिया है।

अन्यत्र, एक गीत में जिक्र होता हुआ पुत्री तथा जमाई के शुभ गमन पर प्रकृति में शुभ शकुनों की माँग बड़ी ही उपयुक्त हुई है। तीतर और कोयल से शकुनकारी एवं मंगलमय शब्दों के लिए प्रार्थना है, तो सूरज से प्रखर किरणें समेट लेने और बादल से 'झीनी वर्षा' की याचना है। वायु को मन्दगति का आदेश है तो टीले-टिब्बे आदि को नीचा होने के लिए कहा गया है जिससे जमाई का पचरंग पाग दूर तक दीखे। अनेक मंगल कामनाओं से यह गान भरा है —

तीतर रे तू बायें बाहने बोल, चढ़ते जमाई का शुण मनाइये जी मैं का राज।
कोयल हे तू बागां में ना बोल, चढ़ते जमाई ने सबद सुणाइये जी मैं का राज।
सूरज हे तू बादल में बड़ जा, चढ़ दे जमाई ने लागै घामड़ा जी मैं का राज।
बादल रे तू झीणा झीणा बरस, चढ़ती लाडो की भीजे नौरंग चूंदड़ी जी मैं का राज।
आंधी हे तू झीणी झीणी चाल, चढ़ते जमाई का गरद भरै कापड़े जी मैं का राज।
थेगी हे तू ऊंची नीची हो, चन्द्रे जमाई की दीखै पचरंग पागड़ी जी मैं का राज।

लोकगीत की आत्मा का प्रकृति के साथ अनुपम तादात्म्य हुआ है।

दुल्हन की विदायगी पर गाये जाने वाले गीतों की रूपरेखा ऊपर दी गई है। यहाँ एक गीत जिसे 'सामण' के नाम से हरियाणा की समस्त जनता कन्या की विदायगी पर गाती है, दे देना असंगत न होगा। यह गीत हरियाणा का राष्ट्रीय गीत है जो विवाह के अतिरिक्त कन्या विदायगी पर सर्वत्र गाया जाता है। 'लाडली' के जाने पर जब तक यह गीत न गा लिया जाये तब तक करुणा की वह स्थिति नहीं उपस्थित होती जो पत्थर को भी पिघला दे। ऊँट पर अथवा रथ आदि में बैठा होता है। वह लाडली और धरती पर नाचे सहेलियों की एक विशाल वाहिनी अपनी मन्द गंभीर विरह व्याकुल ध्वनि से वातावरण को शोक समन्वित कर देती है। इस गीत में 'डब डब भरयाए नैण' जैसी निश्चल अभिव्यक्ति है —

म्हारे री घर म आये री बटेऊ, सामण के लाए बार।
सामण चाल पड़ी री, मेरे डब डब भरयाए नैण।

अपणी बहाण का करू घूरमा, करदयू मकर[1] कमार।
साथण चाल
अपणी बहाण का मैं दाम्मण[2] सिमायूँ, लायूँ घोट्या की लार।
साथण चाल पड़ी
अपणी बहाण को मैं चूदड़ी मगा दूँ दाहरी घोट्या की लार।
साथण चाल पड़ी
अपणी साथण का मैं कुरता सिमाय दूँ, बग्या की हयाँ लार।
साथण चाल पड़ी
अपणी साथण नै सास रै लदादयू[3] करके भयोट्या[4] साथ।
साथण चाल पड़ी
अपणी बहाण नै तावली[5] मगाल्यू, पालकै[6] छोटला[7] बीर।
साथण चाल पड़ी री, मेरे दब दब भरयाये नैण ॥

विदा होती हुई कन्या के लिए यथाशीघ्र बुलाने का आश्वासन बड़ा सतोषप्रद होता है। वह इसी आशा-सबल से अपने दुःख का विनोदन करती है।

नीचे लिखे गीत के अन्तर्गत समस्त वैवाहिक कृत्यों का समावेश हो गया है। एक प्रकार से यह गीत 'विवाह कृत्य गुम्फ' है अथवा यों कहिए एक 'श्लोकी विवाह सस्कार'। हरियाना म विवाह में पालित सभी आचार, प्रथा तथा रस्मों का क्रमपूर्वक परिगणन इस गीत में हुआ है। गीत कुछ बड़ा है।

पान सुपारी पानों का बिड़ला, पान सुपारी पानों का बिड़ला।
उमराव बनी का बर ढूण्ण निकला, सरदार बनी का बर ढूण्ण निकला।
आग्य ढूंण पाछय ढूंणे ढूंणे गड गुजरात धणी।
एक सहर राजल्पा बा पाया, उसम दुल्हया राव बा धीमत सै।
बाबा सत्त सुहा बराता ऊ सैण्या मैं सन घणा।
सुणो राम सुण मेरी बतिया रापा बर बागा म आया।
बागां आया म्हारे मनभाया कोयल सबद सुणा न्या।
सुणो राम सुण मेरी बतियां रा ावर सीमा म आया।

१ बढ़िया। २ सुन्दर लहगा। ३ भेज दूँ। ४ बहनाइ। ५ यथाशीघ्र। ६ भेजकर। ७ छोटे भाइ को।

सीमां आया म्हारे मनभाया निपजे सातों नाज घणा।
सुणो राम सुण मेरी बतियां राजावर गोरवे[1] आया।
गोरवै आया म्हारे मनभाया लम्बा चरह[2] बिछा दिया।
लम्बा-लम्बा चरह बिछाया ओछा सजन बुला लिया।
सुणो राम सुण मेरी बतियां राजा वर महरों में आया।
महरों आया म्हारे मनभाया पलिया थींद्[3] सराहय दिया।
सुणो राम सुण मेरी बतियां राजावर तोरण[4] आगे आया।
तोरण आया म्हारे मनभाया साली थींद सराह दिया।
छोटी साली बड़ा साली करैं आरता सीम्[5] सीम्र होय रही।
जगमग जगमग करैं सेहरा मोती की लड़ झूम रहा।
सुणो राम सुण मेरी बतियां राजावर फेरों में आया।
फेरों आया म्हारे मनभाया लम्बा चरह बिछाय दिया।
लम्बा-लम्बा चरह बिछाया ओछा सजन बुला लिया।
चार भाव की चारों खूंटी कान्हो सुत चुराय लिया।
हथला[6] में हाथी दिया वर कन्यादान म कट दिया।
सुणो राम सुण मेरी बतियां राजावर जीमण आया।
जीमण आया म्हारे मनभाया सोरया थाल परोस दिया।
छोटा लाडू बड़ा लाडू और मट्ठल्[7] घेर घिराली[8] कौन गिने।
मंगोड़ी दधकौड़ी पापड़ और इमरती कौन गिने।
बड़ा-बड़ा पिहाण[9] परोस्या दो दो आगल मिले घणी।
सुणो राम सुण मेरी बतियां राजावर निद्रा पर आया।
निद्रा पर आया म्हारे मनभाया लम्बा चरह बिछा दिया।
लम्बा-लम्बा चरह बिछाया ओछा सजन बुला लिया।
घड़ा टोकणा सब कुछ दैदयो भड़ा बड़ा कौन गिणै।
देग्वारा[10] थाली देदयो पल्ला बल्ला कौण गिणे।

उपरोक्त गीत में विवाह का विशद वर्णन आया है। लोकमेधा अपनी अभिव्यक्ति के लिए किस प्रकार शब्द-निर्माण में प्रवीण है, यह 'घेर घिगली' आदि शब्दों से प्रकट है। लोक में इसके लिए कभी चिन्ता नहीं व्यक्त की गई कि अमुक वस्तु को क्या कहना चाहिए अथवा 'कारकार' अमुक

१ ग्राम समीप। २ चारपाई। ३ बनड़ा। ४ द्वार। ५ होड़ा होड़ी। ६ हथलेवा। ७ मैदा की खांड लिपटी मिठाई। ८ जलेबी। ९ पहाड़सा। १० बड़ी थाली।

वस्तु को क्या नाम देते हैं। यहाँ तो वस्तु का स्वरूपात्मक प्रतिबिंब शब्द व्युत्पत्ति का कारण बनता है। इसी कारण लोक में कभी भी शाब्दिक अभिव्यक्ति के लिए अड़चन नहीं होती। लोक ने पक्षी के सदृश एक वस्तु (हवाई जहाज) को आकाश में उड़ते देखा, सहसा बिना किसी के पूछे-ताछे 'चीलगाडी' नाम दे दिया। कितना सार्थक है यह नाम। इसी प्रकार, साईकिल को 'पैरगाडी' नाम देना, लोक की अपनी सूझ है।

मृत्यु-गीत (Elegy)

लोक प्रतिभा ने अपनी शक्ति का प्रकाश जन्म और विवाह के गीतों के रूप में अधिक किया है। इन दो संस्कारों एवं अवसरों के गीतों से आगे बहुत थोड़े गीत रह जाते हैं। मृत्यु जो अन्तिम संस्कार है, उस पर भी कुछ गीत गाये जाते हैं। मृत्यु शोक और विषाद का समय होता है, अतः इस अवसर के गीतों में शोकभाव ही भरा होता है।

मृत्यु-गीतों का उर्दू साहित्य में विशेष स्थान है। वहाँ 'मरसिया' नाम के गीत साहित्य की विशेष निधि है। मृत्यु-गीतों का वर्ण्य विषय मृतव्यक्ति के गुणों का परिगणन होता है।

हरियाना में मृत्यु पर जो गीत गाये जाते हैं वे बड़े ही मर्मस्पर्शी एवं हृदय द्रावक हैं। 'जामाता की मृत्यु पर' एक गीत जो इधर मिला है, बड़ा ही शोकपूर्ण है —

नन सौं घर तैं लीकड्या गभरू[1] सेर जुआन,
होगया साथ कसीया गभरू सेर जुआन, हाय हाय गभरू सेर जुआन।
सामने बोल्ली कोतरी दहणै बोल्या काग, गभरू सेर जुआन, हाय हाय गभरू सेर जुआन।
मारी क्यां ना कोतरी तैंन मारया क्यों ना काग, हाय हाय बनड़ा पेरया शाला।
कनस तेरी बांधी पालकी कनस तेरा करया सिगार, हाय हाय गभरू सेर जुआन।
भइया बांधा पालकी भइया नै करया सिगार, हाय हाय गभरू सेर जुआन।
सुसरा का प्यारा हाय, साला का प्यारा हाय हाय,
घुड़ला की सोभ्या हाय, गाथ की सोभ्या हाय हाय,
मेरी बेसर टूटी हाय, सासड़ का प्यारा हाय हाय।

कैसी व्यथा है! जो समस्त शृंगार का आश्रय था वह उठ गया। सासु जिसके सुख सौविध्य के लिए प्राणपण से चेष्टा करती थी वह आज जगल

---

१ हृष्टपुष्ट।

वासी हो गया है। किंतु जीवनसाथी हृदयेश के रूठ जाने पर तो विश्व का संसार ही समाप्त हो जाता है। विगत परिस्थितियाँ आन्तरिक कष्ट का हेतु हो जाती हैं। वियोग व्यथिता नायिका को अनन्त वियोग की स्मृति काँटे सी चुभती है।

'विधवा विलाप' नामक नीचे दिये गये गीत में विषाद की रेखाएँ उभरी हैं —

अरे मेरे करम म मारे जल गये अम्ब मोभी सुहाग[1]।
अरे मेरे करम के मुनरा मर गए, रूठ गये मनिहार।
बहू री मेरी मन रोवै मुझे लगारी लाल का शोग।
मा धरा धौले धौल पहरा कापड़े राडा मेर भरतरे।
अरी चलै सूरता के मरी नाग उसकावे।
अरी देही जले जैसे काच की भट्टी पकावे।
अरी बिच्छू ने मारा डंक लहर क्यू ना आवै।
अरी अपणा मन समझावण लागी, दो नैना म भर आया पाणी।
ए सास्सू जब घसू महल में दरा बिछौना सूना।
कुछ एक दिनों की ना है मुझे सारे जनम का रोना।
अरे बाबी भी जब रही बाप के मन्ने सोच कुछ ना था।
इब क्यू कटें दिन रात मन्ने कोए एक दिना की ना से।

सारा आद्योपान्त शोक के ताने-बाने से बुना हुआ है। "मेरी पंचतत्वयष्टि भट्टी के सदृश जल रही है, यमराज रूपी बिच्छू ने डंक मारा है!" ये शब्द पढ़कर किसका हृदय खंड-खंड न हो जायेगा? 'अरी बिच्छू ने मारा डंक लहर क्यू ना आवे' कितनी मर्मभेदक उक्ति है। वियोग के क्षण ही जब कल्पसम हो जाते हैं तो जीवन पर्यंत का यह वियोग कितना मर्मान्तक है, पढ़कर रोमांच हो जाता है।

गृहलक्ष्मी का प्रताप जब घर से उठ जाता है तो उसके की गृहस्थी चौपट हो जाता है। उसकी आशा आकांक्षा धूल में मिल जाती हैं। जीवन में प्रेमसिंचन समाप्त हुआ कि नीरसता छा जाती है। प्रेयसी के रत्नाभरण वियोग चिनगारी को प्रज्वलित करते रहते हैं, उसके प्राणों को कचोटते हैं।

विधुर की अवस्था का दिग्दर्शन इस गीत में हुआ है —

टाल खगोल्या पगड़ जिब सोया,
एक बार सुपने में आइये, प्यारी ए।

---

१ सुन्दर वस्त्र।

पौराणिक एवं ऐतिहासिक विधुर राम तथा अज का विलाप साहित्य की निभुति है। अन्यान्य कवियों ने भी अपनी विरह विदग्धा भावना का प्रकाश इस विधि से किया है। कविवर बच्चन का "निशा निमन्त्रण" किस पाठक के अंतर् को नहीं छू जाता है।

विवाहिता कन्या की मृत्यु पर गाये जाने वाला एक गीत यहाँ दिया जाता है —

हाय हाय बागों की कोयल।
कन तेरी बाधी पालकी बागा की कोयल,
कन तेरा करया सिंगार, हाय हाय बागा की कोयल।
देवर जेठ नै बाधी पालकी, हाय हाय बागा की कोयल।
दयौर जिठाणिया नै करया सिंगार, हाय हाय बागों की कोयल।
मार मड़ास्सा[1] ले गये बांगा की कोयल,
बिन्द्राबन के पास हाय हाय बागा की कोयल।
बिन्द्रावन की गोपनी क्यों कहैं या कौण रावण आये, हाय हाय बागा की कोयल।
अपणा बाबल की धीयड़ी बागा की कोयल।
अपणा भाइया का भाग है बागा की कोयल, हाय हाय बागा की कोयल।
बाबल की धोवड़ हाय, भइयां की बाहण हाय।
भाजजा की प्यारी हाय, परहण[2] की प्यारी हाय।
पीहर की प्यारा हाय, हाय हाय बागा की कोयल हाय, हाय हाय बागों की कोयल।

माता पिता का आगना आज लाडली पुत्री के बिना सूना है। बागा की कोयल आज उड़ गई है। विह्वल हृदय का करुणा गीत के शब्द शब्द से ध्वनित हो रहा है।

दादर से प्राप्त 'विवाहिता पुत्री की मृत्यु' के गीत में पुत्री की अंगयष्टि का बड़ा आलंकारिक वर्णन हुआ है[3] —

मूगफली सा आगुली, हाय हाय बच्ची सोने की चिड़िया।
नाक सुए की चोंच, हाय हाय बच्ची सोने की चिड़िया।
होठ पीपल के पात से, हाय हाय बच्ची सोने की चिड़िया।

इस गीत की अन्तिम पंक्तियां ये हैं —

थारा तेरा बाबल फिरैं उदास, तेरी अम्मा जोहै बाट।
भैया तेरा लेन आया, एक बार नेहर जाय।

---

1 रावण। २ पति। ३ इस गीत की भाषा खड़ीबोली है, हरियानी नहीं है।

पापी ताइ तेरी रोवें, उनको रोकन धाय।
गहनों का डिब्बा भराधरा है, एक बार पहर दिखाय ॥

लाडली की छवि आँखों के सामने घूम रही है। अन्तिम पंक्तियों में माता या वेदना का बाँध टूट गया है।

ख ऋतु-गीत

दूसरे प्रकार के लोक-गीत वे हैं जो मौसमी गीत के नाम से विख्यात हैं। ऋतुएँ आ-आकर प्रकृति का शृंगार करती हैं। आरम्भ में नूतन पत्र, पुष्प, फलादि से वसन्त नववर्ष का स्वागत करती है। ग्रीष्म की भी अपनी छटा होती है, वर्षा की अपनी बहार होती है और शरत् समय में पर्व पर त्योहार आकर इस ऋतु की पावनता बढाते रहते हैं। ऋतुओं द्वारा सुसज्जित ऐसी ही पृष्ठभूमि में मानव मनोवेग तरंगित होते हैं।

जीवन के प्रमुख प्रचलित संस्कारों—जन्म, विवाह और मृत्यु—पर प्राप्त गीतों का अध्ययन विगत पृष्ठों में हुआ है। इस स्थान पर, ऋतु सम्बन्धी गीतों का परिचय प्राप्त करेंगे। ये ऋतुगीत भी कई प्रकार के होते हैं। इन्हीं गीतों में ऋतु विशेष में होनेवाले उत्सव, पर्व, त्योहार और देवी देवताओं के गीतों की अन्तर्निहिति हो जाती है। अतः हम भिन्न-भिन्न कालों में मनाये जानेवाले उत्सव-पर्व-त्योहारों की तथा देवता विशिष्ट के धोकने (पूजने) की चर्चा करते आगे बढ़ेंगे। फलतः यह कहा जा सकता है कि ऋतु-विशेष की छाप तथा महत्ता इन्हीं उत्सवादि के रूप में मानव ने अपने जीवन में अंकित कर ली है। सावन में तीज और झूले की सरसता एवं फाल्गुन में होली की मादकता दर्शनीय है। स्पष्टता के लिए हरियाना प्रदेश में आकर मनाये जानेवाले पर्व उत्सवों का विवरण दे देना असंगत न होगा। संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है —

महीना	पर्व-त्योहार	विवरण
चैत	१ नौदुर्गा (व्रत पूजन)	चैत कृष्ण अष्टमी नवमी को व्रत रखते हैं। महिलाएँ गीत गाती हैं और मन्दिर में दुर्गा की पूजा करती हैं। देवी की यात्रा भी इसी महीने में होती है।
	२ गणगौर पूजन अथवा गौरी पूजन	चैत शुदी में हरियाना में गणगौर पूजन होता है। चैत शुक्ल ६ से पूर्व मिट्टी के गौरा और गौरी बनाये जाते हैं, उनका प्रति-

		दिन पूजन होता है। सभी नगर (मुहल्ले) की स्त्रियाँ मिलकर गीत गाती हैं। अन्तिम दिन वस्त्राभरण से सजाकर नृत्य गीतादि के साथ उन्हें सर-सरितादि में बहा देते हैं। इस उत्सव के द्वारा बालिकाएँ पार्वती के आदर्श पर शिव जैसे प्रतापी नर की कामना करती हैं।
ज्येष्ठ	निर्जला एकादशी	ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी के दिन व्रत रखा जाता है। खरबूजा, पंखा और सुराही आदि दान देते हैं।
आषाढ	माता पूजन आदि	महीने के प्रति सोमवार को माता पूजी जाती है।
श्रावण	तीज या हरियाली तीज	यह बालिकाओं के विनोद का समय होता है। मेंहदी रचाई जाती है, चूड़ियाँ पहनी जाती हैं और झूला झूल कर सायंकाल में तीज खेलती हैं। इसके लिए पहिले से भीगे चनों को डलिया में रखकर सभी स्त्रियाँ शृंगार करके मिलकर गाँव के बाहर जाती हैं। इस बाहर जाने को 'बिरवा बोना'' कहते हैं। वहाँ भीगे चनों को कैर की डालियों में पिरोते हैं और महिलाएँ नृत्य इत्यादि करके आनन्द मनाती हैं। भीगे चनों को एक दूसरे के मुँह पर मारती हैं। घर आ जाती हैं। चनों को तेल में तलकर खाती हैं।
	रक्षा बन्धन या श्रावणी (गुरु पूर्णिमा)	राखी बाँधी जाती है। घरों में उगाये हुए जौ की खूद सिर पर और कानों पर रखी जाती है। सूण (द्वार पर 'राम राम' लिखे जाते हैं) काढे जाते हैं। श्रावणी को गुरुओं की पूजा होती है। दक्षिणा दी जाती है। यज्ञोपवीत बदले जाते हैं।
भाद्रपद	कृष्णाष्टमी	व्रत रखा जाता है। पलने में कृष्ण को बच्चा बनाकर झुलाते हैं।

	गूगा नौमी	बगल से 'ऊगा' पाड़कर लाते हैं। दीवार पर गूगा का चित्र हल्दी से बनाया जाता है। उसके सामने स्याही से काला सांप बनाया जाता है। ऊगा को दीवार के साथ रख देते हैं। पूजा की जाती है।
	अनंत चौदस	"अनंत" हाथ के बाजू में बांधा जाता है।
आश्विन	कनागत	प्रथम १५ दिन कनागत के होते हैं।
(आसोज)	दशहरा	शुक्ल पक्ष के प्रथम नौ दिन तक दुर्गा पूजन होता है तथा दसवें दिन विजयादशमी मनाई जाती है। अस्त्र और पुस्तकें पूजी जाती हैं। नीलकंठ अर्थात् गरुड़ सखा के दर्शन शुभ माने जाते हैं।
	साँझी	दशहरे तक साँझी रखी जाती है। पूजा होती है। यह देवी का रूप है। गाँवों की सभी जातियाँ इसे पूजती हैं। निर्धन कन्याएँ साँझी मांगती हैं और गीत गाती हैं।
	शरत्पूर्णिमा	खीर बनाई जाती है। चांद की चांदनी में रखकर प्रात खाते हैं।
कार्तिक	कार्तिक स्नान	पूरे महीने प्रातःकाल स्नान किया जाता है। स्वामी कार्तिकेय की पूजा करते हैं। गीत, भजन और हरजस गाये जाते हैं। तुलसी की पूजा होती है।
	करवा चौथ और अहोई आठें	कहानी होती है, अहोई के दिन स्याहू का कठला बनाते हैं।
	देव उठान	कार्तिक शुक्ल एकादशी को देवोत्थान होता है। रात्रि में थाली बजाते हैं। देवताओं की पूजा होती है। गन्ने आदि से पूजे जाते हैं।
मार्गशीर्ष पौष (मगसिर पोह)	माघ स्नान और गीत	तिलों की लकड़ियों को जलाकर सेंकते हैं। तिलधानी खाते हैं।

	संक्राति	मकर संक्राति हरियाना का बड़ा भारी पर्व माना जाता है। इसकी पृष्ठभूमि धार्मिक पावनता से ओत प्रोत है। प्रात काल उठकर स्नान करते हैं। ब्राह्मणों के यहाँ सीदा देते हैं। तिल के लड्डू बाँटते हैं। भिखारियों को पूड़े और गुलगुले खिलाते हैं। गौओं के लिए चारा डालते हैं। तिल की लकड़ियों से तापते हैं।
	बसत पचमी	बसत रखा जाता है। बसती कपड़े रगते हैं।
फाल्गुन	होली	होली का विशेष जोर उत्तर पक्ष म होता है। माघ सुदी पूर्णिमा को पडित भैर का डडडा गाँव के बाहर कालर में गाड़ता है। एक महीने तक गाँव वाले उस डडे के चारों ओर लकड़ियाँ डालते रहते हैं। उत्तर पक्ष में होली गाइ जाती है। इन्हीं दिनों रात्रि को ढप बजाते हैं और मिलकर धमाल गाते हैं।

होली वाले दिन सायकाल स्त्रियाँ श्रृगार करके, साथ में जो की थाल, कच्ची सूकड़ी, पानी का लोटा, चावल, हल्दी और गोबर की बनी ढाल तलवार आदि ले जाती हैं। होली के स्थान पर सभी बैठकर कच्ची सूकड़ी का तागा पूरती हैं और हल्दी चावल से पूजन करती हैं।

लड़कियाँ दो दलों में बँटकर आमने-सामने खड़ी होती हैं। बीच में एक रेखा खींच ली जाती है। एक बार एक ओर की लड़कियाँ कधा पकड़कर गाती हुई रेखा तक आती हैं और फिर गाती-गाती वापिस लौट जाती हैं। दूसरे पक्ष की लड़कियाँ भी इसी प्रकार करती हैं। रात्रि में शुभ लग्न पर होली मनाइ जाती है। अगले दिन 'धूलन्डी' को

स्त्रियाँ ताल में आग लाती हैं। होला बनाते समय पुरुष आग में बाल भूनते हैं, परिक्रमा करते हैं। गाँगोड़ की जय बोलते हैं।

यह प्रचलित तथा महत्त्वपूर्ण त्योहारों का साधारण विवरण मात्र है। अन्य अनेक कम महत्त्व के त्योहार भी मिलते हैं जिनकी स्थानीय प्रकृति होती है।

१. देई देवता आदि के गीत

हरियाणा में चैत्रमास में देवी देवताओं की पूजा का विशेष महत्त्व होता है। हरियाणा के विभिन्न शहर व गाँव इन देवी देवताओं के स्थान हैं। इन स्थानों पर चैत्रमास में मेले भरते हैं। यों तो ये मेले तिथि-विचार पर वर्ष भर लगते हैं पर चैत्र की जो महत्ता देवी पूजने की होती है, वह किसी दूसरे महीने में नहीं होती। इन देवी देवताओं के दो रूप स्पष्ट देखने में आते हैं—एक, रोग सम्बन्धी देवी देवता तथा अन्य—शक्ति सम्पन्नता के देवी-देवता।

रोग सम्बन्धी देवता—ऐसे देवी देवता जिनका सम्बन्ध किसी रोग से माना जाता है इन्हें शीतला माता अथवा मसानीवाली देवी, बड़ीमाता और मसाणी के नाम से पुकारते हैं। इनके पूजने के दिन चैत्र में सोमवार और कहीं-कहीं मंगलवार हैं। कहीं बुद्ध भी पूजने का दिन होता है। जिला गुड़गाँव में ग्राम कुतबपुर में 'बुढ़ामाता' का मेला प्रति बुद्धवार को भरता है, जबकि गुड़गाँव की ललिता माता प्रति सोमवार को पूजी जाती है। चैत्र के महीने में माता पोजने का विशेष माहात्म्य है। इस मास में इन स्थानों पर विशेष मेले भरते हैं। रोहतक जिले में बेरी कस्बे में बेरी वाली माता, जिसका नाम भीमेश्वरी है, का बड़ा भारी मेला चैत्रमास में लगता है।

इन विशेष माताओं के अतिरिक्त वह मंदिर सबसे शुभ माना जाता है जो चौराहे पर बना है। ऐसे मन्दिरवाली माता चौगानवा अथवा चौरान्ना माता कहलाती है।

शीतला एक संक्रामक रोग है और प्रायः बालकों को होता है। सावधानी बरतने पर १५ दिन में स्वतः शांत हो जाता है। औषधोपचार न होने से यह रोग देवता रूप माना जाता है। आरम्भ से लेकर अंत तक इसका शीतल उपचार होता है, घर के अन्दर और बाहर पानी छिड़का जाता है। मीठी बासी रोटी खाई जाती है। इसी शीतोपचार के कारण से माता का नाम शीतला माता प्रचलित हुआ है। डा० तारापुर वाला का मत है कि

मनुष्य की प्रवृत्ति होती है कि वह नीच तथा भयकर वस्तु को किसी सुन्दर नाम से पुकारने का प्रयत्न करता है। जैसे रसोई बनाने वाले ब्राह्मणों को महाराजा, (बहुत बड़ा राजा) कहकर पुकारते हैं। इसी प्रकार इस भयकर बीमारी को शीतला कहने लगे हों तो कुछ आश्चर्य नहीं। शीतला देवी को माता देवी भी कहते हैं।

शीतला देवी का वाहन गधा है और कुम्हार (जाति विशेष) देवी का भक्त और प्रिय पात्र समझा जाता है। माली मालिन भी देवी के भक्त और सेविकाएँ बतलाई गई हैं। नीम के वृक्ष के नीचे माता का निवास माना जाता है। अत भक्त नीम की टहनी से रोगी को झाड़ता है जिससे शीतला माता प्रसन्न होती हैं। इस रोग में परिवार वालों को भी कई प्रकार के नियमों का पालन करना पड़ता है। यथा—कपड़े न चढ़ाना और पूरी परावठा आदि न बनाना। झौंक देना भी निषिद्ध माना जाता है। अधिक न बोलना हितकर होता है।

हरियाना में धूलेंडी से अगले दिन बासोड़ा बनाया जाता है। बासोड़ा में पहिले दिन का ठंडा खाना खाया जाता है। माता पूजी जाती हैं। यह गीत गाया जाता है जिसमें बसन्ती माता की स्तुति गाई गई है —

माता किन तेरा बाग लगाइया, किन तेरा सींजा[1] मैं पेड़।
माली के ने बाग लगाइया, मालण सींजा मैं पेड़।
सोवे सोवे हे मजेन्दरा राणी नींद में।

माता कनतेरी डाल झुकाई भरकन तेरा तोड़ा से फूल,
माली का ने डाल झुकाई, मेरी मालन तोड़ा फूल।
सोवे सोवे हे मजेन्दरा राणी नींद में।

माता! बालक खेल गाल में खेलें चढ़गा ताप।
माता! लकड़ती माता ज्यू लकड़ जांगो बाजरीय[2] की डुनियार[3],
सोवो सोवो हे बसन्ती राणी नींद में।

माता! भरदी माता ज्य भरे जयों पीलहा[4] की डुनियार,
सोवो सोवो हे गुमानण राणा नींद में।

माता! ढलदी माता ज्यू ढल जयों पाले[5] ज्यू झड़जाय,
सोवो सोवो हे बसन्ती राणी नींद में।

माता से प्रार्थना की गई है कि वह बालक को सुहाता सुहाता कष्ट दे और भरती हुई ऐसे भरे जैसे पील (पीलु) के दाने में शनै शनै रस भरता

१ सींचना। २ बाजरे की। ३ सदृश। ४ पील, पीलु वृक्ष का फल। ५ बेर के सूखे पत्ते।

है और इसका [illegible] पूर्ण [illegible] है। इस [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] है।

मारवाड़ी में भी एक गीत में माता देवी की विशेष पूजा [illegible] तथा माता के लिए वस्तुओं का [illegible] आता है —

मैया सांची! [illegible] मनाई जी।
मैया! [illegible] [illegible][1] [illegible][2]।
मैया! हरिया [illegible][3] [illegible]।
मैया! [illegible] का [illegible] पूर बनाई[4] जी।
मैया! लाल [illegible] सजाई जी।
मैया! मालिया का पौढ़णे में [illegible] सुवाई जी।
मैया! [illegible] दूध पिलाई जी।
मैया! बाबा [illegible] खिलाई जी।

इस गीत में माता देवी के [illegible] पालने—पूजा और सेवा आदि है। [illegible] आया है। इस गीत की भाषा राजस्थानी से प्रभावित है जिसका [illegible]।

माता की पूजा गायन के द्वारा का विशेष महत्व है। शीतला माता के एक गीत में बालक के लिए गुणगाना (पूजा) का विशेष वर्णन आया है। उदाहरण —

कहूँ कराइ गुनगुना मरल[5] माता धीवड़ जाय।
इब म्हारी माडल माता राखजो होय, [illegible][6] पूजा नहीं ममाय।

इसी चैत्रमास में "नौ दुर्गा पूजा" का शास्त्रीय विधानयुक्त व्रत भी किया जाता है। इन नौ दिनों में शक्ति की पूजा की जाती है। दुर्गा सप्तशती का पारायण विशेष फलदायक होता है। स्त्रियाँ व्रत रखती हैं और देवी के गीत गाती हैं। इस अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं वे स्फुट और कथात्मक [illegible] नाना प्रकार के होते हैं। स्फुट गीत घरों में महिलाएँ प्रतिदिन गाती हैं। भक्त लोग [illegible] सिर पर देवी आती है, [illegible] दिन प्रायः प्रबन्ध गीत गाते हैं। रात्रि वाले गीत बड़े-बड़े होते हैं और पूरी पूरी रात गाये जाते हैं। अतः यहाँ देवी के स्फुट गीत ही उद्धृत किये जाते हैं। इनमें देवी की यात्रा, महत्ता और सुन्दरता का वर्णन होता है —

१. पूर्ति करना। २ एक परिमाण विशेष। ३ पूजेंगे। ४ द्वार। ५ भोग, उपयोग करो। ६ शीतला माता। ७ दादाजी।

मनुष्य की प्रवृत्ति होती है कि वह नीच तथा भयकर वस्तु को किसी सुन्दर नाम से पुकारने का प्रयत्न करता है। जैसे रसोइ बनाने वाले ब्राह्मणों को महाराजा, (बहुत बड़ा राजा) कहकर पुकारते हैं। इसी प्रकार इस भयकर बीमारी का शीतला कहने लगे हों तो कुछ आश्चर्य नहीं। शीतला देवी का माता देवी भी कहते हैं।

शीतला देवी का वाहन गधा है और कुम्हार (जाति विशेष) देवी का भक्त और प्रिय पात्र समझा जाता है। माली मालिन भी देवी के भक्त और सेविकाएँ बतलाइ गइ हैं। नीम के वृक्ष के नीचे माता का निवास माना जाता है। अत भक्त नीम की टहनी से रोगी का झाड़ता है जिससे शीतला माता प्रसन्न होती हैं। इस रोग मे परिवार वालों को भी कइ प्रकार के नियमों का पालन करना पड़ता है। यथा—कढ़ाई न चढ़ाना और पूरी परावठा आदि न बनाना। छौंक देना भी निषिद्ध माना जाता है। अधिक न बोलना हितकर होता है।

हरियाना में धूलेंडी से अगले दिन बासोड़ा मनाया जाता है। बासोड़ा में पहिले दिन का ठंडा खाना खाया जाता है। माता पूजी जाती है। यह गीत गाया जाता है जिसमें बसन्ती माता की स्तुति गाइ गइ है —

माता किन तेरा बाग लगाइया, किन तेरा सींचा[1] से पेड़।
माली के ने बाग लगाइया, मालण सींचा से पेड़।
सोवे सोवे हे मजेन्दरा राणी नींद म।
माता कनतेरी डाल झुकाइ बरकन तेरा तोड़ा से फूल,
माली का ने डाल झुकाइ, मेरी मालन तोड़ा फूल।
सावे सोव हे मजेन्दरा राणी नींद में।
माता! बालक छैल गाल म खेलें चढ़गए ताप।
माता! लकड़ती माता ज्यू लड़इ जनो बाजरीये[2] की डुनियार[3],
सोवो सोवो हे बसन्ती राणी नींद में।
माता! भरदी माता ज्यू भरे जणों पाल्हा[4] की डुनियार,
सोवो सोवो हे गुमानण राणी नींद में।
माता! ढलदी माता ज्यू ढल जणों पालें[5] ज्यू झड़जाए,
सोवो सोवो हे बसन्ती राणी नींद में।

माता से प्रार्थना की गइ है कि वह बालक को सुहाता सुहाता कष्ट दे और भरती हुइ ऐसे भरे जैसे पील (पीलु) के दाने में शनै शनै रस भरता

१ सींचना। २ बाजरे की। ३ सदृश। ४ पील, पीलु वृक्ष का फल। ५ बेर के सूखे पत्ते।

देवी के पर्वत चढती चौलण पाट्या ए मा।
कै गज चौलण पाटया, कै गज रह्या ए मा।
दस गज चौलण पाट्यो, नौ गज रहिया ए मा।
काहे की तो सुई री मंगाऊ, काहे को तागो ए मा।
सार की तो सुई री मगाऊ, रेसम को तागो ए मा।
सीमै दर्जी को री ये ये वहौत विनाणी[1] ए मा।
पहरै म्हारी आदमदानी सदा मनमानी।
धौला गढराणी भगता की ब्याइ ए मा।
देवी के नाक म बसर सोहे, मेरा मन लग्या ए मा।
घ्याये सोनी का री बेट्टा वहौत विनाणी ए मा।
पहरै म्हारा आदमदानी सदा मनमानी,
धौलागढ राणी भगता की ब्याइ ए मा।

रतजगे वाले दिन जो गीत गाये जाते हैं वे लम्बे होते हैं। उनकी रूप-रेखा कुछ विस्तार लिये होती है। इन गीतों में वर्णन की विशदता होती है। देवी के प्रति बलिदान देवी की महिमा मन्दिर की शोभा और लहौकड़िया (लांगुर वीर) के पराक्रम का वर्णन रहता है।

देवी के धामों में नगरकोट का विशेष महत्त्व है, वहाँ पर 'ज्वालाजी' की प्रधानरूप से मानता होती है। ज्वाला जी ही 'मन्त्रमयी देवता' रूप से अन्य सभी धामों में दर्शन देती हैं और भगतों की साध पूरी करती हैं। हरियाना में बेरी[2] वाली भीमेश्वरी जगदम्बा ज्वाला जी का ही रूप मानी जाती हैं। एक गीत में भक्त प्रार्थना करता है

मुझ सेवक की लाज राख जगदम्बा बेरी वाली है।
मात सत हितकारी करी तन्नै सिंह सवारी है।
छत्र सुवरण साजै नगरकोट तन मेल क दिन बेरी थान विराजै।

एक स्थान पर स्तुति में माता जगदम्बा भीमेश्वरी के दो सेवकों का वर्णन आया है। ये दो सेवक लौंकड़ियाँ और भैरूँ जो हैं जो बड़े बलशाली हैं। ये माता के इंगित पर कार्य करने को तैयार रहते हैं —

धनी सुन्दर गल में माल मात, तेरी सुन्दर सिंह सवारी है।
सुन्दर लौंकड़िया खड़ा तेरे सुन्दर भैरो बलकारी है।

---

१ चतुर। २ एक प्रसिद्ध ग्राम, जिसमें भीमेश्वरी देवी का मन्दिर है। यह स्थान रोहतक के समीप है।

आगे रुक सकें। यह भी एक विनयावनत भक्त की भाँति ध्वजा नारियल लेकर सम्मुख आता है। देवी का ऐसा तेजोमय रूप भक्त को श्रद्धावनत किये है। उदाहरण —

नगरकोट में वासा राखो,
तेरी कला कुल जग ने जाणो।
कथा बखाणे बिरमा ज्ञानी,
दुआर तेरे पीपल री खड़ा।
मुगला उतरया सतलज नदी,
सूती हो उठ जाग री नदी।
लौकड़ लहीं खण्या है कणी।
जिय जाला नै चक्कर चलायो,
फौज मुगल की काट बगाइ[1]।
मुगल कहै म्हनै बकसो माई।
निय जाला की करी चढ़ाई।
खीर खाड के थाल भराए।
धजा नारियल लेकर आये।
मुगला भेंट ले फैरी आया।
जिन लौकड़ नै कथा सुनाइ।
सूती उठ जागरी माइ।
मुगल भेंट भवन तेरे में लहै[2] री खड़ा।
धजा नारियल भेट चढ़ाइ।
मुगल कहै म्हनै बकसो माइ।
लौकड़िया तरे अगवाणी खड़ा।

माता की आरती में गाये गये एक छन्द में माता के भक्तों के (कृपा-पात्रों के) नाम आये हैं जिन्होंने देवी के तेज का परिचय प्राप्त किया है और माता के नाम पर अनेक अपूर्व एवं अलौकिक कार्य किये हैं। माता का पराक्रम दर्शनीय है —

पहल सारदा तोहें मनाऊ तेरी पोथी अधक सुनाऊं।
इतना धनकसग्या भाइ, राजा चढ़ भारत करे माइ।
अधविच गेरया भाग नीच घर नीर भराया।
थारे भगत ने बकूरा[3] बढ़ाया,
धर रे दीनानाथ पार तेरा ना किसी ने पाया। १।

१ काट डाली, मार डाली। २ लिए हुए। ३ रजा।

जल सूख चीर वह बैल आया न्हा के।
चार दिसा का बोझ धर्या सिर ऊपर व्हा के।
कहैं पिरजो सुनो सत जी जड्यो मन्द का अर्थ लगा क।

ऐसे ही लम्बे गीतों में देवी के दर्शन के लिए यात्रा का वर्णन भी रहता है। यात्रा की कठिनाई यात्री का ध्यान विशेष आकर्षित करती है।

देवी के गीतों में लहोकड़िया का वर्णन आया है। यह देवी का सेवक दिखाया गया है। इसम देवी क प्रकार से अनोखी शक्ति का समावेश हुआ है। ब्रज में प्रचलित नगरकोट की यात्रा से सम्बन्धित रतजगे के जो गीत अथवा भेंट मिले हैं उसमें वात्सल्य भाव एव पतित्व भाव दोनों के दर्शन होते हैं। ब्रज के इन गीतों म लागुर परपुरुष के रूप में भी आया[१] है।

अनौखी मालिनी मना करै तौ डरपै का एक।
तेरे हाथ को मूदरा लागर दियौ गढ़ाइ। अनौखी मालिनी
तेरे सिर की चूदरो, मेना लागुर दइ रगाइ। अनौखी मालिनी

हरियाना के गीतों में ल्होकड़िया क साथ सेवक रूप म भैरों भी आया है। यह अलौकिक शक्ति सम्पन्न देवी के गणों में से एक है।

हिन्दू वर्षारम्भ के पहिले नौ दिनों में देवी पूजन होता है परन्तु इन नौ दिनों म भी तीसरे दिन का महत्व विशेष है। इसी दिन गणगौर का त्यौहार मनाया जाता है। गणगौर की पूजा सामूहिक रूप से होती है।

गणगौर का प्रसग धार्मिक व्रत कथाओं म आया है। एक कथा के अनुसार इस दिन पार्वती का विवाह हुआ था। कुछ लोगों की धारणा है कि इस दिन मुकलावा (गौणा) हुआ था। आज भी बालिकाएँ गौरी के आदर्श को सामने रखकर आदर्श पति प्राप्ति के लिए कामना करती हैं और इसीलिए गणगौर अथवा गौरा को पूजती हैं। सुख-सौभाग्य की आकांक्षा इस उत्सव क मूल में है। आशुतोषा गौरा अपने भक्तों की प्रार्थना को व्यर्थ कदापि नहीं जाने देती, यह बालिकाओं का अटल विश्वास है।

वैशाख-ज्येष्ठ म निर्जला एकादशी आदि एक दो व्रत तो होते हैं परन्तु आनुष्ठानिक कोई कृत्य नहीं होता। एकादशी माहात्म्य वाला एक गीत उदाहरण क रूप में नीचे दिया जाता है —

बरत करो ए राधा एकादशी को,
राम जी क नाम बिना मुक्ति किसी को।

१ डा० सत्येन्द्र—'ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन' पृष्ठ २५८-५९।

पुरपेयाजन से मुक्ति मिलती है। पाप-कार्य बधन तथा अधम योनियों के कारण है। आगे की पंक्तियों में बड़ा दक्षता से यह समझाया गया है कि एकादशी व्रत न करने से पाप का वृद्धि होती रहती है और परिणामत नीची योनियों में जन्म मिलता है। भिन्न-भिन्न योनियों का हेतु भी कथा में दिया गया है —

गोन्हे बाद पन्ना में बैठे,
चुगली चाल्ती वो करमी।
ऐमा ऐमी करणी मैं बण गन्की,
राल गलिया में वो फिरमी।
साव बदाद की चोरी करसा,
चोर चोर घुगचा[1] बाइ मरमी,
एमा-ऐमा करया में बन मिरकला[2] भित्ता पर वा फिरमी।
अपर खेत में काकड़ा तूसा क गैल म् स्यारमी,
एमा एसी करणा मे वो गादृड बण नेला में फिरमी।

इन गीतों के साथ भजन भी गाये जाते हैं जिनका स्नान के साथ विशेष महत्त्व होता है।

आषाढ माता पोकरण का महीना है। देवा-देवताओं के थानों की यात्राएं फिर आरम्भ होना हैं। शीतला माता का विशेष पूजा होता है। प्रायः महीने के प्रति सोमवार को माता का पूजा होता है।

२. भिन्न-भिन्न मासों में गाये जाने वाले गीत

श्रावण मास वर्ष के अन्य महीनों में अपना विशेष स्थान रखता है। इस महीने में मनोरंग तरंगित होने लगते हैं और कामनियों के मधुर कंठ से फिर गान स्रोत फूट पड़ते हैं। इनकी अपनी एक विशेषता यह होती है कि इनके गाने के लिए अधिक साज-बाज की आवश्यकता नहीं होता, कंठ ही मधुर स्वर-लहरी उत्पन्न कर देता है।

क श्रावण

श्रावण की मादकता पशु-पक्षी, नर-नारी और प्रकृति पर प्रत्यक्ष लक्षित होता है। मेंढकों का टरटर, मयूर की पीहू पाहू और वन उपवन की निराली छटा मन का मोह लेता है। समस्त प्रकृति उल्लासमय है। श्रावण के गीतों

---

1 गदहा। 2 छिपकली।

जल सूख चीर वह चैल आया कहां के।
धार दिसा का बोझ धरया सिर ऊपर ला के।
कहैं पिरनो सुनो मत जी जड़यो सन्द का अर्थ लगा कै।

ऐसे ही लम्बे गीतों में देवी के दर्शन के लिए यात्रा का वर्णन भी रहता है। यात्रा की कठिनाइ यात्री का ध्यान विशेष आकर्षित करती है।

देवी के गीतों में लहौकड़िया का वर्णन आया है। यह देवी का सेवक दिखाया गया है। इसमें देवी के प्रताप से अनोखी शक्ति का समावेश हुआ है। ब्रज में प्रचलित नगरकोट की यात्रा से सम्बन्धित रतजगे के जो गीत अथवा भेंट मिले हैं उसमें वात्सल्य भाव एवं पतित्व भाव दोनों के दर्शन होते हैं। ब्रज के इन गीतों में लांगुर परपुरुष के रूप में भी आया[१] है।

अनौखी मालिनी मैना करै तो करवे का एक।
तेरे हाथ की मूदरा लांगर दिया गढ़ाइ। अनौखी मालिनी
तेरे सिर की चूदरो, मेना लांगुर दइ रंगाइ। अनौखी मालिनी

हरियाना के गीतों में लहौकड़िया के साथ सेवक रूप में भैरों भी आया है। यह अलौकिक शक्ति सम्पन्न देवो के गणों में से एक है।

हिन्दू वर्षारम्भ के पहिले नौ दिनों में देवी पूजन होता है परन्तु इन नौ दिनों में भी तीसरे दिन का महत्व विशेष है। इसी दिन गणगौर का त्यौहार मनाया जाता है। गणगौर की पूजा सामूहिक रूप से होती है।

गणगौर का प्रसंग धार्मिक व्रत कथाओं में आया है। एक कथा के अनुसार इस दिन पार्वती का विवाह हुआ था। कुछ लोगों की धारणा है कि इस दिन मुकलावा (गौणा) हुआ था। आज भी बालिकाएँ गौरी के आदर्श को सामने रखकर आदर्श पति प्राप्ति के लिए कामना करती हैं और इसीलिए गणगौर अथवा गौरा का पूजना है। सुख सौभाग्य की आकांक्षा इस उत्सव के मूल में है। आशुतोषा गोरा अपने भक्तों की प्रार्थना को व्यर्थ कदापि नहीं जाने देती, यह बालिकाओं का अटल विश्वास है।

वैशाख-ज्येष्ठ में निर्जला एकादशी आदि एक दो व्रत तो होते हैं परन्तु आनुष्ठानिक कोई कृत्य नहीं होता। एकादशी माहात्म्य वाला एक गीत उदाहरण के रूप में नीचे दिया जाता है —

बरत करो के राधा एकादशी को,
राम जी के नाम बिना मुक्ति किसी को।

---

१ डा० सत्येन्द्र—'ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन' पृष्ठ २१८-१९।

पुण्योपार्जन से मुक्ति मिलती है। पाप-कार्य बंधन तथा अधम योनियों के कारण हैं। आगे की पंक्तियों में बड़ी दक्षता से यह समझाया गया है कि एकादशी व्रत न करने से पाप की वृद्धि होती रहती है और परिणामतः नीची योनियों में जन्म मिलता है। भिन्न भिन्न योनियों का हेतु भी कथा में दिया गया है —

गोद्दे बाध पच्चा में बैठे,
चुगली चाट्टी वो करमी।
ऐसा एसी करणी में वण गन्की,
हाथ गलिया म वो फिरमी।
साध बगद को चोरी करमी,
चोर चोर चुगचा[1] माइ भासी,
ऐसा-ऐसी करणी में बन सियकली[2] भित्तां पर या फिरसी।
अपणा खेत म काड्डी दूसरा क खेत सू ल्यासमी,
ऐसा ऐसी करणी म वो गाहड़ वण खेतां में फिरसी।

इन गीतों के साथ भजन भी गाये जाते हैं जिनका स्नान के साथ विशेष महत्व होता है।

आषाढ़ माता श्रावण का महीना है। देवी देवताओं के धामों की यात्राएं फिर आरम्भ होती हैं। शीतला माता की विशेष पूजा होती है। प्राय महीने के प्रति सोमवार को माता की पूजा होती है।

२ भिन्न भिन्न मासों में गाये जाने वाले गीत

श्रावण मास वर्ष के अन्य महीनों में अपना विशेष स्थान रखता है। इस महीने में मनोवेग तरंगित होने लगते हैं और कामनियों के मधुर कंठ से फिर गीत स्रोत फूट पड़ते हैं। इनकी अपनी एक विशेषता यह होती है कि इनके गाने के लिए अधिक साज-बाज की आवश्यकता नहीं होती, कंठ ही मधुर स्वर-लहरी उत्पन्न कर देता है।

क श्रावण

श्रावण की मादकता पशु पक्षी, नदी नद और प्रकृति पर प्रत्यक्ष लक्षित होती है। मेंढकों की टरटर, मयूर की पीव् पीव् और वन उपवन की निराली छटा मन को मोह लेती है। समस्त प्रकृति उल्लासमय है। श्रावण के गीतों

---

१ गठरी। २ छिपकली।

की सृष्टि इसी पृष्ठभूमि में होती है। इस मास में मिलनेवाले गीत इतने अधिक तथा अनेक रंगी हैं कि यदि इस मास को गीतों का मास कहा जाये तो अप्रगल्भ न होगा।

श्रावण में झूले का विशेष महत्त्व है। छोहरियाँ तचे तचे पूहों से उसका स्वागत करती हैं और वयस्काएँ रेशम डोर और चदन डाल से। सभी महिलाएँ एव बालिकाएँ झूलने के लिए लालायित रहती हैं। ये झूले विशेष दृश्य दिखाते हैं। कहीं पग बन्धाई जाती है तो कहीं सहेलियाँ आपस में झूलती दीखती हैं। काली घटा का उभार, घनगर्जन और विद्युत्सजन विप्रयुक्त स्त्री पुरुषों के मनोजाकात हृदय में हूक उत्पन्न कर देता है। प्रोषितपतिका ललनाएँ इस सुहावने मास में अपने स्वामियों की प्रतीक्षा करती हैं।

श्रावण सयोग करानेवाला मास माना जाता है। इसी मास में पति परदेश से लौटकर प्रेयसी से मिलता है। बहिनें भाइयों के यहाँ समादृत होती हैं। माताएँ अपने पुत्र पुत्रियों को देख सुख अनुभव करती हैं। इस मास के गीत सयोग और वियोग के दो भागों में आन्दोलित होते हैं। दोनों पक्षों का हृदयहारी वर्णन इन झूले के गीतों में आया है, परन्तु विप्रलम्भ की जो मार्मिकता बन पड़ती है वह सयोग की नहीं। वियुक्तावस्था की कारुणिक स्थिति श्रावण की सरसता एव उन्मत्तकारिता से मिलकर द्विगुणित हो जाती है। मयूर, मजीर और पपीहा सभी कामियों के हृदयों को सालते हैं।

इस मास में प्राप्त हुए गीतों की सख्या अधिक है, इन गीतों के रंग भी विविध हैं। उन पर विस्तृत रूप से विचार करना आवश्यक है।

श्रावण के गीतों में ऋतु शोभा का वर्णन विशेष रहता है। रेशम पाट की बरही, चदन की पटरी, वर्षा की रिमझिम, कोयली, मेघों का झुकझुक बरसना और चम्पा बाग में पञ्जाली पाटक का विशेष ध्यान आकर्षित करती हैं। इन गीतों की यह विशेषता है कि इनका आरम्भ सदैव ऋतु शोभा से होता है।

हरियाना कृषि प्रधान प्रांत है। यहाँ की बहू बेटियों के हृदय में सावन की पुकार है परन्तु अत्यधिक कृषि कार्य उनका उत्साह भंग कर देता है। बाला के प्रस्तावों पर वज्रपात का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है —

आया री सासड़ सावन मास, सावन मास बेद बग दे री पीला पाट की।
आया तो बहु मेरा आवण देय, जाय बगड़यो नी अपणे बाप कै।
आया री सासड़ सामण मास, सामण मास, पन्डी घड़ा दे री चन्दन रूख की।
आया तो बहु मेरी आवण दे, हे जाय घड़इयो री अपणे बाप के।

आया री सासड़ सामण मास, सामण मास हमनै खंदा[1] दे री म्हारे बाप कै।
[illegible] कै तो बहुआरी मेरी का काम, कातक आइयो री बपचो बाप कै।
कुण तो बहू मेरी करेगा लुलाव[2] कोण जै पीस्सै घर का पीसणा जै।

वस्तुत इन नैतिक कार्यों की अधिकता ने मानव को हार्दिक सरसता से रहित कर दिया है।

श्रावण की मल्हारों में कोरा वर्णन ही नहीं होता। यहाँ हृदय-रस भी घुलकर आया है। सावन का महीना एक ही है परन्तु उसमें माता का दुलार और सास के उपालम्भपूर्ण व्यंग्य-भरे तानों का पर दो प्रभाव छोड़ते हैं। एक गीत में पीहर और सासरे की तुलना हरियाणी बालिका अपने मुख से कर रही है। इस गीत की उपमाएँ बड़ी स्वाभाविक हैं —

हरा ये जरी का हे मा ! मेरी चुन्दड़ी जी,
हे जी कोई दे भेजी मेरी माय इन्द राजा नै झड़ी ए लगा दई जी।
पल्ला तो पल्ला[3] हे मा मेरी घुघरू जी,
ए जी कोई बीच मायड़ का लाड इन्द राजा नै झड़ी ए लगा दई जी।
धरू तो धरै हे मा मेरी चुन्दड़ी जी,
ए जी कोई प्यारे मायड़ के बोल, इन्द राजा नै झड़ी लगा दई जी।
पीहर मैं बेटी हे मा मेरी न्यू रह जी,
ए जी कोई ज्यूं खिलड़ी बीच घी, इन्द राजा नै झड़ी लगा दई जी।

चित्र का दूसरा पक्ष

सासड़ नै भेजी हे मा मेरी चुन्दड़ी जी,
ए जी कोई दे भेजी मेरी सास इन्द राजा नै झड़ी लगा दई जी।
पल्ला तो पल्ला हे मा मेरी छेकले[4] जी,
ए जी कोई बीच सासड़ के बोल[5], इन्द राजा नै झड़ी ए लगा दई जी।
ओढ़ तो देखै हे मा मेरी छेकले जी,
ए जी कोई रह कै सासड़ के बोल, इन्द राजा नै झड़ी एक लगा दई जी।
सासरे मैं बेटी हे मा मेरी न्यू रहै जी,
ए जी कोई ज्यूं रै कड़ाई बिच तेल, इन्द राजा नै झड़ी ए लगा दई जी।

मा और सास की बड़ी मार्मिक तथा रहस्यपूर्ण तुलना इन पंक्तियों में की गई है।

श्रावण शुक्ला तृतीया को बालिकाएँ 'तीज' अथवा 'हरियाली तीज'

---

१ भेज दो। २ सलाह। ३ पल्ले, किनारे। ४ छिद्र। ५ व्यंग्य।

नामक एक विशेष उत्सव मनाती हैं। इस शुभ पर्व पर बहुधा कन्याएँ अपनी माता के यहाँ जाती हैं। जो नहीं जा पाती उन्हें "सिंघारा" भेजा जाता है। एक ऐसे ही गीत म भाइ बहन के यहाँ सिंघारे की कोथली लेकर गया है। बहन बड़ी दुर्बल है। भाइ कारण पूछता है —

माट्ठी तो कर देरी भोस्सी कोथली, सामण री आया गजता।
जाऊगा री मेरी बे'ने के देस, सामण आया री गुनता।
किसीया क दु ख म बे'ने दूबली[1],
किसीयां न बोरले स बोल, सामण आया गुजता।
सासड़ पे दु ख में दूबली,
नणदी ने बोरले सें बोल।

भाइ तत्काल ही उपाय बतलाता है —

नणदी ने भेजागा सासरै,
सासु नै थक[2] लगा राम।

हरियाने की छोरी का सास और नणद का दु ख है। इसी कारण यह दुबली है, परन्तु कुरु प्रदेश की बाला के विरुद्ध तो समस्त परिवार ही है। उसे अपने प्रियतम से भी आशा रश्मि कभी कभी मिलती है। कौरवी बाला, अत अपने भाइ ने समक्ष सब का खुलकर परिचय देती है —

सासू तो बीरा चूल्हे की आग,
ननद भादों की बीजली।
सुसरा तो बीरा काला सा नाग,
देवर साप सपोलिया।
जेठ बोरे बीरा बाडू का डक,
उपले पाथन जेठ नाण जी।
राजा तो रे बीरा मेंहदा का पेड़,
कद्री रचै रे कद्री ना रच॥

वास्तव में, अपने प्राणवल्लभ के औदासीन्य पर अवश्य ही बाला का क्षोभ होगा। महदी के पेड़ से प्रियतम की तुलना करके एक गंभीर मर्मभेदी पीड़ा की ओर संकेत किया गया है।

एक नायिका सखियों के साथ नृत्य रही है। उसका पति परदेश में है। वह मैले भेष से है। इसी बीच एक बटोही आता है और उस मृगनैनी से

१ दुर्बल। २ उग लेगा।

प्रस्ताव करता है कि वह उसके साथ चले—"गेर घुमाणा लो नया म्हारी मृगानैणी चलो हमारी साथ।" मगर लाज के बोझ में दबी नायिका उसके प्रस्ताव को ठुकरा देती है —

लाजेगा पीहर सासरा लाडलड़ी नन्दलाल।
लाजेगा बापल धमरी पटऊ। नीला राता देनी माय।

इसी प्रकार वह परिवार के सभी लोगों के मान की रक्षा करती है। यह एक लम्बा गीत है। पर अन्त में जब ज्ञात होता है कि वह नायक था तो नायिका पर वज्राघात होता है और वह पछताती रह जाती है —

साप तो दीखूँ म्हाल मर हल्ला दिया ना जाय।
मुट्ठी तो घालूँ योन पै मुट्ठी तो आवै रेत॥

एक मल्हार में नायिका के मान का चित्र बड़ी कुशलता से आया है। नायिका सावन के मनभावन समय में बाग में बंगला छिपा देना चाहती है और नारंगा ऐसा बनवाना चाहती है जिसमें चन्द्र सूर्य का प्रकाश पड़े। जब उसकी इच्छा पूरी नहीं होती तो वह रथ जुड़वा कर अपने पिता के यहाँ चली जाती है। जेठ, देवर, ससुर सब उसे मनाने जाते हैं। वह उन्हें प्रलोभन देती है, मगर अपने आग्रह पर अड़ी रहती है। अंत में जब धनी (पति) जाता है और वचन पूरा करने को कहता है तो वह लौटती है। गीत कुछ बड़ा है —

बागाँ बंगला छिपा दे मेरे मारूजी रख्या दे राज चांद सूरज मोही बारणा[1] जी।
बागां बंगला ना छिपै गोरी म्हारा रे नहीं रावै राज, चन्द सूरज मोही बारणा जी।
रथ जुप अश्व जुड़ाऊ मेरे मारूजी चली जाऊँ राज अपणे बाप के जी।
सुसर मनावण आया मेरे मारूजी चलो क्यूँ ना राज, चाल बहु घर आपणे जी।
अपणे सुसरे नै चादर दिवा दूँ मेरे मारूजी,
नहीं चालूँ राज मेरे बैठे सेती ओलणा[2] जी।
जेठ मनावण आया मेरे मारूजी चालो क्यूँ ना राज, चाल बहु घर आपणे जी।
अपणे जेठ नै घुड़ला दिवा दूँ मेरे मारूजी,
नहीं चालूँ राज तेरे बीरण सेती ओलणा जी।
देवर मनावण आया मेरे मारूजी चलो क्यूँ ना राज,
चाल भाभी घर आपणे जी।
अपणे देवर नै बहुवा विवाह दूँ मेरे मारूजी,
नहीं चालूँ राज थारे बीरा सेती ओलणा जी।

१ द्वार। २ उपालम्भ।

सभी व्यक्तियों को उनके उपयुक्त वस्तुओं का प्रलोभन देकर नायिका ने अपना पक्ष प्रबल कर लिया है। अंत में, पति देव स्वयं आते हैं और मनाकर लाते हैं —

कथ मनावण आया मेरी सायबों, चलो क्यूं ना राज,
घाल गोरी घर आपणे जी।
बागां बंगला छिवा दे मेरे मारू जी रस्ता दो न राज,
चांद सूरज सौंही बारणा जी।
बागा बगला छिवा दूं गोरी मेरी री रस्ता दूं राज,
चांद सुरज सौंही बारणा जी।

यह लोक में तिरिया हठ का एक सफल उदाहरण है।

एक गीत में पौराणिक मान का चित्र आया है। राधा ने मान किया है। उसे शिकवा है कि जिन सखियों को कृष्ण ने फूल दिये हैं उन्हा के पास जायें। कृष्ण बाग से पुष्प चुनकर लाये हैं। उन्होंने पुष्प बांटे हैं, मगर राधा को उसका भाग नहीं मिला है। फूल पहिले ही समाप्त हो गये हैं। राधा को कृष्ण के इस व्यवहार पर क्षोभ हुआ है। वह उत्तर देती है —

ए जी जिन थारे झोलीभर फूल,
उड़े पड़ सो रहो भगवान्।

कृष्ण प्रतिकूल परिस्थिति के प्रति राधा का ध्यान आकर्षित करते हैं —

ए जी रिमझिम बरसे सैं मेघ,
बाहर भीजैं एकले भगवान्।

इसी प्रकार कृष्ण अंधेरी रात में डर की बात कहते हैं, पर राधा ने बड़े कौशलपूर्ण ढंग से उत्तर दिया है —

ए जी थारे धारे साथिया का साथ,
कैसे डरपो एकले जी भगवान्।

इतना ही नहीं राधा को कृष्ण द्वारा घर की दीवारें छूना भी सह्य नहीं है उसे भय है कि भित्ती पर की चित्रकारी भ्रष्ट हो जायेगी और चौतरा पर चढ़ने से वह उपड़ आयेगा —

ए जी म्हारे चौंतरे पग ए ना देय,
लीप्या पोत्या ऊपड़ भगवान्।

राधे के ये सरीखे विचार कृष्ण को रास आते हैं।

ए जी इतनी सी मुख केन सिवन महिला ऊतरे भगवान्।

राधा को पछतावा हुआ। वह भी तुरत कृष्ण की खोज में निकली। बहुत छानबीन के बाद कृष्ण आते हुए मिले। दोनों पक्षों से अपना अपना कठिनाई एवं शिकायत पेश की गई। कृष्ण ने तर्क दिया —

ए जी एक धणा होय दाल,
दले पाछे ना मिले भगवान्।
ए जी एक दही दूजे दूध,
पढे पीछे ना मिले भगवान्।
ए जी एक पुरुष दूनी नार,
छने पीछे ना मिले भगवान्।

राधा ने अपील की है —

ए जी एक धणा दूनी दाल,
पिसे पीछे रल मिले भगवान्।
ए जी एक दहा दूजे दूध,
विलए[1] पीए रल मिले भगवान्।
ए जी एक पुरुष दजी नार,
मनाए पाछे मन ए भगवान्।

अंत में कातरावस्था राधा के मुँह में आकर बोल उठी है —

एजी रोवे राधे जार बेजार,
आसू गेरे मोर ज्यू भगवान्।
ए जी राधे हसे बारबार,
खिमन हसे ना सरे भगवान्।

ठीक है, घर में झगड़े होते ही आते हैं। दो भांडे होते हैं तो खटकते ही हैं। पर पति-पत्नी का सम्बन्ध बड़ा कोमल तथा निर्मल है, जो "खिमन हसे ना सरे" उक्ति से और भी मार्मिक हो गया है।

एक गीत में बड़ा मर्मस्पर्शी कल्पना है। पतिदेव ने सुख सुविधा की सामग्री एकत्र की है। छाया के लिए वृक्ष लगाया और दूध के लिए बछिया पाली है। बड़ी साधना के उपरान्त में चाहें समर्थ हुए हैं, पर भाग्य का खेल कि उनके निकलने के समय प्राणदेव परदेश चले हैं। कैसी करुणा है?

लाय चले थे भवर हो पीपली, हाली कोण हो गई गहरी छाय।
बैठन की रुत चाले नाकरो।

[1] बिलोये जाकर।

छोड़ चले थे भवर हो थाछड़ी, हाजी कोए हो गई खागड़ गाय ।
दुहन की रुत चाले नौकरी ।
पाच बरस की भवर हो ब्याही, हानी कोए हो गई सेर जुआन,
पालन[1] की रुत चाले नौकरी ।

नायिका की इस दयनीय दशा को सुनकर नायक काल-यापन की युक्ति पेश करता है —

चरखा लाद् हे गोरी रग रगीला, हानी कोए पीढी लाल गुलाल ।
सायनों में बैठी गोरी कातियो ।

परन्तु नायिका को इससे सतोष कहाँ ? वह कह गई है —

चरखा तोड़ भवर हो चौपड़, हानी कोए पीढ़ा क करू ग्यारह टूक
सग तै थारी चालगी जी ।
भारी बरण बदन के चीर[2] चस जे, हानी सगधारा चाल ,
घर पर नहीं रहूगी जी ।

नायिका अपना सर्वस्व एव अस्तित्व नायक के सुख सौविध्य के लिए अर्पण करने को उद्यत है —

जोटा भारी[3] भवर हो मैं बणू जे, हानी कोए बणज्या रेशम डोर ।
तिस लगे जब पिया हो पालियो जे ।
लाडू जेलबी भवर हो मैं बणू जे, हानी कोए बणज्या कूट सुहाल ।
भूख लगे जब पिया हो खा लियो जे ।
बादल बीनली भवर हो मैं बणू जे, हानी कोए बणज्या बसल घटा ।
धूप पड़े जब पिया हो छा करूँ जे ।

एक गीत में नायिका से अनुचित प्रस्ताव किया गया है परन्तु उसने अपनी विलक्षण तत्बुद्धि से प्रस्तावक को निरुत्तर कर दिया है —

काला साँप का नाड़ा घड़वा दे,
अम्बर के सी चुन्दड़ रगवा दे
मारामभार कुत्ता मिलवादे,
बाझ लुगाई का दूध मगवादे,
कुआरी कन्या का छोरा मगवादे,
फिर चालूगी साथ हो मनवा ।

अनुचित प्रस्ताव की रक्षा करते हुए प्रेमिका ने जिस बुद्धि कौशल से

1 विदा कराने की, सगाने की । २ निपन्ना । ३ सुराही ।

उसे दुराया है, उसका पागम भी हमारे शिष्ट साहित्य में तो कम से कम नहीं है। मनसा की पराजय का चित्रण नीचे की पंक्तियों में हुआ है —

ये दो जोड़ा हाथ है गोरड़ी मत चालो म्हारे साथ है गोरड़ी।
हुय क्यो जोड़े हाथ हो मनरा, ले चालो ना साथ हो मनरा॥

श्रावण के गीतों में कुटुम्ब के गीत भी आते हैं। लरकरिया पति के पास बुलावे का संदेश भेजा जाता है। परन्तु वह नाना प्रकार के बहाने बनाकर टाल देता है। अंत में गृहस्वामिनी के मरण का वृत्तांत सुनकर उसे चिंता होती है। वह घर लौटता है तो रहस्य खुलता है —

झुक जाय बादला बरस क्यूं ना जाय। टेर।
उतरयूं मा बरसी बादली नित म्हारा पीरा री देस।
उतमत बरसै ए बादला नित म्हारा पिया परदेस।
तन्नू तो भीने हलकता मन्नू की रेशम डोर। झुक जाय बादली

विप्रयुक्ता ने निराली युक्तियां प्रस्तुत की हैं, परन्तु नायक पर उनका कोई प्रभाव नहीं होता।

चार टका दें गांठ का जे कोए लसकर जाय।
वै लरकरिया से न्यूं कहो थारी घर बाइया की ब्याह।
काला पीला जी कापड़ा कोए कन्या सोय परणाय[1]।
चार टका दे गांठ का जे कोए लसकर जाय। झुक जाय बादला
वै लश्करिया नै न्यूं कहो थारी माय मर्‌या घर आय।
माय नै दाबो बानूरेत में ऊपर सूल बबूल[2]। झुक जाय
चार टका दें गांठ का जे कोए लसकर जाय।
वै लरकरिया नै न्यूं कहो थारै कुंवर हुयो घर आय। झुक जाय
कोए चावल घी घणो बैंगी बचर खिलाय।
चार टका दें गांठ का जे कोए लसकर जाय।
वै लरकरियां नै न्यूं कहो थारी जोय मर्‌या घर आय। झुक
जोय नै दाबो चम्पा बाग में ऊपर साल दुसाल। झुक

नायक को अब गृहस्थी की चिंता है —

जोय मरी घर खोसरो म्हारा कुणवा बाराबाट।
कागद पटकया जैं चौंतरै वा उठ्यो धोती झाड़। झुक जाय
पश्यो राजा जी थारी चाकरी पश्यो थारा देस। झुक

---

1 विवाह कर देना। २ सोखे तीखे कांटे।

क दु:ख छोड़ी से चाकरी, कै दु:ख छोड़ा से देस।
माय मरी छोड़ी चाकरी जोय मर्‌या छोड़ा देस। झुक जाय

चिंताग्रस्त नायक घर लौटता है। पणिहारी गाँव की सीमा में मिल जाती है। कुशल ज्ञात करता है —

कुआ की पणिहारणी म्हारा घर की कुशल बताय।
बालक फूलें जी पालण थारी जोय रसोइया जी बीच।
थारी मायड कातै जी कातणा, बहण कसीदा जी हाथ। झुक

रहस्य खुल जाता है —

बै छलियाई ने छल कर्‌या छल कर लिया मैं बुलाय।
छलकरा ना तो के करां थमछाया परदेस।
झुक जाय बादली बरस क्यू ना जाय॥

यह गीत एक दु:ख-सुखांत नाटक बन गया है। वियोग दु:ख संयोग सुख में बदल गया है और संयोग सुख में आजीविका त्याग के दु:ख अंश मिले हैं।

'पणिहारी' के गीतों में रोमांस के चित्र आये हैं। हरियाने में संकेत स्थान कूपवापी जलस्थल ही हैं। इन्हीं स्थानों पर नायिका को नायक मिला है, परन्तु दुर्भाग्य से जब वह पहचानने में विलम्ब कर गई है तो उसे पछतावा होता है —

ऊँमें ऐसी नाचली ए सासड़ री,
पकड़ूं थीं घोड़े की लगाम।

नायिका ने नायक को खोजा है पर असफल रही है —

पाया में छाले पड़ गये ए सासड़ री नैणा में रम आई नींद।
पायां में मंधा[1] लायले ए बहु हीरेलाल नैणा में सुरमा री सार।

पत्नी का शृंगार पति के आश्रय से है। अत: वह निराश होकर उत्तर देती है —

किस पर मंधा लायल ए मामड़ री किस पर सुरमा री मार।
किन पर मेंधा लायले ए बहु हीरे लाल मन पर सुरमा री सार।

सास ने वधू को सान्त्वना दी है कि चित्त स्थिर कर लेने से सब ठीक हो जाता है। पर उस बाला को इससे संतोष कहाँ? वह तो प्रिय के वियोग में पागल हो गई है। उसे तो खाट ही आश्रय प्रदान करता है —

घाल खगोला ढै पड़ी ए मामड़ री किसा ए न पाये थारे लाल।

१ मेंहदा।

यहाँ 'टैपड़ा' में कितनी विनम्रता है ! कैसी करुणा !

एक अन्य गीत में चम्पा बाग में पताली पड़ा है नायिका माता के निषेध करने पर भी सखियों के साथ झूला झूलने जाती है। एक परदेशी से चार आँखें हो जाती हैं। विवाह का प्रसंग होता है और सरल अबोध ग्रामबाला ठगा जाता है। विवाह मंडप में रहस्योद्घाटन से वज्रपात होता है। नायक निष्ठुर उत्तर देता है —

> धोहरी¹ ना मेरा मर गया मस्यर यार,
> म्हारे मन भाई म्हारी घर की नार,
> यम से काहमे दोपड़² भागयो³ जी।

पुत्री फिर अपनी माता की शरण जाती है —

> मम्मा री ! मरू के जीवू मेरी मा !
> राजा के कहिए रानी दूसरी।

माता शुभकामनाएँ करती है —

> येगी री तेरी मर ए बजा³, राजा की मरिया रानी दूसरी।

एक अन्य गीत में मनिहार से विलक्षण चूड़ियों की माग की गई है जो पतिदेव के अंग प्रत्यंग एवं वस्त्राभरण से न मिलती हों। हरी श्वेत आदि साधारण रंग वाली चूड़ियों के अतिरिक्त अरबता रंग की चूड़ी नायिका पहरेगी। इन गीतों को 'मनरा' अथवा 'मनिहार' नाम से पुकारा जाता है। इनमें पति सम्बन्ध की अनूठी व्यंजना रहती है —

> हरी ए कजीरी मनरा ना पहरू, मनरा हरा ए म्हारा राजा जी का बाग
> सुलतानी जी का बाग।
> मनरा तो मेरी जान चुडला तो हाथी दांत का।
> काली ए कजीरी मनरा ना पहरू, मनरा काला ए म्हारा राजा जी का सिर,
> सुलतानी जी का सिर।
> मनरा तो मेरी जान चुडला तो हाथी दांत का।
> धौला ए कजारी मनरा ना पहरू, धौला रे मनरा ! म्हारा राजा जी का दांत,
> सुलतानी जी का दांत।
> मनरा तो मेरी जान चुडला तो हाथी दांत का।
> पीली कंजीरी ए मनरा ना पहरू, पीला रे मनरा म्हारा राजा जी का कपड़ा,
> सुलतानी जी का कापड़ा।

---

¹ ठुगनी। ² श्रेष्ठ। ³ आपत्ति, आफत।

मनरा तो मेरी जान सुहला जो हाथी दांत का ।
मरदे[1] कनीरी ए मनरा में पहर, यो मेरा राजा जी का सब सुहाग ।

इस गीत में नायक को नायिका के चरित्र पर संदेह हो गया है। वह तीर से उसका वध करके घर लौटता है, परन्तु उसकी गृहस्थी चौपट हो गई। उसके ऊपर आपत्तियों का जो पहाड़ टूटा है उसका अनुमान कर लेना समीचीन होगा —

मारकै घर नै बाहुवड़ो, अजी एजी बैठो है बहुत उदास ।

× × ×

घर घर दीवला चसरह्या; अजी एजी रडवा कै घोर अधेर ।
घर घर रसोई जो तपरई, अजी एजी रंध्या की दकणी में धूल ।
घर घर पिलग बिछरह्या, रडवा के घोर अधेर ।
घर घर बालक खेल रहे, अजी एजी रडवा की खूंदी में खाट ।

एक गीत में हरियालो तीज के अवसर पर लम्बे-लम्बे झोटा लेती हुई "मृगानैणी" का प्राणान्त हो गया है। पखा पछवा वायु के सुखद झोंके नायिका को दीर्घकाल तक आनन्दित न कर सके हैं। पति की कातरता का एक चित्र इन पंक्तियों में हुआ है —

एक घर सुख सै बोल मृगानैणी नार !
भाय रा मन का चीत्ता[2] हो गया ।

पति को पछतावा है —

"थम नै तो रोवेगा कौन मृगानैणी नार ! पीहर मरी ना सासरे"

किसी प्रिय की मृत्यु पर रोना स्वाभाविक है। इससे शोकाकुल हृदय हल्का हो जाता है पर यहाँ कैसी करुणा है "पीहर मरी ना सासरे"। किन्तु नेपथ्य से उत्तर मिलता है —

हमनै तो रोवै म्हारी माय जिनकी लाडन बेटी मर गई ।

इसी प्रकार वह अपने भाई के रोने की बात कहता है जिसका साथ छूटा हो गई। अपने श्वसुरालय में भी उसे रोनेवाले हैं।

हमनै ना रोवै म्हारा सास, जिनके मंदर सूने हो गये ।
हमनै तो रोवै म्हारे राजा जी बाप, जिनकी सेवा सनी हो गई ।

इससे आगे गीत नहीं बना है। शायद उसका कंठ मसोस दिया गया है। करुणा की धारा इस मरु प्रदेश में शुष्क हो गई है।

१ सरयती। २ चाहिन।

लोक-गीतों में कुलीनाओं का नीच लोगों के साथ प्रेम का वर्णन भी मिलता है। एक गीत में नायिका का मन 'मनरा' पर आसक्त है। नीचे दिये हुए गीत में प्रेम का पात्र एक 'नट' है। हरियानी नायिका नटयुवक पर मोहित हो गई है। वह उसके साथ चली जाती है। जब उसे कठोर वास्तविकता का पता चलता है तो वह विलाप करती है, पछताती है। उस पूर्वस्मृति स्मरण आ-आकर पीड़ित करते हैं पर 'अब क्या होना होत है जब चिड़िया चुग गई खेत।" उसने स्वयं ही अपना मार्ग निर्धारित किया है। गीत जब अन्त में पहुँचता है तो एक लज्जा एवं विषाद की रेखा छोड़ जाता है —

नट को रोले बालुरे रवे हाथ कडूला काना मोरक्या जी राज।
देखो बाई जी नटका को रूप म्हारा बीरा से दो तिल आगलो भी राज,
आओ भाभी नटका की साथ म्हारा बीराने परणाइया दूसरी जी राज,
परणाओ बाई जी दो ए बार हमसरीसी कल में ना मिलै जी राज,
म्हारा बीरा चतुर सुजान हमसरीसी महल कार की नी राज,
थह लोयाई जी दो ए बार मुख्यें ना बोले काया काठ जी राज।
दूसरा चित्र का दूसरा पद्य —

जब नटका ने लीनी कट बढ़ाय, आय उतारी विरवन[1] उजाड़ में जी,
जब नटका ने तानी सर की तान, मन्ने आया सदर आपणा जी याद।
जब नटका लाया बासा टूक, मन्ने आया भोजन आपणा जी याद।
जब नटका लाया टूटी खाट, मन्ने आया पिलंग निवार का जी याद।
जब नटका लाया फाटी गूदड़ी, मन्ने आया सौड़ सौंदरा जी याद।
जब नटका लीनी बांस चढ़ा, मन्ने आया राजा आपणा जी याद।

'मनरा' नामक गीत में नायिका की नीच पुरुषगामिता की प्रवृत्ति नायक को असह्य हो उठी है। वहाँ नायिका को 'अभिघाट' उतार दिया गया है, परन्तु यहाँ ऐसा कोई दुष्पथ प्रहार नहीं है। आत्मग्लानि और पछतावा ही सुधार के आदर्श रहे हैं।

सावन मास में झूला झूलती कन्याओं के सम्मुख चन्द्रावल का वीर चरित्र प्रधान चित्र सहसा कौंध जाता है। चन्द्रावल उन वीरांगनाओं का प्रतीक बन कर आई है, जिन्होंने विधर्मी शत्रुओं के फंदे में फँसकर भी अपने सत की आँच नहीं आने दी। घटना इतनी सी है कि सावन के दिनों में चन्द्रावल अपनी ननद के साथ पानी भरने जाती है। रास्ते में मुगल सिपाहियों का पड़ाव है। एक सिपाही चन्द्रावल के अनुपम रूप सौन्दर्य पर मुग्ध

१ भीषण।

हो जाता है और उस अनिंद्य सौन्दर्य को वश में कर लेता है। नायिका अपना संदेश पक्षी द्वारा भेजती है। श्वसुर, ज्येष्ठ तथा पतिदेव आते हैं, प्रयत्न करते हैं पर मुगल पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं होता। तब चन्द्रावल अपनी सहायता स्वयं करती है।

यह गीत सभी जनपदों में अपनी अपनी भाषा में मिलता है और गाया जाता है। बुन्देलखंडी भाषा में 'मालागूजरी' इसी श्रृंखला की एक कड़ी है। बिहारी में 'भगवती का गीत' भारतीय नारी की सद्धर्मगाथा को इसी रंग में प्रस्तुत करता है। पंजाबी में 'सुन्दर पनिहारिन' इसी भाव पर केन्द्रित है। राजस्थान की नारियाँ तो जौहर करने में आदर्श हैं ही। ऐतिहासिक इतिवृत्त को लेकर चलने वाले ये गीत कुछ लम्बे हैं। इनके द्वारा भारतीय सांस्कृतिक पक्ष की पर्याप्त पूर्ति हो जाती है।

हरियाना में प्रचलित 'चन्द्रावल' गीत दो रूपों में हमें मिला है। एक गीत में चन्द्रावल अपने पिता के यहाँ है और दूसरे में अपने सासरे है। एक गीत में पिता और भ्राता उसकी मुक्ति की चेष्टा करते हैं और दूसरे में ससुर तथा जेठ। पति दोनों गीतों में कुछ नहीं दिखाया गया है। उपाय भी तम्बू जलाकर मुक्ति प्राप्त करना ही रहा है। एक गीत में पति चन्द्रावल के सत् को देखकर प्रभावित हुआ है और उसकी आँखें गीली हो गई हैं। दोनों गीतों को देना हम यहाँ उचित समझते हैं —

घड़ा पै घड़ा पै ढोकणी चढ़ी पाणी नै जाय,
आगे फौज मुगल पठान की चढ़ी पकड़ लई।
आगली है गैल चन्द्रावली बाई राजकुवार।
उड़ती जाती चिड़कली[1] एक सन्देसो[2] ले जाय।
बाप मेरा नै न्यों कहो, थारी धी पकड़ लई।
उड़ती जाती चिड़कली एक सन्देसो ले जाय।
बीर मेरा नै न्यों कहो, थारी बाहणाप कड़ लई।
बाबल सुण कै रो पड़्यो भाइ नायें ग्याड़ मै पछाड़।
भरता[3] सुणकै हंस पड़्यो ब्याहवें दो ए चार।
बाबल उठ्यो क्रोधलो[4] ल्यायो करवा[5] लस्कार।
घुड़ला लेग्यो ढूंढे मै करवा लेग्यो लसकार।
बेग्या छोको चन्द्रावली बाई राजकवार।
नाल्यो घुड़ला ढ्योढ मै नाल्यो करवा लसकार

१ चिड़िया। २ सन्देसा। ३ पति। ४ क्रोधी, प्रतापी। ५ उर।

घेटो ना छोड़ूँ चन्द्रावली बाई राजकंवार।
घर रा बाबल आपणे राखूं पगड़ी की लाज।
घरना बारा आपणे राखूं टोपली की लाज।
सांझ पड़ी दिन आथम्यो इब के हो मेरी मा।
उन मुगल का छोहरा पाणी भरल्या।
मरूँ ए निमाड़ चन्द्रावली बाई राजकंवार।
डरे ए परा को पाणी मा पीऊ जल जमना कोल्या।
मरूँ ए निमाड़ चन्द्रावली बाई राजकंवार।
मुगली के पीन पिराड थो, चन्दणा में ला दइ आग।
तरू जल गया ईंधोन्मै गैर जली लगचार।
बीच जली चन्द्रावली बाई राजकंवार।
मेरा बारा डोलिया रे गहरा ढोल बजा।
सुणे मेरा पीहर सासरो लाडली नन्दलाल।
सत का रहा चन्द्रावली दो कुल तारी[1] जान।
तारा पीहर सासरा तार दइ नदसार।

यह गीत एक ओर स्त्री-चरित्र की उदारता एवं स्त्री हृदय की पति के प्रति निर्मल भावनाओं का परिचय देता है तो दूसरी ओर पति की निर्मम निष्ठुर प्रतिक्रिया के दर्शन भी "बना सुण के हस पड्या न्याहर्यें दा ए चार" जैसी उक्तियों में हो जाते हैं। परन्तु पातिव्रत धर्म एवं सती धर्म का प्रभाव पति पर पड़ा अवश्य है। दूसरे गीत के अन्तिम बोल हैं —

सुसरा जी मुंडी[2] धुणै, जेठ जी नै खाइ सै पछाड़,
आप हमारी ढोला[3] रे पड़ा इमी दुनिया म ना।

चन्द्रावल के लोकोत्तर आत्मबलिदान की यह गाथा युग-युग तक भारतीय ललना के गौरव की प्रतीक बनी रहेगी और कामलोलुप पतियों के समक्ष एक आदर्श स्थापित करता रहेगा। दूसरा पाठान्तर इस प्रकार से मिला है —

नणद भौजाइ दोनों जणी दोन्नों पाणी नै जाय,
पीन पड़ी थी नग्रान की जामें मुगल पठान।
सुण आगली सुण पाछली ए सुण ले मेरा जवान,
या तो गोरी म्हारै मनवसी हमनै छोड़ेंगे नाव।
सुण रे मुगल का छोहरा सुण ले मेरी रे बात।
बाइ जी के पल्ले में रहूँ बाइ जी नै जाण ना दूया।

---

१ उपारकर। २ सिर। ३ पति।

उड़ती जाती कोयली एक सडेस्सो ले जाय।
मेरा सुसर नै न्यों कहो बहुवड़ पकड़ी जाय।
उड़ती जाती कोयली एक सडेस्सो ले जाय,
मेरा जेठ नै न्यो कहो बौहौड़िया पकडी जाय।
उड़ती जाती कोयली एक सडेस्सो लै जाय,
मेरा बालम नै न्यों कहो गोरी पकडी जाय।
सुसरो जी सुण कै रोपड्यो जेठ जी खाई सै पछाड़,
आप हजारी ढोलो हस पड्यो ब्याहवें दो ए चार।
सुसरा जी हस्ती चढ़्या जेठ जी घोड़े असवार,
आप हजारी ढोला धरय में धरय हाल्ये बी जाय।
सुसरा जी उतर्या बड़तलै, जेठ जी पड़ला की छाय,
आप हजारी ढोला बाग में, चाब्बे नागर पान।
जाओ सुसर घर आपणे राक्खू पगड़ी की लाज,
खाणा ना खाऊ इस तुरक का बाइ राजकवार।
जाओ जेठ घर आपणे राक्खू पचा को लाज,
पाणी ना पीऊ इस तुरक का बाइ राजकवार।
जाओ बालम घर आपणे राक्खू सेना की लाज,
सेज ना पोढ़ूं[1] इस मुगल की बाइ राजक्वार।
जारे मुगला का छोहरा जलभर झारी ल्या,
बहुत तिसाइ[2] चन्द्रावली बाइ राजक्वार।
ऊरा पराको पाणी मैं ना पिऊ जल जमना को रे ल्या,
मरे ए तिसाइ चन्द्रावली बाइ राजक्वार।
मुगलै नै पीठ फिराइ ओ, लम्बू कै लादइ आग,
खड़ी जलै चन्द्रावली बाइ राजक्वार।
लम्बू बलगया ढोडमै कोर जली लरापार,
बीच जलै चन्द्रावली बाइ राजकवार।
हाय हाय मुगला करै तोबा करै सै पठान्
पकड़ी थी खिलसी[3] नहीं बाइ राजकवार।
मेरा रे भाइ ढोलिया गहरो ढोल बजाय,
पाहर सुणिये सासरै लाडलडी नदमाल।
सुसरा जो मुड्डी धुणै, जेठ जी नै खाइ सै पछाड़,
आप हजारी ऐसा रो पड़ा इसी दुनिया में ना।

---

1 सोना। २ प्यासी। ३ उपभोग करना।

यह एक ऐतिहासिक गीत है। चन्द्रावल का निर्दोष नारी-चरित्र श्रोसकण सदृश पावन एवं उज्ज्वल बनकर जनसमाज के लिए अनुकरणीय आदर्श उपस्थित कर रहा है। लोक-जीवन की यह अमर कहानी भारत के नैतिक आदर्शों पर पर्याप्त प्रकाश डालती है। चन्द्रावल की तुलना में काव्य जगत् का केवल निर्दोष से निर्दोष पात्र ही आ सकता है। चित्तौड़ की पद्मनी तथा सखियों का जौहर अवश्य लोमहर्षक घटना है किन्तु जो अपूर्वता एवं लोकोत्तरता चन्द्रावल के आत्मबलिदान में आई है, जिस उच्च भावना तथा प्रत्युत्पन्नमतित्व का परिचय यहाँ मिलता है, वह बहुसाधन सम्पन्न चित्तौड़ के बलिदान में कहाँ है ?

साध्वी चन्द्रावल का पावन चरित्र भारतीय नारी के सतीत्व का प्रतीक बन गया है। वह पापात्मा यवनों के वासना-व्यूह का ध्वस्त कर ध्रुवतारिका के सदृश नारी जगत् को चारित्रिक दृढ़ता एवं आचार की पावनता का संदेश दे रहा है। आज भी भारतीय नारी चन्द्रावल को अपना आदर्श मानती है। झूले के गीतों में सम्भवतः प्रतिवर्ष इसीलिए महिलाएँ इस पावन गाथात्मक इतिहास को गाती हैं। इन गीतों में ऐसे अनेकानेक उदाहरण मिलेंगे।

श्रावण के गीतों में 'बारह मासा' का विशेष वर्णन आता है। ये गीत बहुधा वियोगावस्था का वर्णन करते हैं। जिनके लिए क्षण कल्पसम व्यतीत होते हैं, उन वियोगियों के प्रति वर्ष के बारहमास क्या बनकर आते हैं, यह दिखाना बारहमासे का काम होता है। ऋतु विशेष में विरहिणी की प्रतिक्रिया की प्रतीति इन्हीं गीतों में होती है।

'बारहमासा' गीतों में वर्ष भर के बारह महीनों में होनेवाले दुःखों का वर्णन होता है। अतः इन गीतों का नामकरण 'बारहमासा' है। इसमें विरह जन्य वेदना का कथन रहता है। सावन के मनभावन काल में विप्रयुक्ताओं का विरह जब उत्कर्ष को प्राप्त हो जाता है, तब उसका प्रवाह बारहमासा के रूप में फूट पड़ता है।

करुणरस प्रधान बारहमासे पावसकाल में विशेषकर श्रावण मास में गाये जाते हैं। वियोगाकुल रमणियाँ मेघावलियों के स्वर में स्वर मिलाकर इन्हें गाती हैं और झूलती हैं। बारहमासा की स्वाभाविकता, सरसता एवं सरलता दर्शनीय होती है। लोकसाहित्य के उद्भट विद्वान् डा० उपाध्याय ने इन गीतों की प्रवृत्ति को देखकर इन्हें 'विरहमासा' कहा है जो सुतरां सत्य है।

बारहमासा की शैली कितनी प्राचीन है, यह जानने का हमारे पास कोई साधन नहीं। बारहमासा उतना ही पुराना है जितने वर्ष के बारह महीने

अथवा षड्ऋतुओं का संचार एवं जितनी विरहिणी की वियोगविदग्ध हृदय की 'आह' । हिन्दी के महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी ने भी लोक प्रचलित इस गीत की सरसता एवं प्रभावशालिता के वशीभूत होकर ही "नागमती विरह वर्णन" के लिए बारहमासा को चुना था । संस्कृत के महाकाव्यों में तो षड्ऋतु वर्णन एक अनिवार्य लक्षण बनकर आया है । इससे इतना तो पता चलता है कि यह प्रवृत्ति साहित्य में चाहे अति प्राचीन काल से हो पर हिन्दी में लगभग पौने चार सौ वर्ष से इसका वर्णन प्राप्त होता है । ऋतुओं की महत्ता महात्मा तुलसीदास ने भी स्वीकार की है । उनका वर्षा वर्णन हिन्दी साहित्य की अनूठी वस्तु है ।

हरियाना में जो बारहमासा प्रचलित हैं, उनमें से एक में विप्रयुक्ता राधा अपनी असहाय परिस्थिति में नानाविध अभाव अनुभव करती है । उसे शुक शायक से शिकायत है कि उसने मिथ्या आशा बधाई है । अंत में, नायिका निराश हो करउसे मार डालने की धमकी देती है, परन्तु शुक दैवज्ञ है और वह राधा को सान्त्वना देता है —

साढ जे मास सुहावणा सुआ रे । जै घर होता हर को लाल, मैं हाली नन्दावती ।
सामण जे मास सुहावणा सुआरे ! जै घर होता हर का लाल, मैं हिण्डे[1] घलावती ।
भादुवा जे मास सुहावणा सुआरे ! जै घर होता हर का लाल मैं गूगा[2] मनावती ।
असौज जे मास सुहावणा सुआरे ! जै घर होता हर का लाल, मैं पितर समोखती ।
कातक जे मास सुहावणा सुआरे ! जै घर होता हर का लाल, मैं दिवाली मनावती ।
मगसर जे मास सुहावणा सुआरे ! जै घर होता हर का लाल, मैं सौड़ भरावती ।
पौह जे मास सुहावणा सुआरे ! जै घर होता हर का लाल, मैं सकरात मनावती ।
माह जे मास सुहावणा सुआरे ! जै घर होता हर का लाल, मैं बसंत मनावती ।
फागण जे मास सुहावणा सुआरे ! जै घर होता हर का लाल, मैं होली खेलती ।
चैत जे मास सुहावणा सुआरे ! जै घर होता हर का लाल, मैं गणगौर पूजती ।
बैसाख जे मास सुहावणा सुआरे ! जै घर होता हर का लाल, मैं पथा मनावती ।
जेठ जे मास सुहावणा सुआरे ! जै घर होता हर का लाल, मैं जेन्दा मनावती ।
बारहूं महीना हो लिया सुआरे ! तोड़ मरोड़ू तेरा पान्दड़ा ।
जल में दूंगा बहाय तेरा सेवा न करूं सुआरे ।
म्हारी तो सेवा मैं करै राधा ए जो हर आवैगा आज ।
तोड़ू मरोड़ू तेरा पान्दड़ा सुआरे ! और चुगाऊं पाली दाख, तेरी सेवा मैं करूं ।

बारहमासा प्रायः आषाढ मास के वर्णन से आरम्भ होता है और ज्येष्ठ

१ हिंडोला । २ गुरुगूगा ।

माघ के वर्णन से समाप्त होता है। बारहमासा की एक विशेषता यह भी है कि इनमें वर्ष भर के महीनों में होनेवाले सुख दुख का वर्णन एक साथ आ जाता है, विरह-व्यथा की अनुभूति एक स्थान पर हो जाती है। इसी शैली पर 'छमासा' और 'चौमासा' भी होते हैं। 'बारहमासा' में विरहानल का वर्णन ही नहीं होता, उसमें कृषक के दैनिक जीवन की व्याख्या भी होती है। राजस्थानी 'बारहमासा' में कृषक के सादे जीवन का इतिहास आ गया है। उसका काम ही उसका सर्वस्व है। काम की सफलता उसे स्वर्ग प्राप्ति का सा आनन्द देती है। पूरा गीत नीचे उद्धृत किया गया है —

साढ़ महीने बिरखा लागी, बादलियाँ री बाढ़ ।
माऊ जी म्हारे भातो लाई, बाह रे माँई बाह ॥
सावण महीने बादर लागी, बीनाणी री नाह ।
काचरिया री बेला टाला, बाह रे माई बाह ॥
भादू महीने मूगा होगी, चौंधड़िया री बाह ।
बाजरिया री होगी ब्याया, बाह रे साई बाह ॥
आसोजा में कासा लागी, इक्काला रा दाह ।
राजी बाने टोहा रहस्या, बाह रे साई बाह ॥
काती महीने करड़ा मिट्टा, भारै कूता बाह ।
काती महीने मिट्टा कीना, बाह रे साई बाह ॥
मिगसर महीने मोठा मढ़चा, लम्बो लेमी साह ।
ऐय र देय दूर रा होस्या, बाह रे माँई बाह ॥
पोह महीने पालो पड़सी, ग्वालड़ी रो राह ।
ग्वालड़ी रो मोह कीनो, बाह रे साई बाह ॥
माह महीने पालो पड़सी, पाणी पत्थर बाह ।
पाणी रो पत्थर कीनो, बाह रे माई बाह ॥
फागण महीने फाग खेल, गोपिया री नाह ।
महूवे रो मद पीयो, बाह र साई बाह ॥
चैत महीने चणा मोरी, चवल मोरचा माह ।
जिन घूरा ही हरिया होगी, बाह रे माई बाह ॥
बसाखा में धूप पड़सी, ता बड़िये री ताह ।
पड़ छाया में पड़िया रहस्या, बाह रे माई बाह ॥
जेठ महीने धूप पड़सी, ता बड़िये री ताह ।
खेजड़ बड़ र खोखा खास्या, बाह रे माई बाह ॥[1]

[1] 'राजस्थानी लोकगीत में बारहमासा'—पृष्ठ ६१ ६२, प्रो० सूर्यकरण पारीक, एम ए ।

कृषक के जीवन दर्शन की झलक अपूर्व भव्यता से इस छोटे से गीत में कह दी गई है। किसान को अपने स्वामी के प्रति कृतज्ञ दिखलाया गया है।

आषाढ मास में वर्षा प्रारम्भ होती है, किसान खेत में काम करता है और उसकी मा उसे रोटी पहुँचाती है। श्रावण में बाजरा उगता है, खेत नलाया जाता है, और मतीरे की बेलें बचा दी जाती हैं। भाद्रपद में भुनगे बहुत होते हैं, शाक तरकारी अधिक होती है और नये बाजरे की रोटियाँ बनाते हैं। आश्विन (क्वार) में फसल की आशा हो जाती है और खेत-रक्षक चिल्ला चिल्लाकर चिड़िया उड़ाते हैं। कार्तिक मास में 'सिट्टे' खूब होते हैं, चाहे जितने खाओ। वाह रे ईश्वर, तुझे धन्य है। मगसिर में साहूकार लेखा-जोखा करता है। किसान ले दे कर हिसाब साफ करता है। पौष में भयंकर शीत पड़ता है जो चमड़ी तक को छील देता है। माघ में शीत के कारण पानी जम जाता है। फाल्गुन में महुवे का रस पीकर किसान मस्त रहता है। चैत में चंपा फूलती है और मोर चंचल हो जाते हैं। वैशाख और जेठ में भयंकर धूप पड़ती है, किसान अपनी झोंपड़ी में अथवा वृक्ष के तले आराम करता है। हे ईश्वर! तुझे धन्य है जो प्रत्येक ऋतु और मास में किसान को नये-नये अनुभव और फल देता है।

बारहमासा की शैली सभी जनपदों में एवं सभी लोक भाषाओं में प्रचलित है। इसके तुलनात्मक अध्ययन के लिए बड़े विस्तार की आवश्यकता है। अत हम पड़ोस के राजस्थानी बारहमासे को दिखाकर ही अपने इस विवेचन को समाप्त करते हैं।

ख भाद्रपद

भाद्रपद में जन्माष्टमी का उत्सव मनाया जाता है। इस अवसर पर व्रत रखा जाता है। कृष्ण का बच्चा बनाकर पालने में झुलाते हैं, भजन गाते हैं। एक गीत में पुत्र कृष्ण के विनिमय का पौराणिक वर्णन आया है —

जब जनम्या देवकी जाय दशोदा रस्ते में मिली हरे।
के दुखदा बेबे सास नणद का के बाले भरतार बेबे, के बाले भरतार,
दशोदा रस्ते म मिली हरे।
ना दुखदा बेबे सास नणद का ना बाले भरतार बेबे ना बाले भरतार,
दशोदा रस्ते में मिली हरे।
एक दुखदा बेबे कोख जली का जिरा मेरा मारा से मान जिन मारा सैमान,
दशोदा रस्ते में मिली हरे।

जे वेवे तेरे छोरा होगा गोकल दिये पुपाय वेवे गोकल दीये पुपाय,
दयोदा रस्ते में मिली हरे।

जे वबे मेरे छोरी होगी पुपका बदला चुकाय वेवे पुप का बदला चुकाय,
दयोदा रस्ते में मिली हरे।

कृष्ण जन्माष्टमी से अगले दिन नवमी को 'गूगानवमी' का बड़ा भारी उत्सव हरियाने में मनाया जाता है। गूगा जिसे 'बागड़वाला' कहते हैं, जाहरपीर के नाम से भी प्रसिद्ध है। गुरुगुग्गा के विषय में लघु तथा प्रबन्ध दोनों प्रकार के गीत इधर प्रचलित हैं। जाहरपीर के रतजगे में प्रायः प्रबन्ध गीत गाया जाता है और अन्य अवसरों पर या गूगा नौमी पर घरों में, साधारण रूप से, मुक्तक अथवा लघु गीत गा लिये जाते हैं। प्रबन्ध-कथा गीतों में गूगा के शौर्य का लोमहर्षक वर्णन आया है जो यथास्थान प्रबन्ध गीत वर्णन में दिया गया है। यहाँ हम उसके जीवन का संक्षिप्त वर्णन तथा महिला-जगत् में प्रचलित लघु-कथा गीत देते हैं।

गूगा का इतिवृत्त अंधकार में पड़ा हुआ है। गूगा हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों द्वारा समान रूप से पूजा जाता है। हिन्दू गूगावीर, गूगावीर अथवा गुरुगुग्गा कहकर इसकी पूजा करते हैं। मुसलमान इसे गूगापीर (सनगूगा अथवा ज़ाहिरपीर) जिसकी कला प्रत्यक्ष है, कहकर इसे पूजते हैं।

वास्तव में, गूगा राजपूत वंश विभूषण है, परन्तु यह एक आश्चर्य है कि किस प्रकार चौहानवंशीय गूगा की वीरकथा पर मुसलमानी रंग का पैबंद लग गया है। इस दिशा में एक घटना मुख्यरूप से कही जाती है। यह प्रसिद्ध है कि बीकानेर राज्य के अन्तर्गत ददरेरा स्थान पर गूगा ने भू-समाधि ली थी। कथा है कि उसने अपने मौसेरे भाई अरजन और सुरजन द्वारा उसके वध के षड्यन्त्र को असफल कर दिया था और दंडस्वरूप उन दोनों को मार डाला था। इस अपकृत्य पर माता बाछल ने गूगा की भर्त्सना की और आदेश दिया कि वह मुख न दिखावे। इस घटना से क्षुब्ध हो गूगा ने भू माता से अपने में लीन कर लेने के लिए प्रार्थना की। पृथ्वी से प्रत्युत्तर मिला कि हिन्दू होने के कारण उसे भूगर्भवास नहीं मिलेगा, यदि ऐसी इच्छा है तो पहिले इस्लाम में दाखिल होना चाहिए। वह कलमा सीखता है और मुसलमान बन जाता है। धरती मा उसे विलीन कर लेती है। विश्वास है तभी से इसके हिन्दू एवं इस्लामी दो स्वरूप हो गये हैं।

मा बाछल तथा उसकी धर्मपत्नी सरिअल (सरियल) को घोर पश्चात्ताप होता है परन्तु गूगा सरियल से नित्य प्रति रात्रि में मिलता है। एक बार

तीजां के दिन विवश होकर सरिअल इस रहस्य को बाछल पर प्रकट करती है। परिणाम स्वरूप सास बधू दोनों पुन एव पति को सदा के लिए हाथ से खो बैठती हैं।

ऐतिहासिक वृत्त के आश्रय पर गूगा अपने भाई अरजन सरजन को पैतृक सम्पति म से भाग मागने के विरोध में मार डालता है, पर एक गीत म इस वध का कारण यह बतलाया गया है कि गूगा की अनुपस्थिति में अरजन सरजन ने सरियल (गूगा की पत्नी) के साथ छेड़खानी की है और इस शिकायत पर गूगा ने उनको मार डाला है।

प्रमाणाभाव में यह निर्णय देना कठिन है कि घटना का कौन-सा स्वरूप सत्य है, पर महिलाओं ने गीत प्राय उन्हीं देवताओं के ऊपर हैं जिन्होंने स्त्री मर्यादा की रक्षा की है अथवा नारी रत्नों को कष्ट के अवसर पर सहायता पहुँचाई है। पुराण काल म, कृष्ण ने द्रौपदी की लज्जा रखकर अपनी महिमा दिखाई तथा राम ने सन्नारी सीता की गरिमा अक्षुण्ण रखी। महाबली हनुमान ने नारी मर्यादा को ठीक आंका एव शिव ने पार्वती की प्रतिज्ञा को पूरा किया। अत मर्यादा पालक सभी देवता नारी श्रद्धा के पात्र रहे हैं। सरियल भी अरजन सरजन—राहु केतु दो दुष्टग्रहों द्वारा ग्रसित थी और वीर गूगा ने इसी नारी मर्यादा संरक्षण के लिए अपनी तलवार उठाई। इतिहास साक्षी है कि गूगा ने मध्य युग म आततायी यवनों से लोहा लिया और बागड़ देश को उनके भीषण आक्रमणों से बचाया। 'दि लीजेंड्स ऑव दि पंजाब' में सर आर० सी० टेम्पल ने लिखा है कि "गूगा एक हिन्दू है और वह चौहान राजपूतों का नेता है जिसने १००० ईस्वी म महमूद गजनी को रोका था।[1]" इसका घर बीकानेर राज्य था। सिरसा से प्राप्त एक वर्णन म आया है कि गूगा की ख्याति मुगल सम्राट् औरंगजेब के समय १६५८-१७०७ म व्याप्त थी।[2] एक अन्य मत के अनुसार गूगा हरियाना के चौहान राजपूत थे। सन् १३५३ म दिल्ली के बादशाह फिरोजशाह द्वितीय के सेनापति अबूबकर से युद्ध करके वीर गति को प्राप्त हुए। इस प्रकार हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि गूगा एक राजपूत है और बागड़ का वीर पुरुष है।

हरियाना से प्राप्त एक गीत म आया है कि गूगा अपनी धर्मपत्नी की मर्यादा रक्षा के लिये अपने मौसेरे भाइयों का वध करता है —

---

१ 'दि लीजेन्ड्स ऑव दि पंजाब' प्रथम खण्ड, पृष्ठ १२१ प्रभृति।

२ 'ग्लौसरी ऑव दि पंजाब एण्ड एन० डब्लू० एफ० पी० ट्राइब्स' प्रथम भाग, पृष्ठ १७८।

गूगो रै सुतो जाल तलै समोटी गाय,
थारी मेरा गोगा भल रह्यो,
थारी मेरा सायर भल रह्यो,
सरपल निकला थारी न, लेगी दोघड़ वाली मार।
अरजन सुतो जाल तलै,
सरजन सरवरिये की पाल, थारी मेरा गूगा भल रहियो।
अरजन पकड़्यो गूगड़ो[1],
सरजन मरी छुपन्ने वाली नाथ।
धस नागो मेरे देवर जेठ, राखो रे बहू की लहाज।
हरियल गई गूगा के पास,
धस सुत्या गोगा नींद भूर्यां।
लूटी री री छुपन्नेवाळा नार।

वीर गूगा इस अमर्यादित दुष्कृत्य पर क्षुब्ध हो उठता है और उन दोनों मौसियों का वध कर देता है —

अरजन नै मार्या जाल तलै,
सरजन नै सरवरिये की पाल।

माता बाछल को जब इस घटना का पता चलता है तो वह विह्वल हो जाती है —

जुलम कर्या रे मेरा लाडेसर,
मार्यो रे मौस्यी का पूत।
मुंह पड़्या निलोवणा[2], छाड़ थारी फिर फिर जा।

परन्तु हरियल को इस शौर्यपूर्ण घटना पर गर्व है, उसके अपमान का प्रतिकार हो गया है —

मुंह पड़्या बिलोवणा, छाड़गारी मर मर जा।
थारी मेरा सायर भल रहियो।

माता की भर्त्सना पर गूगा आत्म-बलिदान देता है और भूगर्भ में समाधि लेता है। माता को पुत्र के इस गंभीर निश्चय पर आत्मग्लानि होती है, पश्चात्ताप होता है और वह पुत्र से कम से कम एक बार वापिस लौटने की इच्छा व्यक्त करती है। वह प्रति वर्ष भाद्रपद कृष्ण नवमी को आता है। इस वृत्त को लेकर एक गीत हरियाने की जनता का कंठाभरण बना हुआ है —

---

१ घपट। २ मथानी।

खीला सा घोड़ा गोरा गाबरू धरती में गया समाय,
जा रायां एक घर घर आ ।
धरती माता लेखा मांगे के हिन्दु के मुसलमान,
जा राया एक घर घर आ ।
आज लग तो मेरा हिन्दु जन्म था आज हुआ मुसलमान,
जा राया एक घर घर आ ।
परसा[1] में तेरा बाबल[2] जिरवै[3] कित गया बैठनहार,
जा रायां एक घर घर आ ।
तौं मत जिरवै बाबल मेरा मैं आऊंगा बैठणहार,
जा राया एक घर घर आ ।
रसोई में तेरी माता जिरवै कित गया जीमनहार,
जा राया एक घर घर आ ।
तू मत जिरवै मायड़ मेरी मैं आऊंगा जीमनहार,
जा रायां एक बार घर आ ।
सासरिये तेरी बाहण जिरवै देख जिठानी का बोर,
जा रायां एक घर घर आ ।
तू मत जिरवै बाहण मेरी आऊंगा तेरा लेनीहार,
जा रायां एक घर घर आ ।
पीहरिये तेरी गोरी जिरवै देख बाहण का न्याव,
जा रायो एक घर घर आ ।
तू मत जिरवै गोरी मेरी मैं आऊंगा तेरा लेनीहार,
जा रायो एक घर घर आ ।
साव न आऊं सामण न आऊं आऊं भादुड़े मास ।
सावण ना आऊं भादुवम ना आऊं, आऊंगा नौमी की रात ॥

गूगा हरियाना अथवा बागड़ का सर्वप्रिय नेता रहा है । उसकी यह प्रसिद्धि एक स्थान पर इस प्रकार व्यक्त की गई है —

"गूगा मरग्या सतम[4] गुजरग्या बागड़ पड़ग्या सोग ।"

एक तीसरे गीत में नाटकीय दुःखात परिस्थिति का मार्मिक चित्रण हुआ है । गूगा अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार नित्यश लौटता है । सरियल को उसकी उपस्थिति का विशेष सुख है, परन्तु दुर्दैव विपाक से श्रावण की हरियाली

१ चौपाल, बैठक । २ पिता । ३ जार्या हो रहा है, दुबल है, ऊपर है ।
४ ज़ुल्म, आपत्ति ।

तीज उसके लिए यम तीज बनकर आई है। उस दिन विवश होकर वह रहस्यात्‌घात्न करती है और सदैव के लिए विरह विधुरा रह जाती है —

आम की डालो पड़ी ए पजाली मूलन आवे रनवास मियाँ।
सासू तो मूलै री बाकी बहूण समावे लोग करें परचाव मियाँ।
उठ उठ मूगा[1] बादी महलों में जइये सिरयल हाल[2] बुलाय मियाँ।
बागां सै उठके बादी महलां में आइ, उठो उठो रानी बागां म चालियो,
बादल रहीण बुलाय मियाँ।
कहो तो बादी मेरी सब रंग पहरूं पचरंग पहरूं कहो तो चम्पू मैले भेस मियाँ।
हुसक जायाँ रानी पचरंग पहरो सब रंगपहरो हुसके जायो मैले भेस मियाँ।
थाल थाल ते मूगा मोती पिरोवे मांथे में निशा नैनाँ में स्याही मुखड़े
में तिलका लाय मियाँ।
हरी हरी चुड़ियां पनकर बिधुआ भर लिया सोलह सिंगार मियाँ।
महला से चली रानी बागां म आइ पधराती परवा मासू पवन चले ही,
मुन्दरे तो उड़ो है रुमाल मियाँ।
या रनवासे में चरखा चली है यो कैसो राजा का भेस मियाँ।
बागा में जायो बादी सटी ल्याओ मार उघेड़ या की खाल मियाँ।
चढ़ती पनाली सासू कुछ मत कहिए महलों में लीनें समझाय मियाँ।
वहाँ का तो चली रानी महला में आइ, छुट्टी धरो तो रानी चाबक,
उतारो मार उघेड़ी तन की खाल मियाँ।
तेरे तो लेरें सासू मरयी गये हैं, चले भी गये हैं मेरे तो आवें नितरोप मियाँ।
अबके तो आवे बहू हम री बताओ कोइ तनक सुरत दिखाय मियाँ।
आधी सी रात भर फुकी है अधेरी कोई जाहर आय हैं भतार मियाँ।
और दिना तो गोरी दिवला बले हे आज कैसे घोर अंधेर मियाँ।
और दिना तो रानी हसी थी खुसी ही न्हाइ धोइ आज कैसो मैलो भेस मियाँ।
अम्मा तुम्हारी रे सास हमारी मार उघेड़ी तनकी खाल मियाँ।
दिन निकला जब चिड़िया चौकी कोइ जाहर हुए घोड़े असवार मियाँ।
सोवें के जागे री भरी बैरन सासू महला के चोर आगे जाय मियाँ।
ग्वड़ा सो रहिए रे मेरे दूधा ते पाले गोद खिलाये कोइ तनक सुरत दिखाय मियाँ।
पीछे तो फिरके देख मेरी माता महला में लग रही आग मियाँ।
महला की आग बेठा जलसू बुझैगी मायड़ की जोबन आग मियाँ।
सासू दखन लागी कोइ घोड़े सेत्ती[3] गये हैं समाय मियाँ।
हम सुबी खोया सासू! अपसुबी खोया चने गये हैं हाय मियाँ।

1 दासी का नाम। २ तुरन्त। ३ सहित।

कथा बड़ी ही दु खात एव मर्मांतक है। पुत्र बधू की विवशतापूर्ण कातरता "हम सुनी सोया सासू! अपसूनी सोया" के रूप में शोकसागर बहा रहा है।

ग क्वार

क्वार मास म साजी मागी जाती है। यह दुर्गा का रूप है। बालिकाओं की यह आराध्या है। साजी विषयक गीत देवी की साकारोपासना भावना के प्रतीक हैं। इन गीतों में सख्यभाव के ऐसे अनूठे तत्त्व मिलते हैं जो अष्टछाप के कवियों की स्मृति करा देते हैं। निरीह बालउपासकों के उपयुक्त ही साजी माइ का उत्तर है —

म्हारी साम्भी ए! के ओढगी के पहरैगी क्याए की माग भरावैगी।
मिसर पहरगी स्यालु ओढूगी मोतीया की माग भराऊगी।
म्हारी सांम्भी ए के नीमैगी के जूनैगी क्याए की चलुए[1] भरावैगो।
लाडु नीमूगी पेडा मृगुगा इम्रत की चलूए भराऊगी।

बालिकाए साम्भी का मातृरूप म पूजती हैं। प्रात सध्या म आरती करती हैं और नैवेद्य आदि से उसका पूजा भी करती हैं। यह एक आश्चर्य की बात है कि साम्भी सभी जातियों—हिन्दू अहिन्दू और मुसलमानों म समानरूप से मनाइ जाती है। यही आरती और मिष्ठान से पूजन सब जातियों में चलता है। लोक जीवन में मानो एकरूपता आ गइ है।

साजी देवी को घर की भित्ति पर बनाया जाता है। मिट्टी के सब अग प्रत्यग बना लिये जाते हैं और उन्हें गोबर के आश्रय से भित्ति पर चिपका दिया जाता है। यह मूर्ति माता दुर्गा से मिलती है, इसे 'सध्या माता' भी कहा जाता है। बालिकाए 'साम्भ माइ' का आरता करती हुइ अपने गृहस्थ कुटुम्ब को नहीं भूलतीं। कन्याओं को गोरे भाइ भावी का बड़ा शौक है —

आरता है आरता साम्भी माइ आरता,
आरते की फूल कवेलन बेल,
इतने से भाइयों में कुणसा गोरा।
चद्रा गोरा सूरज गोरा गोरा के नयण कमल भर गेरे।

नवरात्रि तक यह आयोजन चलता रहता है। विजयदशमी वाले दिन सध्या में सम्मानपूर्वक साम्भी माई को जल में प्रवाहित कर दिया जाता है।

घ कार्तिक

कार्तिक मास लोक-गीतों एव लौकिक आचार विधानों की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण मास है। इस मास में प्रात स्नान का विशेष माहात्म्य है।

1 आचमनी।

महिलाएं सर-सरिताओं में स्नान कर प्रभाती और हरजस गाती हैं, तुलसी की पूजा करती हैं।

कार्तिक के गीत बड़े ही मधुर तथा भावपूर्ण होते हैं। राधा-कृष्ण एवं शिव-पार्वती की प्रणय कहानी इन गीतों में प्रतीकरूप में छाई रहती है। गंगा स्नान का विशेष पर्व इसी मास में आता है। गंगा-स्नान के लिए स्त्री पुरुषों में विशेष उत्साह एवं आस्था के दर्शन होते हैं। लोग गंगा पुलिन पर कई दिन तक निवास करते हैं और पुण्यार्जन करते हैं।

हरियाना में प्राप्त कार्तिक गीतों में एक गीत ऐसा है कि हरियानी कृषक बाला कार्तिक स्नान करना चाहती है। उसका हृदय कार्तिक स्नान की महत्ता से अभिभूत है। माता-पिता तथा भाई भावज विविध बहाने बनाकर इस धार्मिक प्रवृत्ति से उसे रोकते हैं। उनकी दृष्टि में भगवत भावस्वरूप धर्म का कोई महत्ता नहीं है, महत्ता है तो स्थूल दैनिक कार्य का —

परस कन्या अपना बाबल बूझा, कहो तो कात्तक न्हाएं हो राम।
कात्तक न्हाया बेटी बड़ाये दुहेल्ला[1], लाडयो पगथलीये हो राम।
दूध घमोड़ना[2] अपना मायड़ बुझी, कहो तो कात्तक न्हाएं हो राम।
कात्तक न्हाया बेटी बड़ाए दुहेल्ला, गिरज्यो धरम की क्यारी हो राम।
गार कन्ता अपना बालम बूझ्या, कहो तो कात्तक न्हाएं हो राम।
कात्तक न्हाया बेटी बड़ाए दुहेल्ला, लेल्यो न गोद भतीजा हो राम।
पीमण्या पीमनी अपनी भावज बूझी, कहो तो कात्तक न्हाएं हो राम।
कात्तक न्हाया ननदल बड़ाए दुहेल्ला, काढो हो ना कमीना हो राम।

इस गीत में साधारण दैनिक कर्तव्यों ने धार्मिक भावना पर तुषारापात किया है। भला, वणिग् वृत्तिवाले जग में क्या आशा की जा सकती है? स्वार्थमय संसार में 'काम प्यारा है, चाम प्यारा नहीं है।' कन्या प्रत्येक दिशा से कार्य ही कार्य की दुहाई सुन रही है, उसे किधर से भी आशा रश्मि नहीं मिलती। कैसी कातरता है? कार्याधिक्य ने मनुष्य के विवेक को भी आक्रांत कर लिया है।

कार्तिक स्नान माहात्म्य में तुलसी की पूजा का विशेष स्थान है। तुलसी ने एक दीर्घ एवं अनन्य भक्ति के उपरांत विष्णु जैसा वर प्राप्त किया था। आज भी कन्याएं तुलसी की उपासना कर उसके आदर्श को अर्घ्य देती हैं —

मान सुहेली न्हाएं चालीं तुलसा कूक बुलाई हो राम।
नोग भी ले लिया मारी भी ले ली तुलसा न्हाण चाली हो राम।

---
१ कन्नि। २ बिलोती।

सात सुहेली न्यू उठ बोली तुलसा औड[1] कवारी हो राम।
लोटा भी पटक्या झारी भी पटकी रोवदड़ा[2] घर आई हो राम।
के बेटी तुलसा भूवा डराई के भाइया ने दुदकारी[3] हो राम।
ना हो मेरा दादा भूवा नै डराइ, ना भाइया नै दुदकारी हो राम।
सात सुहेली न्यू उठ बोली तुलसा औड कवारी हो राम।
के बेट्‌टी चाद बर ढूडो के बेट्‌टी सूरज बर ढूटो हो राम।
सूरज हो बाबल तपै घनेरो चदा की रैन अंधेरी हो राम।
हमनै बाबल ऐसा बर ढूंढो सीस उपावै धधा ल्यावै हो राम।
कवर कन्हैया हो राम हो ए बरयारी हो राम।

पुण्य प्राप्ति के साथ यदि सद्‌गृहस्थी भी मिल जाये तो क्या हानि?

कार्तिक के एक दूसरे गीत म कृष्ण जी राधा से प्रस्ताव कर रहे हैं कि पुण्यप्रद कार्तिक मास है गगा-स्नान की तैयारी करनी चाहिए। पर घर में वृद्धा सास है उसे कैसे एकाकी छोड़ा जाय? कृष्ण को तत्काल उक्ति सूझ आती है —

"रे राधा प्यारी! बुढ़िया नै चरखे बठाय, वैसे छोड़ो एकला हो राम।"

क्या चरखा गगा सदृश पवित्र नहीं है? कृष्ण ने सभवत "मन चगा तो कठौती में गंगा" बहा दी है। कैसा लोक सुलभ उपाय ढूढ लिया गया है?

कार्तिक में गगा-स्नान का एक विशेष महत्त्व है। हरियानी जाट नायिका पति से आग्रह करके गगा-स्नान के लिए चली जाती है। घर पर उसकी हात्तड़ भैंस है। उस हात्तड़ (एक हत्यी) भैंस ने पतिदेव की बड़ी दुर्दशा की है। जाट की इसी दशा को एक हास्यजनक चित्र का रूप मिला है। यह कैरीकेचर (Caricature) लोकमेधा की एक अनूठी सूझ का परिचय है। जहाँ विशेष के साथ सामान्य का समावेश भी हो गया है —

म्नै तो पिया गगा न्हुवादे जारी से ससार, हा ए चारी मै ससार।
रान तो गोरी क्युकर न्हुवादयू हात्तड़ पाकी भैंस, हा ए हात्तड़ परबी भैंस।
एक जतन पिया मै बतलादयू।
धरी पै मेरा दामण[4] लटके घुदरी छाप्पेदार, हा ए घुदरी छाप्पेदार।
उन्ने म मेरी नाथ धरी सै पहर काढियो धार, हा ए पहर काढियो धार।
बाहर तै इक सोटिया आया, बेच्चे भिक्षा डाल, हा ए बेच्चे भिक्षा डाल।
बेच्चे तो तेरी न्हाय गइ सै, जीज्जा काढै धार, हा ए जीज्जा काढै धार।
भूग पाढगी जेवड़ा[5] तुड़ागी भाजगी सै भैंस, हा ए भाजगी सै भैंस।
ढड़ा लेकै पाछै होलिया, लैया गया था भैस, हां ए लैया गया था भैस।
गाम्मों मुलगी पल्ला उड़ग्या, मूछ फ्डाकै लै हां ए मूछ फ्डाकै लै।

१ इतनी। २ रोती हुई। ३ फटकारा। ४ लहगा, घागरा। ५ रस्सी।

गलिया में यो चरचा हो रही, देखी मुछड़ नार, हां ए देखी मुछड़ नार।
कोट्टे पाके रस्ता मारे कोए मत भेज्जो न्हाण, हां ए कोए मत भेज्जो न्हाण।

ग्रामीण युवक के प्रतिभाव का एक सजीव व्यंग्य चित्र इन पंक्तियों में हुआ है। "गलियाँ गईं यो चरचा हो रही, देखी मुंछड़ नार, हां एक देखी मुछड़ नार" कैसी स्वाभाविक उक्ति है। प्रत्येक पंक्ति में प्रमुख आवृत्ति वर्णन की सचाई का प्रमाण है।

कार्तिक मास के गातें म प्रभाती, हरजस अथवा भजन का भी विशिष्ट स्थान है। कई प्रकार के सुन्दर-सुन्दर भजन कामिनी कलकंठ के आभरण बनते हैं और वातावरण को धर्ममय बनाते रहते हैं।

इसी मास में समृद्धि का प्रतीक दिवाली (दीपमालिका) उत्सव मनाया जाता है। यह वर्ष भर मनाये जानेवाले अन्य उत्सव व पर्वों से अधिक सुभग एवं सुन्दर है। लौकिक कामनाओं की पूर्ति का एक मात्र आधार अर्थ है और अर्थपूजन का निगूढ लक्ष्य इस उत्सव के अन्तस् में है।

करवा चौथ तथा अहोई आठें व्रत है। इन अवसरों पर कई प्रकार के लोकाचार होते हैं और दोनों व्रतों की समाप्ति कहानी सुनने के उपरांत होती है।

देव उठान (देवोत्थान) का पर्व भी इसी मास की शुक्ला एकादशी को मनाया जाता है। इस अवसर पर मन्त्रपाठ की तरह एक गीत गाया जाता है जिसमें एक साधारण स्थिति का साधारण सा वर्णन आया है —

हे दे ! मुसीबा सात मास हे दे उद्दीका का स्यगमांस,
उठू सू रे उठावा सा, दीके हाथ घलावो सां,
दीके घरी चार कचौरी, आप खा के ब्राह्मण दीजे,
आप खा लाहा[1] हो, ब्राह्मण दीजे कहा हो,
ब्राह्मण ने दीने दुट्टी सी गा, आंत पिण्डोकड़ मूते बाह।

इस गीत का पाठांतर भी हमें मिला है। विशेष अंतर तो नहीं है, आदि अंत के अंशों में अवश्य व्यत्यय है। आरम्भ और अंत के बोल इस प्रकार हैं —

उठो देवो जागो देवो, उठासा उठावा सा। ×
× ×
गये थे हम माढ के माह, आये सा हम कातक माह ॥

भाषा दोनों गीतों की अन्तर लिए हुए है। दूसरे गीत की भाषा में सादगी है।

---

[1] लाभ।

देवोत्थान एकादशी की शुभ तिथि पर गाय के पाली (ग्वाले) एकत्रित होकर घर घर मांगते हैं। विशेषकर उन लोगों के पास जाते हैं जिनके यहां पुत्रोत्पत्ति होती है अथवा विवाहोत्सव होता है। वे एक लम्बा सा गीत गाते हैं। गीत की शैली एवं राग कुछ कुछ केगूरा के गीतों से मिलता है। एक गीत नीचे दिया जाता है —

गोइ गोइ गोइ रे,
भैस काग्डा गोइ रे,
राजा जाए मेडी[1] में सोया, राणी श्राय जगाया रे।
उठो राजा थारी फौज पलटन आइ रे।
आइ सै तो भ्याजणद्यो, रहैं गुरु का भाई जी।
कोइ बूढ़ा कोरे[2] बागड़ा कोइ बूढ़्या ग्वाइ रे।
पड़ पड़या गुजर का बेग, नौ सौ गऊ छुड़ाइ रे।
ना सौ गऊआं में, एक दूधा धाया[3] धैडा,
पानी का तिसाया रे।
उरली गंगा न्यारा पाणी, पर ला जाए डुराया[4] रे।
श्रड टूट्या, उठै टूट्या, जायतणी म पाया रे।
पाता पीता हट्या नहा तो, मार ज़रठा हगाया र।
नौ मण का मेरा घरठी टूटा, दस मण लोह जड़ाया रे।
घड़क टूट्या घड़क टूटी, तारा श्रम्बर छाया रे।
जाश्रो मेरी मोइ रे, मोइ मोइ मोइ र,
भैंस काग्डा गोइ र।

इस गीत का भावपक्ष समुन्नत कोटि का नहीं है, परन्तु पाठक ऐसे गीतों के भावपक्ष पर विचार करने से पूर्व यदि प्रवक्ता की परिस्थिति पर ध्यान दे लें तो निराश न होना पड़े। ग्वाल-बालों की कल्पना स्पर्शी से ऊँची उड़ान की आशा व्यर्थ है। यहाँ तो निरथक शब्दजाल ही हाथ लगेगा।

अगहन पूस में कोई पर्व उत्सव नहीं मनाया जाता है। सम्भवतः शीत के प्रकोप से उत्सव भी मन्द पड़ जाते हैं। यात्रा आदि भी नहीं हो पातीं।

माघ के आरम्भ में संक्रांति का महोत्सव विशेष रूप से मनाया जाता है। हरियाना जनता उसे बड़े उत्साह के साथ मनाती है और उनकी दृष्टि में इस पर्व की महत्ता सर्वोपरि है। यह हरियाने का परम पावन एवं

[1] महल। [2] किले की दीवार वगैरा। [3] दूध पीकर मोटा बना हुआ। बधिया बैल। [4] पहुँचाया।

कल्याणप्रद पर्व माना जाता है। ग्रामीण जनता में इसकी महत्ता विशेष दर्शनीय है। ब्रह्ममुहूर्त में स्नान किया जाता है, पशुओं को चारा खिलाया जाता है और भूखों को भोजन। नंगों को कम्बल आदि वस्त्र बांटे जाते हैं।

माघ शुक्ल पंचमी को बसंत की स्थापना की जाती है और इसके पश्चात् लोक में गीतों की पुनः बाढ़ आ जाती है। लोक गीतों का यह ज्वार अहरह बढ़ता हुआ फाल्गुन पूर्णिमा तक जा पहुँचता है।

ह फाल्गुन

हरियाना के अन्यान्य त्योहारों में होली का अपना पृथक् अस्तित्व है। यह गाना, बजाना और हँसी का उत्सव होता है। बसंत स्थापना तथा फाल्गुन के प्रारंभ से ही होली के संगीत की मंद गंभीर वेगवती धारा अविरल रूप से बहने लगता है।

बसन्त जब यौवन पर होता है, प्रकृति नवान्न के सदृश स्वयमेव फूल न सूर्य जा हो जाता है। किसान के खेत सरसों के उत्फुल्ल बसंती पुष्पों से भरे होते हैं तथा गेहूँ और जौ की फसलें हरी गाढ़ी पहने होती हैं। ऐसा मादक वेला में फाग की बहार आती है।

फाल्गुन की पूर्णिमा का हास-परिहास और उल्लास उत्साह से पूर्ण होलिकोत्सव मनाया जाता है। हरियाने में इसकी छवि अनूठी होती है। फाग एवं होली गाई और बजाई जाती है। जनता परस्पर होली खेलकर अभिन्न प्रेम प्रकट करती है। यह पर्व आचार के दृष्टिकोण से बड़ा अनुपम है। होली का यह उत्सव भ्रातृभाव, मित्रभाव एवं प्रीतिभाव का सृजनकर मानसिक मलीनता को नष्ट कर देता है। नर नारी, आबालवृद्ध सभी रंग बिरंग बनकर और नाच-नाच कर इस महोत्सव को मनाते हैं।

फाल्गुन में होली के अवसर पर जो गान होता है वह फाग अथवा होली के नाम से पुकारा जाता है। इन होलियों अथवा फागों में शिष्टहास्य, मनोरंजन और उत्साह की सजीवता विद्यमान रहती है।

हरियाना में होली के अवसर पर 'धमाल' राग भी गाया जाता है जिसे हरियानी वीर उन्मत्त होकर तारस्वरेण डफ पर गाता है। इन धमालों में इतिहास, पुराण, शृंगार एवं घरेलू वातावरण के रंग भरे होते हैं। एक पौराणिक चित्र नीचे दिया जाता है —

लिछमन के रै बाण लगा रै सक्ती लिछमन के।
ऐसा रै होय कोइ बीरा नै जिवाले,
आधा राज सवाइ धरती। लिछमन के ।

कै तो निवाले सीता रै सतवती,
कै तो जिवाले हनुमान जती। लिछमन कै
क्या तै जिवाले सीता रै सतवती,
क्या तै जिवाले हनुमान जती। लिछमन कै
सत नै जिवाले सीता रै सतवती,
बूटी तै जिवाले हनुमान जती। लिछमन कै

घरेलू एव ग्रामीण वातावरण भी इन धमालों का विषय बना है। ग्रामीणाएँ अपने ओढने अथवा चुन्डी को नाना प्रकार के कसीदों से सुशोभित करती हैं। इन कसीदों में मयूर आदि पक्षियों की सुन्दर-सुन्दर आकृतियां बनाई जाती हैं और शीशे के लघु-लघु खड भी लगा दिये जाते हैं। इस बात का वर्णन एक धमाल में आया है —

रै चुदड़ी तेरा जुलम कसीदा।
कुण से महीने बोल्लै मोर पपैया?
कदसी चमकै सीसा? रै चुदड़ी तेरा जुलम कसीदा।
सामण महीने बोलै मोर पपैया
फागण चमकै सीसा? रै चुदड़ी तेरा जुलम कसीदा।
कौण सी नणद नै काढ्या सै कसीदा?
कौणसी नै गोद्या सीसा? रै चुदड़ी तेरा जुलम कसीदा।
छोटड़ी नणद नै काड्या सै कसीदा,
बड़ली नै गोद्या सीसा। रै चुदड़ी तेरा जुलम कसीदा।

आज की प्रयोगवादी कविता के लिए अच्छा उदाहरण है। साधारण से साधारण वस्तु को काव्य का विषय बनाना लोक में न जाने कब से चला आ रहा है? आज हम जिसे नूतन वाद एव नई सूझ कहकर पुकारते हैं, लोक में वह चिरकाल से प्रचलित है।

एक दूसरी धमाल में कृषकबाला के खेत रखाने-सम्बन्धी कार्य का वर्णन आया है। खेत के मचान पर किसान की छोरी गोफिया लिये गोलिया नामक पक्षी-विशेष को उड़ा रही है। गोला (गोफिया) चलाने मे उसे कष्ट हो रहा है —

गोलिया तेरी गर्दन काली।
कौण से देस तै चला रै गोलिया,
बागड़ देस तै चला रै गोलिया।
ले गोलिया तेरै मारू सै गोल,
दूखै रै साथ धरवाली। रै गोलिया तेरी गर्दन काली।

हरियाना के एक गीत में होली के 'आगमन' की चर्चा आई है। होली पर्वत से उतरी है और वट वृक्ष के पीछे आकर बैठी है —

डावें[1] डूगर[2] स्यूं होली उतरी,
आय उतरी बडलैगें[3] हेठ।

कुरु प्रदेश में होली के आगमन की चर्चा निम्नलिखित प्रकार से की गई है —

होली आई है गजर मत खा कै।
यह तो जाएगी फन्द कटवा कै॥

एक ऐतिहासिक घटना है कि हरियाना पर मुगलों के प्रशासन के बाद मरहठों का राज्य रहा और उन्हीं से अंग्रेजों को यहां का आधिपत्य मिला। उन्हीं दिनों के ऐतिहासिक वातावरण की झलक एक होली में मिलती है। होली मनोरंजन का उत्सव है। यह मनोरंजन कभी-कभी चारित्रिक दुर्बलताओं तक पहुँच जाता है। इसका संकेत एक स्थान पर मिलता है —

होली की खेलै टपकी यशा कै गलियां में उड़ए गुलाल।
कहियो सुरैया मैं होली खेलण आवै नवाब।
हमलो धरावैं फिरंगी को लड़को कल्लो धरावै नवाब।
कहियो सुरैया तैं होली खेलण आवै नवाब।
ऐसा होली खेलो मिरगानैणी म्हारा साथ की रसियो लहाज।
कहियो सुरैया तैं होली खेलण आवै नवाब।
लहंगो सिवावैं फिरंगी को लड़को, स्यालू सिवावै नवाब।
कहियो सुरैया तैं होली खेलण आवै नवाब।
चादू धरावैं फिरंगी को लड़को, लूगा जड़ावैं नवाब।
ऐसा होली खेलो मिरगानैणी म्हारा साथ की रसियो लहान।

प्रलोभन से बचने के लिए आदेश एवं प्रार्थना इस गीत के प्राण हैं।

हरियाने के फाल्गुन के लोकगीत संयोग वियोग के ताने बाने से बुने हैं। फाल्गुन का उन्मत्त मास विरहोत्कंठिता नायिकाओं तथा सुहागिनों की दृष्टि में अपनी पृथक्-पृथक् आभा लेकर उतरता है। सौभाग्यवती स्त्रियों के प्रति फाल्गुन एक आनन्दाभोग का संदेश लेकर आता है। वास्तव में एक सुहावना समय होता है, न अधिक शीत, न अधिक गर्मी। प्रकृति में उल्लास, सर्वत्र आनन्द। ऐसे शोभनीयकाल में ही सौभाग्य की सफलता है। एक चित्र देखिए —

---

१ बाया हाथ, २ पहाड़। ३ वटवृक्ष के पीछे।

फागन के दिन चार री सजनी, फागन के दिन चार। टेक।
मध जोबन आया फागन में,
फागन भी आया जोबन म।
झाल[1] उठे सें मेरे मन म,
जिनका पार न पार री सजनी, फागन के दिन चार।
प्यारा का बदन महकन लाग्या,
गात का जोबन लचकन लाग्या,
मस्ताना मन बहकन लाग्या,
प्यार करण नै त्यार री सजनी, फागन के दिन चार।
गाम्रो गीत मस्ती म भर कै,
जी जाम्रो सारी मर मर कै,
नाचन लागो छमछम करकै,
उठन दो झंकार री सजनी, फागन के दिन चार।
चन्दा पोहचा आन सिखर म,
हिरणा ना पोहचो अम्बर म,
सूनी सेज पड़ो सै घर में,
मानन कै तकरार री सजनी, फागन के दिन चार।

वृद्ध-वृद्धाओं म भी मस्ती का मन्त्र फूंक देने वाला फाल्गुन मास कैसा रंगरगीला है, यह एक हरियाना के एक गीत में पढ़िये। पहिले दोनों कितने सच्चे निरूपण से भरे हैं —

काची अम्बली गदराई सामण में,
बुढ़ी री लुगाई मस्ताई फागण में।

इस तथ्य निरूपण के पश्चात् गीत विरहपीड़िता नवोढा की ओर झुकता है —

कहियो री उस ससुर मेरे नै जिन घाला[2] लेना फागण में।
कहियो री उस बहुए म्हारी नै चार बरप डट जाय पीहर में।
कहियो री उस जेठ मेरे नै जिन घाली लेना फागण म।
कहियो री उस बहु म्हारी नै चार बरप डट जा पीहर में।
कहियो री उस देवर मेरे नै जिन घाला लेना फागण में।
कहियो री उस भावज म्हारी न चार बरप डट जाय पीहर म।

फाल्गुन की मदिराभ शोभा जब वृद्धाओं म मस्ती का संचार कर देती

1 ज्वाला। 2 भेजा हुआ।

है तो विरहोत्कंठिता उन्मत्तयौवना नव परिणीताओं की क्या दशा होगी यह सहज अनुमानगम्य है। उपरोक्त गीत में ऐसी ही एक विरहविदग्धा हरियानी नायिका प्रवासोद्यत वल्लभ का प्रस्ताव करती है कि कम से कम फाल्गुन में तो उसे बिना भेजे ही ले जायें, परन्तु श्वसुर, जेठ आदि से एक दीर्घकाल—चार वर्ष तक प्रतीक्षा करने का सुझाव मिलता है। प्यारा देवर भी उपदेश देने लगता है। एक ही आशा थी वह भी विलीन हो गई।

यह गीत रेगिस्तानी नदी की भांति बीच में ही शुरू हो गया है, आगे नहीं चला है। निराशा का सहसा मिलना न उसे बीच में ही लुप्त कर दिया है। कैसी करुणा है, कैसी असहाय अवस्था है? हृदय की बात को स्पष्ट कहने में लोकजन कितने कुशल होते हैं, यह ऐसे उदाहरणों से समझा जा सकता है।

एक गीत में चेतन मेधा (Conscious Mind) की झलक मिलती है। विरहोत्कंठिता प्रोषितपतिका नायिका को पति के परदेश रहते हुए बलमारु फाल्गुन के आने का धृष्टता विक्षुब्ध कर रही है। इतना ही नहीं चन्द्र-कौमुदी पर प्रति भी उसे शिकवा है —

जब साजन ही परदेस गये, मस्ताना फागण क्यू आया।
जब सारा फागण बीत गया, तै घर म साजन क्यू आया।
घूम झूम नाचे सब नरनारी, मैं बैठ दुखा की मारी।
मेरे मन म घोर अंधेर मचा, तै चाद का चादणा क्यू आया।
इब पाया आया, जागिया ना, जब नी आया पा मिस्याना।
साजन बिन जोबन क्यू आया, जोबन बिन साजन क्यू आया।
मन की तै अर्थी बंधी पड़ी, आत्मा म लागी हाय झड़ी।
जब फूटा मेरे मन का सुख्या, बलमारा फागण क्यू आया।

गीत की अन्तिम पंक्तियों में नायिका की कातरावस्था की अवतारणा हुई है "मन का लै अर्थी बंधी पड़ी, आत्मा में लागी हाय झड़ी।" पति के बिना आगे प्रतीक्षा करती-करती रो रही है, मन मर गया है। घोर निराशा है।

एक दूसरे गीत म उन्मादी बसंत ने डेरा किया है, पर ऐसे मादक काल में निर्मोही पति ने परदेश यात्रा की ठानी है। नायिका को इस बात पर क्षोभ है। नायक नाना युक्तियाँ देता है। पर पति बिना फाल्गुन की कल्पना भी व्यर्थ है।

नायक अपनी अनुपस्थिति म नायिका को सान्त्वना दे रहा है कि वह

चरखा कातकर अपना समय बिता ले। किसी प्रकार की कोई चिंता नहीं है। घर में समस्त सामग्री है किंतु नायिका को संतोष कहाँ? पीहर भी उसे रोचक नहीं लगता, वहाँ भावज के व्यग्य बाण हैं। अंत में, नायिका अपनी अवस्था की कैफियत दे रही है —

> मैल छुड़ा द्यूं हे गोरी म्हारी बाजणी बैठ्गी पीहर जाय।
> मो भिड़ला मेरै मन बसा।
> रहीण[1] पियारी हो पिया बाप क थारे बिन आदर न होय।
> मो निड़ला मेरै मन बसा।
> बाड़ी जे सूखू कड़बा चरिए न डागर ढोर,
> मो भिड़ला मेरै मन बसा।
> कड़ब निमाणा[3] हो पिया टे पड़ै हम पड्यो ए न जाय,
> मो निड़ला मेरै मन बसा॥

नायिका विषमावस्था में है। पितृगृह का असम्मानपूर्ण वातावरण उसके मर्म को वेध रहा है। चरी के सदृश सूख जाऊँगा जिसे पशु भी न खायेंगे। फिर भला आपके योग्य कैसे रहूँगी। ज्वार का पौदा झुककर गिर जाता है, मिट्टी में मिल जाता है, पर मुझसे मरा भी नहीं जाता।

चैत्र कृष्णा प्रतिपद् को होली जलाइ जाती है। उसी दिन धूल खेला जाता है। हरियाना में 'होलिका' द्वारा भक्त प्रह्लाद के जलाये जाने के प्रयत्न को लेकर एक हरजस (भजन) गाया जाता है। इस हरजस में बड़ी विलक्षण कल्पना की गई है कि होलिका का अग्निवस्त्र तीव्र पवन के झोंकों से उड़कर बालभक्त प्रह्लाद पर आ गया है और भक्त का प्राण रक्षा हो गई है —

> गोदी क अन्दर भगत रामराम रह्या टेर। टेक।
> जब से चरचा सुणी थी हर की, रामनाम की लगी लगन।
> समझाया था एक नै माना दरसन की या लगी लगन।
> हिरणाकश्य नै नाय सुहाया क्रोध की अग्नि लगी जलन।
> निर्भय हो कै भजा भगत नै भय की मूलणी लागी भगन।
> होलका ले गोदी म उनै फूक जलाद्यू टेर।
> गोदी क अन्दर भगत रामराम रह्या टेर॥
> होलका का एक लाल वस्तर था लोम रिसी से लिया था।
> जिसमें अगनी परबैस हुवै न यो ही कथा में गाया था।
> पहिले भी या सभी हुइ थी यो प घोड सुरग छाया था।

१ रहने से। २ जुआर का पौदा। ३ नीचो होकर।

हूब के वैर करया हर मेसी नहीं हुया मन चाहा था।
सील मन्दर के अन्दर बद के लागी थी व करया अंधेर।
गोरी के अन्दर भगत रामराम रह्या टेर॥
धांगरदे के चिता चिणा के निमक बीच में दइ अगन।
जद या अगन जारी हुइ थी चन्दन लकड़ी लगा जलन।
धांगरदे के ऊपर सिर थे जिनके हाथ में खड्ग नगन।
जगहो नहीं था कहीं तिलभर मैं ऊपर रहे थे पैर।
गोरी के अन्दर भगत राम राम रह्या टेर।
मुलतान सहर के सब सजनों ने अगनी में माला गैर दई।
होलानम बड़ा लड़क नै था सगों नै टेर दई।
सारा नाम छिपना दुनिया में हमने भरती फेर लई।
जै लड़का जल जाय अगन में तन अमरा की जीत हुई।
जै भगत जल जा अगनी में क करयोगा फेर।
गोरी के अन्दर भगत राम राम रह्या टेर।
ऐसी पवन चली जोर की चिता सो पाड़ बगाय दई।
सील बसनर को उपज-पुयच के लपक दे उठाय लई।
हुलको सो वा जलने लागगी अपणा साथ बचाय लिया।
दगा किसी का सगा नहीं मैं मनमैणा को सिहरी का सेर।
गोरी के अन्दर भगत राम राम रह्या टेर॥

होली एक निश्चित मुहूर्त पर जलाई जाती है। उसकी प्रदक्षिणा की जाती है। जौ कि नारियों भूना जाता है और जौ तोड़कर अग्नि में डाले जाते हैं। इसके दो अर्थ लिए जाते हैं—प्रथम, अग्नि को भाग दिया जाता है, द्वितीय—प्रह्लाद भक्त की सुरक्षा के लिए जौ छोड़े जाते हैं। जौ लोकनाथ की अपनी वस्तु है और नियति के विरुद्ध रामबाण है। कई लोक कहानियों में आता है कि माता ने जौ डालकर पुत्रों की आपत्तियों में रक्षा की।

इसी समय जब होला जला दी जाती है तो एक लोकाचार मनाया जाता है। एक युवक जलता उपला लेकर अथवा उस खम्भ को लेकर जो दसत अग्नि होला दहन के स्थान पर गाड़ दिया जाता है, समीपस्थ जलाशय में बुझाने के लिए ले जाता है। विश्वास है कि भक्त प्रह्लाद की तप्त शान्ति के लिए यह उपाय किया जाता है।

होली के अवसर पर गुलाल और अबीर की निराली छटा रहती है। मानव मात्र भी मानो प्रकृति की होड़ से रंग-बिरंगा होने का गौरव प्राप्त करता है। पुरातन काल में भी होली का पर्व बड़े आनन्द और मादकता का

काल रहा है। यह एक पौराणिक होली के आदर्श पर देखा जा सकता है। पीयूषवर्षी पद्माकर ने गोप गोपेश की होली का इस प्रकार वर्णन छोड़ा है —

फागु की भीर, अभीरिन में गहि गोविन्द लै गई भीतर गोरी।
भाई करी मन की पद्माकर, ऊपर नाई अबीर की झोरी॥
छीन पितम्बर कम्मर तें, सु बिदा दई मीड़ि कपोलन रोरी।
नैन नचाय कही मुसुकाय, लला फिर आइयो खेलन होरी॥

होली में मस्ती, उन्मत्त यौवन की प्रेममयी अभिव्यंजना तथा उद्दीप्त भावनाओं का सुकुमार सौन्दर्य पाया जाता है।

ग कृषि-गीत

हरियाना एक खेतीहर प्रदेश है। यहाँ का किसान कृषि विज्ञान में बड़ा निपुण है। इतनी गहराई से पृथ्वी चीर, चरस से पानी निकाल और निष्ठुर प्रकृति से जूझ गेहूँ, जौ और चना उत्पन्न करना इन हरियानी किसानों का ही काम है। इसी कृषियोग के विषय में एक लोकोक्ति में कहा है 'कोमला का हीर, जाने खेती की सीर।' इस मरुप्राय प्रदेश में मीलों दूर तक नालियाँ बना बनाकर सिंचाई करना कुछ कम कठिन कार्य नहीं है, परन्तु ये किसान रात दिन एक करके जनता जनार्दन की बुभुक्षा की शान्ति के लिए उपाय करते रहते हैं।

हरियाना के एक भूभाग में नहर का निर्माण वर्तमान समय की देन है। इससे किसान की परिस्थितियाँ परिवर्तित अवश्य हुई हैं, पर हरियानी किसान ने नहर के पानी की पूजा नहीं की है। इन लोगों के अनुभव इसे वरदान स्वरूप न मानकर एक विपत्ति ही समझते रहे हैं। एक उक्ति में कहा गया है "जहाँ जावै पानी नहर, वहाँ जावै बीमारी जहर।" नाना प्रकार के रोग एवं त्रासदी उपद्रव नहर के पानी की भेंट में मिले हैं।

हरियाने का किसान गीत इन्हीं परिस्थितियों के चारों ओर घूमता मिलता है। इन गीतों में धरती माता की देन का वर्णन आया है। बुआई, वर्षा, अनाज, बैल, गाय एवं किसान की अवस्था आदि के गीत इस कोटि में आते हैं।

अन्य प्रदेशों की भाँति हरियाना प्रदेश में भी बुआई का अवसर एक आशा एवं उत्साह का काल है। इस पावन काल में किसान कई प्रकार के शकुन मनाता है, कई देवताओं की मनौतियाँ करता है। उसी समय की

एक मन्त्र रूप में प्रयुक्त होनेवाला गीत हमें मिला है। इसका रूप पूर्णतया स्थानीय होने पर भी सर्वदेशीय बन गया है —

धरती माता नै हर्‌यो, कर्‌यो,
गऊ के जाये नै हर्‌यो कर्‌यो,
जीवजन्त के भाग नै हर्‌यो कर्‌यो,
दादा खेड़े नै हर्‌यो कर्‌यो,
गंगा माई नै हर्‌यो कर्‌यो,
जमना रानी नै हर्‌यो कर्‌यो,
धना भगत को हर्‌यो हल,
बिना बीज उपजायो खेत,
बीज बर्‌यो सो मरा नै खायो,
घर भर आगन भर्‌यो।

किसान का एक ओर अपने अथक परिश्रम की धुन है, तो दूसरी ओर उसकी आस्था भी दर्शनीय है। वह भाग्य और उद्यम में लिपटा हुआ अपनी फसल के लिए धरती माता (वसुन्धरा) का अनुग्रह चाहता है। ग्राम देवता अथवा ग्रामखेड़ा, गंगा माता और जमना रानी की कृपा तक उसकी पहुँच है। धना भक्त के निरालम्ब आख्यान ने तो उसके विश्वास को और भी दृढ़ता प्रदान की है।

हरियाना किसान की आवश्यकताएँ बड़ी स्वल्प एवं स्थूल हैं। वे तो मौलिक आवश्यकताएँ हैं। शेष विलासन उसे नहीं सुहाता। एक स्थान पर यह स्वर बोल उठा है —

दस चरे बैल देख, दो भैंस मन मेरी,
हळ हिमायत ल्या, दो माक भीर जोरी,
भूरी भैंस का दूधा, या राबड़ घोलणा,
इतना दे करतार, तो बोहिर ना बोलणा।

घर में दस चारे बैल हों, फसल के बाद में लगान, मालगुजारी माँगी जावे, भूरी भैंस दूध देती हो और उसमें राबड़ी घोलकर पायें। यदि भगवान् इतना दे दे तो फिर कुछ न चाहिए। किसान के जीवन में सन्तोष के लिए बड़ा स्थान है। उसकी आवश्यकताएँ सीधी सादी हैं।

एक अन्य गीत में वह स्वर्ग की कल्पना लेकर आया है। उसका पार्थिव—स्वर्ग चार साधन, गोधन, उन्नत फसल एवं अश्वारोहण की कुण्डल में सिकुड़कर बैठा है —

उजला भोजन, गाए धन, घर कलवती नार।
चौथे पीठ तुरग की, बहिश्त निशानी चार॥

हरियानी किसान घर बैठे ही स्वर्गीय आनन्द ले रहा है।

दूसरी ओर, राजस्थानी किसान हमारे किसान से एक पग आगे बढ़ गया है। उसके आनन्दोल्लासमय सुखी जीवन में एक मस्ती पूर्ण आत्म विश्वास है और इस परिस्थिति में वह लीलापुरुषोत्तम आनन्दकंद भगवान् पर भी व्यंग्य कस गया है —

बनवारी[1] हो लाल! कोन्या थारे सारे।
गिरधारी हो लाल! कोन्या थारे सारे। टेक।
थे महल माळिया थारे। थारी बरोबरी म्हे करास, कोइ टूटी टपरी म्हारे।
गिरधारी हो लाल कोन्या थारे सारे।
थे कामधेनरा थारे। थारी बरोबरी म्हे करास, कोइ भैंस पडडी म्हारे॥
बनवारी हो लाल कोन्या थारे सारे।
थे हाथी घोड़ा थारे। थारी बरोबरी म्हे करास, कोइ ऊंट टोडड़ा म्हारे।
गिरधारी हो लाल कोन्या थारे सार।
थे भाला बरछी थारे। थारी बरोबरी म्हे करास, कोइ जेली गडासी म्हारे।
बनवारी हो लाल कोन्या थारे सार॥
थे रतनागर सागर थारे। थारी बरोबरी म्हे करास, कोइ ढांन भर्या है म्हारे॥
गिरधारी हो लाल कोन्या थारे सार॥
थे तोसक तकिया थारे। थारी बरोबरी म्हे करास, कोइ फाटा गुदड़ी म्हारे।
बनवारी हो लाल कोन्या थारे सारे॥
था राधा राणी थारे। थारी बरोबरी म्हे करास, कोइ एक जाटणी म्हारे।
गिरधारी हो लाल कोन्या थारे सारे।

कैसा निश्छल गर्व है। किसान अपनी साधारण परिस्थिति में कितना सतुष्ट है। उसे टूटी झोंपड़ी में वही आनन्द है जो राजप्रासादों में। उसकी भैंस कामधेनु से किस बात में कम है। उसकी सुपुष्ट कलेवरा जाटनी महारानी राधा के समकक्ष ही तो है। इसलिए वह ताल ठोंक कर भगवान की समता कर रहा है। सतोष परम सुखम्।

हे बनवारी, हे गिरधारी, तुम चाहे कितने ही बड़े हो, मैं अब तुम्हारे वश में नहीं हूँ। तुम्हारे महल हैं, पर मेरी झोंपड़ी भी उससे कम नहीं। तुम्हारे कामधेनु है तो मेरे पास गाय भैंस आदि हैं। तुम्हारे हाथी

1 प्रो० पारीक—'राजस्थानी लोक गीत, पृष्ठ ८२ =६

घाड़े हैं, मेरे ऊँट बैल हैं। तुम्हारे पास भाले-बरछी आदि शस्त्र हैं, ता मेरे पास जला और गड़ासा है। तुम्हारे पास सागर है तो मेरे पास डाग अर्थात् पानी की तलैया है। तुम्हारे पास सुख-सुविधा के सामान तोशक-तकिया हैं ता म अपनी फटी गुदड़ी में ही मस्त हूँ। तुम्हारे राधा जैसी रानी है ता मेरे घर भी एक जाटनी है।

हरियाना में एक गीत 'हालिड़ा' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें कुलवधू की अपने स्वामी के साथ बातचीत है। गीत में हरियाना किसान की समृद्धि का एक पूरा चित्र उभर आया है। किसान के चार हल हैं और आठ बैल हैं। बाजरे का राटी और साथ म बथुए का साग कैसा प्रकृति सुलभ भोजन है। फस्ल क पकने पर दम्पत्ति प्रसन्न हैं कि उनके खेत में बहुत अनाज हुआ है। नायिका की दृष्टि इस समृद्धि के साथ अपने आभूषणों की ओर गई है —

बाजरे की रोटी पोइ रे हलिड़ा[1], बथुए का राधा रे साग।
आठ बलधा का रे हलिड़ा नीरणा[2], चार हलिड़ों की छाक।
बरसन लागी रे हलिड़ा बादली।
सास नणद का रे हलिड़ा बोलणा[3], इबढ़या उठावे छाक।
कमके सै रे बांधो गोरीधण लाउणा[4], कर दे उठाक्यो छाक।
ढ्यौल सै ढ्योला रे हलिड़ा मैं फिरी, कितै न पाया थारा खेत।
ऊँचे चढ़के गोरीधण देखली, म्हारे धोले बलध कै टाल।
पाछा नै फिर कै रे हलिड़ा देखले, कोइ बोझ मरे छकियार।
किसाक जाम्या रे हलिड़ा बाजरा, किसीक जाम्मी सै जुआर।
लम्बे सै सिरटै[5] गोरीधण बाजरा, मुड़वां सिरटै जुआर।
कै मण बीघे निपजै रे हलिड़ा बाजरा, कै मण बीघे जुआर।
नौ मण बीघे निपजा गोरीधण बाजरा, दसमण बीघे जुआर।
अपणे घड़ाले रे हलिड़ा गोखरू[6], मेरी भवर की नाथ॥

इस गीत में नायिका की अलंकरणप्रियता दर्शनीय है। अन्य जिम्मेदारियाँ (उत्तरदायित्व) तो दूर रहीं, दम्पति की दृष्टि उत्तम फस्ल के साथ अपने आभूषणों की ओर अधिक है। उनके 'बजट' म आभूषणों की मद सदैव रहता है। वस्तुत इस गीत में किसान जीवन की संक्षिप्त कहानी समाई हुई है।

---

१ हाली, हल चलानेवाला। २ चारा। ३ हसना, उलहाना। ४ कमरबंद, नाड़ा। ५ बाल भुट्टा,। ६ कानों में धारण करने का आभूषण।

कृषि गीतों में वर्षा की चर्चा होनी तो जरूरी है। फिर हरियाना तो वर्षा के लिए तरसता है। वर्षा की जो प्रतिष्ठा हरियाना निवासियों की दृष्टि में है वह भला बंगालियों एवं बिहारियों की दृष्टि में कहाँ? हरियानी कृषक पत्नी जिसका पति आधी रात से ही कुआ चलाने के लिए उठ जाता है बादल से प्रार्थना करती हुई कहती है —

ऊपरां बादलिड़ा ऊपरां क्यूं जा,
बरसै से क्यूं ना हे म्हारे देस।

वर्षा के आह्वान में कैसी निराशा है? यदि वश चले तो नायिका उसे क्षणभर में बरसा ले। साथ ही बादल के वर्षण सामर्थ्य की बात कहकर उसकी प्रशंसा भी की गई —

छन म पालिड़ा धूलमधूल,
छन म सै भरद जोहड़ डाबदा[1]।

अन्त में, यह वर्षा प्रार्थना उपालम्भपूर्ण रोमांस में परिवर्तित हो गई —

सूता रे पालिड़ा रंगला की छां,
खेत उजाड़ा रे मेरे बाप का।
हूयो र पालिड़ा तरेड़ी रा",
खेत उजाड़ा रे मेरे बाप का।
मन दे दे सुन्दर बरधा की गाल[2],
तेरे सरीखी म्हारै बी गोरड़ी।
आइये हे सुन्दर म्हारे से देस,
लहंगा[3] रंगा हे उपर चूंदड़ी।

लोक बाला की चाप रंगीन लहंगा और चूंदड़ी तक ही है।

किसान को अपने जीवन में कई प्रकार के अन्न खाने को मिलते हैं, पर बाजरे की पौष्टिकता लोक प्रसिद्ध है। बाजरा स्वयं एक शक्तिशाली अन्न है। यह बल देता है। एक गीत में यह अपने गुणों की स्वयं व्याख्या कर गया है —

बाजरा कहे मैं बड़ा अलबेल्ला,
दो मुस्सल स खन्ड अकेल्ला,
जै तिरी नाणी खीचड़ी खाय,
फूलकाल कोंग हो जाय।

१ छोटा जोहड़। २ गाली। ३ लहगा।

एक अन्य गीत में बाजरे का महत्व चित्रित किया गया है। वह जितना मीठा है उतना ही सस्ता है। उसकी सैनानी दर्शनीय है —

साथ पाव बाजरा चूरमा बैगी,
ठमुक ठमुक घर मटियो, ईसान बाजरा।
साथ पाव बाजरा पकावरा बैठा,
मटक मटक हरिया मटियो, ईसान बाजरा।

हिन्दुस्तान बाजरे का चूरा उन कर जिनकी पसंद है वे इस गीत के सच्चे निरूपण पर अवश्य ही लोक सुगम काव्य प्रतिभा की सराहना करेंगे।

एक गाना एक गीत में ही मानापा ने विनकी की आत्यासल्प कथा सुना डाली है —

म्हारा[1] मांगे सागै म्याचड़ो।
म्हारो चोल्यो सागै सीवन्ने॥
धुलक्यो ढाइयो बापरे।
न्हैं म्हा ए मृगा की डाला॥ मांडो सीवड़ो॥

× × ×

मदबद सीके बाजरी।
कोई लचपच सीके दाल॥ मांगे राखन्ने॥
दूध सीवड़ो सवा बेड़ा।
कोई बरसे म्हारी नाड़॥ मांगे राखन्ने॥

सद्यफलप्राप्ति श्रम की सार्थकता का प्रतीक है, अतः कुलवधू के मुख में पाना आना स्वाभाविक ही है।

हरियाने का वन से नहर का पानी वरदान स्वरूप मिला है, यहाँ पर सुख का मैना उन्ने लगी है। यह खेता नरम फसल (देश मार) सदा आता है परन्तु हरियानी किसान वधू ने, जो अपने धणी (स्वामी) का घर के आंगन में बाहर खेत क्यार में भी साथ देता है, नहर का अभय नहीं दिया है। वह दुख न हार्यो बहुत म्हाई गई है। एक गीत में वह अपने कष्टों का ब्योरा इस प्रकार दे रही है —

बोहत सताई इसहे रे, तन्नै बोहत सताई रे।
बालक छोड़ रोवते रे, तन्नै बोहत सताई रे।

---

१ प्रो० पारीक—'राजस्थानी लोक गीत' पृष्ठ ८६।

डालड़ी में छोड्या पीसना,
अर छाड्डी सैं लागड़[1] गाय,
नगोड़े[2] ईसड़े ! तन्ने बौहत सताई रे ।
कातनी म छोड्या कातना,
अर छोड़्डे सैं मा अर बाप,
नगोड़े इस्वड़े ! तन्ने बौहत सताइ रे ।
बौहत सताई ईसड़े र, तन्ने बौहत सताइ रे ।
बालक छोड़्के रोवत्त रै, त नें बौहत सताइ रे ।

इस की खेती परिश्रम-साध्य है । इस गीत में श्रमश्लथ किसान वधू का दुलार भरा उलाहना है । यहा गरीबी की दैन्य-चीत्कार नहीं है ।

एक दूसरे गीत में इख की निराइ करता हुइ कया ने रोष की रेखाय उभरी हैं —

इस नलाई के फल पाइ,
इस नलाई भर्म कमी घढाइ,
ले गया चोर बहु कै सिर त्याइ ।
सुसरा तै लड़गी पीठ फेर कै लड़गी,
आजा हे सामड़ तन्ने ऊडा तै धड़गी ।
जेठ तै लड़गी गाती खोल कै लड़गी,
आजा हे जिगनी तेरा धान सा छड़गी ।
देवर तै लड़गी घुघट खोल कै लड़गी,
आजा हे दूर्यारानी तन्नै खुटियां धरगी ।
पड़ौसी तै लड़गी दिल खोल क लड़गी,
आजा हे पड़ौसन तन्नै पाड़ कै धरूगी ।
बालम तै लड़गी महलां बैठी हे लड़गी,
आजा हे सोकन तेरा डंका विती धड़गी ।

मिथ्या दोषारोपण ने ग्रामीण कुलवधू के अन्तस् को विक्षुब्ध कर दिया है । वह भयावह सिंहनी-सी बनी सब सबंधियों का नापती है । पड़ोसन और सौकन की तो वह बड़ी दुर्दशा कर डालने का बीड़ा उठाए है । निस्सन्देह यह एक मार्मिक और मनोवैज्ञानिक चित्रण है ।

ईख पेरते समय ऋतुओं में मल्हारें भी गाइ जाती हैं । रात्रि के साद्र एकात क्षणों में किसान की प्रतिभा को पर लग जाते हैं —

१ दुधार, अधिक दूध देनेवाली । २ उन्मत्त, मस्त ।

घड़ा सेरे धाइणे, मुती पिलग बिछा।
नाग् जिद् एकला, मस्त कटारा मा॥ मेरे बावले मल्हार॥
घाम गले ज्यू नेम गलें, कुंई अलें कसार।
घूंघट में गोरी जले, दीख पुरुष का भार॥ मेरी बावली मल्हार॥

एक मल्हार में जो कुछ प्रदेश में प्रचलित है, प्रताशात्मक शैली का प्रयोग हुआ है —

अम्बर ऊपर हल चलै, बलद गऊ के पेट।
हाली तो जनमो नहीं, रमियारी मड़ी खेत॥ मेरी बावली मल्हार॥

इस शैली का सध्याभाषा नाम भी दिया गया है। उलटवासी ढंग पर बना ये मल्हारें बड़ी रहस्यमयी बात कह जाती हैं। एक दूसरी मल्हार में कोल्हू की क्रियाओं का कैसा सांगोपांग वर्णन आया है —

काला हिरन कोल्हू चलै, गोह गडीली देय।
कछुवा बैग गुड़ करै, मडक झोकक देय रे॥ मेरी बावली मल्हार॥

इन मल्हारों को गा-गाकर किसान अपने शीत को भुलाता और मनोरंजन करता है। इन बावले[1] वचनों में कभी-कभी ज्ञान विज्ञान के तत्व भी भरे रहते हैं। कोल्हू की इन मल्हारों में शृंगार की भी कुछ-कुछ पुट पाई जाती है जो बिहारी की शृंगारिकता की समकक्षता को पहुँच जाती है —

नायक नायिका के बाहु मूल दर्शन की इच्छा लेकर कह रहा है।

जब ओढ़े कामन बड़ी लाम्बे खेस म्हाय।
रस्ता मने बतायद, ऊंची करके माय॥ मेरे बावल मल्हार॥

एक स्थान पर कृषक-कामिनी ने अपने पति को मकरा की खेती न विरुद्ध सुझाव दिया है। गात में मकरा की कष्टकर पिनाइ का प्रसंग देकर, अंत में, यह आशा व्यक्त की गई है कि सास के पीछे इस दुष्टा से अवश्य मुक्ति मिल जायेगी।

पाच पचास का नाय घडाइ, पइगा लामना[2] पहरन न पाइ।
सान ताहीं करी लामनी, मान पड़ें घरा दिराराई[3], आवे सासड़ जड़ती पाइ।
देखा क्यू ना काम, बगन क्यू ना खाइ।
मास मिरा ने मुका री सुकाइ।

---

१ ऐतरेय ब्राह्मण में 'एतश प्रलाप' का वर्णन आता है। एतश मुनि बका करते थे। उसी प्रलाप शैली पर ये मल्हारें बनी हैं। २ फसल की कटाइ। ३ वापिस आइ।

ढाइ सेर की कनी, वगत उठ के, आधी पीस कै कथा धोरै थाइ।
के सोवैहो क जागै नणादी के भाइ ?
मुको मत वोइण हो कलावती के भाइ।
डिगगी घरण[1] ठिकाने नहीं थाई।
सास मर जागी, नणद घर जागी,
तेरे मेरे राज म मुक्की छुट जागी।

किसान का सबसे बड़ा साथी बैल है। बैल ही किसान की शक्ति है। वह उसकी सबसे बड़ी आवश्यकता है पर यह विधि-वामता है कि बुढ़ापे म बैल पर से किसान की कृपादृष्टि उठ गइ है। वह विलाप करके कहता है —

अरे न्यू रोवै बुड्ढा बैल, मन्नै मत बेच्चै रे पापी।
तेरे कुचा कोल्हू में चारया, नाज कमा कै तेरे घरा घाल्या।
इ न तन्नै करली सै वज्जर की छाती।
तिरा बज्जड़ खेत मन्नै तोड़्या, गाड्डी तै मुह ना मोड्या,
इब्ब मेरी नेच्चै मे मौटी।

बैल के रोदन म करुणा की पुकार है और किसान की निर्दयता की मार्मिक अभिव्यजना है। उसके भाग्य की विडम्बना यह है कि उसे बुढ़ापे म भी शाति नहीं मिलती।

गाय भी इसी प्रकार अपनी दुर्दशा पर अजस्र अश्रु वर्षा बहाती है। ससार की कृतघ्नता एव अधन्य मनावृत्ति का चित्रण नीचे के गीत में हुआ है —

न्य कह रही धौला गाय, मेरा कोइ सुणता नाइ,
मेरे कितने सिरी भगवान, मैं दु ख पाय रही।
मेरा दूध पिवै मस्सार, घी तै ग्यौं सींचदी।
मेरे पूत कमावैं नाज, मैंबे भा की रइ।
अब भी मेरे गल पै छुरी।

एक लोकगीत में ऊट की कहानी प्रश्नोत्तर रूप म कही गई है —

वाक्तवर बलवान बना, क्यू भुंगी सक्ल बनाई रे ?
के बुभैगा मन मेरे की घणी मुसीबत थाइ रे।
दइ खुदा ने टाग बड़ी जो दो दो गज तक जाती रे।
ऊपर बोझा लद घया जब तीन तीन मन ग्याती रे।
पेट उभरया छाती चम्या डूम्ब[2] से सन जाती रे।
जगें रगड़क[3] इदर क ना मिलता कोइ हिमाती रे।

---

[1] नाभि। [2] ऊट की वह टुड जो अगली टांगों के बीच उभरी होती है।
[3] रगड़।

आश्रय लेकर अपने कष्टों को हल्का करता है। कोल्हू चलाते उसने मल्हार गान किया है, तो गाड़ी चलाते भी उसके स्वर निशीथ के शांत क्षणों के सहचर रहे हैं। कुआ चलाते वह बारा लेकर श्रम विनोदन करता चलता है। इन बारों में कहीं कहीं जीवन दर्शन के तत्व भी उभर आये हैं। कहीं-कहीं धार्मिक एवं सांस्कृतिक झलक भी मिलती है। भारत के प्राणों में धार्मिक अतिशयता हाली, कीलिया और चरसिया के अन्तस् को स्पर्श कर गई है —

भर गया मेरा राम मनाइयो।
आगया भाई कीला खोल दो॥

हरियाना में विगत युग में कई भीषण दुर्भिक्ष पड़े हैं। उन अकालों की कथामात्र रोमांचित कर देती है। परन्तु धन्य हैं धरती माता के ये लाल जो जीवन मरण की उन घड़ियों को भी गा गाकर बिता गये हैं। किसान जीवन की मधुरता का श्रेय निश्चय ही लोकगीत का है। कठोर श्रम के बीच ये गीत नये जीवन का संचार करते हैं।

घ राजनीतिक प्रभाव के गीत

राजनीति ने भी लोकगीतों में रंग भरा है। राजनीति आज के सामाजिक वातावरण में गहराई तक पहुँची हुई है। राजनीति की चर्चा आज के कवि का धर्म बन गया है। एक गीत में पूज्य बापू के निधन को राष्ट्रीय क्षति के रूप में अंकित किया है —

भारत के चन्द्रमा छिपगये, रहे बिलख तारे,
एक अपमान मराग था जिन गांधी जी मारे।
करण प्रार्थना गया हुआ था शुक्रम हुए दिन धौली,
साथ रहने दो कन्या थी भरे पिता की बोली,
बेदर्दी ने दया करी ना तीन मार दी गोली,
बहुत से माणस् कट्ठे होगे बणा बणा के टोला।

भारत भाग्याकाश के चन्द्रमा छिप गये हैं और उनकी याद में तारे विलाप कर रहे हैं, वास्तव में एक मार्मिक उक्ति है।

आगे एक गीत में कहा गया है कि बापू ने देश के लिए क्या नहीं किया। जब तक जीवित रहे उन्होंने अपने रक्त से राष्ट्र की नींव को सींचा और शक्तिशाली बनाया। वे अपने धर्म पर बलिदान हुए। बापू की मृत्यु पर विदेश वालों ने भी शोक प्रकट किया —

भारत को आजाद करने के मुल्क के बीच छिन दिया,
एक क्रान्ति आई हम में जिसने दिया के बदला।
गुरु नानक का वतन भारत के [illegible] किया था,
[illegible] के [illegible] कहा कट गये नहीं में [illegible] दिया था।
इस [illegible] गया में जब तक [illegible] किया था,
[illegible] [illegible] का दिल से [illegible] दिया था।
[illegible] का [illegible], [illegible] [illegible]
भारत को आजाद करने के मुल्क के बीच छिन दिया॥

× × ×

[illegible] [illegible] [illegible] में [illegible] के [illegible] [illegible],
भारत के [illegible] [illegible] में एक [illegible] [illegible]।
अमरीका, इंग्लैंड, [illegible] [illegible] [illegible] के एक [illegible],
[illegible] और [illegible], चीन [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मुल्क, जिन दिन बाद भी [illegible],
भारत को आजाद करने के मुल्क के बीच छिन दिया॥

प्रथम महायुद्ध की एक घटना इतिहासों गाथा में लिखी हुई है। इस नगर का निवासी महायुद्ध में प्रभावित [illegible] में परिवर्तन हो गया और [illegible] बाद [illegible] [illegible] को प्राप्त हुए। [illegible] ने इस इतिहास के [illegible] को यह रूप दिया है —

[illegible] ने [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] का के [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

लोकगीतों में एक ऐतिहासिक उदाहरण [illegible] विशेष द्वारा लुप्त इतिहास के अंधकारमय पक्षों पर [illegible] प्रकाश पड़ता। अभी इनके संकलन एवं मनन की आवश्यकता बनी है।

ङ अन्य-गीत

अब तक हमने उन गीतों को लिया है जिनका संबंध पुत्र जन्म व विवाहादि किसी मांगलिक अवसर पर अथवा ऋतु-पर्व आदि सौन्दर्यमय वातावरण एवं मादक वातावरण में मिलते हैं। देवी देवताओं की भाक (पूजा) के पवित्र उद्देश्य से गाये जानेवाले गीत भी गत-पृष्ठों में स्थान पा चुके हैं। इसके

1 महिलाओं।

अतिरिक्त एक विशाल गीत सम्पत्ति का निरीक्षण प्रकीर्ण नामक उच्छ्वास में पृथक किया गया है। अत इस सर्वांगीण एव विशद विवेचन के उपरात, वैसे तो कुछ अवशिष्ट नहीं रहता, परन्तु जीवन जिस प्रकार वैविध्यपूर्ण है तथा जीवन के व्यापार जिस प्रकार गणनातीत हैं, उसी प्रकार जीवन की काव्यमयी व्याख्याएँ भी अनेक एव असख्य हैं जिनका किसी एक स्थान पर अध्ययन उपस्थित करना मात्र कठिन ही नहीं है अपितु असम्भव भी है। इसलिए हम यहाँ गीत साहित्य के उन रूपों का अवलोकन करेंगे जो उपरोक्त प्रकारों से पृथक् पड़ गये हैं।

'हुचकी' जीवन की अति साधारण सी घटना है। हिक्का, हुचकी अथवा हिचकी के कई कारण होते हैं। विश्वास के आधार पर यह अपने परों पर किसी स्वजन के स्मरण को लेकर उड़ती है। कभी-कभी अजीर्ण भी हिचकी का कारण होता है परन्तु लोक कवि की दृष्टि इससे आगे की खोज कर गई है —

यो हुचकी क्यू आवै से राम यो हुचकी।
कै यो कब्जी की हुचकी से जो सारी हाण[1] आवै से।
कयन कई पर उसनै जै रोट्टी भी नहीं खावै से।
यो हुचकी क्यू आवै से राम यो हुचकी।
बिछड़े साथी की होना कदे यादकरण की हुचकी।
याद करै से तू तै, पर तू किसनै याद आवै मैं।
यो हुचकी क्यू आवै से राम यो हुचकी॥
अच्छा तै फिर के मेरा[2] होगी मरने का यो हुचकी।

परन्तु कितनी घोर निराशा और बेबसी है उस परित्यक्ता विस्मृता वियुक्ता नायिका का —

"मौत भी पर मेरे धोरै आ आ कै चली जावै से।"

इस ऐहिक कष्ट लीला को अपने में समेट लेनेवाली मृत्यु भी उसके प्रति सदय नहीं है। "आ-आकर चले जाने" से यह स्पष्ट है कि उसे मृत्यु तुल्य कष्ट हो रहे हैं। गीत आगे बढ़ता है —

करता होगा राम याद, मनै था ना न्यू भी बोल्या।
जिसनै याद करै से राम, भला दुख कद पावै से।
यो हुचकी क्यू आवै से, राम यो हुचकी।

ऐसी दुराशा है कि न लोक अपना, न परलोक।

सौड़ बाटी, मौडिया बाटी, साझै रह गइ रजाई,
यो भी क्यू ना बाटी राड के रातों मरी जडाई।
छोटे छोरे कै न जागी
घर बाग घर बासा बाग साझै रह गई मोरी,
यो भी क्यू ना बाटी राड के रातों हो गई चोरी।
छोटे छोरे कै ना जागी, बालम बाळे कै नाजागी,
दश दिराळे कै ना जागी॥

जादर से प्राप्त एक नृत्य गीत में एक युवती अपने 'काले सइया' को बेच डालना चाहती है। वह उसे डुबा भी देती है। उसकी एक मात्र इच्छा 'काले खसम' के उत्तरदायित्व से मुक्त होने की है —

हम काले से ब्याहे री नणदिया,
मेरे पिछोक्कड़ बाजार लगत हैं,
काले को बेचन जाऊं री नणदिया,
हम काले से ब्याहे री नणदिया।
ककड़ी भी बिक गइ, खीरे भी बिक गए,
काले को कोई भी ना लवै नणदिया
हम काले से
मेरे पिछोक्कड़ गंगा बहत है,
मैं काले का गेरन जाऊं री नणदिया,
हम काले से
डोब न्हाव मैं घर नै आया,
पाछे पाछे काला भरकता आयारी नणदिया,
हम काले से
कोठे अन्दर सात कोठरी,
काले को मूंदण जाऊंरी नणदिया,
हम काले से
करमों पाछे मिला बालमा,
काले से गोरा हो गया री नणदिया।

गीत के अन्त तक आते आते पाठकों को विदित हो गया होगा कि नायिका की मनोवृत्ति परिवर्तित है। विरहानल में तपकर स्नेह सिंचित होकर गीत की नायिका को युवावस्था आने पर काला पति भी "स्यामु गौर (हरित) "ति (हाय)" दिखलाई देता है। सचाई है कि अभाव में ही किसी वस्तु का ठीक ठीक मूल्य आंका जाता है।

के गीतों तक गा जाते हैं। अन्य प्रकार के गायक वे 'बेरूपिया' अथवा 'उरूपिया' हैं जो नीची जातियों के उत्सवों पर 'मंडली' बनाकर गाते हैं। इनके गानों में अभद्र एवं बेहूदे अनुकरण के अंश सम्मिलित होते हैं।

लोक-गाथा शास्त्री डा० चाइल्ड ने लोक गाथाओं के दो विभाग किये हैं। एक, चारण गाथाएँ (मिन्स्ट्रेल बैलेड्स) और दूसरे, परम्परा गाथाएँ (ट्रैडिशनल बैलेड्स)। चारण गाथाओं से उनका तात्पर्य उन गाथाओं से है जिन्हें घूमते फिरते भाट या चारण स्वयं बनाकर गाते हैं। परम्परागत गाथाएँ वे किस्से हैं जो जनता में चिरकाल से प्रचलित हैं। इन्हीं किस्सों को पंजाबी की लोक गाथाओं के अनन्य अन्वेषक कैप्टिन सर टेम्पल ने लीजैंड्स नाम दिया है। डा० सत्येन्द्र ने इन गाथाओं के लिए अवदान शब्द का प्रयोग किया है।

टेम्पल महोदय ने इन गाथाओं को छः चक्रों (Cycles) में विभाजित किया है।[1] उनके विभाजन की मीमांसा इस प्रकार है—प्रथम चक्र 'रसालू चक्र' के नाम से अभिहित किया है। इसमें आनेवाली गाथाओं में शौर्य के चरम सारपूर्ण साहसिक कार्य मिलते हैं। द्वितीय चक्र 'पांडव चक्र' है, जिसमें महाभारत के प्रकार की गाथाएँ आई हैं। इन गाथाओं में किसी न किसी रूप में पौराणिक वृत्त का सम्बन्ध मिल जाता है, अथवा यों कहा जा सकता है कि किसी पौराणिक गाथा को लोक गायक ने अपनी कला का आधार बना लिया है। तृतीय चक्र में 'शौर्य और सिद्धि' का सम्मेल है जिसमें योद्धा-सन्तों की कथाएँ मिलती हैं, इसे 'गूगा चक्र' भी कहा जा सकता है। चतुर्थ प्रकार की गाथाएँ सिद्ध सम्बन्धी हैं, यथा पूरन भक्त अथवा धन्नाभक्त आदि। पाँचवा चक्र 'सती सरवर' के प्रकार की गाथाओं का है और अंतिम चक्र अर्थात् छठा चक्र स्थानीय प्रवीरों से सम्बन्धित किस्सों का है, यथा 'किस्सा राय किसान गोपाल' तथा 'हरफूल जाट जुलाणी का' आदि। इस विषय में इतना कहना ही अलम् नहीं है, अपितु विषय और विधान के आधार पर इनके और भी कई भेद किए जा सकते हैं।

कथा-वस्तु के आधार पर भी गाथाओं में भेद पाया जाता है। यह भेद कई प्रकार का हो सकता है, परन्तु प्रेम, उत्साह एवं अद्भुत तत्वों की प्रधानता से इन्हें निम्नलिखित तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है —

1 सर आर सी टेम्पल "दि लीजैंड्स आव दि पंजाब" प्रथम भाग, पृष्ठ १८ भूमिका।

आल्हा और ऊदल दो—भाइयों ने किस प्रकार चौहान पिथौरा से अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए लोहा लिया, यह उत्तर भारत में आबालवृद्ध सब जानते हैं। वीर पुंगव सतयोद्धा 'गूगावीर' के पराक्रमपूर्ण उदात्त चरित्र का जो मान हरियाने की जनता के हृदय में है वह कथन की वस्तु नहीं है। आततायी यवनों से भारतीय संस्कृति के सम्मान रक्षणार्थ जो जीवन बलि गूगा ने दी वह इतिहास की अद्भुत घटना है। इन शौर्यपूर्ण गाथाओं का इस वीर प्रसवा भूमि में इतना ही प्रचार है जितना तुलसीदास के 'रामचरितमानस' का।

हरियाने में तीसरे प्रकार के जो किस्से मिलते हैं, उनमें अद्भुत तत्वों का सम्मिश्रण है। उनमें साहसिक कार्यों का उल्लेख होता है और अलौकिक तत्व प्रयोग में लाये जाते हैं। 'शीलादे' गाथा में शीला के महल के दीप, द्वार आदि बोल कर राजा को चकित कर देते हैं। इन मानवेतर तत्वों के द्वारा श्रोताओं का आश्चर्य अपनी सीमा तोड़ देता है और उनके हृदय में अवर्णनीय गुदगुदी पैदा होने लगती है। हरियाने में गूगा की अलौकिक आश्चर्यजनक शक्ति का राग अलापा जाता है। गूगा कहानी में गूगा जब गर्भ में है, तभी से वह अपना चमत्कार दिखाता है। रथ के बैलों को जब साँप डस लेता है तो माता को स्वप्न में दर्शन दे विपत्ति से मुक्ति का उपाय सुझाता है। वस्तुतः अद्भुत कार्यों से तथा नारी-समाज के गौरववर्धन से गूगा महिला जगत् में विशेष सम्मान पा गया है। भाद्रपद कृष्ण ६ को बागड़ी वीर की पूजा के मेले भरते हैं और रात्रि जागरण होता है। 'जगदे का पवारा' में भी परमार गोत्रोत्पन्न वीर जगदेव के द्वारा अपना शिरच्छेदन एक रोमांचकारी दृश्य है जिसमें अलौकिक तत्व सन्निहित हैं।

यहाँ यह विचार कर लेना भी समीचीन होगा कि लोकगीत और लोक गाथाओं में प्रमुख भेद क्या है? यह भेद दो रूपों में स्पष्ट देख पड़ता है। एक—स्वरूपगत भेद (आकारगत अथवा बाह्य), दूसरा—विषयगतभेद (आभ्यन्तरिक भेद)। स्वरूपगत भेद के विषय में इतना जानना आवश्यक है कि गीत का आकार प्रकार छोटा होता है। उसमें एक भाव स्वल्प समय या स्थान लेकर समाप्त हो जाता है। गाथा इसके विपरीत आकार में विशाल होती है। रागणी एक लोक गीत है जो कुछ पंक्तियों में समाप्त हो जाता है, किन्तु 'निहालदे' एक लोक-गाथा है जो कई सप्ताह तक क्या कई महीनों तक गाई जाता है। लिखने में उसका आकार सहस्र पृष्ठों तक पहुँच सकता है। 'आल्हा' को पावस में उत्तर भारतीय जनता का कण्ठहार होता है, पूरे चतुर्मास गाया जाता है। कुछ गाथाएँ अपेक्षाकृत छोटी भी हैं यथा 'सिन्धा रानी शान गोरान', परन्तु फिर भी वे किसी लोक-गीत से आकार प्रकार में बड़ी गुनी हैं।

लोक-गीत और लोक-गाथा का दूसरा भेद प्रधान भेद है। लोक गीत के विषय है घर-गृहस्थी का प्रारम्भ, इष्टदेव की मनौती तथा पारिवारिक व्यवहार के रंग-बिरंगे चित्र उपस्थित करना आदि। लोक गीतों में भिन्न भिन्न संस्कारों—पुत्र जन्म, विवाह आदि, खेत बुवाई, ऋतु-पर्वों पर गाये जाने वाले गीत सम्मिलित हैं जिनमें घर गृहस्थी, प्रेम परित्याग, तृष्णा, विधवा आदि के सुख दुखों का चित्रण ही प्रधान है। कहने का आशय यह है कि घर के लघु घर में जीवन की जिन अनुभूतियों का साक्षात्कार मानव-हृदय को होता है, उन्हीं की झांकी इन लोक-गीतों का मुख्य विषय है। शब्दान्तर में हम कह सकते हैं कि नारी-गीतों का क्षेत्र घर का वातावरण है। वृद्धों पुरुषों के गीत शान्तरसमय हैं और युवक समाज के गीत शृंगारिक हैं।

परन्तु लोक गाथा की भावभूमि लोक गीत से भिन्न है। लोक-गाथा एक लोक महाकाव्य होता है। महाकाव्यों में मिलनेवाली चार विशेषताओं—घटनाएं (ऐक्शन), चरित्र (कैरक्टर), पृष्ठभूमि (सैटिंग) और कथा (थीम) में से लोक-गाथा में प्रथम पर विशेष बल रहता है। अत गाथा में गीतों की भाँति प्रेम के लिए विशेष स्थान रहते हुए भी, संघर्ष के लिए प्रधानता रहती है। गाथाओं में वर्णित प्रेम में महान् संघर्ष दिखाया जाता है जिसका लघुगीतों में प्राय अभाव रहता है। लोक गाथाओं में वीरता, साहस एवं रहस्य रोमांच का पुट अत्यधिक पाया जाता है। यहां विवाह जैसा पुण्य कार्य भी बिना लड़ाई की सहायता के सम्पन्न नहीं होता। आल्हा को जिन्होंने पढ़ा या सुना है वे इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं हैं। 'पूरन भक्त' की गाथाओं में जोगियों की महत्ता दिखाने में गायक को बहुत समय व्यय करना पड़ता है। 'राजा रसालू' अथवा 'किस्सा शालादे' रहस्य रोमांच का भंडार है। नायक कई गाथाओं में लोक मंगल के साधक रूप में भी चित्रित किये गये हैं। 'निहालदे' रास में लोक सुलभ नायक सुलतान के द्वारा त्रिलोकतापी दानव का संहार एक लोक हितकारी कृत्य है। वास्तव में, लोक प्रचलित इन गाथाओं को पढ़ते सुनते मध्ययुगीन राजस्थान के जौहर जैसे कारुणिक दृश्य आँखों के सामने तैरने लग जाते हैं।

लोक गाथाएँ प्राचीन प्रवीरों की और प्रसिद्ध सिद्धों की ही नहीं, नये व्यक्तियों की भी हो सकती हैं और उनमें भी कल्पना का पूरा उपयोग हुआ मिल सकता।

(ख) हरियानी लोक-गाथाओं में पात्र

हरियानी लोक गाथाओं अथवा किस्सों के सार एवं रहस्य को हृदयंगम करने के लिए सर्वप्रथम उनके पात्रों का विश्लेषणात्मक अध्ययन आवश्यकीय

है। गाथाओं में मिलनेवाले पात्रों में नायक, उसके सहयोगी, दैत्य, राक्षस, डाइन, जादूगरनी आदि सभी प्रकार के पात्र जो भारतीय लोक कथाओं में आते हैं, उपलब्ध होते हैं। रसालू गाथा में राजा रसालू अपने तीन साथियों के साथ यात्रा आरम्भ करता है। सुनार और बढ़ई—दो मानवी तथा तोता (शुक) एक अमानवी है। तोता ही अंत तक भक्त एवं विश्वासपात्र रहा है और जायसी के हीरामन तोते की भांति 'गुरु सुआ जेहि पथ दिखावा' ये सभी पशु पक्षी पात्र बोल सकते हैं। 'राजा रसालू' गाथा में तोता मानुषी-वाक् उच्चारण करता है। 'शीलादे' अवदान में दीपक तक बोलता है और तथ्योद्घाटन करता है। इन गाथाओं में नायक और उसके सहयोगी प्रायः एक ही स्थान और एक समय उत्पन्न हुए हैं। रिसालू और घोड़ा एक ही स्थान पर एक ही समय उत्पन्न हुए थे। यह घोड़ा राजा को द्यूत-क्रीड़ा में सहायता प्रदान करता है। जब कभी राजा कठिनाई में हो जाता है तो घोड़ा उसे मार्ग प्रदर्शन करता है। इन पात्रों में कोई एक पात्र अद्भुत कौतूहलपूर्ण कृत्यों को करनेवाला होता है। 'निहालदे' अवदान में कथा आई है कि नरवरगढ में एक दाना (राक्षस) रहता था। वह प्रतिदिन एक प्राणी का आहार करता था। एक दिन किसी विधवा के एकाकी पुत्र की बारी आई। नायक सुलतान ने उस अवसर पर निज का समर्पण किया। दाने के साथ द्वन्द्व किया और दाने को मार डाला।

कई स्थानों पर नायक के साथ उसकी मौसी का प्रेम प्रदर्शित किया गया है। राजा कई-कई शादियां किया करते थे। युवती अपने वृद्ध पतियों में कोई रुचि न पाकर कुटुम्ब के युवकों पर दृष्टि डालती थीं। बेचारे युवक समस्या में पड़ जाते थे। ये व्यभिचारिणी विमाताएं असफल प्रयत्न होकर कभी-कभी नायक अथवा नायिका को मरवा डालती थीं। 'पूरन भक्त' नामक गाथा में विमाता के दुष्कृत्य वर्णित हैं।

भारतीय लोक वार्ता में सर्प की विद्यमानता भी समानरूप से रहती है। 'गुरु गूगा' नामक गाथा में सर्प का वर्णन आया है। गूगा को छुटपन में पालने में सांप के साथ खेलता हुआ दिखाया गया है। सांपों पर उनका असाधारण प्रभाव था। इस समय भी ये सांपों के देवता कहकर पूजे जाते हैं। विश्वास है कि वीर गूगा के पूजक को सर्पदंशन का भय नहीं होता है। इन गाथाओं में जिन सांपों का वर्णन है, उनमें मारण, उच्चाटन एवं सजीवन प्रदान करने की शक्ति होती है। गूगा के किस्से में एक अवान्तर कथा आती है कि धूपनगर के राज सजा (सजय) ने वचनभंग करके अपनी पुत्री सिरियल गूगा को देने से इंकार कर दिया। वह बन में जाता है और बासुरी

बनाकर पशु-पक्षियों को विमोहित कर लेता है। वासुकिनाग ने मुग्ध होकर तक्षक (तातिगनाग) को गूगा की सेवा में नियुक्त किया। तातिग ब्राह्मण वेश बनाकर कांवड़ देश में जाता है। सिरियल को देख लेता है और छिपकर सांप बनकर उसे डस लेता है। सिरियल का शव महल में आता है। उधर तातिग सपेरा बन कर वहां पहुंच जाता है। उसने राजा से यह लिखवा कर ले लिया कि यदि सिरियल स्वस्थ हो गई तो वह उसका सम्बन्ध (शादी) गूगा से कर देगा। तब उसने नाग की कांची लेकर मंत्र पढ़ते हुए सिरियल का विष उतार दिया। राजा ने सिरियल का विवाह गूगा के साथ कर दिया।

साधु-सन्त भी भारतीय लोककथाओं में विशेष शक्ति के अधिकारी होते हैं। ये साधु संन्यासी उन सभी जादू एवं आश्चर्यों (मिराकिल्स) को कर सकते हैं जिन्हें साधारण मानव सोचता है अथवा व्यवहार में ला सकता है। यथा किसी प्रियजन को जीवित कर देना और उसके प्रानगरों के लिए मिठाई आदि ला देना, अंधों को आँखें दे देना, बूढ़े बाबा को हरा कर देना, रोगी को स्वास्थ्य लाभ करा देना तथा नपुंसक को पुंसत्वशक्ति सम्पन्न बना देना आदि। 'गूगा मण्डल' में इस प्रकार के प्रसंग आए हैं। गूगा, माता बाछल के गर्भ से, अपनी करामात दिखाता है और रथ के बैलों को जीवित कर देता है। प्रसिद्ध है कि 'नाम देव' ने मृत बालक को पुनर्जीवित कर दिया था। धन्ना भक्त ने मूर्ति में प्राण-प्रतिष्ठा की थी। इतना ही नहीं, साहित्यिक महाकाव्यों में भी ऐसे चामत्कारिक दृश्य आते हैं। महात्मा तुलसीदास का यह कथन कि "तुलसी मस्तक तब नवै धनुष बान लेहु हाथ" कुछ इसी प्रकार के आश्चर्य का समर्थन है।

अन्य प्रकार के क्षुद्र पात्रों का वर्णन भी इन गाथाओं में आता है। डाइनों (विचेज) का प्रयोग सदैव नायिका को पकड़ने में किया गया है। इनकी शक्ति अपार होती है। ये भूमण्डल में गुप्त वस्तुएं खोज सकती हैं, आकाश को फाड़कर उसमें थेगला लगा सकती हैं तथा जल में आग लगा सकती हैं। पत्थर को मोम बना देने की अद्भुत शक्ति उनमें होती है। ये विभिन्न प्रकार के रूप बना लेती हैं। कभी जर्जर बूढ़ी है तो कभी अनुपम सुन्दरी युवती के वेश में हैं। कार्य-सिद्धि के लिए कोई भी उपाय काम में लाती हैं और सदैव सफल प्रयत्न होती हैं।

ग हरियाना लोक-गाथाओं में प्राप्त अभिप्राय

लोक-कहानियों की भाँति लोक गाथाओं में भी कई प्रकार के अभिप्राय मिलते हैं। इनमें जीवनदान की शैलियाँ निराली होती हैं। भस्म अथवा अस्थियों को इकट्ठा कर आकृति (एफिजी) बनाई जाती है और फिर उसमें

प्राण प्रतिष्ठा कर दी जाती है। पात्र को जीवन दिलाने के लिए चिड़िया स्वय नष्ट हो जाती है। वह पात्र के हाथ के लिए अपना पर देती है, पाँव के लिए पैर आदि। तलवार भी जीवन का प्रतीक बनकर आई है। जीवन जब रोगग्रस्त होता है तो उसमें जंग लग जाता है। उसका टूटना जीवन समाप्ति का द्योतक होता है, किन्तु जब यह एक साथ जोड़ दी जाती है तो जीवन पुनरावृत्त हो जाता है।

कई स्थानों पर स्वप्न भी सिद्धिप्रद होकर आता है। गूगा अपनी माता को स्वप्न में बतलाता है कि मृत बैलों को वह नीम की टहनी से झाड़े। इस उपाय से बैल जी उठे हैं। ये स्वप्न भयावह एव आशागर्भिता—दोनों प्रकार के होते हैं। इसी 'गूगापीर' नामक किस्से में गूगा अपने पिता जेवर को भयानक स्वप्न दिखाता है। परिणामस्वरूप राजा जेवर ने गूगा की सगभा माता को अपने यहाँ वापिस बुला लिया है।

'किस्सा राजा रसालू' में राजा सिरकप ने एक ऐसा आम्रवृक्ष दिया है जो १२ वर्ष से फूला था। इसके साथ एक बच्चा भी दिया गया है। यह कहा गया था कि जिस दिन यह वृक्ष फूलेगा तभी यह बच्चा राजा की पत्नी बन जायेगा।

इन गाथाओं में भगवान की अप्रत्याशित दया के द्वारा चाहे वह साक्षात् भगवान् के रूप में हो अथवा किसी दूसरे रूप में पात्र की सहायता कराई जाती है। प्राय दयाकर पात्र पालनेवाले पशु होते हैं जो भविष्य का मार्ग दिखाते हैं, व आपत्तिकाल में बचाव करते हैं तथा विषम परिस्थितियों का ज्ञान कराते हैं। 'राजा रसालू' के किस्से में तोता यह काम करता है। कोई भी पशु अथवा पक्षी यह कार्य कर सकता है। अत अन्य अनेक स्थानों पर चीता, मोर, गीदड़, ऊँट यथा गोला से गिरते हुए द्वार से नायक की रक्षा करता है तथा सर्प आदि ने यह कार्य किया है। इनके अतिरिक्त निर्जीव पदार्थ, यथा वृक्ष आम और पीपल भी यह कार्य कर सकता है। कभी-कभी यह ईश्वर की दया जहाज के रूप में आती है जो नायक को यथासमय अदृष्ट दिशा की ओर ले जाता है। कहीं-कहीं पर बाल (हेयर) भी चमत्कारी रूप में आता है। यह वृक्ष काट सकता है, जलाये जाने पर आपत्ति से मुक्ति दिलाता है। यह बीहड़ जंगलों को तथा शत्रुओं को जला देता है।

हरियाना लोकगाथाओं में कई स्थानों पर रूप-परिवर्तन का उपाय भी काम में लाया गया है। रूप परिवर्तन के कई प्रकार हैं—अवतार ले लेना, जीवित का अजीवित में और निष्प्राण का सप्राण में परिवर्तन आदि। 'गुरु

गूगा' के अपमान में अवतार की चर्चा आई है। वह अपनी पत्नी सिरियल से मिलने के लिए रात्रि में रूप बदल कर आता है, अवतरित होता है।

इसके साथ ही हरियानी लोकगाथाओं में एक वस्तु देखने को और मिलती है—नायक की पहचान और परीक्षा। नायक की पहचान का कार्य मुद्रा, कोई शारीरिक चिह्न, आभूषण, रूमाल आदि से लिया जाता है। कभी-कभी पूर्व जन्म की कथा भी इस दिशा में सहायक होती है। यथा, नल के किस्से में नल के जन्म की कथा के रहस्योद्घाटन से नल की पहचान हुई है। नायिका की परीक्षा अथवा 'दिव्य प्रमाण' भी बराबर मिलता है। 'शीलादे' नामक किस्से में शीला को अपना सतीत्व प्रमाणित करना पड़ा है। अतः महता ने शीला को खौलते तेल में स्नान कराकर उसकी अग्नि-परीक्षा ली है।

तेल कढ़ाह डाल दो चिता करो तैयार।
उसमें शीला न्हाले जब आय एतबार।
आवे एतबार जरा मेरे मन को,
पहुँची नहीं आँच जरा उसके तन को।
जो करना बेर काम मती देर लगाओ,
अब भूमी वसु माता को पैर पकड़ाओ।

इसी प्रकार दूसरी परीक्षा एक कच्चे धागे में कच्चा घड़ा बाँधकर कुएँ से पानी निकलवा कर की गई है। नायक परीक्षण में नायक से अद्भुत बात की आकांक्षा की जाती है। रेत से आटा दूर कराना, आततायी राक्षस को मार देना यथा 'निहालदे' में सुलतान ने दानो को मारा है, अड़ियल व बिगड़े घोड़े को अनुशासित (पालतू) कर देना, आदि परीक्षा के जटिल प्रश्न होते हैं।

द्यूत-क्रीड़ा भी एक घटना है। राजा रसालू राजा सिरकप के साथ चौपड़ खेलता है और खेल में राजा सिरकप का सिर जीत लेता है। प्रतिहिंसा की भावना भी इन गाथाओं में यत्र-तत्र मिलती है। 'किस्सा राजा रसालू' में राजा को अपनी पत्नी में अविश्वास हो गया है। उसे दंड मिला है कि वह अपने प्रेमी के हृदय के मांस को खावे। इसी प्रकार 'शीलादे' में महता[1] अपनी पत्नी शीला को बेंत मारता है और कमीनों की भाँति वेश धारण कराकर घर की छत पर कौवे उड़वाता है।

घ हरियानी लोक-गाथाओं का स्वरूप (विशेषताएँ)

यहाँ हरियाना के लोक प्रबंधों का स्वरूप-विधान जान लेना भी समीचीन होगा, जिससे साहित्यिक प्रबंधों एवं महाकाव्यों से इनका भेद स्पष्ट हो जाय।

1 महता, राजा रिसालू का मंत्री है जो (राजा) बड़ा [illegible] है।

लोक प्रबन्धों की जो निजी विशेषताएँ मिलती हैं उनके आधार पर हमारे निष्कर्ष निम्न प्रकार हैं —

(क) लोक प्रबन्ध मौखिक रूप में प्रचलित हैं, लिखित रूप में नहीं।
(ख) इनका कोई प्रामाणिक मूलपाठ नहीं है।
(ग) प्रबन्धकार अनाम एवं अज्ञात होता है।
(घ) लोक प्रबन्धों का संगीत के साथ अटूट सम्बन्ध होता है।
(ङ) ये स्थानीयता से युक्त होते हैं।
(च) ये नीति, आचार और उपदेश से रहित हैं।
(छ) इनमें उच्च टेकनीक का अभाव रहता है।
(ज) इनमें टेक पदों की पुनरावृत्ति होती है।
(झ) अधर आरम्भ होता है। (Abrupt beginning)
(ञ) सवेग प्रवाह होता है।

(क) मुख प्रचलित, लिखित नहीं

लोक में प्रचलित इन किस्सों का रूप आरम्भ से ही मौखिक रहा है और ये शिष्य प्रशिष्य परम्परा से एक से दूसरे तक पहुँचे हैं। एक गवैया किसी किस्से को गाता है। उससे कोई दूसरा गवैया गाना सीख लेता है और फिर उससे तीसरा सीखता है। इस प्रकार यह अटूट परम्परा चलती रहती है और इस प्रकार लोक प्रबन्धों का विकास होता रहता है। 'राजा रसालू', 'निहालदे', 'पूरनभक्त', और 'गोपीचन्द भरथरी' आदि हरियानी लोक प्रबन्ध लिपिबद्ध नहीं हैं। आजकल कुछ साधारण सी पुस्तकें इन किस्सों की अवश्य छपी मिलती हैं। लिपिबद्धता के अभाव में यद्यपि लोक प्रबन्ध पारखियों के अनुसंधानकार्य में कठिनाई होती है, किन्तु दूसरी ओर यह तत्व इन किस्सों को विकासशील रखने में सहायक है। लिपिबद्ध होने पर लोक साहित्य की अपनी विशिष्टता नष्ट हो जाती है। लिखित रूप प्राप्त हो जाने पर इन प्रबन्धों की दशा एक अवरुद्ध जलधारा के सदृश हो जाती है। सिजविक ने एक बड़ा मार्के की बात कही है कि "हम किसी बैलेड को लिखकर उसका प्राणान्त कर डालते हैं।"[1] वस्तुतः कोई भी लोक प्रबन्ध तभी तक वृद्धि करता है जब तक वह अक्षरों के शिकंजे में नहीं कस दिया जाता।

(ख) प्रामाणिक मूलपाठ का अभाव

उपर्युक्त बात को समझ लेने के पश्चात् यह सहज ही विदित हो जाता है कि लोक प्रबन्धों के मूलपाठ मिलने कठिन होते हैं। प्राय मिलते ही नहीं

१ फ्रैंक सिजविक—'ओल्ड बैलेड्स' भूमिका।

है। जो वस्तु युग परम्परा से चलती रही है और जिसमें नये-नये गायकों का योगदान मिलता रहा है उसका मौलिक एवं प्रामाणिक पाठ नहीं मिलता। जनता जब इन गीतों को अपना लेती है और गाने लगती है तो वह उसकी सम्पत्ति हो जाती है और उसमें परिवर्तन एवं परिवर्धन होने लगता है। भिन्न-भिन्न गायक इन्हें अपने अनुकूल बनाकर गाते हैं और इस प्रकार इनका मूलरूप लुप्त हो जाता है। इस विषय में प्रो० केर का मत यथार्थ है—"वस्तुतः लोकगाथा एक काव्यात्मक कथा है जिसमें कोई भी विषय गाया जा सकता है, परन्तु गायक उस विषय को पूर्णरूप से व्यक्त नहीं होने देता।"[1] फ्रैंक सिजविक ने भी 'ओल्ड बैलड' की भूमिका में यही मत प्रकट किया है कि गाथा में परिवर्तन और परिवर्धन के लिए विशेष स्थान है। अतः गाथा का प्रामाणिक मूलपाठ मिलना कठिन ही नहीं अपितु असंभव भी है। उदाहरण के लिए उत्तर भारत की लोकप्रिय गाथा 'आल्हा' ली जा सकती है। प्रायः सब प्रदेशों एवं जनपदों में जनता आल्हा और ऊदल के पराक्रमपूर्ण वीर आख्यानों को बड़े चाव से सुनती है और इस गाथा का कोई एक पाठ नहीं, अनेक पाठ हैं। इस गाथा ने अपने जन्म-स्थान बुन्देलखण्ड से चारों ओर फैलकर व्यापकता तो पाई परन्तु मौलिकता को तिलाञ्जलि देनी पड़ी। हम यहाँ प्रो० कैरिज का मत उद्धृत करके इस बात को समाप्त करेंगे। उन्होंने कहा है कि "किसी वास्तविक लोकप्रिय गाथा का कोई निश्चित एवं अन्तिम रूप नहीं हो सकता। या प्रामाणिक पाठ नहीं हो सकता। उसके विभिन्न पाठ हो सकते हैं परन्तु केवल एक ही पाठ नहीं हो सकता।"[2]

प्रबन्धकार (गाथाकार) का अनाम एवं अज्ञात होना

लोक गीतों के विषय में यह पुरातन बात है कि रचयिता का नाम लुप्त रहता है। किस गीत को किस व्यक्ति ने कब रचा, यह बतलाना कठिन है। यही कारण है कि आज हजारों गीतों के होने पर भी हम उनमें से एक के भी रचयिता के विषय में निश्चय रूप से कुछ नहीं बतला सकते। इन गीतों के रचयिता अनाम एवं अज्ञात हैं। साहित्यिक महाकाव्यों की भाँति इन लोक गीतों का भी कोई कर्ता अवश्य होगा जिसने अपनी सुहृन्मण्डली में बैठकर आनन्दातिरेक में इनकी रचना की होगी, परन्तु इन गीतों को किस व्यक्ति ने

१ आर्थर क्विलर काउच 'दि आक्सफोर्ड बुक आफ बैलेड्स', भूमिका भाग। प्रो० कर सेज़ "दि ट्रुथ इज़ दैट दि बैलेड इज़ एन आइडिया, ए पोइटिकल फॉर्म, व्हिच कैन एक्सेप्ट मेनी मैटर, एण्ड इज़ नॉट लीव दैट मैटर एज़ इट वाज़ बिफोर।" २ "इंगलिश एण्ड स्कौटिश पापुलर बैलेड्स" भूमिका, पृष्ठ १८।

रचा यह बतलाने का हमारे पास कोई साधन नहीं है। कुछ ही ऐसे प्रबन्ध गीत हैं जिनके रचयिता का नाम परम्परा से चला आता है—जैसे जगनिक का आल्हा आदि।

हरियानी होली या धमाल आदि के रचयिता सीताराम भटीपुरवासी का नाम प्रसिद्ध है और वास्तव में कुछ होलियों की रचना उन्होंने की भी है। परन्तु अन्य हजारों धमाल और होली के गानों की रचना किसने की, यह बतलाना कठिन है। सच तो यह है कि इन रागियों ने अपने व्यक्तिगत नाम और यश की चिन्ता न करके जाति के लिए अपनी प्रतिभा का उत्सर्ग किया है। इस अनामता का अर्थ यह कदापि नहीं है कि वे लोग अपनी कृतियों के कारण लज्जा का अनुभव करते थे। इसका कारण एक यह हो सकता है कि वे अपने नाम व यश के प्रति इतने सजग नहीं थे, जितने आज के लेखक हैं। अंग्रेजी के लोकगाथा मीमांसक रावर्ट ग्रेव्स का मत भी बिल्कुल ऐसा ही है। उन्होंने लिखा है कि "आजकल के वर्तमान युग में किसी लेखक का अज्ञात नामा होना यह सिद्ध करता है कि वह अपनी कृति से लज्जित होने के कारण ऐसा करता है, परन्तु प्राचीन समाज में इसका कारण अपने नाम के विषय में लेखक की लापरवाही ही समझनी चाहिए[1]।"

घ सगीत का अटूट संबंध

या तो समस्त लोकसाहित्य ही संगीत की नींव बनाकर खड़ा हुआ है परन्तु लोक राग और संगीत का साहचर्य अभिन्न है। सच तो यह है कि संगीत के बिना किसी राग के सुनने में आनन्द ही नहीं आता। अंग्रेजी शब्द बैलेड के लिए हमने जो 'राग' शब्द का प्रयोग किया है वह इस स्थान पर सार्थक हो गया है। बैलेड शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के बलार (Ballare > बलार) शब्द से मानी जाती है जिसका अर्थ नाचना होता है। इस नाच के साथ संगीत की भावना बराबर लगी चलती रही है। प्राचीन काल में यूरोपीय देशों में चारणों के द्वारा ढोल अथवा सितार बजाकर बैलेड गाने का वर्णन मिलता है। हमारे यहाँ भी रागी लोग (बैलेडिस्टस) सारंगी आदि बजाकर इन रागों का आलाप करते हैं। वर्षाकाल में अल्हैत सदैव ढोलक बजाकर ही आल्हा गाता है। गाने की गति ज्यों-ज्यों तीव्र होती जाती है, ढोलक बजने की गति में भी वैसा ही परिवर्तन होता जाता है। राग के सोनों के चरम शिखर पर पहुँचते ही ढोलक भी इसी प्रकार तीव्रता पर पहुँच जाता है।

हरियाना में नगा साम गोपीचन्द भरथरी, पूरन भगत, जयमल तथा

1 रॉबर्ट ग्रेव्स—"दि इंगलिश बैलेड" भूमिका, पृष्ठ १२।

राग किशनगोपाल आदि ये राग सारंगा बजाकर गाते हैं। जोगियों का अपना मठ और वातावरण के अनुकूल सारंगी का मधुरिमा एक निराला आनन्द उत्पन्न करता है। सारंगा उनका अनन्य साधन है। सारंगा के साथ ही उनकी भारती मुखरित होती है और उसके बिना यह पंगु हो जाता है। सच तो यह कि कुछ गात वाद्य-यन्त्र की सहायता के बिना गाये जाने में अच्छे नहीं लगते। ढोला का गाना हरियाने में बड़ा प्रसिद्ध है। इस गायक मंडली ढोल, डफ, नगाड़ा, भजन और घड़ियाल आदि बजाकर और नाच-नाच कर गाती है। इस अवसर पर सुर और वाद्य-यन्त्रों की स्वर-लहरियाँ एक विशेष प्रकार का समाँ बाँध देता है और श्रोताओं को निमोहित कर कर लेता है। कभी-कभी वाद्य-यन्त्र के अभाव में सामान्य लोग मूसल आदि में घुंघरू बाँध कर उसे खड़का कर संगीत ध्वनि उत्पन्न करते हैं। चिमटा या कुप्पी से भी काम लिया जाता है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि लोक गीत एवं लोक रागों का संगीत से अभेद सम्बन्ध है।

ङ स्थानीयता से युक्त

यद्यपि लोक रागों के गायकों ने किसी राजा, रानी तथा अमीर उमरावों के आश्रय में रहकर इन रागों की रचना की है और उसमें ऐसे ही वातावरण के लिए उपयुक्त अवसर भी होता है तथापि रचयिताओं की अपनी निजी अभिरुचि और स्थानीय मान्यताओं के बल पर उनमें स्थानीयता आ ही जाती है। जो राग अथवा किस्सा जिस देश-विशेष में गाया जाता है अथवा प्रचलित है वहाँ का प्रादेशिक प्रभाव (रंग) उस राग में आना अवश्यम्भावी है। जो राग बागड़ में प्रचलित है वहाँ की बातों का रंग उन किस्सों में अवश्य रहेगा। 'निहालदे' में नरवरगढ़ के दानों के बखान में पूड़े और रोट आदि का वर्णन वहाँ के प्रादेशिक भोजन आदि से प्रभावित है। कहीं कहीं स्थानीय ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख भी इन रागों में पाया जाता है।

च नीति, आचार और उपदेश से रहित

लोक रागों में, मूल प्रकृति रूप में, नीति, शिक्षा, आचार अथवा उपदेश का कोई मानना नहीं होती। उनका मुख्य उद्देश्य कथानक की प्रवहणशीलता है और उनमें केवल संगीत एवं विषय अनित रमणीयता पर ही विशेष बल रहता है। ये विषय प्रधान काव्य हैं। गायक अपने निजी व्यक्तित्व को राग में मिलने वाले किन्हीं पात्रों के साथ एकाकार कर लेता है। यदि वह गायक ऐसा नहीं करता तो समझना चाहिए कि उसका व्यक्तित्व पात्रों से भिन्न पड़ गया है और उसमें तटस्थता आ गई है। हरियाना के लोक-रागों में—

गोपीचन्द भरथरी, गूगा, आल्हा और पूरनभगत आदि में—त्याग, तपस्या, वीरता, मातृभक्ति, प्रेम और देश भक्ति के प्रसंग यत्र-तत्र बिखरे मिलते हैं जो शिक्षा और नीति के ऊपर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं, किन्तु इन गीतों के रचयिताओं की प्रवृत्ति प्रधानतया उपदेश की ओर नहीं थी। ये तत्व तो प्रासंगिकरूप से यथावसर आ गये हैं जो खटकने वाले नहीं हैं। वास्तव में, इन लोक रागों में स्थायी एवं सुपरिचित रोचकता मिलती है और इनमें जीवन के विशुद्ध चित्र होते हैं।

छ उच्च टेकनीक का अभाव

लोक राग और लोक गीत दोनों में साहित्यिक टेकनीक का अभाव पाया जाता है। यहाँ पर तो सदैव अभिव्यक्ति की सरलता, स्वाभाविकता और सादगी पर बल रहता है। वस्तुतः ये राग तो सर्वप्रथम विवरणमात्र हैं जिनमें एक कहानी होती है और जो यथासंभव सूक्ष्मता एवं मितव्ययता के साथ कही गई होती है। इनमें रचयिता एक साथ विषय पर पहुँच जाता है। वह जैसे बिना प्रस्तावना के प्रारम्भ करता है उसी प्रकार बिना उपसंहार अथवा भरतवाक्य के अन्त कर देता है। लोक-रागों की अपनी विशेषता है कि इनमें कथा अन्तिम पंक्ति को छूकर समाप्त होती है।

काव्य में लेखक का आग्रह छन्द, अलंकार, गति और अनूठी कल्पना पर रहता है। वह अपनी कृति में मामूली काटछाँट, तोड़ मरोड़ और उतार-चढ़ाव करता चलता है, परन्तु लोक कवि इन कृत्रिम गुणों से दूर रहता है। उसकी रचना में तो नैसर्गिक गुणों की छाप दिखलाई पड़ती है। न कहीं छन्दपूरक आकारों की बाढ़ है और न कहीं क्लिष्ट कल्पना और ऊहापोह के लिए स्थान। यदि कोई उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकार घुणाक्षरन्यायेन बरबस आ जाये तो कोई आपत्ति नहीं। वास्तव में ये लोक-राग एक प्राकृतिक झरने के सदृश हैं जो अपने प्रवाह से बिना प्रयास के निरन्तर बहता रहता है। पं० रामनरेश त्रिपाठी का मत इस ओर बड़ा सटीक है। उन्होंने लिखा है कि "ग्रामगीत और महाकवियों की कविता में अन्तर है। ग्राम-गीत हृदय का धन है और महाकाव्य मस्तिष्क का। ग्रामगीत में रस है, महाकाव्य में अलंकार। रस स्वाभाविक है, अलंकार मनुष्य निर्मित।" अन्यत्र ने लिखा है—"ग्रामगीत प्रकृति के उद्गार हैं, इनमें अलंकार नहीं, केवल रस है। छन्द नहीं, केवल लय है। लालित्य नहीं, केवल माधुर्य है।" यहाँ पर यह ध्यान रखना चाहिए कि जो बात लोक-गीतों के विषय में कही गई है वह लोक रागों के पक्ष में भी यथार्थ घटित होती है।

उपरोक्त कथन से हमारा यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि लोक-गीत अथवा लोक-रागों में अलंकार आदि, आ ही नहीं सकते। कई स्थानों पर सुन्दर सुन्दर अलंकार मिलते हैं, परन्तु वे बिना प्रयत्न आ गये हैं। निस्सन्देह लोक रागों का निजी सौन्दर्य ज्ञानवर्द्धक है।

ग टेक या अन्य पदों की आवृत्ति

लोक-रागों की एक विशेषता यह है कि इनमें टेक अथवा किसी लघु अंश की आवृत्ति होती रहती है। इस प्रक्रिया से कई लाभ होते हैं।—प्रथम पहिले राग की 'एकस्वरता' (मनाटनी) दूर हो जाती है और धातु बदला द्वारा टेक पदों की आवृत्ति होने से राग में नवीन प्राणों का संचार हो जाता है। दूसरे गायक को कुछ अवकाश मिल जाता है। यदि कोई गायक किसी लोक राग को एक ही श्वास में गाना चाहे तो, यह उसके लिए संभव नहीं है। अतः भावों द्वारा गीत में हाथ बनाने से रागों को कुछ विश्राम मिल जाता है। तीसरे, आवृत्ति के कारण गीत विशेष प्रभावशाली हो जाते हैं और श्रोताओं पर उनका गहरा प्रभाव पड़ता है। राग को एक बार में गा देने से उससे वह ज्यादा प्रसन्न नहीं होता जो उसके पौनःपुन्येन गाने से होता है। टेक पदों की आवृत्ति से गीत का रहस्य छन छन कर श्रोताओं के हृदय में बैठ जाता है।

अर्थ की दृष्टि से इन टेक पदों की दो श्रेणियाँ हो सकती हैं। एक—सार्थक, दूसरा—निरर्थक। सार्थक वे टेक पद हैं जिनका कोई निश्चित अर्थ होता है। यथा—'ज्वालाजु की' में प्रथम पद सार्थक है—"हरिहर के गुण गाऊँ मेरी ज्वाला मय्या मा दूर गगन में हाऊँ।" ज्वाला जी के दर्शन गगा स्नान के उदय पुण्यप्रद है। निरर्थक गीतांश वे हैं जिनका कुछ भी अर्थ नहीं, परन्तु उनकी उपयोगिता राग के प्रभावोत्पादन में है। यथा "हे हा, हर राम आदि। ये पद प्रसंग में निरर्थक हैं, परन्तु गीत के लिए इनका मूल्य अत्यधिक है।"

घ अधर आरंभ

लोक रागों की एक विशेषता यह है कि इनका 'अधर आरम्भ' होता है। गायक कोई लम्बी-चौड़ी प्रस्तावना बिना गाढ़ा किये ही विषय पर चढ़ा चलता है।

ङ सवेग प्रवाह

एक अन्य विशेषता यह है कि लोक रागों का प्रवाह बड़ा ज़ोरदार होता है और राग की गति बड़ी तेज़ होती है।

हरियाने के तीन प्रतिनिधि लोकरागों का विवेचनात्मक विस्तृत अध्ययन

१ "निहालदे"

हरियाना रागों की भूमि है। यहां पर बड़े उत्तम उत्तम राग जिनमें समस्त रागीय तत्त्व सन्निहित हैं, जनता के कंठाभरण बने हुए हैं। 'निहालदे' या 'निहाल देवी' उनमें से एक बड़ा रोचक एवं महत्वपूर्ण राग है। इसे इस प्रदेश का महाकाव्य कहा जाये तो अत्युक्ति न होगी। परन्तु यह साहित्यिक महाकाव्यों की भांति लिखित नहीं है। यह तो अलिखितरूप में है और लोक की जिह्वा पर विराजता है। इसे रागी जोड़े के साथ सारंगी पर गाते हैं और पावस में विशेषकर श्रावण में इसके गाने का उपयुक्त समय होता है। 'निहालदे' राग का कथासार इस प्रकार है —

"कीचकगढ़ में महाराजा चकवाबेन के वंश में राजा मैनपाल हुआ। वह परिहार गोत्र का था। राजा मैनपाल के यहां दीर्घकालोपरांत एक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ जिसका नाम 'ढालकुँवर' था। यही राजकुमार ढाला आगे चलकर अपने वैयक्तिक गुणों के आधार पर सुलतान और विशेषरूप से 'नर सुलतान' के नाम से विख्यात होता है। प्रारंभ में यह बड़ा उच्छृंखल एवं उद्दंडी था। इसी निरंकुश प्रवृत्ति के कारण उसे बारह वर्ष का दसोटा (देश निकाला) मिला और वह घर छोड़कर वन में चला गया।

जंगल में भटकते भटकते सुलतान को बाबा गोरखनाथजी मिले। गोरख नाथ जी को प्रणाम किया और 'जोग' के लिए उनसे प्रार्थना की। बाबा जी ने अन्तर्दृष्टि से देखा कि यह राजकुमार है और इसे अभी जोग की आवश्यकता नहीं है। अतः उन्होंने बालक सुलतान के सामने एक शर्त रखी यदि इन्द्रगढ़ में सात घरों से भिक्षा ला देगा तो उसे जोग मिल जायेगा। वह भिक्षार्थ इन्द्रगढ़ गया। उसी समय वहां का राजा धयावकामध्वज (धेयाकमधज लोग ऐसा उच्चारण करते हैं) हाथी पर चढ़कर नगर का भ्रमण कर रहा था। भीड़ भड़क्का बड़ा था। हाथी के आघात से बालक सुलतान का भिक्षापात्र टूट गया। वह रोने लगा। स्वयं राजा ने उसे समझाया और राजकुमार जानकर उसे धर्मपुत्र बना लिया। राजा धयाकमधज का एक औरज पुत्र भी था। उसका नाम फूलकंवर था। दोनों साथ रहते, परन्तु फूलकंवर को सुलतान के प्रति ईर्ष्या हो गई।

इन्द्रगढ़ में रहते हुए सुलतान को छः वर्ष व्यतीत हो गये। एक दिन

शिकार खेलते-खेलते वे दोनों भाई पेमागढ़ में पहुँचे। वहाँ पर सुलतान का बड़ा आदर हुआ। दूसरे दिन घूमते-घूमते वहाँ के राजा भग के बनाये बाग की ओर जा निकले। बाग में राजकुमारी 'निहालदे' सखियों के साथ झूला झूल रही थी। मन्सूर खाँ से उत्साहित होकर सुलतान ने अपना घोड़ा बाग में कुदा दिया। यहीं सुलतान का पत्नी निहालदे के साथ प्रथम मिलन हुआ। तत्पश्चात् पुत्री के प्रस्ताव पर राजा भग ने स्वयंवर रचा और राजकुमारी का विवाह सुलतान के साथ कर दिया।

इस घटना से फूलकवार की इच्छा का बाँध टूट गया। उसने सुलतान को इन्द्रगढ़ छोड़ जाने के लिए कहा और उसने (सुलतान ने) फूलकवार के आग्रह पर नगर को छः वर्ष के लिए त्याग दिया। 'निहालदे' को वहीं छोड़ा और यह वचन दिया कि वह छठे वर्ष की तीज को बारह बजे तक अवश्य आयेगा। फिर वह पश्चिम की ओर नरवरगढ़ चला गया।

नरवरगढ़ का राजा ढोला था जो राजा नल का लड़का था। उसकी पटरानी जैसलमेर के राजा बुध की लड़की मारवणी थी जिसे 'मारू' भी कहते हैं।[1] आधा राज ढोला के नाम था और आधा मारवणी (मारू) के। सुलतान ने मारवणी के प्रधान चौकीदार की नौकरी कर ली। वह सम्मन बुर्ज पर डेरा लगाकर रहने लगा।

उस नगर में एक लोखवाला दाना (दानव) रहता था। वह प्रतिदिन एक मनुष्य की भेंट लेता था। एक दिन सुलतान पहरा दे रहा था। उस दिन सेठ रतन शाह के इकलौते पुत्र की दाने की भेंट के लिए बारी आ गई। सेठ शोक-विह्वल था। सुलतान ने अपने को बलि के लिए अर्पण कर दिया और वह भेंटापुर के स्थान पर दाने के पास चला गया। दाने के साथ लोमहर्षक युद्ध हुआ और सुलतान ने दाने को मार दिया। इस अलौकिक पराक्रमपूर्ण एवं लोकहितकारी कृत्य से प्रसन्न हो मारवणी ने उसे प्रचुर पारितोषिक दिया और अपना धर्मभ्राता बना लिया। अब सुलतान को 'नर सुलतान' अथवा 'वीर सुलतान' कहा जाने लगा।

दूसरी बार नरवरगढ़ के प्रजा-पीड़क कुख्यात चोर 'चानी' को पहरा देते हुए सुलतान ने पकड़ लिया। राजा ढोला ने उसे प्राणदण्ड दिया, परन्तु सुलतान ने चानी चोर को अपनी जिम्मेदारी पर बचा लिया। इस प्रकार उपकृत होकर चोर ने सुलतान से पगड़ी बदली और वे दोनों मित्र बन गये।

---

१ राजस्थानी लोक महाकाव्य 'ढोला मारू' के नायक-नायिका भी ये ही महान् आत्माएँ ढोला और मारू हैं।

एक पर्व पर सूरत बावड़ी के स्नान के लिए मारवण गई और वहाँ उसने सुलतान की जय मानी[1]। बनजारे जो बावड़ी का कर लेते थे, उन्हें खटक हुई। बनजारा सरदार भीमसिंह ने मारू से कर मांगा और उसका डाला घेर लिया। सुलतान और बनजारे का डटकर युद्ध हुआ। बनजारा हार गया और उसने भी विजेता के साथ पगड़ी बदली।

इस नरवरगढ़ में मारू के यहां रहते रहते सुलतान को छः वर्ष व्यतीत हो गये। 'निहालदे' के साथ किया हुआ करार पूरा हो गया। निहालदे के दूत सुलतान को खोजते हुए नरवरगढ़ पहुँचे। एक दिन वर्षा के समय वे दूत मारू के महल के नीचे खड़े थे और निहालदे के लोक प्रसिद्ध परवानों (प्रेम पत्रों) को पढ़ रहे थे। वस्तुस्थिति जानकर मारू के स्त्री-सुलभ कोमल हृदय में चिर वियुक्ता निहालदे के प्रति दयाभाव जाग्रत हुआ और उसने तत्काल सुलतान को बुलाकर इन्द्रगढ़ जाने को कहा। साथ ही तीजां ने करार की स्मृति करा दी। सुलतान अपनी प्रेयसी के तनदीप के प्रकाश में मंजिल दर मंजिल तै करता हुआ इन्द्रगढ़ पहुँचा। निहालदे अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार चितारूढ़ हो गयी थी। सुलतान ने यथा समय पहुँचकर पद्मिनी निहालदे को चिता से बचा लिया और फिर वे दोनों सुखपूर्वक राज करते रहे।

उधर नरवरगढ़ से सुलतान के चले जाने पर महाराजा ढोल को मारवण के चरित्र पर संदेह उत्पन्न हुआ। उसने मारवण से आग्रह किया कि वह सुलतान को भात भरने के लिए बुलाये[2]। नारी की मर्यादा दांव पर थी। मारवण का निमंत्रण मिलते ही सुलतान अपना वेष बदल के यहां भात भरने गया। यह भात जैसा वर्णन किया गया है, पौराणिक भात (नरसी भक्त के भात) से भी बढ़ चढ़ कर था। इस प्रकार सुलतान ने नारी मर्यादा की रक्षा की।

इस लोकराग में लोक महाकाव्योपयोगी सभी तत्वों का बड़ी कुशलता के साथ निर्वाह हुआ है। 'कार्यशीलता' तो इस राग का प्राण बनी हुई है। समस्त कहानी आद्योपान्त संघर्षपूर्ण कार्यों का ही परिणाम है।

---

1 इस स्थान पर सुलतान में ईश्वर की भावना का आरोप लोककारों ने कर लिया है। 2 इस स्थल पर नारी परीक्षा की बात आई है, परन्तु राग का रूप सरस, मर्यादित और कोमल रहा है। इसमें सुलतान और मारू के चरित्रों को उज्ज्वलता ही प्राप्त हुई है।

चरित्र-चित्रण के दृष्टिकोण से यह काव्य साहित्यिक महाकाव्यों की कोटि का है। सुलतान, निहालदे, मारवण, फूलकँवर, जाना मार और राजा मानसिंह आदि सभी चरित्रों का क्रमिक विकास हुआ है। नायक सुलतान का चरित्र प्रारम्भ की 'ज्वकमराताडन' क्रिया से लेकर शारवध आदि अद्भुत कार्यों की प्रशंसा से ही विकसित हुआ है। सुलतान का नाम स्मरणीय है जो विरहावस्था में तड़पकर मनुष्यत्व हुआ है। उसके चरित्र में वीरता, दाक्षिण्य, क्षमा आदि मानवीय गुणों की व्याख्या बड़ी ईमानदारी के साथ लोक-कलाकार ने की है। प्रकृति ने सुलतान को भाग्य से पावनता, सूर्य से भास्वरता, हिमाद्रि शैलशृंग से उत्तुंगता, धरा से सहनशीलता, चन्द्र से शीतलता और कृष्ण से सहृदयता उधार लेकर मानो निर्मित किया है।

'निहालदे' का चरित्र भी पर्याप्त मात्रा में विकसित हुआ है। नारी-चरित्र के उत्तम गुणों का विकास विवाहावस्था से होता है। निहालदे के पावन प्रेम अनन्य लग्न, तपस्या और अगाध साधना का गुम्फन विप्रलम्भ स्थिति में मिलता है। उसके चौमासे प्रेमालेखों में नारी जीवन के मर्मस्पर्शी भावों का वर्णन हुआ है। पति पथ में नारी-हृदय की कोमलता एवं कातरता झाँकती प्रतीत होती है। अन्त में अग्नि परीक्षा के समय सीता जी की मर्यादा की भाँति "आर्यपुत्र के चुने प्रतीक्षा अब तो मेरी बारी है।" कहती हुई चितारोहण हो जाती है। यह तो लोककलाकार की सुजान प्रकृति का परिणाम है कि सुलतान ने यथासमय उसे जीवित बचा लिया। फिर उसने महाकाव्य का नाम निहालदे रखकर नायिका के चरित्र की महानता का परिचय दिया है।[1] अन्य पात्रों के चरित्र भी इसी प्रकार बराबर विकसित हुए हैं।

कहानी में स्थान की एकता का निर्वाह नहीं हो पाया है। ऐसी शौर्य एवं प्रेमपूर्ण साहसिक कहानियों में स्थान की एकता का निर्वाह आवश्यक भी नहीं है और सम्भव भी नहीं है। साहस प्रदर्शन के लिए नायक को स्थानान्तर में जाना पड़ता है। परन्तु जहाँ का भी वर्णन आया है वह अपूर्व रोचकता लिए हुए है।

कथा का उत्स लोक रागों के लिए पूर्णतया उपयुक्त है। लोक रागों की

---

१ हमें अपने तीन भागों (बरवानों) में से एक भाग में यह किंवदन्ती प्रचलित मिली है कि एक बार राजा मल की पत्नी को (निहालदे की माँ को) पार्वती जी ने आशीर्वाद दिया कि तेरी पुत्री बड़ी पतिव्रता होगी और यशस्वी होगी। पार्वती जी के वचनों के कारण 'निहालदे' ही कथा का नाम पड़ा है।

कथा (थीम) सदैव लोक प्रचलित एवं लोकप्रिय होने चाहिए। 'निहालदे' राग हरियाना प्रदेश का एक सर्वप्रिय क़िस्सा है जिसे यहाँ का रागी बड़ा शान के साथ गाता है और यहाँ की ग्रामीण जनता बड़े चाव व रुचि के साथ सुनती है। यह राग यों तो उत्तर प्रदेश और राजस्थान में भी दूर-दूर तक प्रचलित है, परन्तु जो महत्व 'निहालदे राग' को हरियाना में मिला है वह बड़ा विशिष्ट है। राजस्थान के प्रसिद्ध राग 'ढोलामारू' को हरियानी लोक-कलाकार ने बड़ी खूबी के साथ 'निहालदे' में अन्तर्हित कर अपने जातीय राग निहालदे की उच्चता प्रमाणित कर दी है। राजस्थानी राग ढोलामारू हरियानी राग निहालदे का एक प्रासंगिक कथा मात्र होकर आया है। परन्तु ऐसा करने से कथा निर्वाह में एक बड़ी भारी त्रुटि आ गई प्रतीत होती है। लोकरागी नरवरगढ में सुलतान को ले जाकर एकदम नरवरगढ का ही हो गया है। उससे ऐसा अनुभव होता है, मानो पहिली कथा से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया है। फिर कहीं कुछ समय के एक दीर्घकाल के उपरांत उस कथा को संपृक्त करता है। इस बीच, जहाँ सुलतान के चरित्र का उत्तरोत्तर विकास हुआ है, वहाँ निहालदे उर्मिला की भाँति प्रासाद के शुक सारिकाओं से ही बोली-चाली है।

लोकरागी ने 'ढोलकँवर' का युगल[1] (जोड़ा) दिखाकर कुछ संदिग्धता अवश्य उत्पन्न की है, परन्तु समनामता से मारवण की परीक्षा का अच्छा अवसर मिला है। यह जानकर कि इस दानादार प्रतापी चौकीदार का नाम भी 'ढोलकँवर' है, मारवण उसका नाम बदलवाकर 'सुलतान' रखती है और उसे अपना भाई बना लेती है।

इस लोक महाकाव्य में लोकवार्ता के अन्य तत्व—संत-साधुओं की महिमा, पगड़ी बदल भाई, नायक की परीक्षा, दानावध, सतीत्व परीक्षण अथवा दिव्य प्रयोग, तीर्थ इत्यादि पर युद्ध आदि सभी मिलते हैं और यहाँ इन सबका बड़ा सुन्दर योग हुआ है।

यह लोक-राग इतना विशद है कि एक अच्छा नायक पूरे श्रावण मास गाकर ही इसे समाप्त कर सकता है। इसे पूरा लिपिबद्ध किया जाये तो 'ढोलामारू' की भाँति एक वृहद् ग्रन्थ का निर्माण हो जाये। परन्तु यह एक पृथक् खोज का विषय है। हम तो यहाँ 'राग निहालदे' के कुछ सरस अंश दे रहे हैं।

---

1 सुलतान का अन्य का नाम भी 'ढोलकँवर' है और नरवरगढ के महाराजा का नाम भी 'ढोलकँवर' है।

सुलतान मलागढ़ में राजा मघ के माहिम्न उद्यान में पहुँच जाता है। मालन उसके इस व्यवहार पर रोष प्रकट करती है। सुलतान अपने इमिपन्न भी दुहाई देता है —

बाग बनाना बेटी मूल राजा मघमान[1] की बखर निहाल।
बेरा पट जा राजा मघमान नै तनै देगा मूला पर टांग।
हट के बोला पोता मैन का सुण री मालन मरा एक सुभाव।
मैं पत्री जन्म का पालू पुत्रापन की चाह।
पुत्रो के पुत्रापन चार।
तगा बांधू रस बड ना नां पीर दिगा।
सूमर[2] पाती मा बन्, परपन ममम् पूत ममान।
पर तिरिया नै माता कहू, बिना राजपूत की मैं ब्याह कराऊ तीन तलाक॥

पर पुरुष को देखकर 'निहालदे' भी बाग से भागती है। परन्तु हरी दूब में उसके बिछुए खो गए और गाय में पायजब रह गई। वह ढूंढने लगती है। इस बीच, सुलतान उसके समीप पहुँच जाता है —

भारी घोड़ा राजा नै दे दिया, सिर पर रंग री पगरग डाल।
पूगट खोला लाल कमान से, हम हंस पूछी बखर नै बात।
बखर! बावल[3] हिलैंदा[4], के निर्धन तेरा बाप।
क तनै ब्याह कर उठ गया चाकरी।
क व्यापा नहीं सब तन काम।

'निहालदे' का गाना

मेंरी बोली मघरमपुर की सुन छोड़ दे तू असवार।
नावर बावल मैं हिलैंदा, ना निधन मेरा बाप।
मामर्दी ब्याह के उठ गया चाकरा,
मरे व्याप रहा मै सब तन काम।
थे[5] भौंरा मैं तिरी केतकी, त पुरुष मैं तिरी नार।
एक बार भागा छोड़ दे, मैं मिल आऊं अपने मा बाप।
पोता बोला मरूये मैन[6] का सुन रगभीनी राजकुंआर।
मैं रहूं पराया मोलगी[7], भाग कहिए सेर टराद।

---

१ कलागढ़ का राजा मघ है और मान उसका छोटा भाई है। २ गाभिन। ३ पिता। ४ दुःख। ५ थे, तू, तुम, आप। ६ राजा मैनपाल का पिता और सुलतान का पितामह। ७ नौकर।

मतना डूबे देखकै लमेस[1] नै, म्हारा तेरा ना निभाही[2] ।
और कुंवर से बचना भर लियो, तेरा बाबल देगा ब्याह ।

× × ×

मर यो तेरा घोड़ा, जलयो तेरे कापड़े, अमर रहो तेरे सब हथियार ।
मैं भूगी तेरे रूप की लाहे की गरजू हरगिज़ नाह ।

ब्याह का गीत

दिया ढुडेरा[3] केलागढ़ म, नगर के ब्राह्मण लिए बुलाय ।
वेद पढ़ें चौरी रचें मन्त्र कहे सुधार ।
रतन जड़ा के खम्ब धर वेदी दई रचाय ।
मन से बसन्द्र[4] जगायकै अपना धर्म रहे दरसाय ।
पहले फेरा दिया निहाल ने सोने के थाल कर दिये दान ।
दूजा फेरा दिया निहाल ने कुंवर करे राना ने दान ।
तीजा फेरा दिया निहाल ने आधा दे दिया केलागढ़ का राज ।
आगे तै पाछे करे जब धरा पीठ पर राना ने हाथ ।
सातों फेरे दिये सुलतान ने राना ने जोड़े दोनों हाथ ।
चूड़ा गेरन दासी दई, तेरे मन्द्रों[5] की पनहार ।
दावन[6] लायो राजा आपने, जता सता का हुआ मिलाप ।

सुलतान की शिकार खेलते समय फूलकंवर से साथ कलह हो जाती है और फिर वह इन्द्रगढ को छोड़ देता है —

तोता बोला पकड़ बैठ का, सुन रणभौनी राजकुमार ।
ढेड़ा[7] खेलन मैं गया, तेरे फूलकंवर देवर के साथ ।
भिड़ी में जिसकी फूलकंवार म, मैंने धनपाल की दे दी तीन सलाह ।
जल का लोटा धर दियो, म्हारी नगरी नकर गुजार ।

× × ×

बगा बोली सुण रजपूत की, सुण साजन मेरा जवाब ।
चेंच चाल चार्ली, घरर[8] दा धन अपना जाय ।
धूर पड़ जिस होया चानी, करजी चाल तीन दाय ।
जिस मरा डरा होगा घोड़ा फेरू शिलाय ।

---

१ निपाग, भय । २ निबाह । ३ मुनादी कराना । ४ अग्नि (विभावसु, वैश्वानर) । ५ मन्दिर, घर । ६ दामन, पल्ला । ७ शिकार । ८ घी ।

करूं रसोई मोय दे, मपल से टोलूगी ख्याल।
लै साजन तू सो जा, डेरे की रहूंगी चौकीदार।

× × ×

पोता बोला चकवे बैन का, सुन रंगभीनी राजकुमार।
गेलो राखें बांजर परने[1], गेला राखें चारण भाट।
मैं बच्चा रजपूत का, म्हारे रैकारे की गाल।
तू मेरा गैला छोड़ दे, व्याम्बे की चाली जा मैं आन।
कद् निकल् इन्द्रगढ़ के राज से, जब करूंगा मय अस्नान।

× × ×

बेरी बोला मय रजपूत की, सुनले साजन मेरा जुवाब।
जैये चाले चाकरी, म्हारे बैलागा [illegible] तू ले चाल।
मरे माइ बणावें रहो नौकरी, मेरो बाबा रहें मेरा तावेदार।
दान दिया मेरे पिता नै, उन गांवों पर करियो राज।
मेरी माता आदर तेरा करै, तेरे सिर पर मेरे हाथ।

× × ×

पोता बोला चकवा बैन का, सुन रंगभीनी राजकुमार।
सुसराल के बसने नामर्दां का काम।
घोड़े का दुवागा छोड़ दे, व्यागे की चली जा मैं आन।
जित मेरा दाना पानी ले चलै, रब टांडे के असवार।

× × ×

बेरी बोली मय रजपूत की सुन साजन मेरा जवाब।
खेती करें घर रहें, सब से भले किसान।
चलाले ले बाल्दा, खेती कर घर खाय।
चरखा ले दे रांगला, पाड़ी लाल गुलाब।
चरखा लेदे चौअल सारका, रेसम मान चगाय।
सूत हजारी कात दूं, रातू टाक बिकाय।
कात बना दूं थाने डोरिया, घोड़े का घाले दाना घास।

× × ×

पाता बोला चकवा बैन का सुन रंग भीनी राजकुमार।
त्रिया काम[2] खायगा तीन जन, नाइ, माली और कलाल।
काटा खावगा तग का जो म्हारा रुजगार।
घोड़े का दुवागा छोड़ दे, मेरा पिछली ले ले नेक गुहार।

× × ×

१ डोम आदि नीची जाति। २ कमाई।

वेगी बोली मथ रजपूत की सुन मेरा राजा मेरा जवाब ।
घोड़ो दूभर भादुवा, भैंसी दूभर जेठ ।
रांडों दूभर रंडेपड़ा, विधवा दूभर पेट ।
राड लुगाई ऊजड खेड़े, तल तल जार्मो कोय ।
जै चाले ये चाकरी, घणा का कर दे दूजा भेस ।

निहालदे ने तपस्विनी का वेष धारण कर लिया और सुलतान चला गया। वह नरवरगढ में सम्मनबुर्ज पर रहने लगा ।

दाने के साथ युद्ध

दाना देखे ध्यान धर, पल भेंट नहीं पाई ।
जब दाने ने मारा धर के ललकार ।
बावन गज का ऊंचा बना, छत्तीस गज का दिया विस्तार ।
भेंट देन तै रह गया ढोला हो गया निपट गवार ।
मैं बढ जाऊंगा नरवरगढ में ग्या जाऊंगा कई हजार ।
पोता बोला बकवे देन का, सुन भई दाने मेरा सुभाव ।
क्यूं जाता है नरवरगढ में, किसने दई तेरी अक्कल मार ।
मैं आ रहा तेरी भेंट में, कर ले जो कुछ तेरे अख्त्यार
मलन्वाडे में कूदी कूदता दाने नै मारी किलकार ।
युद्ध होने लगा नरवरगढ में, आधी से ढल गई रात ।
सूरज का बल सुलतान में, दाना दिया राजा ने वाय ।

एक दिन सूरत नानकी पे स्नान पर बनजारा भूमसिंह मरवण पे ढाले को घेर लेता है और उससे अनुचित प्रस्ताव करता है —

जब बोला बजारा भीमसिंह सुन रंगभीनी राजकुमार ।
कै जिन्दी धरती नै फोड़कै, कै जिन घड़ दी सुघड़ सुनार ।
झोंका लागेगा तेरे परवा पिछवा पवन का मुख-सूर ना गोरा सा गात ।
सारा चढ़ाऊं घोड़े की पीठ पै, टप्पे[1] थेगी हुकम मजदूर ।
सत्तर हजारी टांडे मैं और मैं, सबकी कर दूंगा सरदार ।
सूट का दूंगा कण्ठा, स्याणे को दूंगा मागरपान ।
अड़सठ तीरथ हिन्दु के न्हाणा के, सारे करा दूंगा स्नान ।

× × ×

---

१ टांग—इशारा, हैरयां ।

टोले में बोली बुध की मारवण, सुन बनजारे मेरा उपाय।
लूटे गाडल सारा दिन गया, पैंठ बांधते बीत रात।
पेट भरे तू बच्या बैल ना, के जाये सांडियों की लार।
मैं राखी हूं टोल की, बहुत बुरा मेरा भाई सुलतान।
ऊ ब्यौरा हो जावेगा सुलतान नै, तन्नै नहीं देगा नरवर से जान।
तारे मरीके छोकरे तरा क्या उनमान॥

× × ×

जब बोला बनारा मौंबसिंह, सुन रागीली राजकुमार।
मैंने काशी लूटी, कारमार; लूट लई गढ गुजरात।
मालनपुर के लूटे कूनबे, टिमलीगढ़ के मारे सरदार।
इन्द्रगढ़ तोड़ा, कैलागढ़ के लूटे सब अरमान।
मुगलगढ़ पाया तोड़ के दोपहर लूटे बुध के बावन बजार।
नेवर में तोड़ इस नरवरगढ़ ने, इस नेवरा का क्या उनमान।
गिनगिन दा हूं किले के कांगरे, पकड़ मगा लूं मर सुलतान।
हलवा[1] बनारे मैं मन मा समझिये, कर ले तूं अब हूं मैदान।

× × ×

टोले में बोली बुध की मारवण, सुन बनारे मेरा सुभाव।
लंका का रावण मत बने, मेरे भाई नै राम अर लछमन जान।
मथुरावाला कंस मत बने, मेरे भाई नै गोकुलवाला किसन जान।
कुन्ती के पढवा जैसा मत बने, मेरे भाई नै हिमालय जान।
पांचों पढवे हिमालय गलगे, यूं गालेगा तुझे सुलतान।
गली गली में रल जागा तेरा डांगरा घर घर बिकजा काखर नून।
ससर बनारी हांडै[2] तेरी मोगली मेरे नरवरगढ़ के समध[3] बजार।
निया चाहे तो टोले का धोरा[4] छोड़ दे मत मिरतो[5] के झाले काले हाथ।

बनारे और सुलतान का युद्ध हुआ। बनारा हार गया और उसने सुलतान से पगड़ी बदली।

दूसरी ओर तपस्विनी निहालदे ने प्रेम की पीर और वेदना से भरे परवाने जो भीतर से सुलगते, हृदय से उछलते ज्वालामुखी की ज्वालजिह्वा समुदाय जैसे हैं अपने दूतों के द्वारा नरवरगढ़ में भेजे। परवानों की संख्या चौरासी है परन्तु हम यहाँ पे केवल दो परवाने नमूने के तौर पर दे रहे हैं —

---

१ दुबला, हल्का, हीन। २ घूमना। ३ बीच में। ४ समीपता। ५ वतैया।

१ बाचे परवाना बुधकी मारवण, लिख कै भेजै पतिभरता नार।
नगर सुरगा[1] हवेलीयें, हेली[2] सुरगी साहूकार,
धन सुरगा धरम तै, न्यत[3] उठ आवै मागणहार,
कुआ सुरगा मीठे नीर का जिसपै आवैं नाजक पणिहार,
खेत सुरगा घने धोरिया उचे डौले दूने[4] क्यार,
अगड़[5] सुरगा छोट बालकें बहु सुरगी बड़ परिवार,
बेटा सुरगी अपणे बाप क दिन तीज्या कै बड़ त्याहार।
मैं नहीं सुरगी कवर निहालद घर को नहीं मेरा भरतार।
तेरै रै हो तो भेजिए मुक्त दुनिया का भरतार।
नहाँ जल कै मल्ली तरणी[6] तान नै तरे नरवरगढ़ पै चढ़ जा भार।
× × ×
२ बाचे परवाना बुध की मारवण, लिखकै भेजै कवर निहाल
चिड़िया नै छाये आलणे बुगला नै छाये हरियल डाल।
हंसा नै समन्दर छालिए कजा नै छाये परवल ताल।
चढ़ा छाया काली बादली जोबण नै छाली कवर निहाल।
और धधेरी मार के लिखू आज भरै समन्दर ज्यू उठै झाल।
जल कै मल्ली तरणी तीन नै तरे पै हो तो बालम नै घाल[7]।

मारवण वस्तुस्थिति जानकर मुलतान को इन्द्रगढ़ भेज देती है। उधर मुलतान के चले आने पर लोग चर्चा करते हैं और मारवण के चरित्र का लाछित करते हैं। मारवण भ्रातृ-प्रेम की दृढ़ता प्रमाणित करने के लिए इन्द्रगढ़ भात का निमन्त्रण भेजती है —

बुध की बोछी मारवण सुणिये धृतरा म्हारी बात।
जिस दिन गया था नरवरगढ़ छोड़ कै दिन तै होगा रात।
बाल्पन तै दाया बख्या बुध बावल[8] तै गया मिलाप।
तान्नै देखे भरवर की मदनी[9] मेरे पै धरै सै मनसा पाप।
नरवरगढ़ में कीये ऊनली रथ कै जड़ूये बाहण की आब।
धन का घाटा से नहीं आधा तपै सै मेरा राज।
थार धधेरा क बहु बोल्ला मारै मेरा सिरका ताप।
जल्दी भाजा पट्टे धरम क ज्यब आवगी बाल्पम कै साथ।
देर घड़ी की मत करै आवगा आठी होरी मैं बरात।।
× × ×

---

१ हवेलीए हवेली का बहुवचन। २ हवेली। ३ नित्यप्रति। ४ नीचे, भीख। ५ आंगन ६ पवित्र, तारनेवाली। ७ भेजना, पहुंचाना। ८ पिता। ६. प्रजा।

पोता बोला पकड़ी बैन का दीवकनगह का था परिहार[1] ।
पहलो मिलजे[2] आई बेगमद् ठरे पीहर ते था रहा पखार ।
दूजे मिलजे कमधज के पूत मैं जानी[3] मिलजे पगड़ी का यार ।
मघजारा मिलजे मोमसिंह रावला मिलजे साहूकार ।
गोधू मिलजे बावला जोगी की माया अपरम्पार ।
बावन गढ़ों के मिलन नरपति सभै मिलन की कर दे त्यार ।
आम्बिर नै कहिए हू परा चौलगी[4] मावर के आपै भर भर मार ॥

× × ×

पट्टे पड़ा था पोता बैन का बावन गढ़ों के राजे त्यार[5] ।
रानी होगी कुप की मारवड़ मिलती का लो लिया धार ।
कुककुक मिलती कर रही पानी पीने भी बार दबार ।
बँधा सिरस की डहन्दी चूदड़ी नौलख पहरा दिया हार ।
बावन हिस्से दे दिया प्यारी प्यारी सिरस के सिगार ।
हीरे मोती दीने बहुत से बावन भरे सोन्या के थाल ।
बावन घोड़े दिये पाणीपंथे[6] और सिरस के सम्मल सवार ।
बावन काढ़े[7] दिये पुष्ठल दम के घोघड़ी गोटी कर्मो नार ।
बावन हाथी दिये मगरोर के हौद भरे थे पन्ने सुहार ।
बावन गाड्ढ कपड़ों के द दिये कासन मलन बेशुमार ।
बावन लाल भी मौ फिरोज के पुतरी की होंदी[8] जय जयकार ।

७. गूगा

वंगवार गूगा के चारित्रिक आख्यानों के बिना हरियाने के लोक-राग अवश्य ही अधूरे रह जायेंगे । गूगा की पूजा हरियाने की सभी जातियों में मिलती है । गूगा की समस्त कथा एक संदिग्ध आवरण में छिपी है । इसमें ऐतिहासिक तथा धार्मिक तत्वों का अनोखा सम्मिश्रण मिलता है । गूगा विषयक कथाओं का जो रूप उपलब्ध है वह एक सम्प्रदाय (Cult) के रूप में है । विशुद्ध धार्मिक भावना उसमें नहीं है । गूगा के उपासक उपास्य की न तो आध्यात्मिक अभिप्राय से पूजा करते हैं न वे मुक्ति तथा निर्वाण की याचना करते हैं और न वे भगवद्-दर्शन की अभिलाषा से उसके

---

१ मुलतान का गोत्र परिहार है । २ यह मिलने के लिए प्रयुक्त हुआ है । ३ जानी काम का चोर । ४ नौकर । ५ साथ । ६ दरयाई, पानी पर तैरने वाले । ७ ऊंट । ८ होती है ।

दरबार में जाते हैं। उसकी समस्त मान्यता 'परचै' याचना तक है। भक्तों को विश्वास है कि गूगा के प्रसाद से संतान एवं धन धान्य में वृद्धि होती है।

हरियाने की जनता गूगा को कई नामों से पुकारती है। कोई 'गुरु गूगा' कहते हैं तो कोई 'गूगा पीर' और 'जाहर पीर' के नाम से अपने इष्टदेव को स्मरण करते हैं। इसका एक नाम 'बागड़वाला' भी हरियाने में प्रसिद्ध है जो इसकी जन्मभूमि[1] के आधार पर इसे मिला है। इन नामों में से दो नाम 'जाहर पीर' और 'गुरु गूगा' विशेष व्याख्या चाहते हैं। लोकवार्ता विशारदों में इन नामों को लेकर बड़ा वितण्डा चला हुआ है। कई प्रकार की वैविध्यपूर्ण अटकलें विद्वानों ने लगाई हैं, परन्तु अभी भी यह खोज का विषय बना हुआ है।

सर्वप्रथम 'गूगा' शब्द को लेते हैं। कई विचार इस ओर व्यक्त किये गये हैं। एक मत, जो अधिक प्रचलित है, गूगा के जन्म-सम्बन्धी कथा को आधार मानकर चला है। गोरखनाथ जी ने रानी बाछल को गूगल दी थी और आशीर्वाद दिया था कि तेरे घर एक ऐसा अवतारी पुत्र होगा जो घर घर पूजा जायेगा। इसी 'गूगल' से उत्पन्न होने के कारण पुत्र का नाम गूगा पड़ा और गूगल < गूगआ < गूगा की प्रक्रिया में होता हुआ इस रूप में आया है। ऐसे विश्वासों एवं मान्यताओं के आधार पर आज भी नाम रखे जाते हैं। परन्तु निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता कि गूगा नाम का क्या आधार होगा। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल का सुझाव है कि मध्यकाल में जो गायों की रक्षा के लिये प्राण तक देते थे वे गोगा कहलाते थे और इस प्रकार वे गोमह (गोरक्षक) शब्द से (गोमह < गोगाह < गोगअ < गोग्गा < गोगा) इसका संबंध स्थापित करते हैं।[2] इस स्थापना में गूगा के चारित्रिक गुणों की मान्यता दी गई है। गूगा ने फीरोजशाह (द्वितीय) के हाथ से असंख्य गौओं की रक्षा की थी यह इतिहास प्रसिद्ध है। परन्तु इस प्रकार का नाम गूगा का प्रारंभिक नाम नहीं हो सकता। यह तो पश्चात् को मिला प्रतीत होता है। हरियाने में किसी हठी एवं उदण्डी बालक को माताएँ 'अरे गूगा रहण्दे' कहकर निषेध करती हैं। गूगा के चरित्र में भी अर्जुन की भांति 'न दैन्य न पलायन' दो विशेषताएं थीं। परन्तु यह भी रूपकात्मक चारित्रिक व्याख्या ही

---

1 गूगा का जन्म ददरेरा नामक गांव में हुआ था जो इस समय बीकानेर जिले के परगना राजगढ़ में है। बीकानेर राज्य को बागड़ कहा जाता है। बागड़ शब्द गुजराती भाषा के 'बगड़ा' से मिलता जुलता है और जिसका अर्थ जंगल होता है। २ भारतीय साहित्य' अंक अप्रैल १९५६ पृष्ठ १२।

है यो उसे छहता नहीं मिली होगी। अत 'गूगा' शब्द का इतिहास अभी अनुसंधेय ही बना है।

गूगा न अपने जीवन में अनेक दिव्यतापूर्ण कार्य किये थ। इन्हीं अलौकिक कृत्यों के कारण उसकी 'धाक' (पूजा) चली और 'जात लगने लगी। 'पीर' की उपाधि भी गूगा को ऐसे ही कारणों से मिली है। एक नौहलाकी गुटका में जिसमें गूगा की कथा संक्षेप में वर्णित है, अंतिम चरण इस प्रकार आता है 'जाहर-पीर मरद अवतारा जगजीत पीरी पाइ।' धाराह म दुष्ट संहारने से गूगा को पीरी प्राप्त हुई है। हमारे 'सावे' में भी 'पीर' शब्द अवतार अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। गूगा को जब 'शाही हमला' की सूचना मिलती है तो वह जिलाकी नाग के मरा अरज करता है और पूर्वपुरुषों की भाति 'वीरत्व' मागता है।

> पहले पैरे बप्पा पीर मैं परतपाल माँ पाया।
> दूजे पैरे बप्पा पीर मैं परमराम कुहाया।
> तीजे पैरे बप्पा पीर मैं जसमेवा के भवर जाहर जलम लै आया।
> बारू मुग में सम्मत करदे सरब तुम्हारी माया।

गूगा को हिन्दू और मुसलमान सभी मानते हैं और पूजते हैं। मुसलमान उन्हे 'गूगापीर' कहते हैं और हिन्दू 'गूगावीर' गायों की रक्षा करने के कारण एव मुसलमानों को हराने के कारण गूगा 'वीर पजा' के अधिकारी हो गये हैं। 'पीर और वीर' शब्द का सबध भी है। पीर शब्द वीर शब्द का चूलिका पैशाची रूप माना जाता है। अत' युद्ध विजेता गूगा वीर ही 'जगजीत कर पीर' बन गया है।

'जाहर पीर' गूगा का एक विशिष्ट नाम है। इसे 'जाहिर पीर' भी कहा जाता है, जिसका अभिप्राय यह होता है वह पीर जो अपनी कला व करामात प्रकट (जाहिर) दिखा दे और जो अपने भक्तों को तत्काल परिचय दे। जाहरपीर के जागरण में भक्त पर जब देवता का आवेश हो जाता है तो वह भक्तों को परिचय देता है। अत इसे जाहर (जाहिर) पीर कहते हैं। कई विद्वान इसे जहरपीर कहते हैं अर्थात् जहर (विष) का देवता। यह कथा है कि गूगा का सर्पों पर विशेष अधिकार है और उसके भक्त सर्पदंश से कभी पीड़ित नहीं होते। एक मत में जाहर का सम्बन्ध जुझार (लड़ाकू, योद्धा) से जोड़कर योद्धावीर अर्थ किया गया है। अत भक्ति क्षेत्र के मूलमत्र "जाकी रही भावना जैसी, प्रभुमूरत तिन देखी तैसी" के आधार पर गूगा के भक्त अपने इष्टदेव में विविध गुणों का दर्शन कर उसे अनेक नामों से पुकारते हैं।

गूगा की पूजा पंजाब, हरियाना, राजस्थान और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में दूर-दूर तक प्रचलित है। हरियाना में उसके विषय में जो कथाएँ मिलती हैं उनका निष्कर्ष इस प्रकार है —

१ गूगा चौहान राजपूत थे।

२ उनके पिता का नाम जेवरसिंह[1] था।

३ इनकी माता का नाम बाछलदे[2] था।

४ गढददरेरा (ददेरा) उनका जन्म-स्थान था जो बीकानेर राज्यान्तर्गत है और सिरसा से ५० मील दूर है।

५ मेड़ी गाँव में जो गूगा मेड़ी के नाम से विख्यात है उन्होंने भूमि समाधि ली थी। मेड़ी पर जालवृक्ष की महत्ता होती है। कथन प्रचलित है "गूगा खल्याजाल तले।"

६ इनके दो मौसेरे भाई थे जिनके नाम हैं अर्जन-सर्जन। उनकी माता का नाम काछल[3] था।

७ सम्पत्ति के लिए झगड़ा हुआ। वे दोनों भाई दिल्ली बादशाह से जाकर मिले और उसे बागड़ पर चढ़ा लाये। युद्ध हुआ।

८ युद्ध में मौसेरे भाई काम आये।

९ मौसेरे भाइयों की मृत्यु से माता बाछल रुष्ट हो गई और उसने गूगा को धिक्कारा।

१० माता के धिक्कारने से गूगा ने भू समाधि ली।

११ लीला घोड़ा जो गूगा के साथ जन्मा था एक ही दिन समाधि ली।

---

१ टाड ने इनके पिता का नाम वछराज दिया है। महाकवि सूयमल ने इनके पिता का नाम राना भीम दिया है परन्तु हरियाने की समस्त कहानियों में गूगा के पिता का नाम जेवरसिंह चौहान ही पाया है।

२ महाकवि सूयमल ने गूगा की माता का नाम 'मनि' दिया है। 'भारतीय साहित्य' पृष्ठ ६२

३ बाछल गोरख जी की सेवा किया करती थी। फल के समय काछल बाछल बनकर फल ले आई। जब गोरखनाथ को इस प्रवंचना का ज्ञान हुआ तो उन्होंने शाप दिया कि पुत्र होते ही काछल मर जायेगी और उसके पुत्र केवल १२ वर्ष तक ही जीवित रहेंगे।

)

१२ गूगा अर्धरात्रि के समय घोड़े पर चढ़ कर[1] अपनी पत्नी सिरियल से मिलने आता है।

१३ गूगा में सर्पदंश को अच्छा करने की अद्भुत शक्ति है।

१४ हिन्दू-मुसलमान दोनों पूजते हैं।

१५ भाद्र पद कृष्ण ६ वीं इनकी पूजा का विशेष दिन है

१६ गूगा के पाँच साथी—सीम्ल पंडा, नरसिंह पाँडे, भज्जू चमार, रतन सिंह भंगी और यह रत्न पचपीर कहलाते हैं। किंवदन्ती है कि गूगल से ही इन पाँचों का जन्म हुआ था।

उपरोक्त पंक्तियों में गूगा की कथा की जो रूपरेखा दी गई है उसके आधार पर गूगा के जीवन में दो घटनाएँ पाठक का विशेष-ध्यान आकर्षित करती हैं। एक—गूगा के विवाह की तथा दूसरी, अरजन-सरजन और दिल्लीशाह के साथ युद्ध की। इन घटनाओं को आधार मानकर गूगा विषयक प्रचलित सांगों के साहित्यिक एवं आनुष्ठानिक दोनों रूप मिलते हैं। टेम्पल महोदय ने इस सांग का वास्तविक रूप अपने संग्रह 'दि लीजेंड्स आफ दि पंजाब' के प्रथम भाग के पृष्ठ १२१ पर दिया है। इसका रूप स्वांग का है। पात्र प्रायः भिन्न भिन्न पूर्व परिचय के साथ गये हैं। प्रारम्भ में सरस्वती-स्तवन है —

सारद माता, तू बड़ी। धरत तेरा ध्यान।
किरपा अपनी कीजिए। करो युद्ध का ग्यान।
करो युद्ध का ग्यान, मात मेरी! मन इच्छा वर पाऊँ।
तू है, माता, बुध का दाता, चरनों सीस निवाऊँ।
करो शुद्ध परमारा! आन के नित दिन तुझे मनाऊँ।
कर हिरदे में बास, सांग गूगे का पूरा बनाऊँ।

फिर राजा जवर और रानी बाछल की पुत्र कामना और पुरोहित रत्नाचार्य द्वारा राजा को धैर्य देना आदि बातें आई हैं। फिर गूगा के विवाह की घटना का बड़ा रोमांचकारी वर्णन हुआ है। कामरूप प्रदेश के राजा सजा (संजय, सभा) ने अपनी पुत्री सिरियल का विवाह गूगा के साथ करने से

---

[1] एक गीत में यह आया है कि हरियाली तीज के दिन बाछल ने सिरियल से हठ की और श्रृंगार का कारण ज्ञात किया। गूगा के दर्शन किये परन्तु उस दिन से गूगा रात्रि में नहीं आता। गीत पृष्ठ २२०-२१ (प्रस्तुत निबन्ध)

इनकार कर दिया। गूगा को क्षोभ हुआ। उसने जंगल में जाकर बांसुरी बजाई। सब पशु-पक्षी विमोहित हो गये। वासुकि ने तातिग (तक्षक) को गूगा की सेवा में नियुक्त किया। तातिग ब्राह्मण वेष बनाकर कामरूप देश में गया और सिरियल की पहचान की। फिर सांप बनकर उसे डस लिया। सिरियल का शव जब महल में ले जाया गया तो तातिग सपेरा बनकर वहां जा पहुँचा। उसने राजा के सामने शर्त रखी यदि सिरियल जीवित हो गई तो वह उसकी शादी गूगा से कर देगा। तातिग ने नीम की टहनी लेकर मन्त्र पढ़ते हुए राजकुमारी का विष उतार दिया। राजा सम्भा ने सिरियल का विवाह गूगा के साथ कर दिया।

गूगा की कथा का दूसरा रूप आनुष्ठानिक तत्वों से युक्त है। इसी घटना के पश्चात् उसे जगजीत कर पीरी मिली है। गूगा के मौसेरे भाई—अरजन सरजन ने दिल्ली के बादशाह को बागड़ पर आक्रमण के लिए प्रोत्साहित किया। घमासान युद्ध हुआ। गूगा ने विजय प्राप्त की और अरजन-सरजन दोनों भाइयों के सिर काट लिये। इस घटना से व्यथित होकर माता बाछल ने गूगा को धिक्कारा और कदापि मुँह न दिखाने की आज्ञा दी। गूगा उल्टे पैरों लौट गया और पृथ्वी माता से भू-गर्भ समाधि की प्रार्थना की। धरा से एक अमानुषी वाणी उद्गारित हुई कि हे वीर! भू-गर्भ समाधि तो केवल मुसलमान को ही मिल सकती है, हिंदु को नहीं। यदि तू ऐसा चाहता है तो पहिले मुसलमान बने तदुपरान्त गूगा ने अजमेर जाकर 'रतनहाजी से कलमा सीखा और इस्लाम में दीक्षा ली। फिर मेड़ी[1] (गूगा मेड़ी) में आकर भू लीन हो गया। यही मेड़ी गूगा का तीर्थ स्थान है। हरियाने में गूगा मेड़ी लालदृक्ष के नीचे बनाई जाती है।

कई विद्वानों का मत है कि जिस स्थान पर गूगा ने भू-समाधि ली थी वहां पर पीछे मढ़ी (समाधि) बनी और फिर उस समाधि के आस-पास बसे हुए गांव को ही 'गूगा मेड़ी' कहने लगे। उनका तर्क यह है कि गूगा की पूजा के लिए मंदिर नहीं बनाये जाते, केवल मढ़ियां हैं जिनमें कोई प्रतिमा आदि नहीं होती। मन्डोर (जोधपुर) में एक मन्दिर में अवश्य उनकी पाषाण मूर्ति मिली है जिसमें गूगा अपने लीले[2] के ऊपर सवार है और हाथ में माला लिए है।

---

१ मेड़ी अथवा जिसे गूगा—मेड़ी नाम से पुकारते हैं बीकानेर जिले का परगना मोहर का एक गाँव है जो मोहर से पूर्व में आठ-नौ कोस के अन्तर पर है। २ 'लीले घोड़े के असवार गूगा' का चित्रलिपि टाड राजस्थान के पृष्ठ ४४८ पर दी हुई है।

इस दूसरी घटना से सम्बन्धित एक साका हमें साथ में लिया है जिसमें गूगा के पराक्रमपूर्ण चरित्र का चित्रण हुआ है। इस साका का हम नमूना दे रहे हैं। साके में गूगा के चारों बेटों—नौरंगा, मल्लू, नारसिंह, सम्मा, पूर्णसिंह—और मुहम्मद का भी रोमांचकारी वर्णन हुआ है। गूगा की पूजा के साथ इनकी भी पूजा लगती है और इन्हें बाहर की बाधा नष्ट करने वाला माना जाता है।

गूगा की पूजा और कथा से संबंधित एक तथ्य पर और ध्यान जाता है कि इस पूजा में सामाजिक व्यवस्था के प्रति एक क्रान्ति की भावना है। इस पचमेली समाज में उच्च-नीच सभी वर्गों के पुरुष हैं। ब्राह्मण भी है भंगी भी, राजपूत भी है और चमार भी। सबकी पंक्ति लगाई जाती है। सबके प्रसन्न के लिए यथा विधि नाना प्रकार का भोजन दी जाती है किसी को चूरमा भेंट किया जाता है तो किसी को कसाई आदि।

गूगा का साका, जैसा हरियाने में गाया जाता है, नीचे दिया गया है —

बेटे सरियल के कहैं सुण माणू मेरी बात,
सुख सोऊ रंग महल में मत्थै लाये चाव अपार,
किल्ली टूटी भीँ[1] पड़ी मेरी अकल्पनी की नस,
सौंपने में हलचल होई ऐसा किल्ला कहर का राज।
× × ×
बेटे बाछल के कहैं सुण सरियल मेरी बात,
क्या सूतने की बात से सोचना चाह अपार,
सौंपने में राजा बने सपाट भये कंगाल,
सौंपने में बाबा बने कलमल[2] ले ले हाथ,
म्हारे सिर पै गोरखनाथ से हम करैं[3] करोग राज।
पाँ पड़ी दराती[4] मना सुरखा में दीनी वार,
मरद सवारें पागड़ी तिरिया सवारें माग,
बेटे सरियल के कहैं सुण माणू मेरी बात,
धू धू धूमा बाजता गढ़ दादर के माह,
ऊंचे घर के तू देखले हो रही स्मे उदास।
× × ×
बेटे बाछल के कहैं सुण सरियल मेरी बात,
ऐसा मरले दूध का बीज लिका ले खांड,

१ भूमि। २ कलम। ३ इधर। ४ सबेरा।

महलों तै सरियल चालदी चल्यावै भौंरा[1] माह,
गूरा मोड़ जगावदी ले मासड़ की ओ',
तम तो उठो पीर निंदावणा तनै के सोवण की नींद,
तेरै सरियायें अम नू खड़े जाणों तोरण उम्या[2] थींद।

× × ×

बोलै सरियल के कहे सुण सासू मेरी बात
क्यू जलमें एकला क्यू जया खोया नूर,
जलमें क्यूणा दो जयो एक दाता एक सूर,
सूरा हो रण में लड़ै दाता करदा दान,
तेरा जामदड़ा क्यू ना मर्‌या हम क्या नै खिहान[3] मरो।

× × ×

बोलै बाछन के कहे सुण सरियल मेरी बात,
मरियो कलम दलिद्री मरियो दातासूर,
मेरा जाया क्यू मरै जिस पै ये दल चाले रे सूम[4]
और ये दल चाये सूम जवी सब्बा की जाइ।

× × ×

बोलै सरियल के कहे सुण सासू मेरी बात,
भगमे कर ल्यो कापड़े करो जोगी का भेष,
दलां बीच कै लीकड़ो थम नै सब करें आदेस,
सुनोरी मेरी सासड़ प्यारी जी।
बोलै सरियल के कहे सुण सास मेरी बात,
पारू ल्यादे कापड़े ल्या पारू हथियार,
छीएला ल्यादे पीड़के[5] मेरे दादसरे की सांग[6],
पति के बदलै मैं जाडू मन्नै कौण कहेगा भार,
सुणो री मेरी मासड़ प्यारी जी।

× × ×

बोलै बाछल के कहे सुण सरियल मेरी बात,
बारण लागे मेंह घणे भरियण लागें ताल,
बाजण लागें पीपले[7] आप कहां चड़ जा,

---

१ धिरक। २ गड़े। ३ हम क्यों शर्मिंदा होती। ४ चढ़ आये।
५. काटी बांध कर। ६ तलवार। ७ तलवार बजना।

ऐसी रास्ते सब्ज की मेरा सूत्या सेर जगा,
सत्ता भिच्छा की जाइ जी।

× × ×

दस्त[1] जोड़ गूगा कहै सुण सरसोंगी क साथ,
पहलाँ अरजाँ मरी सुणो मेरा पदम करो निगार,
पहलाँ करा निगाफ सरी गाहि का धौण सुलाया,
अरजन सुरजन ने किया याद आ दिल्ली म बादशाह भराया,
काइम खाग मद पादा बन दहरर में पाया,
पहिले पैरे बदया पीर मैं धरम-धामाँ पाया,
दूजे पैर बदया पीर मैं धरम राम बुलाया,
तीजे पैरे बदया पीर मैं नरसमया के नगरपै अहार जन्म ले आया,
बारह जुग मैं माया करइ तरष तुम्हारी पाया।

× × ×

गिरी डाकर धैग तकत पै गूगा लिया बुलाया,
सिर पै हाथ दरा दिया दीना पीर बधाय,
सूधीर चीर चार जुगाँ की ल्याया,
दिया तैतीस करोड़ देवता,
माया का पार ना पाया,
अरजन सुरजन का तिरछू काल,
गूगा हाथ सरे से पाया।

× × ×

लग कलेजे बोल जगी निय साथ सनेही,
गिरवर कंपै हाल महल मैं चिटरी रही,
टूट पिलंग क साल पीर की चूड़ी दही,
खबर हुइ जी साथ[2] म असली जागी चार,
दल म कहन[3] पड़ गइ धौंकड़ी कट गइ चार,
जती गोरख का चेला।

× × ×

कहाँ गई वा नार रही देरी थी साम्ना,
क्या पांचू हथियार सहीदी[4] बदलू बाना,
मेरी माता ने बेग बलाद मने करी दूध बकसीस,

---

१ दस्त, हाथ। २ साथी। ३ कमी। ४. असली, वास्तविक शहीदी (पतिपद का भेप)।

दुधमुत के मेले हुए सभै पीली धारवतीस,
जती भिक्षा की नाई ।

× × ×

बोले सरियल के कहे सुण सासू मेरी बात,
मत मारी मोरी गई सुत्या दिया जगाय,
खूटी तै खाड़ा पड़्या चल्लै पै चढ़ी कमान,
जागतड़ा रोसन हुया उठा मनाकै रात[1],
रथ चढत बैरी मुड़त मरे जागे थी बलवत,
सुणो मेरी सासूसड़ प्यारी ।

× × ×

चदन चौकी बिछा दई जलझारी धरी हजूर,
परी असर[2] तै उतरी सत्तर उतरी हूर,
परिया नै मटणा मल्या हूर चालावै नूर,
सरियल करती आरता जिसके रूप के लगे जहूर,
जती भिक्षा की जाइ जी ।

× × ×

बोले बाछल के कहे सुण छोली के जाम,
तू गूगा दो जण्ये तीजा ना माइ जाया बीर,
जै थावै गूगे नै मरवाया कै मनै मतए दिखइये मुह,
जै थ्यावै जिवाय कै तेरे दूधां मैं परवालूंगी पांय,
सुणो छोली के जाये ।

× × ×

बोले घोड़ा के कहे सुण माता मेरी बात,
एक मेरी टांग टूट जा मैं पिरू दला के मांह,
दूजी टांग मेरी टूटणा पूना[3] मैं पून सया,
तीजी टांग मेरी टूटणा मैं लेवलू गिगन के मांह,
चौथी टांग मेरी टूट जा फेरए कुछ न पार बसा,
सुणो मेरी माता प्यारा ।

× × ×

जहार चला रणरोल पौस के छा कै जदा[4],
गूगा मारे महल की चौक नगर नै दे परकम्मा[5],

---

१ भगवान को मनाकर । २ आसमान । ३ पवन । ४ ताजा ।
५ परिक्रमा ।

गूगे के बहुत ही चढ़ग्या रूप गात में होग्या चैला[1],
रूप पै परी हुई कुरबान रूप जणो खिल रह्या चन्द,
सिर पै सुनहेरी ताज हाथ सुखतानी कड़ा,
तीन लोक के नाथ तार मेरी परतग्या[2]।

×　　　　×　　　　×

पोता उम्मरसान[3] का धरके देखै ध्यान,
गढ़ दादर के राजपूत जणों उमग्या पाये भान,
बोले गूगा के कहे सुण रे बाम्मरग्यान[4],
बाहर चढ़ी धारी मैं मानली मरे थे थोड़ी बहोत इन्सान,
सुणो दादर के लोगो।

×　　　　×　　　　×

बोले फतहसिंह के कहे सुण गूगा मेरी बात,
गढ़ दादर की बास[5] में करैगे बढ़ती पाग,
चाली छाइ बाकली सैयां[6] मैं गाये गीत,
तू मरज्या रणखेत में मैं जीऊगा के काज,
मैं चलू तुमारे साथ जती गोरख का चेला।
बोले गूगा के कहे सुण दादा मेरी बात,
मेरे बली फगीटियो वेरी सिखरों था,
थम जाओ घर आपणे तने किमा दूध का था,
थाऊगा रणजीत के तने दोहदी[7] दूर गर था,
सुणो मेरे घर क पहल।

×　　　　×　　　　×

बोले मज्जू के कहे सुण गूगा मेरी बात,
चाली न्याई बाकली सैयां मैं गाये गीत,
तू मर जा रणखेत में मैं जीऊगा कै काज,
मैं चलू थुमारे साथ जती गोरख का चेला।

×　　　　×　　　　×

बोले गूगा के कहे सुण बाबा मेरी बात,
किसने[8] भेजलीये लाइ किसने न्योंदिया[9] जा,
मेरा तो थाका[10] हुया तू उलटा घर नै जा,

---

१ चेला। २ प्रतिज्ञा। ३ गूगा का बाबा। ४ दूसरा गोत है, बामरग्यान। ५ चौपाल। ६ सखियां। ७ दुखिया। ८ कहां, को। ९ निमन्त्रण। १० धन्ना।

आउगा रणजीत के तेरे मात मरगा था,
सुणो मेरे वाला भाणजा ।

× × ×

बोले बाला के कहे सुण मामा मेरी बात,
गाम गरे की राड़ म बोहत मरद मरता,
उन्ने बड़ाई के मिले जो लिये काल नें रता,
मैं मरज्या बादसाह की फौज म नाम उमर होजा,
जती गोरख के चेला ।

× × ×

बोले बादसाह वे कहे सुण चोडो[1] मेरी बात
ये पाच नर[2] कौण सें बलरो रस्ता दियो बात,
कद दल म गेरे ना मरज्या,
सुणो रे मेरे दल के जोड़ा ।

बाता

इतने दलां के बाच खड़्या बूझे हलकारा,
के सोनै सम्भुवा बीच बागड़ दल चरग्या सारा,
तेरा खले दिल्ली तखत कहावै मग्न हमारा,
सुनो दिल्ली का सूबा ।

बाता

बल्लू लीनी खुरासी थाम की मन रहा गरभा[3],
सीता एड लगावदा चला शाहर पे जा,
गूगा पान सै द दे रोकदी तरी मिलणी दूह करवा,
जती गोरख का चेला ।

× × ×

मिलणी दूह करवा सने बदमाह दूह हरवा,
सुणो गोरख का चेला ।

× × ×

चेला गोरखनाथ का माथा लिया चढ़ाय,
नौ कुड़का[4] का कोरड़ा गूगोलीनें हाथ उठाय,
सड़सड़ मारे कोरड़े बल्लू बाहर[5] उय बरड़ाय,

---

1 चरजन, मरजन । २ आदमी । ३ गर्व । ४ खड़ । ५ सुखदायक ।

चाल्यु चाल्यु राम स गोरख से यदुसाथ,
सुणो बासनी का सुआ ।

×　　　×　　　×

बोलैं बाछल के कहैं सुण गूगा मेरी बात,
त मेरा माइ घर बाप मैं मैं तेरी कार्जा माय,
मदन करा मैं गुलाम पै मैं तेरा छह् पाँव के माद,
तनै बादशाह मरवाद्यु जता गोरख का चेला ।

×　　　×　　　×

मैं बालक निदान कहीं बड आए बाला,
कदन दुर्गा राह कर न रह बाबा आला,
मरै हाथ कगार सिर सेहरा गज पूजन की माता,
दूध का जग जिता गुरु मेरा आदवार साता ।

×　　　×　　　×

याद इरन टिंह गिर के धनी मत गुरु गोरखनाथ,
उत्तराखण्ड मैं जती जोगी की जमात ।
हैं दरबार बारह पंथ य आगे अहार क पास,
चौंसठ जोगनी बावन बीर सब खप्पर स रहे हाथ,
लारा[1] दिया बहीर[2] गुरु गोरख जती माया ।

×　　　×　　　×

चढ़िया सेरा महेश पीर बड़े ख्वाजों वाले[3],
चढ़गे दाना सेर[4], मारा माथ[5] आसीवाले,
चढ़गी देवी माय लोनकढ़िया[6] नगरकोटवाले,
लारा किया बहार जती गोरख का चेला ।

×　　　×　　　×

बोली गूगा क कहैं सुण बाला मेरी बात,
दल उमगे दरियावज्यू चढ़ी जोड़ असवार[7],
चोट दुसर पै कीजिए तेरा होगा पहलका वार,
जती गोरख का चेला ।

×　　　×　　　×

१ कतार। २ बाहर । ३ अजमेर के ख्वाजा। ४ हिसारवाला 'दानासेर'। ५ हाँसी का मारा। ६ दरदर्जी। ७ प्रवीण अश्वारोही ।

थाले करियाँ बल्ल[1] मरद नै तेग उठाइ,
घावक जड़े तुरग उडै जणु बाज हवाइ,
धूद पड्या दल बीच जला जु पाट्री काइ,
जा मार्या सुलतान तेग मस्तक में बाही।
× × ×
इकला दल वाला लड़ै दिहरी घरैन कोय,
कोय बदला ले सुलतान का मेरे दला म होय।
× × ×
घरजन उठ्या हथकै झुक् कै करी सलाम,
नौ कोटी दल मारवाड़ में वाल्ला सै सरनाम,
इसके सिर का एक सै भ्याणी में चेत्तमान,
भ्याणी म चेत्तुभान सुणो दिल्ली का सूबा।
× × ×
चेत्त् भील[2] भियाणी का धणा आट्टू चेत्त् भान,
एकला दल वाला लड़ै मेरा मार लियूया सुल्तान,
सिर वाल्ले का ल्याय दे तेरा भुल्लू नहीं इसान।
सुणो भ्याणा[3] का सूबा।
× × ×
चढ़िया चेत्तमान म्यान तै सुगुम्न ल्याया,
मोहि[4] दिल्ली ढाल तयल धोड़ा चिल्काया,[5]
रतिनै[6] मानी कोप[7] हक्या वाल्ले पै भाया,
घावै कैसी बीजली बहगी एक् सात,
महिपूर[8] कड़कड़ भौ पड़े मुगिण रहगे हाथ,
दोनुआं की टूट गइ तरवार ल्यान पनमसर सेती।
× × ×

याता

याला आयव देख जयी गूगा सुणमाये,
परोपत साह के दल में बाबा पाग मदूलक आये,
यो सैयद[9] का पादसाह मै अगड़ीर[10] बोहाया,
× × ×

---

१ त्यौरी चढ़ाना। २ 'भील'—'पान्ना' का रहनेवाला। ३ भिवानी शहर। ४ बगल में। ५. भगाया। ६ वनिक मा। ७ छिपटी। ८ तलवार। ६ इन्द्रप्रस्थ, दिल्ली। १० श्रेष्ट।

घम घाले घर आपके म्हारे बोहत चलेंगे घमसाण,
सुणो मेरी बाबा भायला ।

× × ×

बोले गूगा के कहूं सुण बाबा मेरी बात,
बाला विसमिला[1] के लगा कर गाहूं मैं ध्यान,
अब मैं चलन हमान[2] का मुखम दे दूंगो जान,
सुणो मेरा बाबा भायला ।

× × ×

बाला करियें सब पीरां का लिया सहारा,
खुगद[3] उठावी हाथ लिया लोगन[4] पै वारा,
हौद्यां[5] की हद काटकै जा मारे मदली[6] पठान,
उस बादशाह की फौज में कल्ले घाव दिए घमसान,
जती गोरख का चेला ।

× × ×

बाता

अब भागे महदजबार[7] बड़े अमेद इमान्ना,
तुरकी कुवे कुमेद[8] सीस पर लिया निसान्ना,
नजर मार्या खेंच करमातिन सिर का दान्ना,
यों नजर बाला मर्दे[9] बाला करग्या काज,
ध्यान परमेसर सेती लाया ।

× × ×

बोला बाला पाजा पीरी, लागजा दुनियां घोकज्या जात मेरी सो होरी तेरी ।

× × ×

गूगा मारे हांक सुणो दादर के पाली,
घर मरा दिये पीर खोट हुव सहू सुमारी,
धनक धनक धानू[10] अजै लीले की पकड़ो बाग,
मगरी[11] थापी लगा दड़ पाली दीने भगत बनाय,
जती गोरख का चेला ।

---

१ आरम्भ, फिर से। २ लड़ने का। ३ तलवार। ४ लाठ। ५ हाथी। ६ मदली नाम का। ७ महद और जबार दिल्ली के दो मुसलमान। ८ लक्ष्य। ९ सहा। १० कूदा। ११ कमर पर थापकी की थाप।

वार्ता

घार ओड़ चौकी चढ़ी अरजन चढ़े ललकार,
भतीजा चढ्या द्रुतवार खाँ ले नंगी तलवार,
थम तो चेत्तो जाहर औलिया तेरे पुहचे दावेदार,
जवो गोरख का चेला ।

× × ×

थम मेरे मौसेर मेरे पै क्यूं कोप आये,
ले मद स्याइ दल जाणु मिलण्यो को आये,
मारणा छोड़ू नहीं मेरै ओड़ पास वरत भार,
हुकम नहीं गरु पीर का थम पहला करल्यो वार ।

× × ×

ले नौटकी[1] हाथ गोद[2] अरजन ललकारे,
मस्तक सांधे तीर तग तानी[3] कैमारे,
नाहीं लहू की बूंद दूध पे छुटे फुवारे,
दूनी सही सलेम तें[4] कर्‌या सुरजन नै वार,
पाँच तीर सौ गन भखे दीने गिगन चढ़ा,
गोरख ने काटे करतूतें गूगा लिया बचाय
ध्यान परमेसर सेती ।

× × ×

चली भरे अहकार ध्यान तें सीरया खाड़ा,
ओड़े दिये गिरदाय भाऊन्[4] टलग्या दाड़ा,[6]
ओड़े वीर घकन के सग रहे थारे दांदी[7] चमरे मेरा,
मेरा तो चारा नहीं है ऊपर के क सरन,
गर मरघर म नाता नहीं गये छाड़ मस्तान,[8]
तिस जल के प्यासे फिरे व पुहचे मुल्तान ।
ध्यान परमेसर सेती ।

वार्ता

जीला उचाणा[1] दण्ड जयी भदसारोस्याए,
हर्सी दाने हुआ सभी उमराव दुराय,
गूगा अपणे दल में एकला जा करी निसानादेए ।

---

१ हथियार विशेष । २ अरजन-सरजन का गोत है । ३ गूगे का घोड़ा । ४ सलाम करके । ५. दिमाग ठंडा हो गया । ६ गुमान ■ दाँतों में । ८ ध्यान । ६. शादी ।

बादशाह बागड़ बाजू रैन कहां की माया पावै,
दरगे काले बाग रह्यो नै क्यू कर्या छै,
सारया छोड़ मही मेरे जोड़े पाम सरमर,
हुक्म नहीं मन गढ़ धीर का धन पड़ये करल्यो पार,
सुणो दिल्ली का सूबा।

× × ×

मुसलमान चल्या कहे हिन्दु कहै भगवान,
है दिल्ली रोसन करी मेरा दीना तख्त पिराण,
छाड्या रणियो तख्त की यो गूगा रह्या गरवाण।

× × ×

ले नौरकी हाथ फेर बद्याई ललकारो,
धन्का देजी कार कजर की डरी कटारी,
जो मार दहगी राख हाथ राखै गिरधारी,
गोरख में काटे कलसै यो गूगा किया बखाण,
कुम्भा तोड़ दीं पगाय की मथ विखन गये हुसयार,
दख वदन्यार की सुरतै खरज गये चौहान,
रवर में मारी तीन बखान,
ध्यान धनसेमर सेवो।

थाता

कुगजी हाथ में भांग धरलै मारे मैं क्याय करै छूं,
भाजत आंजत माता बूके बटेहू रथ की बात सुणा देमो।
बदली देखी मनै पीळ कोमली,
पबदी री देखी मनै गुलाब जी,
रथ कारी मूजा जल का प्याला,
टुक भर नीर पिला द्योजी,
पाणी रे मांगे थनै दूध पिला द्यू,
धन्या है ढोलू ग्वाल जी,
गूगा हार्या तेरे जोड़े जीत,
हार घरा नै आया जी,
मतुकार सतयुग का पहरा,
मूणी रे बात मत बोलोना,

सुरत तोड़ो सूर का कारतूस बिन टोपी गेरी ।
जहाँ हिन्दू बैठा मुसलमान काया पड़गी थर्री ।
जुल्म कर्या अंगरेज नै क्या इक रंग फेरी ॥
मस्तक लो कलमा का मेटणिया नाहीं ।
झांसी के नवाब नै घर गजब सुणाई ॥
तू सुणिये हिन्द के बादशाह अंगरेज इलाही ।
थाके हिन्दुस्थान में बनी बुरी ठगाई ॥
मरा सिर काट्टें दस जोड़ के कोई सूप सिपाही ।
सुण कै नित अंगरेज के धमला लग जाइ ॥
यो गदबद[1] गदबन्दरी कौन दो सूली[2] खाइ ।
सिया पकड़िजया जल्लाद नै कोई बाल्ला नाहीं ॥

अब राव किशन गोपाल का रोष आया । उसने अंगरेज नीति की निन्दा की । यही दण्ड विधान हुआ । विद्रोह का ज्वालामुखी धधक उठा —

बोला किशन गोपाल राव कर[3] दोनूं जोड़ ।
सुणिये हिन्द के बादशाह अंगरेज चमोड़ ॥
तू जाता रहा जमीन तै आया तेरा ओड़[4] ।
बिना गुनाह सरकार नै दी सूली तोड़ ॥
सुणकै नव अंगरेज के मन उगी कठोर ।
यो गदबद गदबद करी बीच मे सूली तोड़ ॥
हुकम लिया था हिन्द के बादशाह कर चपला जोर ।

रोष प्रकम्पित होकर राव किशन गोपाल ने कहा —

कहता किशन गोपालराव घर गजब सुणाई ।
सुणिये हिन्द के बादशाह अंगरेज इलाई ॥
तैं थाके हिन्दुस्थान बड़ी बुरी ठगाई ।
घणा सोही मस्तक भवानी दाह ॥
मरत मन्त में मरत पर मार कर लिया रिझाट ।
कल दिल्ली का पकड़्या बादशाह जह[5] का येरा बरा[6] नाहें ॥
आन धरा मन्डा फरके दीन पै बड़ा सुधरा[7] स्याह[8] ।
धमका भर जमां लइ थी कलकत्ता माह[9] ॥

---

१ गड़बड़ पथ म् आन्दोलन वक्तव्य । २ फांसी । ३ हाथ । ४ अंत, समाप्ति । ५ जिसका । ६ प्यारा । ७ सुन्दर । ८ था । ९ मध्य ।

धमका मर अली ले कै निया किला सवाइ।
ना होत लिखै दरा दीन में राम दुहाइ[1]॥

सैयद कालेखा ने तब विचार किया और विचार के लिए कुछ समय का माँग था —

कालखाँ सय्यद कहा रहा फकड़ ल्याइ।
सुनिये हिन्द के बादशाह अंगरेज दुहाई॥
मो कहा आराराम का है वाड़ा[2] नाहीं।
ये[3] हा रवाड़ी राव है हिन्द दुहाइ।
करिए मनाजा तुलाराम रेवाड़ी मो ही।
मझोर[4] दिल्ली नरनौल हालजल[5] बनाइ॥
कुछ एक[6] बने में मुलक एक कुछ थोड़ा नाहीं।
हम ने चार दिनों कुहा लिखे आवो पर नाईं॥
इस दिनों चार में चमिजा मेरा है माही।
पाती एक लिखावन वमचावदा दिल्ली के मांहि।
हम सुनें थोड़ा[7] कालखाँ दूगा[8] दीन बनाइ॥

आठ दिन का अवकाश दे दिया गया। भारतीय सरदारों ने संघटन की योजना बनाई और इकरार किया —

राव न हाथ नमक[9] की कावी लोथ में रखा।
जे मैं ममने पाठ हुए बीच फिरंग मुगरा॥
समदखाँ[10] उठा पठान दिदारी।
हाथ धरा कुरान पै दिव अवका भारी॥
राव जी जे मैं धम नै दगा हुए दोजख[11] निरधारी॥
अब्बहादुर भावरी[12] ममत ऋनारी।
एका हुआ हिन्दू मुसलमान का मत दरबारी॥

अब संगठित होकर विद्रोह आरम्भ किया और स्थानीय अंगरेज अधिकारियों को असिधार पर उतार दिया —

---

१ सौगंध के लिये कहा जाता है। २ अगाध, निश्चल। ३ इसका। ४ अलवर (अब राजस्थान में) ५ महारवाल (अहीर भूमि) ६ इकट्ठा, जमादोष। ७ थोड़ेसा (भविष्यकाल) ८ दूंगे। ९ लोथ-नूल भारतीय परम्परा में विश्वास का प्रतीक है। १० इसका नाम समदखाँ था। ११ दोजख, नरक। १२ फज्जर का नवाब।

हाथ जोड़ मन्का[1] कहैं जनाब करारा।
तू रेवाड़ी का राव जी धन म्हारा प्यारा॥
राव जी इब क हेलै[2] बक्स[3] द जीव हमारा।
हम ना तुड़वावैं कारतूस कहया हमारा।
चौथाई दिल्ली करो राज, बण माइ म्हारा॥
उन घो किशन गोपाल नै सया दुधारा।
मारै भटकया लाट कै धड़ तै सिर न्यारा॥
चालण लागी मिसरी[4] तरवार कटारा।
उल्टा हट हट करै साहब लाग्यौं[5] वर सारा॥
रण बिरण धरथरी[6] कस्कों[7] की बाड़।
जिनका धड़ परतै सिरनू पड़ै फड़ पड़ै धनारा॥
कोठी में मारा साहब लोग इकसर सारा।
एक काणा[8] गया भाग दे निजर हुसारा॥
गगा की नाली बड़ गया देक फटकारा।
गगा की धरे ध्यान रख जीव हमारा॥

राव कृष्ण गोपाल मेरठ से दिल्ली आया और फिर झज्जर के नवाब से भेंट लेकर रेवाड़ी पहुँचा। वहा युद्ध की तैयारी की और नसीबपुर का इतिहास-प्रसिद्ध मोर्चा जीता। इस मोर्चे पर फिर भगोड़ा जनरल टिमलो मिला और उसकी अच्छी खबर ली —

कहता किसन गोपाल राव धर गल्ल सुनाई।
चालो डोसी[9] म्हाय नै सोमोती आई॥
यो डोसी काम्हाण सै कतल लड़ाई।
जड़ मै प्यारा घर जगी घर अपणे जाई॥
जड़ ने प्यारा किशनगोपाल राव लो तेग उठाई।
मरदां खातर जग मण्ड्या ना खदै लुगाई॥
रुप जाओगे रणखेत में है इचरज नाही।
करो चढ़ाई जग जनमी[10] बारबार जनेगी नाहीं॥

---

१ माटकिन सीनियर अंगरेज आफिसर। २ इस बार। ३ क्षमा करदे। ४ राव कृष्ण गोपाल की तलवार का नाम। ५ शस्त्र विशेष। ६ धरती, भूमि ७ शव, लाशों की बाड़ (समूह) लग गइ। ८ नेत्र विहीन टिमलो। ९ नारनौल के समीप एक पहाड़। १० जन्म प्रदात्री माता।

करनैल[1] सहब जनैल[2] नै घर बिगाड़ कमाई ।
बिगड़ दर थी कला कम्मर के मांही ॥
मेरी रालजा[3] की बदी सोन घर बदी कमाई ।
सड़े सत सेर की निमरी[4] राव नै मंगाई[5] ॥
हौदा थै जनैल थै घर गुमुण[6] दई ।
हीम हट मैचे पड़या घर हौदा मांही ।
हाथी घेरा साहब लोग नै कठी बगबग्या ।
हाथी पूटया ना जिवाद है दक पारटे म्यारा ॥
उनकी हिम्मत गोपाल नै हिंदे धग इमरा ।
हाथी क मौहे[7] घोड़ा दे दिया दें के छिकाला ॥
हूव किम आण जानत का मारा ।
साडे सत सेर की निमरा झोस्या दुधारा ॥
हाथी के गैरे मूड पै, मूड घर दे म्यारा ।
ऐसे योग[8] म्याव[9] का कारीगर पाड़्या ॥
हाथी लड्या बिचारे दब में ना कसै घरा ।
दूजा गरे साहब लोग पै बरतै सिर म्यारा ॥

ऐसे घर युद्ध में स्वतन्त्रता के पुजारियों ने यह शौर्य दिखाया कि अंग्रेज सेना का धैर्य ध्वस्त हो गया। स्वयं फिमले साहब भाग खड़े हुए और नसीबपुर का क्षेत्र ने दुर्योधन सदृश शरण ली, परन्तु राव कृष्ण गोपाल के प्रलयंकर प्रहार से वहां भी उस दुष्ट का बचाव न हो सका —

टोपा साहब लोग की दगाई दिखाई ।
रावनै गिड़की घोड़ा दे लिया नसीपर आई[10] ॥
फ्रमला[11] मन्या जग ते चल्या भाग कुछ छादा खाई ।
बिच मारया छोड़ नहीं सब्ब राम दुहाई ॥
साहब उल्टा फिरके देखता हुवो[12] बन घाई ।
धरके टेका मारता जोहड़ के मांहीं ॥

१, २ कर्नल और जनरल। ३ राव तुलाराम की राजधानी, यह स्थान रेवाड़ी से एक मील पश्चिम में है। आजकल राव वीरेन्द्रसिंह जी यहां के स्वामी हैं। ४ राव कृष्ण गोपाल की तलवार का नाम। ५ मदद की ६ सीधी गई। ७ सम्मुख। ८ शस्त्र। ९ म्यानरूप (सुन्दर ढपना गई) १० और। ११ फिमले साहब। १२ भवितव्यता मृत्यु।

राव नै गैलहीं[1] घोड़ा दे दिया जोहड़ के माही ।
साहब गोता खाके देखता दिया सीस उड़ाई ॥

टिमले साहब को यम का अतिथि बनाकर राव वापिस रणखेत में पहुँचा और अपने साथियों को युद्ध धर्म का उपदेश दिया —

बोला किसन गोपाल राव भाइ रामलाल[2] ।
बोदा[3] न मत मारियो है जीव अजाल ॥
बोदा लड़े चून के कारनै करैं निमक हलाल ।
तफलो[4] टोपीवान नै जिन बैठे लाल ॥
मेरा जन मारा पातक कटै कटै जीव अजाल ।
रोवैं विलायत मैंम लोग मारै कैलाप ॥

अत में राव ने अपने पक्ष के वीरों को प्रोत्साहित किया —

सम सिर की साग बगालो छाता की ढाल ।
हिया करलो वज्जर का देह करो दिवाल[5] ।
ब्याज झगड़ा मडग्या दीन पै चौदा[6] की साल ॥

× × ×

इस प्रकार के अनेक वीर-रागों को सारगी की सरस तान के साथ हरियाने के जोगी गाते आये हैं । परन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि आधुनिकता के प्रभाव से यह अमूल्य निधि समाप्त होती जा रही है । जहा पहले सारगी की मधुर मादक तान थी वहा अब फिल्मी गीतों का आकर्षण है । ऐसे रागों का भविष्य अधकारमय है । अत समय रहते इस अनमोल निधि की रक्षा कर लेना आवश्यक है ।

इ हरियानी लोक-गीतों में साहित्यिक तत्व

लोक गीत अनिश्चित तिथि की देन है । इनकी प्रवाहिता घर के भीतर और बाहर सदैव से रही है । प्रकृति-पुत्री शकुन्तला की सखियों ने इन्हें गाया, सीता की सहेलियों के पिक कठों से इनकी मधुरिमा प्रसरित हुई । चित्तौड़ की पद्मिनी के वीर चरित को इन्होंने सवारा और चन्द्रावल के सतीत्व की कथा इनका अग बनी । इसी दीर्घ परपरा से ये गीत आज की कुलवधू के कण्ठहार बने हैं । उसने भी सभी मागलिक अवसरों पर, झूले पर, दुलियारे के साथ,

---

१ साथ ही । २ राव का लघु भ्राता । ३ निबल । ४ देखलो, छांट लो । ५. दीवार, भीत । ६ सवत् १६१४ में युद्ध हुआ था ।

पनघट पर, तीर्थयात्रा के समय, लावनी करते, गीत गाते अनाज कूटने, दही मथने और चाकी पीसते, प्रभाती आदि अनेक रूप में इन्हें गाया और गुनगुनाया है। पुरुष ने भी इन्हीं खेतों, चरागाहों में, गाय चराते, बैल चलाते, वर्षा की झड़ी का आनन्द लेते मेले ठेले में घूमते इन्हें गाया है। [illegible] ने अपनी सारंगी की ताल पर इतिहास, वैराग्य और प्रेम के गान गाये। दर्जी ने वस्त्र सीते, लुहार ने धौंकनी पर चोट देते और धोबी ने जलाशय के घाट पर 'छियो छो' की प्रतिध्वनि में अपना स्वर भरा। कुम्हार ने अपना काम के साथ अपनी ध्वनि मिलाई। तेली ने बिना और जुलाहे का बिना पुचकारे लिये अपने घर पशुओं को प्रोत्साहित किया। मजदूर इसने ग्वाला ने गाते-गाते कुदाई की। मल्लाहों ने अपने भार को राग अलापकर हलका किया। गाड़ीवान् ने गाड़ी के पहिये की 'चूँ चूँ' की ध्वनि में अपनी ध्वनि मिलाई। ग्वालिनों ने गाने गाते समय स्वयं ही गर्मी का अभाव पूरा किया। रागियों ने अथवा गाथा-गायकों ने भी अपनी गाथा पर देश व समाज के अलिखित इतिहास को गाया है। इस प्रकार लोक समाज के समस्त उद्गम के व्यवसाय संगीतालय बन गये। लोक जीवन फूल सा हलका हो गया। यहाँ का तात्पर्य यह है कि उसने यह समाज के मनोरंजन का कार्य अतीतकाल से इन गीतों ने किया है।

आज इन बातों का जब साहित्यिक कसौटी पर परखा जाता है तो काव्य कलामर्मज्ञों के कान खड़े हो जाते हैं। वे लोक-साहित्य का नाममात्र सुनने ही नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं। परन्तु यदि एक उदार दृष्टिकोण से विषय की परख की जाय तो निराश न होना पड़ेगा बल्कि उनकी यह धारणा कि गीतों में उच्च एवं गंभीर भावों का लाना केवल नागरिकों का तथा प्रतिभा सम्पन्न सुशिक्षित समुदाय का ही काम है, सामान्य लोग भला उन्हें क्या जानें निराधार जान पड़ेगी। सूक्ष्म अवलोकन यह बतलाता है कि इन सीधे-सादे लोक-गीतों में जिनमें संस्कारिक कविता की तरह शब्दाडम्बर और पद-पद पर अनुप्रास आदि अलंकारों की बहुलता नहीं है, कविता का अपूर्व सागर लहरा रहा है। इन लोक-गीतों के कवि न तारों भरे आकाश के कवि हैं, न उन्हें नक्षत्रों से मौन-निमंत्रण मिलता है और न सागर की लहरों से उन्हें कोई पुकार सुनाई पड़ती है। उनकी प्रतिभा तो अहरह के जीवन का गान करने में ही सफल हुई है।

लोक गीतों के चूड़ान्त विद्वान पं० रामनरेश त्रिपाठी ने लोक-गीतों की मीमांसा का सार देते हुए एक स्थान पर बड़ी सटीक बात कही है 'इनमें रस है, अलंकार नहीं, लय है छंद नहीं, माधुर्य है लालित्य नहीं।' वास्तव

में रस ही लोक गीतों का प्राण है। ये गीत जिगर की उपज है जो हृदय की वाणी में मुखरित हुए हैं। यदि इन्हें हृदय का शब्दमय चित्र कहा जाये तो अत्युक्ति न होगी। ये तो हृदय की शहनाइयां हैं जो भावना के द्वार पर बजती हैं। फिर भला इनमें नीरसता के लिए स्थान कहां? इन गीतों में साहित्य में उपलब्ध प्रायः सभी रस मिल जायेंगे। काव्य क्षेत्र का ख्यातिप्राप्त रस, करुण लोक-गीतों में अपनी समस्त प्रांजलता के साथ विद्यमान है। रसराज शृंगार के दोनों पक्षों का—संयोग और वियोग का—बड़ा सरस वर्णन इनमें आया है। वीर और हास्य की चर्चा इनका बराबर विषय बनी है। वृद्ध-वृद्धाओं ने और साधु-संतों के लोक-गीत शांत रस की शीतल छाया में पल रहे हैं। अन्य रसों के उदाहरण भी खोजे जा सकते हैं।

जैसा हम ऊपर कह आये हैं लोक-गीतों में अलंकार प्रदर्शन के प्रति आग्रह नहीं है। परंतु उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, श्लेषादि अनेक अलंकार स्वतः आ गये हैं। इन गीतों में उपमा अलंकार बड़े अनूठेपन को लेकर आया है। इसकी विशेषता यह है कि इसके उपमान सर्वत्र लोक से बटोरे हुए हैं। कहीं भी कृत्रिमता नहीं आ पाई है। जहां तक सरसता एवं मधुरता का संबंध है वह तो इनमें इस प्रकार व्याप्त है जैसे तिलों में तेल अथवा दूध में मक्खन। परंतु सर्वोपरि विशेषता जो इन्हें इतर साहित्य के ऊपर उठा देती है वह है इनकी प्रभावोत्पादकता एवं स्वाभाविकता। लोक गीत आद्योपांत स्वाभाविकता से ओत-प्रोत होते हैं। इनमें केवल आश्चर्य तत्व को जाग्रत करने वाले ऊहात्मक कृत्रिम वर्णन नहीं मिलते। इनमें एक अनुभव भरा होता है जो पाठक एवं श्रोता पर अपना सहज प्रभाव छोड़े बिना नहीं रहता। दिन प्रतिदिन घर की मुंडेर पर बैठकर कांव कांव करने वाले कौआ से किसी दुःखिता बाला का संदेश भिजवाना बड़ा स्वाभाविक है—

उड़ आरे कागा ले जा रे तागा जा दो तो जइये मेरा बाप कै।

× × ×

भुरट बुहारू रे कागा इस रोऊं रोऊं रे नम्वा तेरा जीवनै॥

अर्थात्—ऐ भाई कौआ मेरे तागा (धागा और तार) को ले जाकर मेरे पिता को पहुँचा दीजिए कि मैं इस बागड़ देश में भुरट घास को बुहारती हूँ और रोती हूँ। कौआ की इसी संदेश-वाहकता के आश्रय पर लोक में एक विश्वास प्रचलित है कि कौआ के लगातार बोलने से किसी अतिथि के आगमन की आशा होती है। फिर अतिथि की सूचना लाने वाले को ही संदेशवाहक बनाना एक सस्ता एवं स्वाभाविक उपाय मात्र है।

हरियानी गीतों में वन्ध्या के मनोभावों का स्वाभाविक चित्रण भी हुआ है। केवल एक पुत्ररत्न के अभाव में वन्ध्या को क्या कुछ नहीं सहना पड़ता, उसे घर मानसिक वेदना अनुभव होती है। संतान के बिना उसका समाज में आदर नहीं होता। सब उसे दुर्मंग समझते हैं। इसी बात का वर्णन एक गीत में हुआ —

रहो रहो बांझड़ली दूर रहियो,
तेरी ए तेरी छायां मैं म्हारे पञ्चमरै।
रहो रहो पूतड़ी गरब मन बोल,
हम हां ए हम आई मनीआं मांगली।
मर ए भतीआ तेरी माए मरुगी,
तेरे ए तेरे हिवड़े बांझड़ ही बने।
× × ×
थन्नो म्हारा राजीड़ा जी महलां मैं चाली,
जे कोइ जी अ कोइ बालक पड़ै आंगणो जी।
बोडी ए थम मूरख गमार।
बिन जाया कैसे पड़ै आंगणी जी।
छोप्या पोत्या बामड़ली कै सोभै,
ना कोइ आ ना कोइ बालक खेलै आंगणे जी।

बांझ के हृदय की बात को वह स्वयं ही जानती है। 'बामन हिवड़े दौंवलो' अर्थात् वन्ध्या के हृदय में दावानल धधकती है बड़ा ही स्वाभाविक अभिव्यक्ति है।

ईर्ष्या एक मनोविकार है, परन्तु 'सौतियाडाह' अत्यन्त स्वाभाविक है। जिस प्राणनाथ के ऊपर स्त्री का सृष्टि-चक्र चलता है यदि उस पर किसी अन्य का अधिकार हो जाये तो मन में कालुष्य का आना स्वाभाविक ही है। हरियाना कुलवधू तो प्राण देकर भी अपनी सौक नहीं सहेगी —

थरजे ब्याहवैगा सौंक दूसरी हैं उसमें बड़ जांगी।
बनै सी भरतार समझ्या सिरोढा कर जांगी॥

अर्थात् मैं मरकर और भूतनी बनकर सौक में प्रवेश कर जाऊंगी और उसे मार डालूंगी। बात बड़ी ही सजीव और स्वाभाविक है।

हरियानी लोक गीतों में सत्यता एवं स्वाभाविकता तो कूट-कूटकर भरी हुई है। बालक की निरीहता एवं गो द भोलेपन से युक्त ये गीत निश्छल हृदय की निश्छल कहानियां हैं।

हरियानी लोक गीतों में अनेक आलम्बनों एव प्रतीकों का भी बड़ी भव्यता के साथ प्रयोग हुआ है। बहुत से फूल, फल व पक्षी आदि प्रतीक रूप में आये हैं। एक विवाह गीत मे अस्फुटयौवना नायिका के कच्चे कौमार्य के लिए कच्ची-कली प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुई है —

> हरियाला बन्ना काची कली मत तोड़िए माली को देगो गालिया।
> सहजादा बन्ना पाकण दे रसहोय दे नवाद्यूगी डालिया॥

इस प्रकार अनेक उदाहरण खोजे जा सकते हैं। एक गीत म बिल्ली का धृष्ट रसिक का प्रतीक बनाया गया है। साहित्य में भ्रमर रसलम्पटता के लिए कुख्यात है। एक पूर्ण योवना नायिका अपने यौवन भार को सभालने में असमर्थ है। वह अपने अन्तस् की बात को प्रतीक प्रयोग द्वारा कह गई है —

> बाबल ! यों जोबन दिन चार का, बाजीगर का खेल।
> बाबल ! छींके धरू तो ढे पड़े, तले धरू तो बिल्लैया खाय॥

(अर्थात्) पिता जी यह यौवन अस्थायी है, दो चार दिन का है। यदि में इसे छींके पर धरती हू तो गिरने का भय है और अगर तले भूमि पर धरू तो बिल्ली (धृष्ट रसिक) खा जायेंगे। कैसी निष्कपट विवेचना है ? प्रतीक प्रयोग में लोक रुचि बाजी ले गये हैं।

कहीं-कहीं श्लेष अलकार भी लोक गीतों में आया है। प० लखमीचद ने "सागीत पद्मावत" में रणधीर के पद्मावती के महल की ओर चलते समय एक रागनी म बड़ा सुदर रूपक बधा है जिसमें श्लेष की सहायता से आध्यात्मिक अथवा परोक्ष अर्थ की बड़ी मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है —

> चन्द्रदत्त की आज्ञा लेके फिर भगवान् मनाया।
> चाल पड़ा रणधीर रात ने कर काबू म काया।
> खड़े चुपचाप कोई सा ना इधर उधर हिले था।
> पाच खड़े दरघाट पाच का दौराही दूर चलै था।
> पद्मावत के महलो उपर अद्भुत नूर ढलै था।
> नौ नाड़ी और दस दरवाजे ज्ञान का दीप जलै था।
> कारी मार्क पद्मावत क पड़े रूप की छाया॥

जायसी ने जैसे पद्मावती का परमेश्वर का रूप माना है वैसे ही लोक-गायक ने भी पद्मावती का अलौकिकता के आवरण में छिपाया है। उसकी प्राप्ति ज्ञान दीप प्रज्वलित किये बिना असमर्थ है। पाच ज्ञानेन्द्रियाँ एव पाच

कर्मेन्द्रियों पर काबू पाना आवश्यक है, तभी तो उस प्रिय आत्मा से दर्शन संभव है। यहां विशिष्ट शब्द बड़ा सुन्दर बन पड़ा है।

लोक-गीतों में अलंकार प्रयोग का एक बार और स्मरण रखनी चाहिए कि इन अलंकार इनमें मिलते हैं व अपनी पूरी छटा के साथ नहीं आए हैं। ये तो प्रारम्भ करते ही समाप्त हो जाते हैं। कारण स्पष्ट है कि लोक-गीतकार का रस के बहाव में जिस मध्य रहो है। वे रस के आगे किसी विधान की परवाह नहीं करते। अतः उनके अलंकार कुछ अधूरे से लगते हैं।

रस परिपाक

लोक-गीतों में रस परिपाक भी शिष्टकाव्य की तरह हुआ है। ये गीत तो वस्तुतः रस में निमग्न हो हैं जिनका स्रोत भावपूर्ण हृदय है, जहां से ये प्रवाह बहते रहते हैं।

हरियाना लोक गीतों में करुण रस सर्वाधिक व्याप्त है। करुण का सभी कलन एवं दर्द अवस्थाओं का वर्णन इनमें हुआ है, साथ ही शृंगार, हास्य, वीर और शांत रस का वर्णन भी पर्याप्त मात्रा में आया है, परन्तु ब. मार्मिकता करुण वर्णन में आई है वह दूसरे रसों का प्राप्त नहीं। कारण कि ये गीत नारी के उस जीवन की स्मृतियां हैं जो दुःख, विलाप और रोदन का दूसरा पर्याय है।

हरियाना लोक-गीतों में शृंगार का वर्णन भी खूब मिलता है। विवाह और पुत्रोत्पत्ति के समय गाये जाने वाले बदड़ों में और विदाइयों में प्रमदा शृंगार के नद फूट पड़ते हैं। ये दोनों समय, वास्तव में संयोग शृंगार के लिए बड़े उपयुक्त हैं। वियोग शृंगार श्रावण और फाल्गुन में गाये जाने वाले गीतों का प्रधान विषय है। नृत्य के गीतों में भी विरह गीतों की प्रधानता रहती है। इसका विस्तृत वर्णन आगे करुण विप्रलम्भ के प्रसंग में करेंगे।

विवाह के गीतों के प्रवाह में शृंगार रस के सभी संचारी बहते रहते हैं। पुत्र जन्म, सीठने और गाली गीतों में यह रस खूब खुलकर गाया जाता है। पुत्र जन्म के अवसर पर गाये जाने वाले होलरों में भी शृंगार रस का पर्याप्त समावेश हुआ है। गर्भिणी की व्यथा का कितना स्वाभाविक वर्णन एक गीत में हुआ है —

कौड़ी कौड़ी बगड़ बुहारे दर्द उठा मेरे कमर में, हो राजा,
इब ना रहूँगी तेरे घर में।

दूयौंर जिठानी मेरी बोरली ठोल्ली मारैं जिब क्यों सोवैथी बगल म, हो राजीड़ा
इबना रहूँगी तेरे घर में ।
सास नणद मेरी धार बधावें होत्ती आवै से जगत म, हो राजीड़ा
इबना रहूगी तेरे घर में ।
छोट्टा देवर सरा रसीला दाइ नै बुलावै इक छन मे, हो राजीडा,
इबना रहूगी तेरे घर म ।
छोट्टा दवर नै वाइण बिहादयू, दाइ बुलाइ इक छन में, हो राजीडा,
इबना रहूगी तेरे घर म ।

प्रसव की पीड़ा से व्यथित गर्भिणी अपनी वेदना की बात अपने पति से कह रही है । देवरानी और जिठानी का हास परिहास उसे असह्य हो उठा है । अत यह घर छोड़ जाने की धमकी देती है, परतु देवर और सास-नणद के मधुर व्यवहार से उसे कुछ सान्त्वना मिली है । देवर को एक अच्छा पारितोषिक भी मिला है ।

इस गीत म पति को ही पीड़ा का कारण समझकर स्त्री का यह निर्णय 'इन ना रहूँगी तेरे घर में' बड़ा सामयिक है ।

एक दूसरे गीत में पति की क्रूरता का मीठा परिहास देखने योग्य है —

मेरे उठै थी पीड़ तन्नै आवैथी नींद, ठोस्सा खाले, हो राजीड़ा,
नादयू नादयू पजीरिया ।
मेरे उठै था गुस्सा तेरा बाजै था हुक्का, ठोस्सा खाले हो राजीड़ा,
नादयू नादयू पजीरिया ।

पति ने प्रसूता के कष्ट में कोइ हाथ नहीं बटाया और न कोई सहानुभूति ही प्रदर्शित की । अब साके की पजीरिया खाने का प्रस्ताव स्त्री को स्वीकार्य नहीं है । उसका 'ठोस्सा खाले' उत्तर कितना स्पष्ट है ?

साहित्य में शृगार को रसराज कहा गया है । सचमुच यह विशेषण बड़ा उपयुक्त है । हृदय की परितृप्ति जो इस रस म होती है अन्यत्र सभव नहीं । परतु शृगार वर्णन में कवियों की प्रतिभा प्राय कभी कभी अवाछनीय दिशाओं में चमकने लगती है । आशिक माशूकों के फूहड़ वर्णन और विलास प्रियता की भाडी भावना कभी-कभी कविता कामिनी के कलित कलवर को कलुषित कर डालती है । परन्तु पाठक देखेंगे कि लोक-गीतों में यह दुर्गुण कदापि नहीं आ पाया है । इनमें निर्झर के निर्मल जल की भाति ताजगी, पावनता और पवित्रता है ।

हरियाना लोक-गीतों में रुदन व प्रेमव्यथा ही नहीं है बल्कि विनोद भी पुष्कल है। हरियाना लोक-गीतों में स्थान स्थान पर हास्य रस के छींटे बराबर मिलते हैं। एक हास्य गीत में एक महिला गंगा स्नान को जाना चाहती है किन्तु उसकी भैंस 'हालरू' है अर्थात् [illegible] से धार कढ़वाती है। स्त्री के सामने यह समस्या बनी हुई है, अतः वह अपने पति से अपने वस्त्र पहन कर धार निकालने की युक्ति देकर गंगास्नान को चली जाती है। आगे का वर्णन गीत में पढ़िए —

हो पिया मनै गंगा न्हावा दे जाणा सै सब संसार, हां ए जाणा सै सब संसार
गोरी तनै क्यूंकर न्हुवाद्यूं, मेरी हालरू घर री भैंस, हां ए हालरू घर री भैंस।
पिया तनै जुगत बताद्यूं मेरा करदे बेड़ा पार, हां ए कर दे बेड़ा पार।
कुरता पै मेरा पहरले लटक, चुंदड़ी छापेदार, हो ए चुंदड़ी छापेदार।
मेरी पीला घाघरा पहर कै तू बैठ काढ़िये धार, हां ए बैठ काढ़िये धार।
हाथ में एक लोटिया ल्याया, मेरा सब लिख्या [illegible], हां ए सबै लिख्या [illegible]।
या गंगा न्हाय गई सै, मेरा जीजा काढ़ रह्या धार, हां ए काढ़ रह्या धार।
पाय पहरया नेवर सुहागा, जिब ठिमक चालगी भैंस, हां ए ठिमक चालगी भैंस।
आगी नै पाछै हो लिया करके [illegible] टेम, हां ए करके [illegible] टेम।
गाली सुनाई, पहला [illegible] मूंह [illegible], हां ए [illegible]।
गलियां में या जिकरा हो रह्या देख्या सुघड़ नार, हां ए ऐसी सुघड़ नार।
कोई चल्दे टक्कर मार कोए मत मेरो न्हाय, हां ए कोए मत मेरो न्हाय।

हास्य-विनोद एवं उपहास भी सामाजिक बातों की आलोचना की तरह इन गीतों द्वारा अंकित होती रहती हैं। हरियाने के इस उपहास-परक गीत में बेचारे [illegible] को हास्य का आलम्बन बनाया गया है। वस्तुतः हास्य-गीत समाज के सुखी जीवन के द्योतक होते हैं। ये गीत मनुष्य को हंसा जाते हैं जबकि उसके जीवन में शांति और अन्तर में सुख की व्याप्ति हो। हरियाने का लोक-जीवन इस प्रकार की हास्य-तरंगों के लिए बड़ा उपयुक्त स्थल है। हरियानी लोक-गीतकार ने कहीं-कहीं विनोदवश सुन्दर अत्युक्तियों का प्रयोग भी किया है। एक गीत में भिन्न-भिन्न प्रकार के जानवरों का विचित्र सम्बन्ध हुआ है —

कीड़ी ब्याहण कूं मैं सीम दिया मन तीस।
हाथी-घोड़ा सब डक लिया घो कीड़ी नै चालीस।
[illegible] नहीं बोलूंगा झूठ की मैं म्हारे आप।
पानीपत की सड़क ऊपर मांडक ब्याहे सांप॥

कछुवा तो म्हारे भैंस चरावै पाली बण कै।
मींडकी तो रोट्टी ले जा बहुवण के बण कै।
झूट थाण।
पानीपत वाण।

हरियाने के लोक गीतों में ही मधुर हास्य की पुट हो ऐसी बात नहीं है। यहाँ की बोलचाल की भाषा म भी हास्य रस फूटा पड़ता है। अपने पुत्र पुत्रियों की शुभाकाङ्क्षा करती हुई माताओं के ये वचन कितने हास्य युक्त हैं— 'मर ज्यायो रै थम सुख्योड़े जोहड़ में डूब कै', 'खाज्या रै थम नै मरोड़्या साप' अर्थात् तुम सूखे तालाब म डूबकर मर जाओ। तुम्हें मरा हुआ साप खा जाय। पूर्व अननुभूत बातों के मेल से कैसी हँसी की स्थिति का योग हुआ है। ऐसे ही उदाहरणों के बल पर हम कह सकते हैं कि हरियाने का लोक साहित्य हास्य रस से ओत प्रोत है। इस हास्य मे एक विशेषता और है कि यह ग्रामीण होते हुए भी ग्राम्य' नहीं है।

करुण रस वर्णन म हरियानी लोक गीतों की मनोरमता और मार्मिकता अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गयी है। सच तो यह है कि जैसा मधुर रस का परिपाक इस रस के गीतों में हुआ है वैसा अन्यत्र नहीं। रसज्ञों ने भी इस रस की प्रधानता को मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है। करुण रस के सिद्धहस्त कवि भवभूति ने तो एकमात्र करुण रस का ही रस माना है। करुण में एक विशेषता यह है कि इससे हमारा सकुचित दृष्टिकोण विशाल हो जाता है। हम संवेदनशील हो जाते हैं और देवत्व कोटि म पहुँच जाते हैं। करुण भाव के गीतों को हम तीन श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं—१ विदा के गीत २ विरह के गीत और ३ वैधव्य के गीत।

कन्या के विदा के गीतों म ही करुणा उमड़ती हो ऐसी बात नहीं है। कन्या का जन्म भी करुणामय है। वह हिन्दू समाज म एक धूमकेतु के सदृश मानी जाती है। उसके जन्म से किसी को हर्ष नहीं होता। माता को पुत्री जन्म का रात वज्र के समान हो जाती है और चारों ओर शोक का घोर अंधकार छा जाता है।

जिस दिन लाडो तेरा जनम हुया था हुई ए बजर की रात।
चौसठ दिवला जोय धार्या था तोबा घोर अंधेरा॥

सचमुच कन्या जन्म से माता पिता दोनों घोर चिंता में पड़ जाते हैं।

विवाह के पीछे कन्या की विदा के गीत बड़े करुणा पूर्ण होते हैं। जब वह लाडो जिसे अपने हाथों पाला पोषा है बिछुड़ने लगती है तो माता पिता

का करुणा का स्रोत फूट जाता है और पंक्तियों से बह चले हैं। लाडो का यह उक्ति कितनी मार्मिक है —

'मुझे बाबुल कौन कहे, बाबुल तेरी धीय बिना।
आँसू तो भर आये नैन, क लाडो कैसे जाय घरा॥'

ऐसा स्वाभाविक चित्रण है। पुत्री के बिना सब कुछ हो सकता है, [illegible] 'लाडल' संबंध के अभाव की पूर्ति कोई भी नहीं कर सकता। गाते-गाते पिता के बलात् रोके हुए आँसू 'आँख' में छलछला आते हैं। इन पंक्तियों में पुत्री कुछ न कहकर भी सब कुछ कह गई है। वस्तुतः लौकिक माया ममता में निहित [illegible] ससुराल के [illegible] गृहस्थी पर बँध न पाय [illegible] हर गई, तो साधारण गृहस्थी का घात हो गया है? सास की गालियाँ भी उन ससुराल नारी में गा उठता है —

'सावन आवन पड़ी री मेरे उमड़ सरसावे मैया।'

जब कन्या पिता के घर को छोड़कर अपने नये संसार में पदार्पण करती है तो यहाँ पर भी सुख नहीं मिलता। सास-ननद के कठोर नियंत्रण में उसे रहना पड़ता है। उनके अत्याचार सहने पड़ते हैं। ऐसी स्थिति में नववधुएँ करुण स्वर में गा उठती हैं —

काहे को ब्याही दिल्ली सुन बलमा पायल मेरे।
सोना भी दिया बाबुल रूपा भी दिया,
एक न दाही मेरे सिर की कपी
सास ननद बोलें बोल रे। सुन बलमा पायल मेरे।

सचमुच लोक गीतों में सास-बहू की लड़ाई का इतिहास दुःख के अक्षरों में लिखा हुआ है। अर्थात् हे लाड़ोधीश पिता जी आपने सोना चाँदी सब कुछ दिया, केवल एक सिर की रक्षा के बिना मुझे सास-ननद के व्यंग्य बाण सहने पड़ते हैं। वधू की दयनीयता कैसी शोककारी है।

विप्रलम्भ शृंगार के वर्णन में करुणा को पर्याप्त स्थान मिला है। विरह सम्बन्धी गीत बड़े मर्मस्पर्शी होते हैं। अनन्त जीवन अश्रुधारा में स्नान करता है। इन गीतों को सुनकर पत्थर के हृदय भी पिघल उठता है और वज्र हृदय भी टुकड़े टुकड़े हो जाता है। विरह-वर्णन में संसार के सभी देशों के कवियों ने अपनी लेखनी चलाई है और बहुत सी स्याही खर्च की है, परन्तु लोक-गीतों में जिस स्निग्धता के दर्शन होते हैं वह अन्यत्र दुर्लभ है। कारण की ये गीत स्वानुभूति की उपज हैं, जिस हृदय में चोट लगी है ये गीत उसी दिल की आह हैं। इनमें वहाँ, कल्पना और तखैयुल के परवाज नहीं है।

हिन्दी साहित्य में विहारी की बालिका के विरह गीतों ने, सूरदास की गोपियों के विरह गीतों ने और आधुनिक छायावादी कवियों के नैराश्यपूर्ण प्रेम के विरह गीतों ने बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की है। तनिक हरियाना विरह गीतों की कुछ बानगियां भी देखते चलिए।

पति परदेश जाने के लिए तैयार है। पत्नी भावी वियोग की सहज आशंका से विह्वल हो उठी है। वह कहती है कि तुम्हारा घोड़ा किसने कस दिया है, किसने उस पर बैठने के लिए जीन रख दी है। वह प्रतिशोधानल से दग्ध होकर साथियों को कोसती है। सास और ननद के दुर्व्यवहार का उसे खटका है। इसलिए वह उन दोनों से मुक्ति चाहती है। पति नाना युक्तियाँ देकर उसे सान्त्वना देता है परन्तु नायिका खीजकर कह देता है कि मुझे मार डालिए। न मैं जीवित रहूँगी और न वियोग व्यथा सहूँगी। यह मर्मांतक गीत पढ़िए —

पिया कन थारो घुडला कस दिया, कोण कन थारै धरदी जीन जी।
मत जइयो राजद चाकरी।
म्हारा भाइया नै घुडला कस दिया, म्हारा साथीड़ा नै धरदी जीनजी
मत जइयो राजद चाकरी, मत जइयो परदेस
तेरा साथिडा पै पड़ियो बीजली, तेरा भाइया की रहियो बांझ जी
बाप तेरा न हों के कहूं ?
मत जइयो राजद चाकरी मत जइयो परदेस।
पिया जी थम चाल्यो चाकरी अपनी माय नै जइयो निडार[1] जी,
मत जइयो राजद चाकरी
गोरा माय बिडारां हम ने ना सरै म्हारा उल्ग बटेऊ[2] जाय जी
मत जइयो राजद चाकरी मत जइयो परदेस।
पिया जी थम चाल्यो चाकरी अपनी माता ने जइयो बिडार जी।
मत जइयो राजद चाकरी।
गोरी माय बिडारां हमनै ना सरै म्हारा चरखा का सोभा जाय
मत जइयो राजद चाकरी मत जइयो परदेस।
पिया जी थम चाल्यो चाकरी आपनी गोरी धण ने जइयो निडार जी
मत जइयो राजद चाकरी
गोरी थम नै बिडारा ना सरै म्हारा कुणयो बारावार
मत जइयो राजद चाकरी मत जइयो परदेस।

---

१ कतल करना, वध करना। २ मेहमान।

यह गीत विप्रलम्भ शृंगार का बड़ा सुन्दर उदाहरण है। इसमें नायिका के प्रति असूया और उसका तथा अपना प्रति स्त्री के मद, विषाद, शंका, आवेश, विनय और चिंता आदि संचारियों का बड़ा सटीक वर्णन हुआ है। ऐसा सरसता भरा चमत्कारादियों व व्यावहारिक वर्णन ने यहाँ संभव है।

एक दूसरे गीत की नायिका पुत्रवती हो गई है। उसका पति परदेश नौकरी के लिए जा रहा है। उसे वियोग असह्य हो उठा है। अतः वह साथ चलने के लिए आग्रह करती है। बच्चों की चिन्ता अब उसे नहीं सताती। वह कहती है कि मैं तुम्हारे शरीर से चलने के कारण किसी चाकरी और कार्य में बाधक नहीं बनूंगी। वह तो कामिनी सीता की भाँति मार्ग के कुश-कण्टकों को कुचलती चलेगी और प्रियतम के सुख सौविध्य के लिए प्रयत्न करेगी। गीत की सरसता का रसास्वादन कीजिए —

पान बरस का भवर हो ब्याही, हां जी मैंरा दो गई गैर नादान
विसराय[1] कर आने नौकरी।
थारा एसाद्रम हु गोरी रंग रंगीला, हां जी कोण दीदी लाल गुलाब
सापनों में रैंगा गोरी कामिनि।
थारा साथ भवर हो चौपण पीसा कि कर पगरा हूंस,
हां जी सग थारी चालूंगी।
म्हारा बच्चा बरन क चीप बस ले हो जी सग थारी चालूं।
घर पर नहीं रहूंगी जी।
लोटा झारी[2] भवर हो मैं बणूं ने ए जी कोण बणसी रेसम डोर।
तिस[3] लगे जद पिया हो पी लियो जे।
खाइ जलेबी भवर हा मैं बणूं जे, हा जी कोण बणसी कूर सुहाळ[4]।
भूख लगे जद पिया हो जीमियो जे।
बादल बीजळी भवर हो मैं बणूं जे, हां जी कोण बणसी मलमल पग,
धूप पड़े जद पिया हो [illegible] जे।

इस गीत में स्त्री के प्रेमजन्य भावों का मार्मिक वर्णन हुआ है। स्त्री की अभिलाषा पवित्रपूर्ण है।

विरहिणी की दशा का एक और चित्र लीजिए। प्रियतम नौकरी पर जा रहा है। स्त्री कहती है कि तुम्हारे वियोग में मैं कैसे रहूंगी, इसका कुछ उपाय बतलाते जाओ। पति चलता जाता और घर बैठकर मौज करने की

१ उपभोग। २ सुराही, जलपात्र। ३ प्यास। ४ एक नमकीन भोज्य वस्तु जो मैदा की बनी होती है।

युक्ति देता है, परन्तु नायिका को वह मान्य नहीं है। अन्त में, पति उसे पीहर पहुँचाने का प्रस्ताव करता है। इस प्रस्ताव ने नायिका को प्रेमकलिका को असमय ही मसोस दिया है और वह कह गई है कि पिता के यहाँ वात्सल्य भाव मिलने पर भी सम्मान कहाँ है? गीत की सरसता देखिए —

थम तो चाल्या हो पिया म्हारा चाकरी धण रा कोण हवाल,
यो छिड़ला मेरे मन बसा।
चरखा ल्याद्यू ए गोरी रंगला[1] पीढ़ी लाल गुलाल,
यो　　बसा।
चरखा तोड़ हो पिया रंगला पीढ़ी का मरार टूक,
यो　　बसा।
थेरी चावल म्हारे घर धणा थेंगी हुक्म चला,
यो　　बसा।
चावल द द्यो हो पिया ब्राह्मण चीभर होम कराया,
यो　　बसा।
मेल जुदा द्यू हे गोरी म्हारी थारली बैठ्या पीहर जाय,
यो छिड़ला मेरे मन बसा।
बड़ी ए पियारी हो पिया बाप क थम बिन आदर न होय,
यो　　बसा।
खड़ी ज सूखू कड़ब जू चरिए ना डागर ढोर,
यो　　बसा।
कड़ब[2] निमाणी हो पिया है पड़े[3] हम ते पड्या ए ना जाय,
यो　　बसा।

कैसी कातरता है 'खड़ी ज सूखू कड़ब जू चरिए न डागर ढोर' अर्थात् मैं पिता के यहाँ बिना आदर के चरी के सदृश खड़ी-खड़ी सूख जाऊँगी, फिर सूखी चरी को (जुआर को) पशु खालेंगे परन्तु मैं इस उपयोग में भी न आ सकूँगी। सूखकर चरी नीचे गिर जाती है, परन्तु मुझसे गिरा भी नहीं जाता। विरह के इस नारकीय कष्ट से छूटने के लिए नायिका प्राणान्त चाहती है, पर तु यह भी उसके वश में नहीं है। 'हमते पड्या ना जाय' में विवशता की बड़ा तीखी व्यंजना भरी पड़ी है।

विरह के ये गीत श्रावण मास में अधिक गाये जाते हैं। पावस की मादकता में विरह उद्दीपन के लिए विशेष अवसर मिलता है। प्रकृति की

---

१ रंग बिरंगा। २ जुआर। ३ नीचे गिर जाये।

लावण्यमयी शोभा, मेरी का नाच, पपीहे का पी पी, वह सहज प्रिय का स्मरण दिलाता है। हरियाणा में मिलने वाले इन विरह गीतों में से बारह महीने ऐसे हैं जिनमें "संयोग-विरह" का पता चलता है। ये स्थान जगह 'बारहमासा' हैं, सावन आ गया है यह दो दिन पूरा है और यहां [illegible] का बड़ा गहरा चित्रण हुआ है।

पत्नी का मायका में ससुराल का ही दुख नहीं है, उसे अपने पति की बालता का भी दुःख हुआ है। पत्नी उसकी ही तरुणता बाहर दुखता है और पति छिलखाड़ा करता है। उसका (पत्नी का) जीवन भारस्वरूप हो जाता है। अपनी दुखभरी कथा, मन आशाओं और दुःखद भावनाओं का उपन्यास में समेटे एक नारी का चित्रण गा उठा है —

दस दूना री बनडियों ये होग,
पानी को जाऊं मेरे साथ साथ जाय,
रोवै रोवै री यह मो मेरा पकड़ के,
रोया मत बन्न महयो काड़ो मन बाले महयो,
दूणी दूणी जो दुख दुखिया समाय थ ॥
× × ×
सोने को जाऊं मेरे साथ साथ जावै,
रोवै रोवै री अम्मा अम्मा करई।
रोयो मत बाम मन्यो करो मन बाले महयो,
दूणो दूणा जी दुख दुखिया समाय है।

इस गीत में बाल-विवाह की दयनीय दशा का बड़ा भव्यता से वर्णन किया गया है। बाले पति और सयानी पत्नी के विचारों में आकाश पाताल का अन्तर है। यह गीत दर्द के साथ बड़ी सुन्दरता से गाया जाता है।

वैधव्य के गीतों में करुणा का गहरा स्रोत होता है। जीवन-साथी के रूठ जाने पर तो विधवा का संसार ही समाप्त हो जाता है। उसे अनन्त वियोग की स्मृति कांटे सी चुभती है। विधवा विलाप में विषाद की गहरी रेखाएं उभरी हैं —

ए मालम् नव घम् महल म दरा विछौना सूना।
हुए एक दिना को ना मैं मुझे सारे जनम का रोना।
अरे बाली था जब रही बाप के मने सोच समझ कुछ बाधा।
इब क्यूं कटै दिन रात मने कोप एक दिनो की ना से।

समूचा गीत शोक के तानो बानो से बुना हुआ है। वियोग के साथ भी

जब कल्पसम हो जाते हैं तो जीवनपर्यंत का यह वियोग कितना मर्मांतक है, पढ़कर रोमांच हो आता है।

विधवा की कारुणिक कहानी ही नहीं विधुर की व्याकुलता भी लोक-गीतों में आई है। साहित्य में राम का सीता के प्रति और अज का इन्दुमती के प्रति विलाप एक गंभीर हृदय का रुदन है जो हृदयस्पर्शी होते हुए भी व्याकुलता से पूर्ण नहीं है। हमारे लोक गीतों में करुणा अधिक छलकती है। पादर के एक गीत में रडुवे का विलाप कितना मर्मस्पर्शी है। उदाहरण देखिए —

ब्याही थी रे मिलसी नहीं याक्या हुइ प्यारी ए।
तोड़ी थी रे सूधी नहीं, ली थी गले में डार, प्यारी ए॥
घर घर दावा, घर घर बाती, रडुवे के घर घोर अंधेरा ए।
घर घर भोजन, घर घर रोटी, मेरे घर ढकनी में धूल, प्यारी ए॥
दामण चुंदड़ी खूंटी धरे सैं, एक बर पहन दिखाय प्यारी ए।
पानी की जलघड़ रीती धरी सैं, इक बर सागर जाय, प्यारी ए॥
गहने का डिब्बा भरा धरा सैं, इक बर पहन दिखाय, प्यारी ए॥
भैया तेरा लेवा आया, इक बर पीहर जाय, प्यारी ए॥
सेजें मेरी सूना पड़ी सैं, एक बर सूरत दिखाय, प्यारी ए।
लाल पलंगेआ पगड़ बिच सोवा, एक बर सुपने में आय प्यारी ए॥

गीत का वर्णन और विलाप बड़ा स्वाभाविक है। "एक बार सूरत दिखाय प्यारी ए" में गंभीर दीनता भरी कसक है।

वास्तव में, ये करुण गीत ही साहित्य की अमूल्य निधि हैं। भला जिस कविता में विश्ववेदना की टीस नहीं, करुणा के आंसू नहीं, वह कितनी ही चमत्कारपूर्ण हो, माधुर्यपूर्ण नहीं कही जा सकती। महाकवि शैली की मीमांसा भी यही है —

"Our sweetest songs are those
that tell of saddest thoughts"

पाठक देखेंगे कि हरियाने के इन लोक-गीतों में अलंकार नहीं, शब्द छल नहीं, भूमिका और प्रस्तावना नहीं, है केवल सीधी-सादी ग्रामीण भाषा में एक दुखित हृदय की एकमात्र करुणा। यहां शब्दाडंबर की वेदी पर कविता की आत्मा का कभी बलिदान नहीं किया गया है। वस्तुतः बिना किसी कृत्रिम योजना के, बिना क्लिष्ट कल्पना के और बिना कलात्मक

विचार व हृदय रस से परिपूर्ण हो जाते, वहीं तो रस निवास है। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि हरियाने के ये लोक-गीत रस के कलश हैं।

साहसपूर्ण, अवस्था तथा उदात्त विचारों की प्रेरणा से लोक-छन्द में वीर रस की सृष्टि होती है। यह वह जादू है जो मुर्दों में जान डाल देता है और उन्हें मरने पर मर मिटने के लिए तैयार कर देता है। फिर हरियाना तो वीरता का ही दूसरा नाम है। हरियाने की वीर जाति ने कभी किसी का आतंक नहीं माना। एक लोकोक्ति में इन लोगों के गर्व को इस रूप में कहा गया है —

> कसरा बांधा सारे ल्यावें नहीं दें किसी को दाता।
> बालड़िया मण नाड़ियाँ यो मैं देस हरियाणा॥

हरियाने की जनता अपने वीरोल्लास व प्रदर्शन में कभी किसी से पीछे नहीं रही। स्वतन्त्रता के प्रथम युद्ध में हरियाना ने सबसे पहिले अपनी आहुति दी थी। यहां के राव किशन गोपाल ने उस युद्ध का श्रीगणेश अपनी तलवार की नोक से किया था। उन्होंने नसीबपुर के युद्ध में अपनी जन्मभूमि की मर्यादा रक्षा के लिए लड़ने वाले योद्धाओं को जिस उन्माद से ललकारा था वह ललकार आज भी कायरों में प्राण फूंक देती है। उदाहरण देख लीजिए —

> कहता किसन गोपाल राव घर सबद सुनाई।
> चालो ढोसी हाथ में मामोली[1] आई।
> यो ढोसी[2] का म्हारा ए कलस लड़ाई।
> जह मैं प्यारा घर मेरे घर अपणा नाई।
> जह मैं प्यारा किसन गोपाल राव लो लेस उठाई॥
> मरदो म्हारा आज बणया लाजवै सुणाई।
> मत जाओगे रण खेत में है हृदय नाहीं।
> मरो पछाड़ अरु जननी[3] बार बार उपजेगी नाहीं॥

यहां के पानीपत और कुरुक्षेत्र के विस्तृत मैदान आज भी हरियाना युवकों की स्नायुओं में वीररस का संचार कर रहे हैं।

लोक-साहित्य में एक विशेषता और भी दृष्टिगोचर होती है। हिन्दी संस्कृत आदि के कवियों ने स्त्री जाति का शृंगार अथवा करुण रस के आश्रय

---

१ सामवता यथावस्था। २ ढोसी नारनौल जिला महेन्द्रगढ़ में एक पहाड़ी है जिसके मैदान में राव किशन पाल व राव तुलाराम की अंग्रेजों के साथ लड़ाई हुई थी। ३ माता, जननी।

आलम्बन के रूप म ही अधिक ग्रहण किया है और वीर रस के लिए अनुपयुक्त समझकर स्त्री-समाज की बड़ी अवज्ञा की है। उन्होंने कभी यह न सोचा कि आंचल म दूध और आंख म पानी के अतिरिक्त उनम वीरोल्लास का अविरल स्रोत भी प्रवाहित रहता है और त्याग एव बलिदान की इच्छा उनम उतनी ही प्रबल है जितनी पुरुषों में। यह देखकर हम हर्ष होता है कि हरियाने के लोक कलाकारों ने उन्हें भुलाया नहीं है। चन्द्रावल का जौहर राजस्थानी ऐतिहासिक जौहर से उत्कृष्ट है और उसे कोसों पीछे छोड़ गया है। इसम करुणा रस की पुट से सरसता और भी बढ़ गई है। इसी प्रकार 'गौरा' बहन का आत्म बलिदान सतीश्वरी सीता के बलिदान की कोटि को छू गया है। अनेक ऐसे उदाहरण हरियानी लोक-साहित्य में विद्यमान हैं जिनके देखने से पता चलता है कि त्याग-क्षेत्र म नारी-नर से बहुत आगे है।

लोक-साहित्य म जीवन की स ध्या में गाये जाने वाले निर्गुन पद, हरजस अथवा भजन बहुत मिलते हैं जिनम शान्त रस के स्निग्ध छींटे होते हैं। इस रस का वितरण अलख जगाकर भिक्षा मागने वाले याचकों के द्वारा समाज मे बराबर होता रहता है। हरियाने की एक विशेषता यह है कि यहां ग्राम-ग्राम में किसी न किसी साधु महात्मा की समाध है जिस पर प्रात सायकाल वैराग्यपूर्ण भजन गाये जाते हैं। ये भजन, 'निर्गुन या सबद' सरल लोक भाषा म होते हैं जिसे प्रत्येक श्रोता समझता हुआ गा लेता है।

हरियाने में बाबा गरीबदास के 'सबद' बहुत प्रसिद्ध हैं। उनमें से दो उदाहरण हम प्रस्तुत कर रहे हैं —

१ सुणियों सत सुजान दिया हम हेला रे[1]।
और जनम बहोतरे होंगे मनुष जनम दुहेला रे[2]।
तू जो कह मैं खरकर जोडू चलना तुझे अकेला रे।
भरक खजर लौं माया जोड़ी, सग न चलसी धेला रे।
यौं तो मेरी सत की नवरिया[3] सतगुर पार पहेला[4] रे।
दास गरीब कहैं भाइ साधो सबद गुरु चित्त चेला रे॥

इस छोटे से 'सबद' म मनुष्य योनि की श्रेष्ठता, सत्य और गुरु की महिमा अपूर्व ढग से प्रतिष्ठित की गई है।

२ दामदा नहीं भरोसा रे अब तू कर चलने दा सूल[5]।
मैंडी[6] मन्दर बाग बगीचे रहसी डाल न मूल।

---

१ पुकार। २ कठिन। ३ नौका। ४ पार करने वाला ५ उसूल, ध्यान। ६ घर, महल।

द्वारे[1] मुनसद्दा पीर सघन है बरहा[2] मन मगन ।
गरीब दास गुरु पार उतारे साल[3] हिंडोला मन ॥

इस पद में संसार की असारता का दिग्दर्शन कराया गया है। सुर्ग मनुष्य जिस में आनन्द ले रहा है वो मिथ्या है। उसका ध्यान भगवान की ओर इस प्रकार नहीं है जैसे द्वारा आदि से लगा हुआ [illegible] का [illegible] लगता है। मनुष्य के अन्तर्गत स्थित आत्मा का स्वरूप [illegible] है [illegible] यह माया में लिप्त है। इसी प्रकार मीरा, कबीर आदि के अनेक पदों का सस्वर गाया जाता है।

उपरोक्त विवेचना से पाठक देखेंगे कि ये गीत वस्तुवाद, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, पलायनवाद, [illegible], [illegible] और निराशावाद आदि आधुनिक वादों के विवाद-चक्र से दूर हैं। इनमें उन सूरदास या तुलसी या, मीरा या तथा अन्य महात्माओं की काव्य भावना झलकती पड़ी है जिन्होंने कहा "मसि कागद छुआ नहीं कलम गहि नहीं हाथ"। इनमें पवन [illegible] है जिससे ये उत्तम काव्य की कोटि के अधिकारी हैं। इन्हें 'ग्राम्य कविता' कहना नादानी है, अपराध है।

ग. लोक-गीतों में लय

अब हम उस प्रधान विशेषता को लेते हैं जो इन गीत कला का आधार है। यह विशेषता "लय" है। गीतों की प्रत्येक पंक्ति बड़ी सुन्दरता के साथ दुहराई जाती है जिससे गीत के माधुर्य में उत्कर्ष आ जाता है। यदि इस पुनरावृत्ति को हटा दिया जाये तो सारी लोक-कविता परिमाण में आधी रह जाये और सौंदर्य एवं माधुर्य में उतनी भी न रहे। किन्तु लोक गीतों में मिलने वाली पुनरावृत्ति कोरी और भावा-शून्य पुनरावृत्ति नहीं है। यह एक पंक्ति के प्रत्येक शब्द के लिए कभी समानार्थक और कभी विपरीतार्थक बोध प्रस्तुत करती है। कभी पंक्ति के एक-दो शब्दों को और कभी पूरी पंक्ति को मनोहर ढंग से बदल देती है। इस आवृत्ति में एक लय है, एक समगति है।

यह आवृत्ति कर्ता, कर्म, क्रिया, क्रिया-विशेषण और विशेषण आदि सब में है और समानार्थक एवं विपरीतार्थक दोनों प्रकार की है। हरियाना लोक गीतों में ना, हो जी, नीए, वै, हरे राम, आदि प्रायः प्रत्येक पंक्ति के आदि, मध्य और अन्त में पाये जाते हैं। ये टेक का काम करते हैं जिससे इनके पढ़ने और गाने में मधुरता आ जाती है। इसी गुण के कारण इन गीतों का

[1] द्वारा। [2] ३? [3] स्थान।

आलम्बन के रूप में ही अधिक ग्रहण किया है और वीर रस के लिए अनुपयुक्त समझकर स्त्री-समाज की बड़ी अवज्ञा की है। उन्होंने कभी यह न सोचा कि आँचल में दूध और आँख में पानी के अतिरिक्त उनमें वीरोल्लास का अविरल स्रोत भी प्रवाहित रहता है और त्याग एवं बलिदान की इच्छा उनमें उतनी ही प्रबल है जितनी पुरुषों में। यह देखकर हमें हर्ष होता है कि हरियाने के लोक कलाकारों ने उन्हें भुलाया नहीं है। चन्द्रावल का जौहर राजस्थानी ऐतिहासिक जौहर से उत्कृष्ट है और उसे कोसों पीछे छोड़ गया है। इसमें करुणा रस की पुट से सरसता और भी बढ़ गई है। इसी प्रकार 'गौरां' बहन का आत्म बलिदान सतीश्वरी सीता के बलिदान की कोटि को छू गया है। अनेक ऐसे उदाहरण हरियानी लोक साहित्य में विद्यमान हैं जिनके देखने से पता चलता है कि त्याग-क्षेत्र में नारी नर से बहुत आगे है।

लोक-साहित्य में जीवन की सन्ध्या में गाये जाने वाले निर्गुन पद, हरजस अथवा भजन बहुत मिलते हैं जिनमें शांत रस के स्निग्ध छींटे होते हैं। इस रस का वितरण अलख जगाकर भिक्षा माँगने वाले याचकों के द्वारा समाज में बराबर होता रहता है। हरियाने की एक विशेषता यह है कि यहाँ ग्राम-ग्राम में किसी न किसी साधु महात्मा की समाध है जिस पर प्रातः सायंकाल वैराग्यपूर्ण भजन गाये जाते हैं। ये भजन, 'निर्गुन या सबद' सरल लोक भाषा में होते हैं जिसे प्रत्येक श्रोता समझता हुआ गा लेता है।

हरियाने में बाबा गरीबदास के 'सबद' बहुत प्रसिद्ध हैं। उनमें से दो उदाहरण हम प्रस्तुत कर रहे हैं —

१ सुणियों सब सुजान दिया हम हेला रे[1]।
और जनम न्होतरे होंगे मनुष जनम दुहेला रे[2]।
तू जो कहे मैं लश्कर जोड़ू चलना तुझे अकेला रे।
अरब खरब लौं माया जोड़ी, सग न चलसी धेला रे।
यों तो मेरी सत का नवरिया[3] सतगुर पार पहेला[4] रे।
दास गरीब कहे भाइ साधो सबद गुर चित्त चेला रे॥

इस छोटे से 'सबद' में मनुष्य योनि की श्रेष्ठता, सत्य और गुरु की महिमा अपूर्व ढंग से प्रतिष्ठित की गई है।

२ दामदा नहीं भरोसा रे अब तू कर चलने दा सूल[5]।
मैंडी[6] मन्दर बाग बगीचे रहसी डाल न मूल।

---

१ पुकार। २ कठिन। ३ नौका। ४ पार करने वाले ५ उसूल, ध्यान। ६ घर, महल।

इतनी[1] सुन्दर पाट सजाए है काला[2] ताल महल।
सहित हम सुत पार उतरेंगे मरण[3] दिनौना गत ॥

इस पद में संसार की नश्वरता को दिखाया गया है। मनुष्य माया में आनन्द ले रहा है जो मिथ्या है। उसका प्यार अनुराग की ओर इस प्रकार नहीं है जैसे ग्राम आदि में लगा हुआ उसका मन दृढ़ कर के रह सकता है। मनुष्य के अन्तर् में छिपे आत्मा की ज्योति प्रकाशित है उसे ढूंढ़ कर जाना नहीं है। इसी प्रकार माया, संसार आदि के प्रतीक पदों का बराबर गाया जाता है।

उपर्युक्त विवेचना से पाठक देखेंगे कि ये गीत रहस्यवाद, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, यथार्थवाद, आदर्शवाद, हालावाद और निराशावाद आदि आधुनिकवादों के विवाद-चक्र से दूर हैं। इनमें उन सुन्दर और सुखमय भावनाओं का, ग्वालों का तथा अन्य ग्रामीणों की कोमल भावना झलकती है जिन्होंने कभी "मसि कागद छुआ नहीं कलम गहि नहीं हाथ"। इनमें केवल रस है जिससे ये उत्तम काव्य की कोटि के अधिकारी हैं। इन्हें 'अच्छी कविता' कहना बहाना है, अपराध है।

ग. लोक-गीतों में लय

अब हम उस प्रधान विशेषता को लेते हैं जो लोक-गीत कला का आधार है। वह विशेषता "लय" है। गीतों की प्रत्येक पंक्ति बड़ी सुन्दरता के साथ दुहराई जाती है जिससे गीत के माधुर्य में उत्कर्ष आ जाता है। यदि इस पुनरावृत्ति को हटा दिया जाये तो सारा लोक-कविता परिमाण में आधी रह जाये और सौन्दर्य एवं माधुर्य में उतनी भी न रहे। किन्तु लोक-गीतों में निरर्थक पुनरावृत्ति कहीं और भाषा-भाव पुनरावृत्ति नहीं है। यह एक पंक्ति में प्रत्येक शब्द के लिए कभी समानार्थक और कभी निरर्थनार्थक जोड़ा प्रस्तुत करता है। कभी पंक्ति के एकाध शब्दों को और कभी पूरी पंक्ति को मनोहर ढंग में बदल देता है। इस आवृत्ति में एक लय है, एक सरसता है।

ये आवृत्त कर्ता, कर्म, क्रिया, क्रिया विशेषण और विशेषण आदि सब में हैं और समानार्थक एवं निरर्थकार्थक दोनों प्रकार की हैं। हरियाना लोक-गीतों में ना, री, हो, आ, जाए, रे, हरे राम, आदि प्रायः प्रत्येक पंक्ति के आदि, मध्य और अन्त में पाए जाते हैं। ये पद तुक का काम करते हैं जिससे इनके पढ़ने और गाने में मधुरता आ जाती है। इसी गुण के कारण इन गीतों का

[1] ऊपर। [2] [illegible] [3] स्थान।

सरलता से स्मरण रखा जा सकता है। एक विशेषता यह है कि ये तुक पद अथवा आवृत्ति के पद बिना प्रयास के स्वत आ गये हैं।

सचमुच लय ही लोक गीतों को मनोहारी बना देता है। जब नारी कंठ सामूहिक रूप से किसी गीत को अलापता है तो उस समय लय के द्वारा उस गीत में रस का संचार हो जाता है। ऐसा करते समय स्त्रियाँ आवश्यकतानुसार कहीं ह्रस्व को दीर्घ और दीर्घ को ह्रस्व करती चलती हैं। किसी अक्षर की कमी कुछ अक्षरों को जोड़कर पूरा कर ली जाती है। इस प्रकार साधारण लोक गीत भी इस लय की शाण पर चढ़कर सरस हो जाते हैं।

भिन्न भिन्न गीतों की लय भिन्न भिन्न हुआ करती है। लोक गीतों के अभ्यस्त श्रोता केवल लय सुनकर ही गीत की पहचान कर लेते हैं। कुछ गीत तार स्वर में और कुछ मंद स्वर में गाये जाते हैं। हरियाने के राग अथवा गाथाएँ—गुगा, किशन गोपाल, निहाल देवी, पूरन, जयमल फत्ते आदि के लिए 'तार स्वर' आवश्यक है। नारी गीत—होलक, बदवा, बदड़ी और झूले के गीत विलम्बित स्वर में गाये जाते हैं। हरियाने के "मनरा" गीत की लय बड़ी ही मोहक और सरस है। जब स्त्रियाँ झूला झूलती हुई इसे गाती हैं तो रस की घटा सी होने लगती है।

घ लोक गीतों में छंद

लोक-गीतों में छंद का बंधन बड़ा श्लथ है। एक प्रकार से यदि कहा जाये कि इनमें छंद होता ही नहीं तो कोई अत्युक्ति न होगी। वैसे तो छंद काव्य नायिका के परिधान हैं, परन्तु लोक गीतों में इसकी पूर्ति लय और संगीत से हो जाती है। इनका संगीत बड़ा सरस होता है।

ग्रामीण कवि पिंगल ज्ञान से शून्य होते हैं। उन्हें वर्णिक एवं मात्रिक छंदों का ध्यान नहीं रहता। वे तो "स्वान्त सुखाय" अपने निष्कपट भावों को राग का रूप दे देते हैं चाहे वह सदोष ही क्यों न हो। परन्तु जिन्होंने इन गीतों को सुना है उन्हें कभी भी इनमें गतिभंग या यतिभंग दोष नहीं मालूम पड़ा। फिर भी यदि इन्हें छंद भाषा में कहना चाहें तो "लयात्मक छंद" कह सकते हैं। इसीलिए पं० रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी सटीक मीमांसा देते हुए कहा है कि "इनमें (लोक गीतों) छंद नहीं, केवल लय है।" इस लयांश के ही कारण ये लोक-गीत बड़े श्रुतिमधुर हैं।

चतुर्थ अध्याय

लोक-कथा

लोक-कथा

हमने पीछे कहा है कि कहानी समस्त वाङ्मय की आत्मा है। मौखिक या लिखित साहित्य का कोई रूप ले लें तो उसके मूल में कोई न कोई छोटी एवं स्थूल कथा अवश्य मिलेगी। यह कहना अयुक्त न होगा कि मानव की निज के भावों के प्रति जो प्रथमाभिव्यक्ति—आंगिक तथा वाचिक—हुई होगी। वह एक कहानी रही होगी। 'मैं' और 'तुम' इन दो शब्दों में भी एक कहानी है। इसका रंजित एवं परवर्तित रूप सब देशों व जातियों में मिलता है। इस अध्याय में हम हरियाणा प्रदेश में मौखिक परम्परा से प्रचलित लोक-कहानी साहित्य का अध्ययन प्रस्तुत करेंगे। यहां यह विचार लेना भी असमीचीन न होगा कि हरियाणे में जो लोक-कहानियां आज मिलती हैं उनका मूल बड़ा गहरा है। उनका इतिहास पास पड़ौस के प्रदेशों में भी जाना पड़ेगा तथा विदेशों में भी हो सकता है, उनकी परम्परा मिले, पर कहानी की इन चारों ओर फैली हुई दूब की सी जड़ों का पता निकालने में कौशल्य व श्रम एवं धैर्य की अपेक्षा है।

क भारतीय परम्परा में लोक-कहानियां

कहानियों की उद्भावना की आदिभूमि भारत को माना गया है। यों तो कहानी का मौलिक रूप, सृष्टि के समारम्भ से ही प्रत्येक देश में पाया जाता है। ये परम्परित कहानियां सब देशों में घास की तरह अपने आप पैदा हुई हैं। सभी देशों की वृद्धाओं ने बालमनोविनोद के लिए कहानियां कहीं हैं। किन्तु साहित्यिक कहानियां लिखने का श्रेय भारत को है। यहां इस साहित्यिक अभिव्यक्ति की परम्परा एक सुदूर अतीत से विद्यमान मिलती है। ऋग्वेद में जो संसार का सर्वप्रथम उपलब्ध ग्रंथ है, स्तुतियों के रूप में कहानी के मूलतत्व पाये जाते हैं। ऋग्वेद के मं० १ सूक्त २४।१५ मंत्र १० (दोनों में मिलाकर)[1] में ऋषि शुनःशेप का वह प्रसिद्ध आख्यान है जिसमें

---

१ अबुध्ने राजा वरुणो वनस्योर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्षः ।

शुनःशेपो यमह्वद्गृभीतः सो अस्मान् राजा वरुणो मुमोक्तु ॥

अवैनं राजा वरुणः ससृज्याद्विद्वाँ अदब्धो वि मुमोक्तु पाशान् ॥

श्री पं० जयदेव शर्मा के ऋग्वेद संहिता (भाषा भाष्य) में १ मं० [illegible] देखना होगा। यहीं पाठोद्धार मिलता है।

उन्होंने 'वरुण' की प्रार्थना की है, उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है। अप्पला आत्रेयी के आदर्श नारी चरित्र ऋग्वेद में आये हैं।

ब्राह्मण ग्रंथों में भी हमें अनेक कथाएं उपलब्ध होती हैं। शतपथ ब्राह्मण की पुरूरवा और उर्वशी की कथा का किसको ज्ञान नहीं है। (श० ब्रा० ११।५।१)। कवि कालिदास के 'विक्रमोर्वशी' नाटक का आधार यही कथा तो है। ताण्डय ब्राह्मण १४।६।११ में च्यवन, भार्गव और सुकन्या मानवी की कहानी पल्लवित हुई है तथा ऐतेरेय ब्राह्मण ७।३ में शुन शेप के आख्यान का वर्णन हुआ है।

ये कहानियां उपनिषद् काल से पूर्व की हैं। उपनिषत्काल में आकर इन्हें कुछ नया रूप मिला है। गार्गी-याज्ञवल्क्य संवाद तथा सत्यकाम-जाबाल आदि की कहानियां उपनिषद् युग की प्रसिद्ध कहानियां हैं। कठोपनिषद् में एक बड़ी प्रसिद्ध कहानी नचिकेता की आती है जिसका हिन्दी रूपान्तर प० सदल मिश्र जी ने नासिकेतोपाख्यान नाम से किया है। इसमें नचिकेता अपनी विलक्षण प्रतिभा से यम से अमरता प्राप्ति का उपाय ज्ञात करता है। केनोपनिषद् में अग्नि और यक्ष की कथा का रोचक वर्णन आया है। छान्दोग्य उपनिषद् ४।१।३ में जनश्रुति के पुत्र राजा जानश्रुति की कथा का चित्रण मिलता है।

यहां इतना और जान लेना अपेक्षित है कि वेद ब्राह्मणों में जिन कहानियों के बीज और बिन्दु मिले हैं वे सब यज्ञ विधि, अनुष्ठान अथवा स्तुतियां (दानस्तुतियां आदि) से सम्बंधित हैं। उपनिषद्काल में पहुँचते-पहुँचते कहानियों की वह आनुष्ठानिकता एवं अलौकिकता की मात्रा समाप्त हो गयी है। देवताओं के स्थान पर राजा या ऋषि आ विराजे हैं। यह सब कुछ होने पर भी उस युग ने मनीषियों की दृष्टि में कहानी निर्माण की प्रेरणा दुर्बल हो गयी थी जिसका पूर्ण विकास आगे चलकर पुराण, रामायण और महाभारत में हुआ।

पुराणों में कहानी खुलकर आई है जिससे वेद के गूढार्थ का प्रतिपादन होता है। यह कहना कि पुराण ' व्याख्या ै निराधार नहीं है।
की कुंजी है। क कथाओं
हैं।

म

कथन है[1] कि इसमें एक चौथाई मूलवृत्त है और उसे पुष्ट करने के लिए तीन चौथाई आख्यान भरे पड़े हैं। कहा जाता है महाभारत में १ लाख श्लोक हैं। इनमें से २४००० श्लोकों में मूलकथा है शेष ७६००० उपाख्यान हैं।

यह उपरान्त विवेचन वेद, वैदिक आधार एवं पुराणादि को लेकर मिलने वाली कहानियों के विषय में है। इसके अतिरिक्त संस्कृत में मिलने वाले आख्यान-साहित्य का भी विश्व-साहित्य में एक गौरवपूर्ण स्थान है। संस्कृत के य आख्यान किसी प्रख्यात पौराणिक एवं ऐतिहासिक पात्र अथवा कथा वस्तु के उपयोग को लेकर नहीं गढ़े हैं। इन आख्यानों की पृष्ठभूमि में विशुद्ध कल्पना है। इनमें स्थान-स्थान पर कुतूहल, घटना-वैचित्र्य, हास्य, शृंगार, उपदेश और काव्य रस भी मिलता है। इन आख्यान साहित्य को विद्वानों ने दो वर्गों में विभाजित किया है—१ नीति कथा, २ लोक कथा। पहिले हम नीति कथाओं को लेंगे।

नीति कथाओं का विषय सदाचार, राजनीति तथा व्यावहारिक ज्ञान है। इनमें जीव जन्तु, पशु-पक्षी मनुष्यों के समान ही सारे कार्य करते हैं। मनुष्यों की भांति वे संभाषण करते हैं, रूप बदलते हैं, पशु से मनुष्य बनते हैं और मनुष्य पशु का रूप धारण कर लेते हैं। यहां मनुष्यों और पशुओं का विवाह भी होता है अर्थात् मनुष्यों जैसे उनके व्यवहार हैं। नीति कथाओं की एक विशेषता यह होती है कि एक तो प्रधान कथा होती है और कई-कई गौण एवं अप्रधान कथाएं उसके भीतर चलती हैं। संस्कृत के दो ग्रंथ पंचतंत्र और हितोपदेश नीति कथा के उत्तम रत्न हैं। इनके अतिरिक्त बहुत सी नीतिकथा की पुस्तकें उपलब्ध होती हैं। तृतीय शताब्दि ई० पू० के भरहुत स्तूप पर कई नीति कथाओं के नाम आये हैं।[2]

१ पंचतंत्र

पंचतंत्र भारतीय नीतिकथा साहित्य का रत्नाकर है। पंचतंत्र की रचना का मूल उद्देश्य राजकुमारों को नीति शास्त्र की शिक्षा देना था। महिलाराज्य के राजा अमरशक्ति के तीन पुत्र थे। वे बड़े ही उद्दण्ड और मूर्ख थे। सम्राट की प्रबल इच्छा थी कि किसी प्रकार ये मूर्ख राजकुमार अल्पकाल में

१ महाभारत आदिपर्व १।१०२,
'चतुर्विंशति साहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम्।
उपाख्यानैर्विना तावद्भारतं प्रोच्यते बुधैः ॥'

२ मैक्डोनल 'इंडियाज पास्ट' पृष्ठ ११७।

नीतिशास्त्र निष्णात हो जायें । यही कार्य पचतत्र के रचयिता पडित विष्णु शर्मा ने कर दिखाया । कहा जाता है उसने छ मास में ही उन राजकुमारों को नीति निपुण कर दिया था ।

विश्व साहित्य को भारतीय साहित्य की यह एक महत्ता देन है । पचतत्र की कहानिया बहुत-बहुत दूर की सैर कर चुकी हैं । इनके भ्रमण की कहानी स्वय बड़ी रोचक है । पचतत्र का सबसे पहिला अनुवाद पहलवी भाषा म बादशाह खुसरू अनुशेरवाँ के हुक्म से ई० ५५० के लगभग हुआ । इसके पचास वर्ष पीछे ही इसका अनुवाद सीरियन भाषा में हुआ । सीरियन से अरबी म इसका अनुवाद हुआ और अरबी में पहुँचते पहुँचते इन कथाओं की ख्याति यूरोप के अन्तस् को छू गयी । फिर क्या था यूरोप की सभी मुख्य मुख्य भाषाओं म इसके अनुवाद हुए । जमन विद्वान डा० विन्टरनित्ज के मतानुसार जमन साहित्य पर पचतत्र का विशेष प्रभाव पड़ा है । इसप की कहानिया (Aesop's Fables), जो ग्रीस का प्रसिद्ध कथा सग्रह है, और अरब देश की मनोरजक कहानियाँ—'अरेबियन नाइट्स' की आधारभूत ये ही कहानिया हैं ।[1] सस्कृत की इन कहानिया का ससार में इतना अधिक प्रचार हुआ है कि ये विश्व साहित्य का एक अग बन गयी हैं ।

खेद है कि पचतत्र अपने मूल रूप में उपलब्ध नहीं है । आजकल उसके आठ परिवर्तित सस्करण प्राप्त होते हैं । इन सबके आधार पर आधुनिक विद्वान एफ० एडगर्टन का पचतत्र सबसे अधिक प्रामाणिक माना जाता है । आज पचतत्र में इसके नाम के अनुरूप पाचतत्र या भाग हैं । जिनके नाम है—१ मित्रभेद, २ मित्रलाभ, ३ सधिविग्रह, ४ लब्ध प्रणाश और ५ अपरीक्षितकारकम् । कई विद्वानों का विचार है कि आरभ में इसके बारह भाग रहे होंगे । पर इस विवेचन के लिए यहा अवसर नहीं है ।

२ हितोपदेश

नीतिकथाओं में पचतत्र के पीछे 'हितोपदेश' का नाम लिया जाता

१ History of Sanskrit literature by WEBER

Page 211—(Beast Fable)

But the most ancient book of fables extant is the पचतत्र The original text of this work has, it is true, undergone great altera tion & expansion & can t now be restored with certainty, but its existance in the sixth century A D is an ascertained fact as it was then by command of the celebrated Sassanian King Nushirvan (Reg 531 579) translated into Pahlavi

है। हितोपदेश की रचना बहुत कुछ पंचतंत्र के आधार पर हुई है। स्वयं नारायण पंडित ने पुस्तक की प्रस्तावना में यह बात स्वीकार की है। 'पंचतंत्र तथा न्यस्माद् ग्रन्थान्तरात् लिख्यते।' पंचतंत्र का आधार इतना अधिक है कि ४३ कथाओं में से २५ तो पंचतंत्र से ली गयी हैं। हितोपदेश में चार परिच्छेद हैं—*मित्रलाभ, सुहृद्भेद, विग्रह और संधि।* प्रथम दो परिच्छेद भी पंचतंत्र से भिन्न हैं। भाषा सरल और सुबोध होने के कारण कोमल मति विद्यार्थियों में हितोपदेश पंचतंत्र की अपेक्षा अधिक प्रिय है।

नीति कथाओं के विवेचन के पश्चात् हम संस्कृत में उपलब्ध लोक कथाओं की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करते हैं जिनके साथ हिन्दी लोक-कहानियों की ओर भी चलेंगे। वैसे तो नीति कथाओं की बहुत सी विशेषताएँ लोक कथाओं में भी दिखलाई पड़ती हैं, पर दोनों में प्रमुख अन्तर यह है कि नीति कथाएं उपदेश प्रधान होती हैं और लोक-कथाएं मनोरंजन प्रधान। प्राधान्य से ही यह नामकरण हुआ है। वस्तुतः दोनों एक वस्तु के ही दो पहलू हैं और उनमें गंभीर भेद अधिक नहीं है। यह भी ध्यान रखने की बात है कि लोक-कथाओं के पात्र प्रायः मनुष्य ही होते हैं। नीति कथाओं की भांति पशु-पक्षी और जीव-जन्तु नहीं होते। नीति कथाओं की कहिए या शिक्षा अथवा उपदेश प्रधान कथाओं की सर्वप्रसिद्ध कृति पंचतंत्र है जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है। मनोरंजन प्रधान कहानियों का ख्याति प्राप्त ग्रन्थ 'बृहत्कथा' है।

३ बृहत्कथा

कथा-साहित्य की दृष्टि से शुद्ध लोक-कहानियों का विशाल संग्रह 'बड्डकहा' (बृहत्कथा) है। यह मनोरंजन प्रधान कहानियों का प्राचीनतम संग्रह है। इसके लेखक महाराजा 'हाल' के सभाकवि 'गुणाढ्य' माने जाते हैं। मूल बृहत्कथा पैशाची प्राकृत में लिखी गयी थी। डा० ब्यूलर का मत है कि बृहत्कथा प्रथम या द्वितीय शती ईस्वी की कृति है। इसमें एक लाख पद्य थे। पर खेद है कि पैशाची की यह अमर कृति मूल रूप में उपलब्ध नहीं है। अब केवल इसके तीन संक्षिप्त संस्कृत रूपांतर मिलते हैं।

१ नेपाल के बुद्ध स्वामी कृत बृहत्कथा श्लोक संग्रह
२ क्षेमेन्द्र विरचित बृहत्कथा मंजरी तथा
३ सोमदेव रचित कथा-सरित्सागर।

बृहत्कथा के इन संस्करणों में 'कथा सरित्सागर' सबसे अधिक प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थ वास्तव में भारतीय कथा रूपी सरिताओं के लिए समुद्र है। इसमें

अति प्राचीन प्रचलित लोक कहानियों का संग्रह है। कथा-सरित्सागर का रचनाकाल ग्यारहवीं शताब्दी का पूर्व मध्य भाग है। इसका कथानक बड़ा पुष्ट है जिससे कथाकार की कुशलता का पता चलता है। सोमदेव काश्मीर के राजा अनन्त तथा क्षेमेन्द्र के समकालीन थे। वड्डकहा तथा उसके संस्कृत रूपान्तरों के अतिरिक्त संस्कृत में और भी अनेक कथा संग्रह प्राप्त हैं जिनमें रहस्यरोमांच एवं साहसिक कार्यों की प्रधानता है।

४ वेतालपंचविंशतिका

इस कथा संग्रह में २५ कहानियों का संग्रह है। इन कथाओं का मूल बृहत्कथा मंजरी तथा कथा सरित्सागर में मिलता है। ये २५ कहानियाँ पहेलियों के रूप में कही गयी हैं। एक भूत उज्जैन के राजा विक्रमादित्य से इन पहेली कहानियों (बुझौअलों) को कहता है। ये कहानियां बड़ी मनोरंजक एवं कौतूहलवर्धक हैं। इस संग्रह का श्रेय शिवदास नामक लेखक को है। 'बैताल पचीसी' इसका हिन्दी रूपान्तर है।

सिंहासन द्वात्रिंशिका अथवा द्वात्रिंशत्पुत्तलिका अथवा विक्रमचरित भी एक मनोरंजक कहानी-संग्रह है। इसकी प्रत्येक कहानी में धारानगरी के राजा भोज का वर्णन आता है। राजा विक्रम के सिंहासन की ३२ पुतलियां राजा भोज से एक एक कहानी कहकर उड़ जाती हैं। ये वेतालपंचविंशतिका की भाँति उत्कृष्ट बुद्धि विलास से पूर्ण नहीं हैं। इसका हिन्दी में अनुवाद "सिंहासन बत्तीसी" के नाम से हुआ है।

"शुक सप्तति" एक अधिक रोचक एवं लोकप्रिय संग्रह है। इसका कर्ता अज्ञात है। इसमें ७० कहानियां संग्रहीत हैं। मदन सेन नामक युवक का अपनी पत्नी पर अत्यधिक अनुराग है। वह कार्यवश परदेश जाता है। पत्नी निरहविदग्धा है। शुक उसे रात रात में एक एक मनोरंजक कहानी सुनाता है। ७० कहानियों से ७० दिन व्यतीत होते हैं और इसके पीछे नायक लौट आता है।

इनके अतिरिक्त भी कुछ संग्रह हैं जिनका स्वरूप या परिचय इस प्रकार है। मैथिल-कोकिल विद्यापति कृत "पुरुष परीक्षा" ४४ नैतिक और राजनीतिक कहानियों का संग्रह है। "कथार्णव" में चोरों और मूर्खों की ३५ कथाएँ दी गयी हैं। "भोजप्रबंध" भी एक स्फुट संग्रह है। इसके रचयिता १६वीं शताब्दी के बल्लाल सेन हैं।

कुछ कहानियां संसार की परिक्रमा करके देश विदेश की मुद्रा से विभूपित

हेमर सोरी है। तदनन्तर पंडितों ने फिर इन्हें संस्कृत परिधान दे दिया है। "अरेबियन नाइट्स" का "आरब्ययामिनी" के नाम से जगद्बन्धुपंडित ने संस्कृत में अनुवाद किया है। ग्रीस का ईसप की कहानियों का अनुवाद "ईसपनीतिकथा" नाम से ताराचरण शास्त्री ने प्रस्तुत किया है।

५ जातक

बौद्ध साहित्य में कहानियाँ प्रचुर परिमाण में पाई जाती हैं। बौद्ध कहानियों का संग्रह जातक नाम से विख्यात है। जातक कहानियाँ भगवान् बुद्ध के पूर्व जन्म की रोचक कथाएँ हैं।[1] राजा महाराजाओं से लेकर निम्न पशु-पक्षियों तक इन कहानियों के पात्र हैं। इनकी विशेषता यह है कि इन कथाओं को भगवान् बुद्ध देव ने स्वयं अपने मुखारविन्द से अनुयायियों को सुनाया है। जब कभी कोई जिज्ञासा उत्पन्न हुई तो उसका उपशमन इन्हीं कथाओं द्वारा किया गया है। इन कहानियों में बोधिसत्व की भिन्न भिन्न अवस्थाओं का वर्णन कर बुद्धत्व की प्राप्ति का मार्ग बताया गया है। इन सभी कहानियों के मूल में उपदेश या नीति निहित होती है। दूसरी विशेषता यह है कि ये कहानियाँ सरल, स्वाभाविक एवं मानवीय परिस्थितियों से युक्त हैं। इनमें पंचतंत्र जैसा उलझाव एवं कृत्रिमता नहीं है। कहानी बड़ी सरल, सुबोध है और भाव भी प्रभावोत्पादक भी है। इन कहानियों की प्राचीनता के विषय में विद्वानों का मत है कि ये रामायण से भी पहले की हैं। "दशरथ जातक" की कहानी से यह बात सहज ही समझ में आ जाती है। इतना ही नहीं भगवान् बुद्धदेव के समय शताब्दियों से जनता में प्रचलित आख्यान, परियों की कहानियाँ अथवा रोचक चुटकुले भी धार्मिक रूप में ढलकर जातक में रूपान्तरित हो गये हैं।[2] जातक संख्या में ५५० हैं। इनके अनुशीलन से बुद्ध के समय अथवा उससे भी प्राचीनकाल के भारतीय इतिहास का रमणीय चित्र मिलता है। जातकों की भाषा पाली है।

जातक साहित्य के अतिरिक्त बौद्ध साहित्य में "अपदान" (अवदान) भी लिखे गये हैं। ये प्रायः पुण्य क्रियाओं की कहानियाँ हैं। इनमें भी जातकों की भाँति भूत और वर्तमान दोनों ही जन्म की कथाएँ रहती हैं। इन दोनों में अन्तर यह है कि जातकों में तो भगवान् बुद्ध के जीवन की कहानियाँ हैं, जब

१ जातक की परिभाषा प्रो० एन० वी० वैद्य ने यह दी है "जातकं नाम बोधिसत्त्वकथा" जातक संग्रह पृष्ठ ६ (निवेदनम्) पूना ओरियण्टल सीरीज नं० ५७।

२ विशेष विवरण 'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड ऐथिक्स' में मिलेगा।

कि अपदानों में भिक्षुओं के उदात्तकर्मों के विपाकफल का वर्णन होता है[1]। ये उत्तम पुरुष में आत्मकथा के रूप में होते हैं। ये अवदान संस्कृत में भी बौद्ध पंडितों ने लिखे हैं। इनमें 'अवदानशतक' सबसे प्राचीन बताया जाता है। आर्यशूर की "जातक माला" में जातकों की कथाएं पद्यरूप में निबद्ध हैं।

६ जैन कहानियां

कथा-साहित्य की दृष्टि से जैन साहित्य बौद्ध साहित्य की अपेक्षा अधिक सम्पन्न है। जैन कहानियों में तीर्थंकरों, श्रमणों एवं शलाका पुरुषों की जीवन कथाएँ हैं जिनसे धर्म के सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण होता चलता है। इनमें धार्मिक दृष्टि को पुष्ट करने के लिए जैन कहानीकार साधारण कहानी की समाप्ति पर 'केवली' (मुक्ति के अधिकारी साधु) के द्वारा दुख सुख की व्याख्या पूर्व जन्म के कर्म के आधार पर कर देता है। बस यहीं पर ये जातकों से भिन्न हैं। जैन-कथाओं में भूत-वर्तमान दुख सुख की व्याख्या या कारण निर्देश के रूप में आता है। यह गौण है। मुख्य है वर्तमान। जबकि बौद्ध जातकों में वर्तमान अमुख्य है और भूत प्रमुख है। वहां बोधिसत्व की स्थिति विगत काल में ही रहती है। इनमें अनेक रूपक कहानियां भी हैं। एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा। एक तालाब है, उसमें खिले हुए कमल भरे हैं। मध्य में एक बड़ा कमल है। चार ओर से चार मनुष्य आते हैं और वे उस बड़े कमल को हथियाना चाहते हैं। प्रयत्न करते हैं परन्तु सफल नहीं होते। एक भिक्षु तालाब के किनारे से तो कुछ शब्द बोलकर उस बड़े कमल को प्राप्त कर लेता है। यह 'सूयगडंग' की रूपक कहानी है। इस रूपक के द्वारा यह समझाया गया है कि जैन साधु राजा के समीप सरलता से पहुँच जाता है।

इस प्राचीन कथा साहित्य से जिसका ऊपर वर्णन हुआ है, तत्व ग्रहण कर आगे के लेखकों ने संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में अनेक कहानियां खड़ी की हैं। अपभ्रंश के 'पउम चरिउ' (पद्म चरित्र) एवं भविसयत्तकहा (भविष्यत्कथा) नामक पुस्तकें कहानी साहित्य की अमूल्य निधि हैं। इनमें अनेक उपदेशप्रद कहानियां उपलब्ध होती हैं। अधिक क्या कहा जाये कथाओं के समूह के समूह जैन आचार्यों ने रच डाले हैं जिनके द्वारा जैन धर्म का प्रचार भी हुआ है और धार्मिक सिद्धान्तों को बल भी मिला है।

१ अपादान की व्याख्या करते हुए प्रो० तुगर ने लिखा है—"अपदान इमस्मिं अनत्तेम भिक्खून कतकम्मस्स विपाकफल वण्णना निम्मांत"। जातक संग्रह (निवेदनम्) पृष्ठ ७।

इन्होंने इन कहानियों का विपुल संग्रह किया है। श्री प्रवासी लाल वर्मा की 'सौराष्ट्र की लोक कथाएं' 'आत्माराम एण्ड संस दिल्ली' के यहां से अभी प्रकाशित हुई है।

ब्रजभाषा क्षेत्र में तो 'ब्रजसाहित्य मंडल' की स्थापना से जीवन आ गया है। ब्रज साहित्य मंडल तथा डा० सत्येन्द्र जी के प्रयत्नों से ब्रजलोक साहित्य का बड़ा उपकार हो रहा है। डा० सत्येन्द्र जी के प्रयत्न से 'ब्रज की लोक कहानियां' प्रकाश में आई। यह संग्रह बड़ा उपयोगी है। भाषाशास्त्र तथा लोकवार्ता दोनों दृष्टियों से इसका बड़ा महत्त्व है। इसमें सुयोग्य लेखक ने (मनगढ़ंत ने) ग्रामीण ब्रजभाषा का रूप दिया है। समस्त कहानियां ग्रामीण ब्रजभाषा में हैं। कथाओं के चयन में व्यापकता है। सभी प्रकार की कहानियां इसमें संग्रहीत हैं। एक खोजपूर्ण भूमिका ने पुस्तक का मूल्य और अधिक बढ़ा दिया है। कहानियों का विभाजन भी बड़ा मौलिकता के साथ किया गया है। 'ब्रज की लोक कथाएं' नाम से आदर्श कुमारी यशपाल का एक संग्रह आत्माराम एण्ड संस के यहां से प्रकाशित हुआ है। इन कहानियों की भाषा खड़ी बोली है।

श्री कृष्णानन्द जी गुप्त के सत्प्रयत्नों से लोकवार्ता नामक पत्रिका में बहुत सी बुंदेलखंडी लोक कहानियां छपी थी। शिव सहाय चतुर्वेदी की 'बुंदेलखण्ड की कहानियां' पुस्तक रूप में छप चुकी हैं। ये कहानियां खड़ी बोली में लिखी गयी हैं। इस पुस्तक की भूमिका बड़ी गंभीर एवं विवेचना पूर्ण है।

लोक साहित्य प्रेमी डा० वेरियर एल्विन ने महाकोशल प्रदेश की कहानियों का एक संग्रह 'फोक टेल्स फ्राम महाकोशल' नाम से प्रकाशित कराया है। इस संग्रह की कहानियां अंग्रेजी भाषा में हैं। भोजपुरी के अनन्य उपासक डा० कृष्णदेव उपाध्याय जी ने कहानियों का एक विपुल संग्रह किया है, परन्तु वह अभी अप्रकाशित है।

आत्माराम एण्ड संस प्रकाशन दिल्ली ने अनेक छोटे-छोटे लोक-कथाओं के संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इन संग्रहों में 'पंजाब की लोक-कथाएं' लेखक पंछी तथा वेदा 'मालवा की लोक कथाएं' श्री श्यामपरमार 'अवध की लोक-कथाएं' श्री शिवमूर्ति सिंह वत्स तथा 'छत्तीसगढ़ की लोक-कथाएं' श्री चन्द्र कुमार उल्लेखनीय संग्रह है।

ग हरियाने की लोक-कहानियां—विविध रूप

पीछे हमने कहा है कि हरियाने में लोक कहानियां प्रचुर परिमाण में

मनुष्य की धार्मिक प्रवृत्तियां ही अधिकतर कार्य करती रही हैं। पुराण पुरुष के जीवन में मनोरंजन के लिए बहुत कम स्थान था। इसके अधिकांश कार्य एक विशेष प्रकार के धार्मिक आवेग से प्रेरित होते थे। हाँ, आमोद-प्रमोद द्वारा मन को प्रसन्न करने की प्रवृत्ति मनुष्य में स्वाभाविक है[1]। इस स्थापना से कहानी के दो रूप धार्मिक तथा मनोरंजन स्पष्ट हो जाते हैं। श्री गुप्त जी का मत गंभीर है और लोक कहानी के वर्गीकरण की दिशा डाल देता है।

आदिकाल में मनुष्य की प्रेरक दो भावनाएँ रही होंगी धार्मिक भावना तथा भीति की भावना। आदि पुरुष के अधिकांश कार्य आस्था एवं विश्वास से अभिमंडित थे। उसने प्रकृति की क्रियाओं को एक धार्मिक भाव से देखा और उसके प्रति धार्मिक अभिव्यक्ति दी। दूसरे पक्ष में उस पुराने युग में जब मनुष्य जंगलों में रहता था उसके पास रहने के लिए कोई स्थान न था। वह शीत के भय एवं हिंसक पशुओं के भय से अग्नि जलाकर रात रात भर सिमटा हुआ उसके पास बैठता था। तभी वह रिक्त क्षणों में अपने मन बहलाव के लिए कुछ वाणी का प्रयोग करता होगा। यह वाणी का प्रयोग ही कहानी का आदि रूप रहा होगा। इस वाणी प्रयोग में उसने अनुभव भी व्यक्त किये होंगे जो भविष्य के लिए उपयोगी एवं शिक्षाप्रद बन गये होंगे। इस प्रकार कहानी का आदि रूप धार्मिक एवं मनोरंजनात्मक तत्वों के ताने-बाने से बुना गया। उसमें प्रच्छन्न रूप से अनुभव, शिक्षा, उपदेश एवं दृष्टांत भी लगा रहा। इस प्रकार लोक-कहानी के तीन ही भेद हो सकते हैं —

१ धार्मिक तत्वों से युक्त कहानियां, जिनमें व्रत या माहात्म्य कथाएँ आयेंगी,
२ मनोरंजनात्मक तत्वों से युक्त तथा
३ उपदेशात्मक तत्व मूलक।

पर यह विभाग त्रुटिरहित होते हुए भी अति संक्षिप्त है जिसमें उतनी स्पष्टता नहीं है जितनी अपेक्षित है। अतः हम हरियाना प्रदेश से प्राप्त लोक-कहानियों के विस्तृत विश्लेषण के लिए उन्हें निम्नलिखित वर्गों में बाँटकर अध्ययन करेंगे। यह वर्गीकरण इस प्रकार है—

१ मनोरंजनात्मक, २ उपदेशात्मक, ३ व्रतात्मक, ४ देवविषयक, ५ पौराणिक, ६ साहस एवं शौर्यपूर्ण, ७ ऐतिहासिक, ८ कौशलपूर्ण, ९ अलौकिकतापूर्ण, १० सामाजिक, ११ बुझौवल, १२ चुटकले, १३ लघुछुट कहानी।

१ शिवसहाय चतुर्वेदी द्वारा संग्रहीत "बुन्देलखण्ड की ग्राम कहानियां" संग्रह की प्रस्तावना जिसे प० कृष्णानंद जी गुप्त ने लिखा है।

२ उपदेशात्मक कहानियाँ

दूसरे प्रकार की कहानियाँ उपदेश प्रधान हैं। ये कथाएँ उस युग का स्मरण कराती हैं, जब विद्या एवं शिक्षा ग्रहण करना अति कठिन था और इन्हीं कथाओं पर जनसाधारण की शिक्षा निर्भर थी। हम पहले कह आये हैं कि सार्थक (शिक्षाप्रद) मनोरंजन ही कहानी की आत्मा है। इस प्रकार मन बहलाव एवं मनोरंजन में भी एक तत्व प्रच्छन्नरूप से विद्यमान रहता है और वह है शिक्षा या उपदेश। प्रत्येक कहानी में जैसे मनोरंजन तत्व रहता है और कहानी को आगे खिसकाता है उसी प्रकार उपदेश भी साथ लगा रहता है। वह उपदेश दृष्टांत रूप में श्रोता के सामने आता है। विनोदशील तत्वों से लिपटा हुआ यह उपदेश श्रोता पर बड़ा गहरा प्रभाव छोड़ता है। आचार्य मम्मट ने काव्य के प्रयोजन बतलाते हुए जो कहा है 'कान्ता सम्यततयोपदेश युज'। यह लोक कथा साहित्य पर पूर्णतया घटता है। यहाँ शिक्षा या उपदेश देने के लिए डाट डपट की जरूरत नहीं है। सुनिए और सीखिए बस यही कहानी है।

जैसे कोई कहानी (व्रतात्मक कहानियों को छोड़कर) ऐसी नहीं होती जो मनोरंजन न करती हो उसी प्रकार कोई ऐसी भी लोक कहानी नहीं होती जो उपदेश न देती हो। पशु पक्षी, जीव जन्तुओं की सभी कहानियाँ इस विभाग में आयगी। इन्हें अंग्रेजी में फेबिल' (नीतिकथा) कहते हैं। यूरोप में 'ईसप की फेबिल्स या कथाएं' सुप्रसिद्ध हैं। हमारे यहाँ इन्हें पंचतंत्रीय कहानियाँ कहते हैं। हमारे निजी हरियानी लोक कहानी संग्रह में 'हंस और कौआ' की कहानी बड़ी उपदेशप्रद है। किस प्रकार धूर्त लोग सज्जनों को अपने चंगुल में फँसा लेते हैं। यह शिक्षा इस कहानी से मिलती है। जाटणी की चतुराइ (निजी संग्रह) की कहानी विपत्ति में धैर्य धारण की शिक्षा देता है। अबलाओं के धैर्य एवं साहस का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करती है। 'सिंह पछाड़ गीदड़' (निजी संग्रह) की कहानी भी शिक्षाप्रद है। 'डायन पत्नी' की कहानी में तो विश्वजनीन उपदेश 'जाको राखे साइयाँ मार सके ना कोय' का बड़ा रोचक आदर्श दिखाया गया है। इन कहानियों की विशेषता यह है कि इनके बोल इस प्रकार मन में उतरते हैं कि भुलाए नहीं भूलते।

३ व्रतात्मक कहानियाँ

तीसरे प्रकार की कहानियाँ वे हैं जिन्हें व्रत अथवा महात्म्य की कहानी कहा जायेगा। ये कहानियाँ महिलाओं से सम्बन्धित हैं और इनका प्रचार महिलाओं में ही है। इन कहानियों का उपयोग या तो व्रत की समाप्ति पर

दिखाकर उसके कच्चे तागों की डोर गले म पहन लेती हैं। अनन्त चतुर्दशी के दिन उसे खोला जाता है। जो स्त्रियाँ अनन्त की पूजा करती हैं वे अनन्त चतुर्दशी को पहिले बधे धागे को खोलती हैं और नया धागा पहनती हैं। कथा सुनी जाती है।

४ देव विषयक कहानियाँ

चौथे प्रकार में देव विषयक कहानियाँ आती हैं। इनमें देवताओं को पात्र बनाया जाता है। विशेषता यह है कि देवता भी मानवी रूप में आये हैं। उनके कार्य भी मानवी कार्य जैसे हैं। बस उन पर देवतापने का छाप होता है। 'हनुमान जन्म की कहानी', 'गोतमरिषी और इन्दर महाराज' और "लक्ष्मी बड़ी या भाग्य" आदि (निजी संग्रह) कहानियाँ इस वर्ग म आयेंगी।

पौराणिक कहानियों से इनमें अन्तर यह है कि पौराणिक कहानियों के चरित्रों के विषय म यह विश्वास होता है कि वे कभी जीवित थे। वर्णित पात्रों के निश्चित नाम होते हैं और स्थानों के नाम भी दिये जाते हैं किन्तु इन देव विषयक कहानियों में चरित्र देवत्व से अभिमण्डित रहते हैं। 'भाग्य का खेल' नामक कहानी में बेमाता (विधाता) की सार्वभौमसत्ता का दिग्दर्शन कराया है। उसके आगे रावण जैसे बलशाली सम्राट् भी कुछ नहीं हैं। (यह कहानी राजाराम शास्त्री के संग्रह में दी हुई है।) इस कहानी का रहस्य इन पंक्तियों में है —

> बेहमाता के अक्षर ना टलैं, टलें रावण के खेल।
> रही क्वारी डूमनी, सिर में घाले तेल॥

५ पौराणिक कहानियाँ

पाचवीं कोटि म वे कहानिया आती हैं जिनम पुराणों में वर्णित राजा, महाराजा अथवा किसी पौराणिक चरित्र को लेकर कहानी कही जाती है। ये कहानिया पौराणिक कथा कहलाती हैं। इन कहानियों के चरित्रों में कुछ अलौकिकता का पुट आ जाता है और कुछ अतिरंजना का अंश रहता है। वर्णित पात्रों के नाम दिये जाते हैं। "कृष्ण सुदामा" की कहानी इसी प्रकार की लोक प्रसिद्ध कहानी है। "राजा नल की कथा" (निजी संग्रह) एक पौराणिक वृत्त को लेकर चली है। इसी प्रकार की दूसरी कहानी हमारे संग्रह में 'राजा-रघु की कथा' के नाम से है। इसमें हंस के द्वारा अमरफल देना, राजा रघु की तपस्या की कीर्ति तथा ब्राह्मण को क्षमा करने का वर्णन है।

दिखाकर उसने कच्चे तागों की डोर गले मे पहन लेती हैं। अनन्त चतुर्दशी के दिन उसे खोला जाता है। जो स्त्रियाँ अनन्त की पूजा करती हैं वे अनन्त चतुर्दशी को पहिले बधे धागे को खोलती हैं और नया धागा पहनती हैं। कथा सुना जाती हैं।

४ देव विषयक कहानियाँ

चौथे प्रकार म देव विषयक कहानियाँ आती हैं। इनमे देवताओं को पात्र बनाया जाता है। विशेषता यह है कि देवता भी मानवी रूप में आये हैं। उनके कार्य भी मानवी कार्य जैसे हैं। बस उन पर देवतापने का छाप होती है। 'हनुमान जन्म की कहानी', 'गोतमरिखी और इन्दर महाराज' और "लक्ष्मी बडी या भाग्य" आदि (निजी सग्रह) कहानियाँ इस वर्ग म आयेंगी।

पौराणिक कहानियों से इनमें अन्तर यह है कि पौराणिक कहानियों के चरित्रों के विषय म यह विश्वास होता है कि वे कभी जीवित थे। वर्णित पात्रों के निश्चित नाम होते हैं और स्थानों के नाम भी दिये जाते हैं किन्तु इन देव विषयक कहानियों में चरित्र देवत्व से अभिमण्डित रहते हैं। 'भाग्य का खेल' नामक कहानी में बेमाता (विधाता) की सार्वभौमसत्ता का दिग्दर्शन कराया है। उसके आगे रावण जैसे बलशाली सम्राट् भी कुछ नहीं हैं। (यह कहानी राजाराम शास्त्री के सग्रह में दी हुई है।) इस कहानी का रहस्य इन पक्तियों में है —

बेहमाता के अच्छर ना टलैं, टलैं रावण के खेल।
रही कवारी डूमनी, सिर म घाले तेल॥

५ पौराणिक कहानियाँ

पाचवीं कोटि में वे कहानियाँ आती हैं जिनम पुराणों म वर्णित राजा, महाराजा अथवा किसी पौराणिक चरित्र को लेकर कहानी कही जाती है। ये कहानिया पौराणिक कथा कहलाती हैं। इन कहानियों के चरित्रों में कुछ अलौकिकता का पुट आ जाता है और कुछ अतिरजना का अश रहता है। वर्णित पात्रों के नाम दिये जाते हैं। "कृष्ण सुदामा" की कहानी इसी प्रकार की लोक प्रसिद्ध कहानी है। "राजा नल की कथा" (निजी सग्रह) एक पौराणिक वृत्त को लेकर चली है। इसी प्रकार की दूसरी कहानी हमारे सग्रह में 'राजा रघु की कथा' के नाम से है। इसम हस के द्वारा अमरफल देना, राजा रघु की तपस्या की कीर्ति तथा ब्राह्मण को क्षमा करने का वर्णन है।

"राजा भोज की कहानी—२ जन्मों की" भी एक पौराणिक कहानी है। (निजी संग्रह) लोक प्रसिद्ध "राजा अम्ब की कहानी" और "वीर विक्रमाजीत" की कहानियां अनन्त काल से लोक की वस्तु रही हैं। इनमें व्रत के लिए कष्ट सहन का महत्व अधिक रहती है। राजा अम्ब की कहानी का सार इस दोहे में समाया हुआ है —

> "कित अम्बा कित आमली, कित सरवर कित नीरा
> ज्यों ज्यों पड़ती आपदा, त्यों-त्यों सहे सरीरा।"

वीर विक्रमाजीत का परदुःखभञ्जनहार विशेषण उसके चरित्र की उदात्तता एवं प्रजापालकता का द्योतक है। इन चरित्रों में सामान्य जनता को आदर्श पुरुषों के दर्शन होते हैं।

६ साहस और विक्रम की कहानियाँ

इस प्रकार साहस एवं शौर्य की कहानियों का है। इन कहानियों को "जान जोखों की कहानी" भी कहते हैं। अंग्रेजी में इन्हें "एडवेंचरस् टेल्स्" कहते हैं। इनमें बुद्धि चातुर्य के साथ जान को हथेली पर रखने का साहस प्रदर्शित किया जाता है। इनमें अद्भुत कर्तव्य की प्रधानता होती है। इन कहानियों के पात्र होते हैं—भूत, भूत, डायन और दाने (दानव) आदि। इनका उद्देश्य श्रोताओं में साहस एवं शौर्य भावना भरना होता है। घोर आपत्काल में भय तथा घबराने से नहीं, रुदन एवं विलाप से नहीं अपितु अदम्य साहस से काम चलता है। यह इनका प्रतिपाद्य विषय होता है। ये कहानियां बच्चों के लिए नहीं होतीं। युवकों एवं वीरवटों के स्नायुजाल में रक्त संचार करना इनका उद्देश्य होता है।

हरियाने में उपरोक्त कहानियों का बाहुल्य है। वास्तव में, हरियानी समाज को छिछले रोमांस पसन्द नहीं हैं। हरियाने की प्रत्येक गतिविधि में जीवन है। उनका प्रत्येक कार्य साहस और हिम्मत का प्रतीक है। ऐसे समाज में शौर्य वीर्यपूर्ण कहानियों का प्रचुरता का होना वाञ्छनीय है। "अनचालते राणी" तथा "राणा महकावली (निजी संग्रह) कहानियों में नायक अपने अलौकिक साहस एवं उत्साह से अपनी मनोवाञ्छित नायिका की प्राप्ति करता है। "रानी महकावली" कहानी का कथा पट तो अनेक साहस एवं शौर्यपूर्ण कृत्यों से निर्मित हुआ है। "भूखा की कहानी", "लम्बटकिया की कहानी", तथा "हा हा" की कहानी एक ही कहानी है जो इन नामों से हरियाने में प्रचलित है। नृशंस दानवों के यहां से "फूल" एवं "लाल" (रत्नविशेष) लाना किन्हीं किन्हीं "मां के लालों" का काम है। दाने के प्राइवेट कक्ष में मानव का

यहाँ पर सांगीतकार ईश्वर, पार्वती, सरस्वती और गुरु की वन्दना करके आगे बढ़ता है¹। किसी किसी सांगीत में मंगल वाक्य की भाँति आशा, उपदेश आदि वाक्य भी मिलते हैं। 'सांगीत लाला बनुआरी' में प० कुन्दन लाल जगाधरी वाला नियामी द्वारा प्रयुक्त भरत वाक्य दर्शनीय है —

> नर्म नाज को आज हो यतन करो चाहे कोइ।
> भगत सुना दै बोलत ब्राह्मण कुन्दन गौड़ ॥

साहित्यिक नाटकों की अन्य भूलभुलैया—अंक, अंकावतार, विष्कम्भक आदि इन सांगीतों में देखने को नहीं मिलतीं।

सांग को जमाने के लिए साज-सज्जा युक्त किसी रंगमंच की आवश्यकता नहीं होती। यह तो खुले चौड़े में तख्त बिछाकर किया दिया छिगार दुकान के अपवित पात्रों के द्वारा खेल लिया जाता है। कभी-कभी कोई सांग मंडली यथासमय और यथास्थान जवनिका आदि का भी प्रबन्ध कर लेती है, परन्तु लोक नाट्य के लिए इसकी अनिवार्यता नहीं है। अपनी छोटी सी स्टेज पर ही सब अभिनेता—पुरुष-स्त्री—बैठे रहते हैं। प्रवेश, प्रस्थान संवाद, गाना, नाचना आदि सब रंगमंच पर दर्शकों के सामने खुले मैदान में होता रहता है। जिसकी बारी आई उसने उठकर अपना पाठ अदा कर दिया। जनाना पाट जनाने वेष में पुरुष ही निष्पन्न करते हैं।

विषय की दृष्टि से यदि 'सांगीत' पर विचार करें तो इनमें धार्मिक, पौराणिक एवं ऐतिहासिक आख्यानों से लेकर तिलस्मी ऐयारी और आधुनिक सस्ते घृणित, छिछले रसाभास मूलक प्रेम व्यापारों तक का वर्णन देखने को मिलेगा। एक ओर, पुण्य श्लोक राजा नल के पावन चरित्र का वर्णन है अथवा गोपीचंद भरथरी (भर्तृहरि) की अनन्य त्यागवृत्ति² के दर्शन होते हैं तथा पुराणमन के उदात्त एवं अलौकिक शिष्टाचार की उद्भावना है तो दूसरी ओर "ताड़ तोड़ और नाली फाड़" और 'लालोचमन' के नग्न

---

१ 'सांगीत सम्भाला पनिहारिया (कौरी)' —चौ० चन्दनसिंह।

२ स्वांग राजा गोपीचन्द —

चौबोला—लगे बदन में तीर, ये मैं माता ने समझाया।
कचन काया जली पिता की, ये दृष्टान्त बताया ॥
अगम निगम का ज्ञान सुना के, तख्तराज छुटवाया।
ए गुरुदेव! करो किरपा, मैं जोग लेन को आया ॥

अशिष्ट एवं जघन्य अश्लील प्रेमालापों[1] का चित्रण है। ऐसे सांगों में गाँवों का वह आरण्यक निश्छल वातावरण जो अपनी पावनता एवं निरीहता के लिए प्रसिद्ध है वहां निम्न, घिनौना और गर्हित (निन्द्य) चित्रित किया गया है। यहाँ इतना और देख लेना चाहिए कि सांग की परम्परा के आदि में उनकी यह दशा न थी। यह तो आज की 'नई रोशनी' का परिणाम है और उस हीन मनोवृत्ति के परितोष के लिए इन सांगियों की प्रतिभा प्रभा अवाञ्छनीय दिशा में पदार्पण करने लगी है। आशिक माशूकों के बेढंगे बयान और विलासप्रियता की भूखी भावना ने कविता कामिनी के कलित कलेवर को कलुषित कर दिया है।

इस दृष्टि से जब इन सांगों पर दृष्टिपात करते हैं। तो यही प्रतीत होता है कि आरम्भ के कुछ सांगों को—पुरजन पुरजनी (प० लक्ष्मीकृत), हरिश्चन्द्र (प० सरूपचन्द कृत) तथा लीला सेठानी (प० नेतराम कृत) आदि को—छोड़ कर जिनमें जीवन के उदात्त एवं विशुद्ध पक्ष की झांकी मिलती है प्रायः सभी सांग नग्न शृंगार की मंजूषाएं हैं। इतना खुला शृंगारिक एवं विलासिता मय वर्णन इनमें होने लगा है कि लज्जा भी लजा जाती है। इसका बड़ा अस्वस्थ प्रभाव अबोध बालबालिकाओं पर पड़ता है। कई स्थानों पर नव युवतियां इन सांगियों की बांकी अदा पर फिदा होकर अपने घरबार को छोड़ गई हैं। यह सांगों की इस विलासिता का ही परिणाम है। यहां पर कतिपय नाटककार या सांगीतकार यह आपत्ति उठायेंगे कि बिना शृंगार रस का पुट दिये नाटक अथवा सांग सरस एवं आकर्षक बनाये ही नहीं जा सकते। बात कुछ सीमा तक ठीक भी है और यह बात भी सत्य है कि शृंगार सर्व प्रिय रस है किन्तु औचित्य इसे और भी आकर्षक एवं सहृदय संवेद्य बना देगा क्योंकि संयम में एक विलक्षण शक्ति होती है।

---

१ (क) सांगीत लीलोचमन (धनपत कृत) —
चन्द्रमा सी शान हूर की सड़क बीच खड़ा देखो।
मध जोबन की ठीक डलें ज्यूं उडती फूलझड़ी देखो
मुरगाइ की चाल चाल के पाव धरे थी डट डट के
नैन कटार जुलम इशारा हूर करे थी हट हट के।

(ख) सांगीत लीलोचमन (राम किसन व्यास कृत) —
सुण सैण्डल आली गोरी नीचै नै नजर करै
तू जमीदार की छोरी, तेरी मन्नै पोरी-पोरी कट खाना प्यार करै
तेरी दो पुतली काली छोरों पै मार करैं रे

आ हरियानी सांगीत का इतिहास

किसी साहित्य का इतिहास प्रधानतया दो प्रकार से लिखा जाता है। एक कालक्रम की दृष्टि से, दूसरे विषय की दृष्टि से। आजकल कालक्रम से इतिहास लिखने की प्रथा ही विशेष प्रचलित है और है भी यह वैज्ञानिक। इस परम्परा के अनुसार आलोच्य साहित्य के उदय, विकास आदि के मोल बिन्दुओं की खोज की जाती है और उसका अध्ययन किया जाता है। इतिहास की एक शैली का उदाहरण प० रामचन्द्र जी शुक्ल का 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' है। दूसरी शैली विषयक्रम से इतिहास लिखने की है। इसमें साहित्य के विभिन्न अंगों जैसे पद्य, गद्य और रूपक, रीति एव अलकार आदि का क्रमबद्ध इतिहास होता है। महापंडित कीथ के द्वारा लिखा गया 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' इसका सुन्दर उदाहरण है। हिन्दी में डा० हरदेव बाहरी का "हिन्दी काव्य शैली का विकास" इस दिशा की अच्छी पुस्तक है। विशिष्ट कवियों या लेखकों के नाम से आलोच्य साहित्य को बाट कर अध्ययन करने की एक नूतन प्रथा भी प्रचार पा रही है। हडसन का "अंग्रेजी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास" इस शैली से लिखा गया है। इस प्रणाली में कवियों के नामों पर युग निर्धारित किये जाते हैं। यथा 'एज आफ' शेक्सपीयर, मिल्टन युग, टेनिसन युग आदि।

साग साहित्य का इतिहास प्रस्तुत करने में हम प्रथम शैली का अनुगमन नहीं कर सकते क्योंकि लोक-रंगमंच का इतिहास टटोलते समय हमें साग, स्वाग या नौटकी की जन्म-तिथियां नहीं मिल सकी हैं। अतः समय के निश्चय के अभाव में किस प्रकार काल विभाजन किया जाये, समझ में आनेवाली बात नहीं है। दूसरी प्रणाली विषय के एक होने के कारण कार्य में नहीं लाई जा सकती। यह शैली तभी सम्भव है यदि आलोच्य विषय में कई शैलियां गद्य, पद्य, नाटक आदि हों। यहां केवल नाटक ही एक मात्र विषय है। तीसरी प्रणाली अवश्य ही हमें सहायक सिद्ध होगी।

हरियानी साग का इतिहास खोजते समय प० दीपचन्द ऐसे सागी हैं जिन्हें हम युग प्रवर्तक के नाम से पुकार सकते हैं। इनके द्वारा सागों में एक नया मोड़ आया, एक नई दिशा मिली और इस साहित्य ने एक नई करवट बदली। अतः प० दीपचन्द को हम साग साहित्य के इतिहास का मध्यबिन्दु मानेंगे और इनके नाम पर युग स्थापित करेंगे। इस प्रकार समस्त हरियानी साग साहित्य को तीन भागों में बाटा जा सकता है —

१. पूर्व दीपचन्द युग

अशिष्ट एव जघन्य अश्लील प्रेमालापों¹ का चित्रण है। ऐसे सांगों में गाँवों का वह आरण्यक निश्छल वातावरण जो अपनी पावनता एव निरीहता के लिए प्रसिद्ध है वहां निम्न, घिनौना और गर्हित (निंद्य) चित्रित किया गया है। यहाँ इतना और देख लेना चाहिए कि सांग की परम्परा के आदि म उनकी यह दशा न थी। यह तो आज की 'नई रोशनी' का परिणाम है और उसी हीन मनोवृत्ति के परितोष के लिए इन सांगियों की प्रतिभा प्रभा अवाञ्छनीय दिशा में पदार्पण करने लगी है। आशिक माशूकों के बेढंगे बयान और विलासप्रियता की भूठी भावना ने कविता कामिनी के कलित कलेवर को कलुषित कर दिया है।

इस दृष्टि से जब इन सांगों पर दृष्टिपात करते हैं। तो यही प्रतीत होता है कि आरम्भ के कुछ सांगों को—पुरजन पुरजनी (प० लक्ष्मीकृत), हरिश्चन्द्र (प० सरूपचन्द कृत) तथा लाला सेठानी (प० नेतराम कृत) आदि को—छोड़ कर जिनमें जीवन के उदात्त एव विशुद्ध पक्ष की झांकी मिलती है प्राय सभी सांग नग्न शृंगार की मञ्जूषाएं हैं। इतना खुला शृंगारिक एव विलासिता-मय वर्णन इनमें होने लगा है कि लज्जा भी लजा जाती है। इसका बड़ा अस्वस्थ प्रभाव अबोध बाल-बालिकाओं पर पड़ता है। कई स्थानों पर नव युवतियां इन सांगियों की बांकी अदा पर फिदा होकर अपने घरबार को छोड़ गई हैं। यह सांगों की इस विलासिता का ही परिणाम है। यहां पर कतिपय नाटककार या सांगीतकार यह आपत्ति उठायेंगे कि बिना शृंगार रस का पुट दिये नाटक अथवा सांग सरस एव आकर्षक बनाये ही नहीं जा सकते। बात कुछ सीमा तक ठीक भी है और यह बात भी सत्य है कि शृंगार सर्व-प्रिय रस है किन्तु औचित्य इसे और भी आकर्षक एव सहृदय संवेद्य बना देगा क्योंकि संयम म एक विलक्षण शक्ति होती है।

---

१ (क) सांगीत लीलोचमन (धनपत कृत) —

चन्द्रमा सी शान हूर की सड़क बीच खड़ी देखी।
मध जोबन की ठीक अलें ज्यू उठती फूलझड़ी देखी
मुरगाई की ढाल चाल के पाव धरै थी हट ज्ट के
नैन कटार जुलम इशारा हूर करै थी हट हट के।

(ख) सांगीत लीलोचमन (राम किसन व्यास कृत) —

सुण सैयन्ल आली गोरी जीवै नै नजर करै
तू जमादार की छोरी, तेरी झमकै पोरी-पोरी कट खाना ल्योर सेरै
तेरी दो पुतली काली छोरों पै मार करै रे

अभिनय उन्होंने किया। यह साग उस समय के अभिनीत सांगों से, जो अधिकतः भजन होते थे और अधिकतर सांग, अपना इक उच्च कोटि का रहा था।

इसके पीछे, पं० दीपचन्द (सेरी खाण्डा निवासी) का प्रतिभा प्रभाकर सांग गगन में छा गया और उडगण अस्त हो गये। पं० दीपचन्द के मंद गंभीर स्वर को जिन्होंने सुना है वे आज भी उनका प्रभाव शिरसा स्वीकार करते हैं। 'प्याले की प्यास' का चमत्कारी वर्णन निम्न पंक्तियों में हुआ है —

> टुक मा नीर पिला दे और घाल मेरे घट्टे में,
> घरे तू मने धरा की दीकरे, तने जनम लिया टोटे में,
> तू मेरा माथ होवले रै, दामण सडजा दूधूं धोट्टे में।
> टुक मा नीर पिला दे और घाल मेरे घट्टे में।

दीपचन्द के सांग यूरोपीय प्रथम महायुद्ध के समय अपने यौवन पर थे। उन दिनों दीपचन्द हरियाने का प्रमुख गायक था। वास्तव में उसके कंठ में नैटक्र राग बड़ा प्रभावशाली बन जाता था।

दीपचन्द के गान का प्रभाव अचूक होता था। कथन की इसी प्रभावोत्पादकता को स्वीकार करके भारत सरकार ने उसे भरती के कार्य में ले लिया था। हरियाने के जाटों ने जो बड़े निडर और निर्भीक हैं और सदा त्यागी रहे हैं, सेना में भरती होना नहीं चाहा। परन्तु सरकार को हरियाना प्रदेश जैसे बहादुर वीर सैनिकों की आवश्यकता थी। उन्हें किस प्रकार भरती के लिए प्रोत्साहित किया जाये यही समस्या थी। उसी बात का बीड़ा पं० दीपचन्द ने उठाया। मनुस्मृति साक्षी है कि यहाँ की जनता सदा से सेना के हरावला (अग्रभाग) में रहती रही है[1]। हरियाने के जाटों की निर्भीकता एक उक्ति में इस प्रकार आकर बैठी है —

> "आप्पी बोया आप ही खात हैं, नाहा दें किसी को दाणा।
> बागड़ देस मत जाइयो या सै देस हरियाणा।"

---

1 कुरुक्षेत्रांश्च मत्स्यांश्च पञ्चालान् शूरसेनजान्।
दीर्घाँल्लघूंश्चैव नरानग्रानीकेषु योजयेत्॥

मनुस्मृति अ० ७ श्लोक १९३

कुरुक्षेत्र, मत्स्यदेश, पंचालदेश तथा शूरसेन देश के विपुलकाय और फुर्तीले सैनिकों को भीषण आक्रमण करने के कारण सेना के अग्रभाग में रखना चाहिए।

२ दीपचन्द युग
३ उत्तर दीपचन्द युग ।

एक दूसरी रीति यह भी हो सकती है कि हम समस्त उपलब्ध सांग साहित्य को उसकी अवस्थाओं में बाँट लें। अवस्था विशेष में जो प्रवृत्ति विशेष रही है उसी के अनुसार उस सामग्री को एक अवस्था का नाम दें। दूसरी अवस्था को दूसरा नाम दिया जाये। इस प्रकार हमारे विभाजन की रूप रेखा यह होगी —

१ प्रथमावस्था
२ द्वितीयावस्था
३ तृतीयावस्था (अंतिमावस्था)।

पीछे हमने देखा है कि लोक रंगमंच के आदि युग में इसके दो रूप थे, एक कीर्तन का रूप और दूसरा नौटंकी का रूप। कीर्तन का रूप ही आगे चलकर रासलीला के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। उसी से कुछ प्रवृत्ति सांग ने ली। यह बात पीछे कही जा चुकी है। परन्तु हरियाने के सांगों के इतिहास पर विचार करते समय इस प्रदेश में व्याप्त भजनीक मंडलियों के स्वरूप को भी देख लेना होगा। विशेष अध्ययन इस बात का साक्षी है कि हरियाना का सांगीत अपने आदि रूप में भजनीक मंडली का ऋणी है। हरियाने के आधुनिक सांगों के प्रतिष्ठापक प० दीपचंद से पहिले जो दो सांगी—रामलाल खटीक (सोनीपत) और प० नेतराम (अरमापला निवासी) हुए हैं वे आदि में भजनीक थे और पश्चात् को सांगी बने। उनके पास वाद्य-यन्त्र—सारंगी (एक तारा) ढोलक और खरताल होती थीं। खड़े खड़े गाते थे। भजनीकों का स्वरूप था।

पंडित नेतराम जी जटाधारी, बड़े भजनानंदी और कथावाचक थे। उनके विषय में यह बात कही जाती है कि वे किसी गांव में भगवद् कथा कहा करते थे। अनेक लोग कथा सुनने आते थे। उन्हीं दिनों उस ग्राम में एक प० किशनलाल (रेवड़ी, मेरठ जिला, उत्तर प्रदेश निवासी) सांगी आया और उसने अपने सांग का प्रदर्शन किया। सांग का जनता पर ऐसा जादू चढ़ा कि कथा में कतिपय वृद्ध भक्तों के अतिरिक्त कोई न आता। दक्षिणा के लाले पड़ गये। इस घटना से पंडित जी को बड़ी खिन्नता हुई और वे बड़े नाराज हुए। बस, उन्होंने कथा को अंतिम प्रणाम किया और अपनी प्रतिभा रमा को सांगदेवी की भेंट कर दिया। इस प्रकार उनकी सांग सुलभ प्रतिभा का उन्मेष हुआ। 'लाला सेठानी' के खारठ (सांग) का प्रथम सफल

अभिनय उद्घाटित किया। यह सांग उस समय के अभिनीत सांगों से, जो अश्लील भजन होते थे और अनैतिक सांग, अपेक्षाकृत उच्च कोटि का रहा था।

इसके पीछे, प० दीपचंद (मेरी गाड़ा निरागी) का प्रतिभा प्रभाकर सांग गगन में छा गया और उडगण अस्त हो गये। प० दीपचंद के मधुर स्वर को जिन्होंने सुना है वे आज भी उनका प्रभाव जिसका स्वीकार करते हैं। 'प्यासे का प्यास' का रोमांचकारी वर्णन निम्न पंक्तियों में हुआ है —

टुक सा नीर पिला दे और घाल मेरे घट्टे में,
मरे ना भले घरां की शीश्ने, न ने जनम लिया टोल्टे में,
न मेरा माथ होलने रै, सम्मत मइया दूँ घोट्टे में।
टुक सा नीर पिला दे और घाल मेरे घट्टे में।

दीपचंद ने सांग यारोशाय प्रथम महायुद्ध के समय अपने यौवन पर थे। उन दिनों दीपचंद हरियाने का प्रमुख गायक था। वास्तव में उसके कंठ में बैठकर राग बड़ा प्रभावशाली बन जाता था।

दीपचंद के गीत का प्रभाव अचूक होता था। कथन की इसी प्रभावोत्पादकता को स्वीकार करके भारत सरकार ने उसे भरती के कार्य में ले लिया था। हरियाने के जाटों ने जो बड़े निडर और निर्भीक हैं और सदा आगे रहे हैं, सेना में भरती होना नहीं चाहा। परन्तु सरकार को हरियाना प्रदेश जैसे बहादुर वीर सैनिकों की आवश्यकता थी। उन्हें किस प्रकार भरती के लिए प्रोत्साहित किया जाये यही समस्या थी। उसी बात का बीड़ा प० दीपचंद ने उठाया। मनुस्मृति साक्षी है कि यहाँ की जनता सदा से सेना के हरावलों (अग्रभाग) में रहती रही है[1]। हरियाने के जाटों की निर्भीकता एक उक्ति में इस प्रकार आकर बैठी है —

"आप्पा सोया आप ही रात हैं, नाहा दें किसी को दाणा।
धागड़ देस मत जाणियो या से देस हरियाणा।"

---

१ कुरुक्षेत्रांश्च मत्स्यांश्च पंचालान् शूरसेनजान्।
दीर्घाल्लघूंश्चैव नरानग्रानीकेषु योजयेत्॥

मनुस्मृति अ० ७ श्लोक १९३

कुरुक्षेत्र, मत्स्यदेश, पंचालदेश तथा शूरसेन देश के विपुलकाय और फुर्तीले सैनिकों को भीषण आक्रमण करने के कारण सेना के अग्रभाग में रखना चाहिए।

२ दीपचन्द युग
३ उत्तर दीपचन्द युग।

एक दूसरी रीति यह भी हो सकती है कि हम समस्त उपलब्ध साग साहित्य को उसकी अवस्थाओं में बाट लें। अवस्था विशेष में जो प्रवृति विशेष रही है उसी के अनुसार उस सामग्री का एक अवस्था का नाम दें। दूसरी अवस्था को दूसरा नाम दिया जाये। इस प्रकार हमारे विभाजन की रूप रेखा यह होगी —

१ प्रथमावस्था
२ द्वितीयावस्था
३ तृतीयावस्था (अंतिमावस्था)।

पीछे हमने देखा है कि लोक रगमच ने आदि यग म इसने दो रूप थे, एक कीतन का रूप और दूसरा नौटकी का रूप। कीर्तन का रूप ही आगे चलकर रासलीला के रूप म प्रतिष्ठित हुआ। उसी से कुछ प्रवृत्ति साग ने ली। यह बात पीछे कही जा चुकी है। परन्तु हरियाने के सागों के इतिहास पर विचार करते समय इस प्रदेश में व्याप्त भजनीक मडलियों के स्वरूप को भी देख लेना होगा। विशेष अध्ययन इस बात का साक्षी है कि हरियाना का सागीत अपने आदि रूप में भजनीक मडली का ऋणी है। हरियाने के आधुनिक सागों के प्रतिष्ठापक प० दीपचद से पहिले जो दो सागी—रामलाल खटीक (सौनीपत) और प० नेताराम (असमापला निवासी) हुए हैं वे आदि म भजनीक थे और पश्चात् को सागी बने। उनके पास वाद्य-यन्त्र—सारगी एक तारा) ढोलक और खरताल होती थी। खड़े खड़े गाते थे। भजनीकों का स्वरूप था।

पडित नेतराम जी जगाधारी, बड़े भजनानदी और कथावाचक थे। उनके विषय में यह बात कही जाती है कि वे किसी गाव म भगवद् कथा कहा करते थे। अनेक लोग कथा सुनने आते थे। उन्हीं दिनों उस ग्राम में एक प० किशनलाल (रेवड़ी, मेरठ जिला, उत्तर प्रदेश निवासी) सागी आया और उसने अपने साग का प्रदर्शन किया। साग का जनता पर ऐसा जादू चढ़ा कि कथा में कतिपय वृद्ध भक्तों के अतिरिक्त कोई न आता। दक्षिणा के लाले पड़ गये। इस घटना से पडित जी को बड़ी खिन्नता हुई और वे बड़े निराश हुए। बस, उन्होंने कथा को अंतिम प्रणाम किया और अपनी प्रतिभा प्रभा को सागदेवी की भेंट कर दिया। इस प्रकार उनकी साग सुलभ प्रतिभा का उन्मेष हुआ। 'शीला सेठानी' व सोरठ (साग) का प्रथम सफल

अभिनय उन्होंने किया। यह सांग उस समय के अभिनीत सांगों में, जो अश्लील भजन होते थे और अश्लील सांग, सबसे उच्च कोटि का रहा था।

इसके पीछे, प० दीपचन्द (सेरी खाण्डा निवासी) का प्रतिभा प्रभाकर सांग गगन में छा गया और उडगण अस्त हो गये। प० दीपचन्द के मधुर गम्भीर स्वर को जिन्होंने सुना है वे आज भी उनका प्रभाव विशेष स्वीकार करते हैं। 'प्यासे की प्यास' का रोमांचकारी वर्णन निम्न पंक्तियों में हुआ है —

टुक सा नीर पिला दे और घाल मेरे घड़े में,
अरे तू भले घरां की दीखै, कन्हे जनम लिया टोटड़े में,
तू मेरा साथ होवनै दे, सम्पत मरज्या क्यूँ घोटड़े में।
टुक सा नीर पिला दे और घाल मेरे घड़े में।

दीपचन्द के सांग भारतीय प्रथम महायुद्ध के समय अपने यौवन पर थे। उन दिनों दीपचन्द हरियाने का प्रमुख गायक था। चालन में उसके कंठ से निकलकर राग बड़ा प्रभावशाली बन जाता था।

दीपचन्द के गीत का प्रभाव अचूक होता था। कथन की इसी प्रभावोत्पादकता को स्वीकार करके भारत सरकार ने उसे भरती के काम में ले लिया था। हरियाने के जाट जो बड़े निडर और निर्भीक हैं और सदा वागी रहे हैं, सेना में भरती होना नहीं चाहते। परन्तु सरकार को हरियाना प्रदेश जैसे बहादुर वीर सैनिकों की आवश्यकता थी। उन्हें किस प्रकार भरती के लिए प्रोत्साहित किया जाय यह समस्या थी। उसी बात का बीड़ा प० दीपचन्द ने उठाया। मनुस्मृति साक्षी है कि यहाँ की जनता सदा से सेना के हरावली (अग्रभाग) में रहती रही है[1]। हरियाने के जाटों की निर्भीकता एक उक्ति में इस प्रकार आकर बैठी है —

"आप्पी थोथा आप ही खात हैं, नाहर में किसी को दाखा।
बागड़ देस मत आइयो या सै देस हरियाणा।"

---

१ कुरुक्षेत्रांश्च मत्स्यांश्च पञ्चालान् शूरसेनजान्।
दीर्घाँल्लघूंश्चैव नरानग्रानीकेषु योजयेत्॥

मनुस्मृति अ० ७ श्लोक १९३

कुरुक्षेत्र, मत्स्यदेश, पञ्चालदेश तथा शूरसेन देश के विपुलकाय और फुर्तीले सैनिकों को भीषण आक्रमण करने के कारण सेना के अग्रभाग में रखना चाहिए।

२ दीपचन्द युग
३ उत्तर दीपचन्द युग।

एक दूसरी रीति यह भी हो सकती है कि हम समस्त उपलब्ध साग साहित्य को उसकी अवस्थाओं में बाट लें। अवस्था विशेष में जो प्रवृत्ति विशेष रही है उसी के अनुसार उस सामग्री को एक अवस्था का नाम दें। दूसरी अवस्था को दूसरा नाम दिया जाये। इस प्रकार हमारे विभाजन की रूप रेखा यह होगा —

१ प्रथमावस्था
२ द्वितीयावस्था
३ तृतीयावस्था (अंतिमावस्था)।

पीछे हमने देखा है कि लोक रगमच के आदि युग में इसके दो रूप थे, एक कीर्तन का रूप और दूसरा मौटकी का रूप। कीर्तन का रूप ही आगे चलकर रासलीला के रूप म प्रतिष्ठित हुआ। उसी से कुछ प्रवृत्ति साग ने ली। यह बात पीछे कही जा चुकी है। परन्तु हरियाने के सागों के इतिहास पर विचार करते समय इस प्रदेश में स्यास भजनीक मडलियों के स्वरूप को भी देख लेना होगा। विशेष अध्ययन इस बात का साक्षी है कि हरियाना का सागीत अपने आदि रूप में भजनीक मडली का ऋणी है। हरियाने के आधुनिक सागों के प्रतिष्ठापक प० दीपचद से पहिले जो दो सागी—रामलाल खटीक (सोनीपत) और प० नेताराम (अस्मापला निवासी) हुए हैं वे आदि म भजनीक थे और पश्चात् को सागी बने। उनके पास वाद्य-यन्त्र—सारंगी एक तारा) ढोलक और खरताल होती थीं। खड़े खड़े गाते थे। भजनीकों का स्वरूप था।

पडित नेतराम जी जगाधारी, बड़े भजनानंदी और कथावाचक थे। उनके विषय म यह बात कही जाती है कि वे किसी गाव में भगवद् कथा कहा करते थे। अनेक लोग कथा सुनने आते थे। उन्हीं दिनों उस ग्राम में एक प० किशनलाल (रेवड़ी, मेरठ जिला, उत्तर प्रदेश निवासी) सागी आया और उसने अपने साग का प्रदर्शन किया। साग का जनता पर ऐसा जादू चढा कि कथा में कतिपय वृद्ध भक्तों के अतिरिक्त कोई न आता। दक्षिणा के लाले पड़ गये। इस घटना से पडित जी को बड़ी खिन्नता हुई और वे बड़े निराश हुए। बस, उन्होंने कथा को अंतिम प्रणाम किया और अपनी प्रतिभा प्रभा को सागदेवी की भेंट कर दिया। इस प्रकार उनकी साग सुलभ प्रतिभा का उन्मेष हुआ। 'लाला सेठानी' के सारट (साग) का प्रथम सफल

अभिनय उन्होंने किया। यह सांग उस समय के अभिनीत सांगों में, बड़े अद्भुत मनन हुये थे और अद्भुत सांग, अपेक्षाकृत उच्च कोटि का रहा था।

इसके पीछे, प० दीपचन्द (मेरी माता निरासा) का प्रतिभा प्रभाकर सांग गगन में छा गया और लखमीचन्द अस्त हो गये। प० दीपचन्द के मधुर स्वर को जिन्होंने सुना है वे आज भी उनका प्रभाव सिरसा स्वीकार करते हैं। 'प्यारे का प्यार' का रोमांचकारी बयान निम्न पंक्तियों में हुआ है —

टुक सा नीर पिला दे और प्यास मेरे कण्ठ में,
मरे त भले घरा का ढीकरी, मन्ने जनम दिया टोटर में,
त मेरा साथ छोड़ने है, झाम्मण मइया दूर्यूं घोटे में।
टुक सा नीर पिला द और प्यास मेरे कण्ठे में।

दीपचन्द ने सांग परम्परा प्रथम महायुद्ध के समय अपने यौवन पर थे। उन दिनों दीपचन्द हरियाने का प्रमुख गायक था। वास्तव में उसके कण्ठ में नैसर्गिक राग बड़ा प्रभावशाली बन जाता था।

दीपचन्द के गात का प्रभाव अचूक होता था। कथन की इसी प्रभावोत्पादकता को स्वीकार करके भारत सरकार ने उसे भरती के काम में ले लिया था। हरियाने के जाटों ने जो वह निडर और निर्भीक हैं और सच्चे वागी रहे हैं, सेना में भरती होना नहीं चाहा। परन्तु सरकार को हरियाना प्रदेश जैसे बहादुर वीर सैनिकों की आवश्यकता थी। उन्हें किस प्रकार भरती के लिए प्रोत्साहित किया जाये यही समस्या थी। उसी बात का बीड़ा प० दीपचन्द ने उठाया। मनुस्मृति साक्षी है कि यहाँ की जनता सदा से सेना के हरावल (अग्रभाग) में रहती रही है[1]। हरियाने के जाटों की निर्भीकता एक उक्ति में इस प्रकार आकर बैठी है —

"अपनी बोया आप ही खात हैं, नाहा ना किसी के दाणा।
बागड़ देस मत नाशियो या से देस हरियाणा।"

---

[1] कुरुक्षेत्रांश्च मत्स्यांश्च पञ्चालान् शूरसेनजान्।
दीर्घाल्लघूंश्चैव नरानग्रानीकेषु योजयेत्॥

मनुस्मृति अ० ७ श्लोक १९३

कुरुक्षेत्र, मत्स्यदेश, पंचालदेश तथा शूरसेन देश के विपुलकाय और फुर्तीले सैनिकों को भीषण आक्रमण करने के कारण सेना के अग्रभाग में रखना चाहिए।

परन्तु प० दीपचन्द के रागबद्ध कथन की प्रभावोत्पादकता के प्रभाव में वे ही बागी जाट मन्त्र-मुग्ध मधुमक्खिकाओं की सदृश धड़ाधड़ फौज में भरती होने लगे। उन पर उसके गाने का बड़ा असर हुआ। यदि यह कहा जाये कि दीपचन्द के गाने हरियाने में 'बिगुल' का काम करते थे तो अत्युक्ति न होगी। दीपचन्द को इस महान् कार्य के लिए लाखों रुपया इनाम मिला और रायसाहब की उपाधि भी मिली। रगरूटी के लिए गाये गये गाने आज भी हरियाणे की जनता को याद हैं —

भरती होलै रै थारे बाहर खड़े रंगरूट,
इस्या इसा रस्ते मध्यम बाग्या,
मिलता फट्या पुराणा, उबा मिलते हैं फुलबूट,
भरती होलै रै थारे रंगरूट।

फुलबूट ही नहीं बिस्कुट का भी बड़ा भारी प्रलोभन प्रस्तुत किया गया है। यहाँ 'रंगरूट' किसी जाति विशेष के युवक के लिए नहीं प्रयुक्त हुआ है। सभी युवक इसके सम्बोध्य हैं।

दीपचंद युग से आगे बढ़ने से पूर्व यह अनुपयुक्त न होगा कि पाठक इस युग की साग विषयक प्रगति का सिंहावलोकन कर लें। इस युग में सांगीय रंगमंच के साधनों में पर्याप्त परिवर्तन हुआ है। जो अभी तक खड़े होकर इकतारा और खरताल से ही काम लेते थे इस दौरे में एक चौकी और मूढा लेकर बैठते थे। नायक मूढा पर और शेष सब नाचे। रानी और बांदी दो नाचनेवाली होती थीं। साज के क्षेत्र में एकतारे के स्थान में सारंगी का प्रयोग बढ़ा। खरताल ज्यों की त्यों रही। इसके अतिरिक्त ढोलक और नक्कारा भी सम्मिलित हो गया। साग इस दौर में अपने वास्तविक रूप में उपस्थित हो गया। प्रभावकारिता के लिए स्त्री और पुरुष का अभिनय होने लगा। साग अब पक्की नकल या स्वांग बन गया। दीपचंद दौर के मुख्य मुख्य सांगी ये हुए हैं —

१ हरदेवा स्वामी	गांव गोरड़
२ बाजेनाई (भगत)	,, ससाणा
३ प्रभु	,, आसन
४. भरतू	,, भैंसरू ब्राह्मणान्
५ हुक्मचंद	,, किसमिनाना (जिला करनाल)
६ लखमीचंद	,, जाटी।

ये सभी सांगी दीपचंद दौर के कहे जाते हैं परन्तु इनमें प० लखमीचंद

बड़े प्रतिभा सम्पन्न गायक हुए हैं। कहा जाता है वे भी महात्मा कबीर की तरह "मसी कागद छूयो नहिं, कलम गही नहीं हाथ।" वाली कोटि के थे। परन्तु उनकी प्रतिभा का प्रस्फुरण तब होता था जब कि वह शारदा का ध्यान कर दत्तावधान होकर बैठते। लखमीचंद बड़े ज्ञानी और वेदान्ती पंडित थे। उनकी रागणी जो ज्ञानपूर्ण हैं वेदांत के उत्कृष्ट नमूने हैं।

रागिणी हरियाने की अपनी निराली विभूति है। इसका उद्गम अज्ञात है। पर इसके वर्तमान रूप का प्रयास श्रेय प० लखमीचंद जी को है। बहुतों का कथन है कि प० लखमी का दिव्य कंठ ही इस राग का जन्मदाता है। परन्तु यह तो सत्य है कि रागणी के नाम के साथ ही प० लखमीचंद की स्मृति हो अवश्य आती है।

घ हरियानी सांगीत में सूफी प्रभाव

प० लखमीचंद जी ने इस क्षेत्र में एक नई दिशा दी। उन्होंने सांग को जो अभी पौराणिक एवं धार्मिक आख्यानों पर आधारित था, एक उन्मुक्त क्षेत्र में ला खड़ा किया। जीवन के साथ उसका सम्बन्ध स्थापित कर दिया। प्रेम और यौवन जो ग्रामीण जीवन की [illegible] विभूतियाँ हैं उनका अच्छा संयोग सांग में देखने को मिला। इस दौर के कई सांगों में सूफी काव्य धारा की प्रवृत्ति मिलती है। स्वप्न में किसी सुन्दरी के दर्शन हो जाने पर उसकी प्राप्ति के प्रयत्न, नाना कष्ट और अन्त में सच्चे प्रेम की पूर्ति की सुखद अवतारणा इनका विषय है। इस प्रकार का एक सांग हमारे सामने है। वह दुलीचंदकृत 'सच्चा माशूक' है। लेखक दुलीचंद गुरु मानसिंह का शिष्य है। इसमें एक सुन्दर प्रेम कथा का वर्णन आया है जिसका संक्षेप नीचे दिया जाता है —

वार्ता

सज्जन पुरुषों को मालूम हो कि श्याम नगर में राजा मुकट राज की लड़की चन्दकोर क्वारी थी और इधर कमलीपुर के बीच में राजा धर्मजीत का लड़का बलवीर सिंह था। एक दिन बलवीर सिंह ने सुपना *देखा तो उस सुपने में उसे चन्दकोर का ख्याल आया कि तीस वर्ष की उमर* में है और अब तक पिता के घर पर क्वारी है और जैसा वह हुस्न रूप में है वैसा कोई खूबसूरत वर उसकी जोड़ी का नहीं मिलता। अब यह लड़के के दिल में समा गया और उस पै इश्क सवार हो गया। अब सुबह होते हो लड़का उसी के ध्यान में पागल सा बन गया। जब यह उसकी राणी ने सुना तो अपने पति से यों कहने लगी :—

जवाब रानी अमरावती का

दोहा— आज सनै के हो गया चेहरे का उतरा रंग।
बालम तों न्यों तो बता क्यों बिगड़ रहा तेरा ढंग ॥

जवाब बलबीरसिंह का रानी से

अरे के कहूँ कहण की ना बात बदन म लग रही आगसी।
इब सबर करूं कितनाक। टोड चिर गई भींव की नाक।
थी मोटी मोटी आख लड़ी मेरे काली नाग सी ॥१॥
जहर चल्या काली नागण का। घाव होग्या तीर लागण का।
रात नै महीना था फागण का इश्क में खेली फाग सी ॥२॥
सनै समझाऊं इरवार। मनै जबतै देख्या दीदार।
हुया मैं घायल बिना हथियार मेरै होगी बैराग सी ॥३॥
मैं सिर पै बिपता ठाऊं। अड़ै डट कै ना भोजन खाऊं।
कहै महताब अड़े तैं जाऊं, मैंने तो दीखे निरभाग सी ॥४॥

जवाब रानी अमरावती का

(काफिया)

निंद तै बुरा हाल तेरा देखा पिया मैं हो री मरणे जोगी।
तेरे जिसके सेल लागगे कोण से हुया दर्द का रोगी।
तेर हाल-हाल में बालम आन के बरू बावल सी होगी।

जवाब बलबीरसिंह का

(काफिया)

हुया मेरे पै इश्क सवार, बता मैं कुणसा जतन करूं।
मनै निंद तै सुपना आया। मेरी दुख पा रही सै काया।
हुया मैं बिना दर्द बेमार अड़े डरता सै बिन बैद मरूं ॥
रात नै लगी जिगर में चोट। सेल मनै लिए छाती पै ओट।
या खिल्या चैत में क्यार यराक मैं मिरगा जाय चरूं ॥

जवाब राणी अमरावती का

हो सनै बरजूं स भरतार मत टोरर यह्ये जमाने की ॥
जित गए तेरे अतर फुलेल। चाल सेना में चौपड़ खेल।
परत्रिया पिय की चेत इज्जत करद आर[१] की ॥

---

१ पर आर की कम।

थान तेरा ऐसा बिगड़ रहा रग। तने आलू भी रानी हो भग।
मेरे जोबन का लिए रग पतग मै वा येच जवानी भी ॥

जवाब बलवीरसिंह का

जब से देखा है सुपना मैं घायल हुआ,
वो है देवी हुस्न की पुजारी हू मैं।
भीक मागूगा उससे वा दगी मुझे,
उसके जोबन का दता, भिखारी हू मैं ॥
सुपना देखे मुझे चार घन्टे हुए,
जब से दुख पा रहा दिल में भारी हूँ मैं।
अब एक है कहू चाहे जान दया,
करता स्याम नगर की त्यारी हूँ मैं।
वो घोड़ी है उसकी सवारी हू मैं,
बन्सरो है वो कृरन मुरारी हू मैं।

दोहा— घायली सी लागी मेरे मले जू जू होगी देर ॥
अब प्यार मन्नीरी हो लिया जीग्या तो मिलूगा फेर ॥

रागनी

रानी रोती छोड़ी चला स्याम नगर का ध्यान ॥
मैं हुन आगे ने बढ़गा। ना लाज भम स गढ़गा।
चाहे मैं तार चढ़ूगा वा खाली पड़ी मे कमान ॥

वार्ता

सब सज्जन पुरुषों को मालूम हो जब कि बलवीर सिंह जगल बियाबान में पहुचा तो उसे एक साधू तप करता दिखाई दिया। अब लड़का साधू को देखकर सोचने लगा कि इस बाबा जी का चेला बण कर स्याम नगर ने चलूँ और वहा जाकर उसके महल का पता लगा कर भीक मागने आऊँगा। अब बलवीर फकीर के पास आया और फकीर बलवार को देखकर कहणे लगा।

जवाब फकीर का

दोहा— कुणसे देस का कवर मै कुणसे देस नै जाय।
बियाबान के बीच म टुक भी दहशत ना खाय ॥

जवाब बलवीर का

दोहा— दम नगर तै छूट्या इब कर जगल म वास।
मैं तरी सरण में आलिया स पूरी कर द आस ॥

जवाब रानी अमरावती का

दोहा— आज तनै के हो गया चेहरे का उतरा रंग।
बालम तों म्यों तो बता क्यों बिगड़ रहा तेरा ढंग ॥

जवाब बलवीरसिंह का रानी से

अरे के कहूं कहण की ना बात बदन में लग रही आगसी।
इब सबर करूं कितनाक। राड़ चिर गई नीबू की फाक।
थी मोटी मोटी आंख लड़ी मेरैं काली नाग सी ॥१॥
जहर चढ़ग्या काली नागण का। घाव होग्या तीर लागण का।
रात नै महीना था फागण का इश्क में खेली फाग सी ॥२॥
तनै समझाऊं हरबार। मनै जबतै देख्या दीदार।
हुया मैं घायल बिना हथियार मेरै होगी बैराग सी ॥३॥
मैं सिर पै चिपता ठाऊं। अई डट के ना भोजन खाऊं।
कहै महताब अड़े सैं जाऊं, मैंने लो बीरो निरभाग सी ॥४॥

जवाब रानी अमरावती का

(काफिया)

निब तै बुरा हाल तेरा देख्या पिया मैं हो री मरणे जोगी।
तेरे कितणे खेल लागगे कोण से हुआ दर्द का रोगी।
तेरे रात रात में बालम आन के यरू बावल सी होगी।

जवाब बलवीरसिंह का

(काफिया)

हुया मेरे पै ईश्क सवार, बता मैं कुणसा जतन करूं।
मनै निब तै सुपना आया। मेरी दुख पा रही सै काया।
हुया मैं बिना दर्द बेमार अई इच्छा तै बिन मौत मरूं ॥
रात नै लगी जिगर में चोट। खेल मनै लिए छाती पै ओट।
था रिस्था चैत में क्यार यतन मैं मिरगा जाय घर ॥

जवाब राणी अमराअती का

हो तनै बरनू स भरतार मत टोकर खइये जमाने की ॥
कित गए तेरे असर पुनीत। चारा सेना ५ चौपड़ खेल।
परग्रिया निय की बेर इन्नत करद आरे[१] की ॥

---

१ एक आर्थी धम।

आज तेरा तेरा बिगड़ रहा हंग। तने गातू पी राती हो भग।
मेरे जोबन का लिए रंग पाग में या पेच सजाये सी ॥

जवाब बलबीरसिंह का

जब से देखा है सुपना में घायल हुआ,
वो है देवी हुस्न की पुजारी हूं मैं।
भीख मांगूगा उससे वो दुर्गा मुख,
उसके जोबन का बना, भिखारी हूं मैं ॥
सुपना देखे मुझे चार पहर हुए,
जब से दुख पा रहा दिल में भारी हूं मैं।
अब एक ही बहू चाह खाय हर,
करता श्याम नगर की त्यारी हूं मैं।
वो जोड़ी है उसकी सवारी हूं मैं,
कल्यारी है वो कृष्ण मुरारी हूं मैं।

दोहा— आगती भी लागी मेरे मने नू नू होली नैर ॥
अब प्यार अमीरी हो तिपा जोग्या सो मिलूगा बैर ॥

रागनी

रायी होवी जोड़ी धरा श्याम नगर का ध्यान ॥
मैं इब जाती ने बन्ना। ना नाज शम में गड़ूगा।
मरदें मैं तीर मन्ना या खाती मही में कमान ॥

वार्ता

सब सज्जन पुरुषों को मालूम हो गया कि बलवीर सिंह जंगल बियावान में पहुंचा तो उसे एक साधू तर करना शिखाड़ लिया। अब लड़का साधू को देखकर सोचने लगा कि इस बात का का भेस धारण कर श्याम नगर ने चलूँ और वहां जाकर उसके महल का पता लगा कर भीख मांगन जाऊँगा। अब बलवार फकीर के पास आया और प्रकार बलबीर को देखकर कहने लगा।

जवाब फकीर का

दोहा— तुम्हें देख का कारण मैं तुमसा नैन से नाम।
बियावान के बीच में दुख की दुष्कर ना जाय ॥

जवाब बलबीर का

दोहा— श्याम नगर है पहुंचना इव कहूं जाय म बाप।
मैं तेरी शरण में आ लिया तू पूरी कर दे आस ॥

मेरी जोग लेख की सला भला तेरा होगा मनै चेला करिए ॥
भग पड रहा अकल मेरी में । चुभगी पैनी थी धार छुरि म ।
मैं आग्या शरण तेरी में नाथ मेरे घाव दूखनै नै भरिए ॥
मैं तेरे तै कान पड़ाऊ । फिर तेरे जैसा बण जाऊं ।
मैं तेरा दास कहाऊं नाथ तू हाथ मेरे सिर पै धरिए ॥
मैं आया घरतै लिकड़ कै । दुख मेरे आग कालजे भड़कै ।
मनै चेला करले बेधड़कै तो मत अपणे दिल म डरिए ॥

वार्ता

सज्जन पुरुषों को मालूम हो कि बलबीर ने घोड़ा और अमीरी बस्तर सब उतार दिए और सतीनाथ का चेला बण कर चल दिया और चन्दकोर के महल म अलख जगाई । चन्दकोर जोगी का सारा हाल बांदी से सुनकर झट फाटक पर आई और जोगी को सूरत देखते ही उस पर आशिक हो गई और दोनों एक दूसरे को देखणे लगे तब चन्दकोर बलबीर से इस तरह कहणे लगी —

जवाब चन्दकोर का

(*काफिया*)

मनै जितने तेरा हाल सुणा से नाथ मेरे आगी कोन्या गात म ।
या मेरे मन म भागी[1] माला जो ले रहा अपणे हाथ में ।
तनै लेणो हो सो मांगले हीरे पन्ने अ जवाहरात मं ।

जवाब जोगी का

दोहा— सुपने में देखा तनै मेरे मन तै लगा उचाट ।
मन हीरे पन्ने छोड़ कै सब तजे राज और पाट ॥

रागनी

जोबन की भीख घाल दे और कुछ लोड़ नहीं से धनकी ॥

तेरा चेहरा ऐसे दमक जाणू कड़की बिजली गगन की ॥

जवाब चन्दकोर का

दोहा— तेरे तै के मे ल्हको[2] मैं साफ कहू सू खोल ।
सास ससर के लेबती निय उठै इश्क की झोल ।

---

1 पसन्द आई । 2 छिपाव, दुराव ।

रागनी

मेरा गोरस दरा गात । मने तो ले चल अपने साथ ।
इस उठके रोज परभात पति तेरी देखू स्याम ने ॥
मने बड़ी-बड़ी विद्या ठाई । जोवन बदग्या बकर कसाई ।
मेरी इस तक ना हुइ सगाई कोऊ मैं किमकी आनँ ॥

जवाब जोगी का

मने लिख्या करद ध्यान चन्दे तँ सुथरा तरी स्यान ।
इस मैं बैठ करूं अस्नान मौली तू यह चुमासे की ॥

रात्रि के पिछले पहर में जोगी चन्दकोर के महल से उतरता है और कोतवाल उसे पकड़ लेता है।

जवाब कोतवाल का
(ग्रपिया)

पर त्रिया जिस का दिल है या यह यहा ने खोना ।
तने करद् मध कद म इस तौं आगी आगी होना ॥

जवाब जोगी का दरोगा से

जो करते सच्ची यारी, वो भौसागर पार उतर जाग ।

प्रात काल जोगी राजा मुकट राय के सम्मुख पेश किया जाता है और उसे प्राण-दंड की सजा सुना दी जाती है।

वार्ता

दूसरे दिन जोगी को फांसी के लिए तैयार करने लगे तो मुकट राज का वजीर जोगी से आकर कहने लगा कि तू कौण से देश का जोगी है और किसका लड़का है तो जोगी बोला कि मैं कमलापुर के राजा धरमीजात का लड़का हूँ और चन्दकोर के इश्क मे फँसकर यहा अपनी मात निशानी पर आ पहुंचा हूँ। इतना सुण कर वजीर बादशाह से कहने लगा कि यह जोगी राजा का लड़का है और चन्दकोर के महल में जाकर उसका धर्म भी बिगाड़ आया है इसलिए इस जोगी का रिश्ता करके चन्दकोर को इसके साथ ब्याह दो। तो सज्जन पुरुषो ! यहा का किस्सा तो यहीं छोड़ा जाता है और अब चन्दकोर के महल का हाल सुनाता हूँ।

जवाब कवि का

दोहा— दिन लिकड़ा पीलो पटी सब रटै राम ससार ।
चन्दकोर भरी इश्क में मरगी थी स्याय कटार ॥

(काफिया)

लडकी ने ख्याल कर्या दिल में इश्क म मरगी होके आधी ।
कमरे में ल्हास पडी चमके थी जाणू चमक कचिया चादी ।
राजा सरहा सत कर रहा था जाकें न्यू रोवण लागी बादी ॥

जवाब बादी का राजा से

राजा चान्दकौर तेरी बेगे वा तै खाय कटारी मरगी हो ॥

जवाब कवि का

सुणा चान्दकौर के मरणे की उस लडके ने गम खागी रै ॥
था होगी पिसतै रहा था डर मैं । जित मारू जाके टक्कर मं ।

मनै तेरे इश्क म फंस के घर पै सोले राणी त्यागी रै ॥
मैं था पीवण ने हो रहा रै । सरबत का था भरा कटोरा रै ।
न्यू रोवै चातर भौंरा रै तो खिली कली मुरझाइ रै ॥

वार्ता

सज्जन पुरुषों का मालूम हो कि जिस वक्त चान्दकौर की ल्हास महलों में पड़ी थी तो उसे देख देख कर सबके मुँह से रोणा ही रोणा लिकड़ रहा था । तब राजा मुकटराज दिल में शान्ति धर कर उन लोगों से कहणे लगा कि अब रोणे से क्या होता है चलकर इसकी गत मुक्त करनी चाहिए । तब इतनी सुणकर मलखीरसिंह राजा स यू कहने लगा —

मैं फसा इश्क में होग्या मेरा नास से ।
या करदे मेरे हवाले जो पडी ल्हास सै ।

राजा का जोर चलया ना वो आ रहा था बीच बचन मैं ।
लडका ल्हास उठाके चल दिया फिर आ पहुँचा था एक बन में ।

जवाब कवि का

अरै चिता चिणी थी राज नै कुछ दुख का हुया ना इलाज ।
आग लगावण लागग्या आया शिवजी महाराज ॥
आया शिवजी महाराज खोस के आग बगादी ।
धरती पै पड़ी ल्हास ऊपर तै लक्डी हटा दी ।

जवाब शिवजी का लडके से

इसकी सारी उमर इब खतम हो चुकी इसको एक जतन से जिवाद्यूगा मैं ।
अगर बाकी तेरी साल चौबीस की जो तू कहदे तो आधे मिलाद्यूगा मैं ।

तो तू आधी उमर अपनी दे दे इसे अभी पहलू में तेरे सुलाए गा मैं।
महताब कहे तेरे यारा बस इसको जल के साथ पिलाएगा मैं।

जवाब बलबीर का

दोहा— मैं जिन्दा इसने न करूँ तनैं समझ राम समान।
उमर नहीं चाहे नाथ तौं मेरी ले ले सारी जान॥
ले लोटा जल का हाथ में लड़की को दिया पिला।
आधी उमर बलबीर की दी चन्द्कोर में मिला॥
दी चन्द्कोर में मिला नार बैठी होगी हर हर करती।
शिवजी गायब होय गए यो तो दुखी थी फिरती फिरती॥
बिछुड़ा जोड़ा फेर मिला खुश होगे आसमान धरती।
चन्द्कोर नैं दण्ड्या आशिक चरणों में धरली सुरती॥
मानसिंह जोगी रहे जिला रोहतक बहादुर गाम।
बणजारा महताब का देहली बीच मुकाम॥

हरियाना के इन लोक किस्सों में लोक-वार्ता के कई तत्व—अद्भुत दैवी शक्ति की उपस्थिति, साधु का धूना और प्रेमियों की आयु का विनिमय आदि बराबर मिलते हैं और ये अलौकिक अंश सदैव कथा के विकास में सहायक सिद्ध होते हैं।

सूफी प्रेम कथाओं में राजा के जोगी होने और प्रेयसी के मंदिर में दर्शन पाने की बात आती है। "सांगीत सच्चा माशूक़" में भी इस परम्परा का पालन हुआ है। यहां नायक बलबीर सिंह जोगी बनता है और नायिका चन्द्कोर से राजमंदिर में भेंट होती है। शिव महाराज का अवतारणा से लेखक ने कथा को सुगत बनाने में विलक्षणता से काम लिया है।

पूरी कथा में सहज स्वाभाविक ग्रामीण वातावरण और ग्रामीण उपमानों की छटा दर्शनीय है —"मनै बोली लागै प्यारी तेरे इस मुँह बटवा से की।" मुँह के लिए बटवा उपमान बड़ा सुन्दर एवं उपयुक्त है।

प० लखमीचंद अपढ थे। उन्होंने अनेक सांग खेले थे परन्तु कोई सांग अपने नाम से छपवाया नहीं। दूसरे दूसरे सांगियों ने उनके गानों की तर्ज पर अपने-अपने गाने रचे हैं और छपवाये भी हैं। आज बाजार में लखमीचन्द की तर्ज पर बनी हुई तो बहुत सी सांगीत की किताबें मिल जाती हैं जो देहाती पुस्तक भंडार, दरीबा कलां, दिल्ली आदि से छपी हैं परन्तु लखमी ने अपनी कोई किताब नहीं छपवाई थी।

जहां पं० लखमीचंद ने रागणी को जन्म दिया, उसमें वैशिष्ट्य भरा, वहां वे उसे अलंकृत करने में भी नहीं चूके हैं। 'भूषन बिनु न बिराजइ कविता, बनिता मित्त' उनका भी मूलमंत्र था। बड़े सुंदर-सुंदर अलंकार उनकी वाणी से निसृत हुए हैं। उपमा के विचार से लखमी को हम हरियाने का कालिदास कहें तो तनिक भी अतिशयोक्ति न होगी। उनकी उपमाओं की सार्थकता एवं पूर्णता श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देती थी और वे चित्र लिखे से रह जाते थे। उनकी उपमाओं में उपमेय और उपमान में एक निराली सादृश्यता है जो बहुत ही कम स्थानों पर देखने को मिलती है। उनकी शब्द-योजना इतनी सुंदर, कल्पना इतनी मार्मिक, काव्य प्रवाह ऐसा अजस्र एवं गतिवान् और चित्रण इतना आकर्षक है कि सहसा मुंह से 'वाह! वाह!' निकल पड़ता है। वह मानवी कवि नहीं, वरन् दैवी कवि जान पड़ता है। उसकी कृतियों के द्वारा कभी हम वात्सल्य में, कभी शृंगार में, कभी करुणा में और कभी अद्भुत रस में अपने को डूबता पाते हैं। परन्तु खेद है कि अब के सांगों में जीवन की उच्चता एवं शालीनता के लिए आग्रह कम हो गया है। एक उद्दाम और नग्न शृंगार ने सांगियों की आंखों पर निर्लज्जता का पर्दा डाल दिया है। इनके सांग जीवन के उपयोगी तत्वों से रहित हैं। एक सस्ते प्रकार के शृङ्गारिक पक्षों पर इनकी दृष्टि है। ग्रामीण भोली भाली जनता पर इसका कुप्रभाव पड़ रहा है। हास्य भी बड़े निम्नकोटि के हैं। इनमें न तो हास्योत्पादक घटना की विचित्रता है, न आश्चर्यजनक संभाषण और न ही मानव जीवन के गम्भीर पक्षों का प्रदर्शन है। इन्हें हम केवल स्थूल आप रूपेन्डल कह सकते हैं। परन्तु यह कह देना भी आवश्यक है कि यह घृणित प्रवृत्ति चाहे प्रबल हो रही हो किन्तु फिर भी कई सांगियों के सांग काफी संतोषजनक हैं।

पं० लखमीचन्द युग के सांगी आज भी अपनी प्रतिभा का प्रकाश फैला रहे हैं। पं० लखमीचन्द इस लोक को छोड़ चुके हैं। इस आधुनिक काल के सांगियों की सूची यह है —

१ पं० मांगेराम	गांव	पुरपाणची
२ सुलतान	,,	रोहद
३ चन्दन	,,	बजीणा
४ जमुआ मीर	,,	सुनारी
५ धनपत	,,	निदाणा
६ पं० राय किशन व्यास	,,	नारनौंद
७ पं० रामानन्द आज़ाद	,,	गोरियां

इस अंतिम दौर में वाद्य यन्त्रों में हारमोनियम भी सम्मिलित हो गया है। अब ६ तख्त होते हैं, शामियाना लगा होता है, तख्त पर आसन और सफेद चादर बिछी होती है। तख्त के ऊपर नायक के लिए कुर्सी भी होती है। इस दौर में नाचने वालों की संख्या बढ़कर ६ हो गई है।

यहां पर उन सांगों के नाम देना भी असामयिक न होगा जो जनता में अपनी प्रतिष्ठा स्थापित कर चुके हैं और जिनमें सामाजिक उच्च भावनाएँ मिलती हैं।

नाम सांगीत	लेखक	गांव
१ सीला सेठानी	प० नेतराम	समाल
२ सारठ	दीपचन्द	सेरीगाएढा
३ बनपर्व	प० सरूपचन्द	दिल्लेर गेढ़ी
४ चार पर्व	,,	,,
५ बैराठ पर्व	,,	,,
६ उत्तान पाद	,,	,,
७ हरिश्चन्द्र	,,	,,
८ नल-दमयन्ती	प० लखमाचन्द	जाटी
९ मीराबाई	,,	,,
१० सत्यवान-सावित्री	,,	,,
११ पुरजन और पुरजनी	,	,,
१२ शाही लकड़हारा	,,	,,
१३ सेठ ताराचन्द	,,	,
१४ पूरन भगत	,,	,,
१५ रूप बसन्त	प० मांगेराम	पुरपाणची
१६ नर सुलतान	चितरू मिस्तरी	सापलागढी
१७ अंजना	प० माईचन्द	बघेल
१८ हकीकत राय	प० मांगेराम	पुरपाणची
१९ मदना देवी	प० रामानन्द आजाद	गोरिया।'

सांगों में, भजनीकों की भांति, ताल की पुनरावृत्ति करने वाले को 'साजदे' या 'टेकिया' कहते हैं। 'साजदों' का सम्मिलित स्वर एक अनुपम समाँ बांध देता है। इस बीच में मुख्य गायक को विश्राम मिल जाता है। दूसरे, श्रोताओं की विचारधारा में विघ्न नहीं आने पाता और रस चर्वण बराबर बना रहता है।

ड हरियानी लोक नाट्य और सिनेमा

हरियाने के लोक-नाट्य का महत्व जान लेने पर तथा साहित्यिक नाटक से अन्तर देख लेने पर सिनेमा से भी इसका अन्तर स्पष्ट कर लेना समीचीन होगा। सिनेमा मनोरंजन के आधुनिक साधनों में से एक है। यह एक वैज्ञानिक देन है। जहा हमारे मनोरंजन के साधनों में ग्रामोफून, रेडियो ने अपना अद्भुत स्थान बना लिया है वहा सिनेमा (चलचित्र) भी हमें अच्छा लगने लगा है। उसकी बहुरूपी वेशभूषा, रङ्गीन दृश्यावलियां, पर्वत, पाताल, समुद्र, समीर के रोमांचकारी दृश्य, दर्शक पर बरबस अपना प्रभाव डालती हैं किन्तु इतना होने पर भी ये सभी वस्तुयें जो चमकती है सोना नहीं हैं। यहां पर हमारे असंस्कृत दर्शक को एक बड़ी भारी कमी अनुभव होती है यह कमी उस अवस्था में तो असह्य हो जाती है जब अवर्णित बातें कल्पना के पर लगाकर उतरती हैं क्योंकि हमारे ग्रामीण दर्शक के पास तीव्र कल्पना शक्ति नहीं है। यह जन्म से सदा प्रकृति के खुले वातावरण में पला है जहां प्रत्येक वस्तु अपनी राम कहानी अपने आप सुनाती है। कल्पना की यह कमी ग्रामीण दर्शक को रस में विष मिलाती प्रतीत होता है। वह ऊब उठता है। उसे तो दीपचन्द, लखमा और मांगेराम व धनपत की वे रागनी पसन्द हैं जहा उसके कल्पना लोक की सहचरी उसके दृष्टि पथ में बैठी अपनी भावभंगिमा एवं हाव भाव से उसे बराबर प्रत्युत्तर देती रहती हो। इसी कारण, नगाड़े पर चोब पड़ी कि ग्रामीण आबाल, वृद्ध पुरुषों के मदमाते दल टिड्डी दल की भांति घरों से निकल पड़ते हैं। सांग का दंगल आरम्भ हो जाता है।

सांग की सिनेमा के ऊपर एक अन्य विशेषता यह है कि सांग में छाया चित्र नहीं होते। अस्थि चर्ममय पुतले अपने मनोभावों को प्रकृति सुलभ रीति से अभिव्यक्त करते हैं। ये गुड़ का स्मरण कराकर मीठा मुँह नहीं कराते। ये तो साक्षात् गुड़ की डली खिलाते हैं। इन ग्रामीण दर्शकों की दृष्टि में लीला चटनिस, सुरैया, नरगिस, मधुबाला, नलिनी जयवंत और कामिनी कौशल आदि के उत्कृष्ट नाटकीय भावाभिव्यंजन का कोई मूल्य नहीं है, यहां तो मूल्य है *निहालदे, मारू, सीला, लीलाचमन, रूपकला* आदि के अकृत्रिम नाट्य कौशल का जो ग्रामीण वातावरण से ओत प्रोत है तथा जो सीधी सादी भाषा में दर्शकों का मनोरंजन करता है और उनकी जेबों से सहसा 'रुपैय्ये', खिसकवा देता है। वस्तुतः इन ग्रामीणों का आन द थर्ड क्लास और फर्स्ट क्लास में बैठा नहीं होता है।

रसानुभूति के लिए सुपरिचित भाषा का होना जरूरी है। वह ऐसी हो

कि श्रोता के भाव तन्तुओं को प्रथम आघात में ही झंकृत कर दे। ये गुण और विशेषताएँ इन सांगों में हैं। इन्हीं कारणों से यह शैली वैज्ञानिक साधनों से सुसज्जित सिनेमा जैसे छाया लोक से बाजी लिए हुए है।

५ हरियानी लोक-नाट्य की विशेषताएँ

हरियाने के लोक-नाट्य का विहंगावलोकन गत पृष्ठों में हुआ है। अब हम इसकी कतिपय विशेषताओं पर दृष्टिपात करेंगे।

१ हरियानी लोक-नाट्य एक समुदाय या समाज की वस्तु है। उसमें व्यक्ति विशेष की कल्पनाओं और अनुभावों की अनुकृति नहीं होती। प० लखमीचंद के हरियानी सांग उनके अपने व्यक्तित्व से पूर्ण नहीं हैं उनमें तो उस 'लखमी' का व्यक्तित्व है जो हरियाने की जनता का प्रतिनिधि है और जो जनता की मूक भावनाओं को मुखरित करता है।

२ हरियानी लोक-नाट्य में लोक-नाट्य की यह विशेषता भी उपस्थित है जिस विशेषता से लोक-नाट्य को गीति नाट्य कहा जाता है। अर्थात् इसमें पद्य की प्रधानता है। हरियानी सांग इसी पद्य प्रसाद से जीवित है और जब तक रागणी की सरसता एवं उपादेयता बनी रहेगी, वे भी जन मनोरंजन करते रहेंगे।

३ हरियानी सांग खुले में होता है। तख्तों का ऊँचा मंच बनाकर उसके चारों ओर बाँसों का घेरा बना लिया जाता है। पट परिवर्तन का विधान नहीं होता। प्रवेश व प्रस्थान आदि सब रंगमंच पर दर्शकों के समक्ष खुले में होते रहते हैं। दर्शक मंडल इस मंच के तीन ओर बैठ जाता है।

४ हरियाने के सांगों में कोई अंक आदि नहीं होते। इसमें दृश्यों का ताँता बंधा रहता है। समस्त कार्य क्रम पूर्वक होते रहते हैं। गीत, नृत्य और बीच में वार्ता भी चलती रहती है।

५ हरियानी सांगों में संकेतों की बहुलता से प्रयोग होता है। इससे यह लाभ होता है कि अनेक बातें बिना शब्दों का जामा पहने ही अभिव्यक्त हो जाती हैं। इस संकेत विधान से कई त्रुटियाँ पूरी हो जाती हैं। सच पूछा जाये तो यही तत्व सांग में अकृत्रिमता भर देता है।

६ हरियानी लोक नाट्य का कोई एकसा रूप नहीं है। इसमें पौराणिक, धार्मिक, ऐतिहासिक सभी कथाएँ प्रदर्शित की जाती हैं और की जा सकती हैं। प्रेम-कथाओं में विरह या संयोग शृंगार के मर्मस्पर्शी अभिनय के बीच

में या तो उपदेशात्मकता के दर्शन होते हैं अथवा सामाजिक त्रुटियों पर आक्षेप किये जाते हैं या अभिजात वर्ग पर व्यंग्य कसे जाते हैं। मास्टर रामानन्द जी की रागणी का एक अंश जिसमें एक सामाजिक चित्र आया है, यहाँ दिया जाता है —

> "तू पलटण में चाल पड्या इब कौण मेरे लाडलडावैगा।
> तेरे आप्पे लाडलडैं जा जिब तेरे घर मनिआडर आयेगा। टेक
> तेरे मनीआडर की नहीं जरूरत मन्नै चाहयते दाम नहीं,
> तो अड़ै गुजारा क्यूकर होगा करने नै कुछ काम नहीं।
> कोइ और मजूरी टोहल्ले यो उज्जड़ होर्या गाम नहीं,
> म्हारे खेती क्यारी पड़ पड़ी रहै, जिब तक बरसे राम नहीं।
> जिते पाणी की जगहा खोल्यागे, कोइ लम्बरदार सतावैगा।
> तेरे आप्पे लाडलडैं जा जिब तेरे घर मनीआडर आयेगा।।"

रागणी की इस एक कली में ग्रामीण पति-पत्नी की कोमल भावनाओं का बड़ा सुन्दर वर्णन हुआ है। किसानों को नम्बरदार की उगाही-पताई की इतनी चिंता है कि वे घरबार छोड़ने के लिए विवश हो जाते हैं।

७ हरियानी सांगों में कथानक प्रायः ढीला ढाला होता है। पूर्वार्द्ध में कथा शिथिल गति से बढ़ती है। उत्तरार्द्ध में यकायक द्रुतगति आ जाती है जो अस्वाभाविक रूप से घटनाओं का ढकेलती चलती है किंतु विशेषता यह भी है कि इस विधान से दर्शकों के मनोरंजन में कोई विघ्न नहीं पड़ता। कथा तो पूर्वतः सुपरिचित होती ही है। बस तृप्ति मिलती है रस-चर्वण से, घटनाओं के सहसा उतार चढ़ाव से। 'निहालदे' के सांग में कथा तो पूर्व ज्ञात है। उसके पात्रों से भी परिचय है। बस आनंद आता है, घटना के घटन में।

८ हरियानी सांग मंडलियों का प्रत्येक सदस्य प्रायः प्रत्येक पात्र का कार्य कर लेता है। यह 'एवर रेडी शैल' की भांति होता है। निर्देशक नाम का कोई पृथक् व्यक्ति नहीं होता। साधारण अभिनेता ही निर्देशक हो जाता है और दूसरे क्षण वही निर्देशक एक अभिनेता। मंडली में एक कौटुम्बिक भावना होती है। कोई व्यक्ति किसी भी उत्तरदायित्व को निभा सकता है। जो अभी दासी है वह दूसरे क्षण रानी भी बना सकती है।

अन्त में, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हरियाने के लोक-नाटकों में समाज की सामूहिक भावना मिलती है। वे व्यक्ति विशेष से रचे जाकर भी व्यक्तित्व की छाप से मुक्त हैं।

षष्ठ अध्याय

प्रकीर्ण साहित्य

प्रकीर्ण साहित्य

पूर्व पीठिका

गत पृष्ठों में हरियाना के विविध लोक-साहित्य—गीत, प्रबन्ध गीत (गाथा) कथा आदि—का सम्यक् अनुशीलन तथा अध्ययन हमने किया है उसमें विस्तार के लिए स्थान है। उसमें चित्र बड़े-बड़े, भावनाएँ व्यापक एवं इतिवृत्त जटिल हैं। इस अध्याय में पाठकों को हम उस उद्यान में प्रवेश कराते हैं जहाँ चमत्कार का प्रकाश है स्वाभाविकता की हरीतिमा है और आडम्बरहीनता का गौरव है। वहाँ न ठगई का भय है, न कल्पना की भूलभुलैयाँ। यह लोक-वाङ्मय का वह कोन-प्रदेश है जहाँ प्रत्येक बात स्थूलता को परे फेंक सूक्ष्म रूप में सिकुड़ कर बैठा है। ये हैं तो छोटे परन्तु हैं नाविक के प्रभावपूर्ण तीर। ये किसानों, ग्रामीणों एवं संस्कृति के प्रकाश से वंचित लोगों की वह वाणी है जिसका सहारा पाये बिना कवि की प्रतिभा प्रभा कुण्ठित रह जाती है। इसमें शब्द-योजना है, आलंकारिता है और है एक विशेष प्रकार की लययुक्ता एवं चटपटापन। इस साहित्य के अंग हैं—लोकोक्ति, मुहावरे, पहेलियाँ, सूक्तियाँ, शिशु वार्ता विनोद, मल्हौर (विदुक) एवं आलना आदि। हमने इसे 'प्रकीर्ण साहित्य' नाम दिया है। इस प्रकीर्णवर्गीय साहित्य को मधुरा लोकसाहित्य (Pleasent Surprise) नाम भी कुछ लोगों ने दिया है।

क लोकोक्तियाँ (कहावतें)

भाषा अथवा कला में सौन्दर्य और सौष्ठव लाने के लिए लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग अनिश्चित काल से चला आ रहा है। उनके व्यवहार में प्रयोगकर्ता को एक विचार परम्परा का सहारा मिल जाता है और उसको इस बात का अनुभव होने लगता है कि इस प्रकार की परिस्थितियें पहिले भी आ चुकी है जो उसको सामाजिकता का अधिक बल प्रदान करता है और वह सोचता है कि पहिले भी लोग उसी प्रकार अपने विचारों को प्रकट करते आये हैं। पहिले हम हरियाना प्रदेश की लोकोक्तियों (आखाणों) का अध्ययन करेंगे, तदुपरान्त मुहावरों का।

सदा से सभ्य, असभ्य किंवा अर्द्धसभ्य सभी जातियों में लोकोक्ति अथवा कहावतों का प्रयोग देखा जाता है। जीवन की समस्याएँ कहावतों का सम्

होती हैं। जीवन अनेकानेक समस्यात्मक घटनाओं का सकलन ही तो है। अत अनेक ऐसी कहावतें जिनकी पृष्ठभूमि घटनापरक है। बड़ी-बड़ी समस्याएँ, अनुभव तथा जीवन जगत के जटिल प्रश्न जब तीव्र, लघु एव चटपटे वाक्यों के द्वारा निसृत होते हैं तो प्रवाद की सृष्टि होती है। डा० चटर्जी ने एक स्थान पर कहा है "जनता की समवेत अभिज्ञता (अनुभव) तथा विचार कहावतों में उपलब्ध होते हैं।[1]

कहावतों का क्षेत्र बहुत विस्तृत है मानव जीवन की कोई ऐसी गतिविधि नहीं जो इसके चक्र से बाहर हो। कहावतों मे जीवन के सभी सुख दुख, हर्ष विषाद, रुचि व ग्लानि विविध वर्गों में समाहित होकर मिलते हैं। जातियों के आचार विचार, रीति परम्परा आदि के अभिव्यजन में कहावतों ने सदैव हा सहयोग दिया है। देश भेद व आवरण के पीछे मानव मानव एक है। मानव प्रकृति सवत्र एक है, इसकी पूरी पूरी जाँच हमें लोकोक्ति साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन से मिलती है। वाच्यार्थ म भिन्न होती हुई भी कहावतें भावार्थ में अभिन्न हैं।

लोकोक्ति साहित्य इतना ही पुराना है जितनी मानव भाषा। लिखित साहित्य के प्रादुर्भाव से पूर्व इसका जन्म हो चुका होता है। प्रत्येक जाति के ज्ञानपूर्ण वाङ्मय अथवा नीति साहित्य (विज्डम लिटरेचर) से इसी साहित्य का अभिप्राय लिया जाता है। संसार के सभी प्राचीन ग्रथों म ज्ञानपूर्ण साहित्य की विशद सामग्री अध्येता को अपनी ओर आकर्षित करती है। पचतत्र व हितोपदेश की लोकोक्तिमूलक कथाएँ, चाणक्य सूत्र, बौद्ध साहित्य, प्राकृत तथा सस्कृत के अन्यान्य नीति विषयक ग्रन्थ इन कहावतों से भरे पड़े हैं। ऋग्वेद तथा अथर्ववेद के अनेक पूर्णापूर्ण ऋक्, पाद या अर्द्धपाद स्वभावत लोकोक्ति या कहावत कह जा सकते हैं। सूक्तियाँ जिनका वर्णन आगे करेंगे, एक प्रकार की कहावतें ही हैं। इतना ही क्यों भारतीय आधुनिक भाषाओं के प्रख्यात तथा अज्ञातनामा कवियों के कितने ही दोहे, पक्तियाँ, चौपाइयाँ, कवित्त जनता के हृद्गत भावों का प्रतिध्वनित कर लोक प्रिय कहावत ही बन गए हैं। ऐसी कहावतों की गणना करना भी कठिन है। इस प्रकार हमें असख्य कहावतें अपने लिखित साहित्य से उत्तराधिकार में मिलती चलती हैं। परन्तु लिखित साहित्य में प्रभावोत्पादकता तब तक नहीं आ पाती जब तक कि वह जन प्रवादों को प्रयोग में न ले लें अथवा जन प्रवादों का प्रसाद उसे न मिल जाये। यह कहना अतिरजित न होगा कि

१ डा० सुनीति कुमार चटर्जी, 'राजस्थानी कहावतें भाग १ 'भूमिका'

जिस प्रकार नमक के बिना भोजन रसहीन हो जाता है। ठीक उसी प्रकार भाषा या कथा का प्रभाव भी बिना किसी मौके की कहावत के फीका पड़ जाता है।

कहावतों की उत्पत्ति में किसी एक व्यक्ति का हाथ नहीं होता। वह तो एक विशाल जन समुदाय की संस्कृति में जन्म लेता है। साधारणतः सब से कहावत एक कथन है, एक उक्ति मात्र है किन्तु वह लोकोक्ति तब नहीं बनती जब तक लोक अपनी उक्ति बना ले। जब लोक अनुभव किसी वाक्य द्वारा उचित-अनुचित प्रमाणित कर जाता है तब कहीं उसका लोकोक्ति नामकरण होता है। लार्ड रसल ने इसी अर्थ में कहावत को 'बहुतों की बुद्धिमानी और एक का चमत्कार (The wisdom of many and wit of one) कहा है। उसकी उत्पत्ति बनने योग्य कोई लोकानुभव अथवा लौकिक सत्य जब किसी एक व्यक्ति की चतुराई से उसका आकर्षित कर सकने वाला रूप प्राप्त कर लेता है, तब कहावत का जन्म होता है। लेकिन चातुर्य ही कहावत को लोकप्रिय बनाता है।[1] यह लोकप्रियता ही लोकोक्ति की अनुप्राणिका शक्ति है। यही उसमें कलात्मक तत्व है। कहावतों का प्रादुर्भाव सदा होता रहता है। वे भाषाएँ सचमुच सौभाग्यशालिनी हैं जिनकी लोकोक्ति निधि सम्पन्न है।

साहित्य की किसी भी प्रकार की परिभाषा को कठोर शृंखला में बाँधना कठिन कार्य होता है। परन्तु फिर भी विद्वानों द्वारा दी गई लोकोक्ति की परिभाषाओं को जाँच लेना अप्रासंगिक न होगा। निम्न के विद्वानों ने लोकोक्ति (कहावत) की परिभाषा अनेक प्रकार से दी है —

१ जनता में निरन्तर व्यवहृत होने वाले छोटे-छोटे कथन—नेल्सन

२ एक का सूत्र जिसमें अनेकों का चातुर्य सन्निहित है—लार्ड रसल

३ लोक-साहित्य का एक प्रकार जो साधारण घरेलू वाक्य के रूप में जीवन की तीव्र आलोचना करे। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका (ब्रिटिश मिरर २)

४ जनता में प्रचलित कोई छोटा सा सारगर्भित वचन, अनुभव अथवा निरीक्षण द्वारा निश्चित या सबको ज्ञात किसी सत्य को प्रकट करने वाला कोई संक्षिप्त उक्ति। —'आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी।'

---

[1] श्री शालिग्राम वैष्णव, 'गढ़वाली भाषा के मुहावरे' नागरी प्रचारिणी पत्रिका संवत् १९९४ पृष्ठ १०३४।

ध्यान नहीं दिया जाता। इसी एक भाव को व्यक्त करने वाली यदि हम तीन लोकोक्तियाँ—एक हिन्दी जगत् से, दूसरी संस्कृत वाङ्मय से तथा तीसरी अंग्रेजी प्रोवर्ब्स में से लें तो हमें भाव-साम्य का स्पष्ट पता चल जाता है। यथा—हिन्दी जनता इस भाव को अपनी सीधी सी अभिव्यक्ति में यों कहेगी 'घर का जोगी जोगना आन गाव का सिद्ध', संस्कृत का पंडित 'अति परिचयाद्वज्ञा भवति' रूप देगा और अंग्रेजी में यह भाव इन शब्दों में यथा मिलेगा कि 'फैमलियरिटी ब्रीड्स कन्टेम्प्ट'। भिन्न काल, भिन्न देश, भिन्न भाषाओं में कहा हुआ यह भाव एक मुख विनिसृत सा ही लगता है। संस्कृत और अंग्रेजी के शब्द तो मानो एक ही व्यक्ति के कथन से प्रतीत होते हैं। एक उदाहरण और लीजिए—हरियानी में एक कहावत है—'उजला उजला सब दूध का या'। यह अंग्रेजी के इस वाक्य की जोड़ी का प्रतीत होता है। 'आल दैट ग्लिटरस् इज नाट गोल्ड'। एक और कहावत है कि 'आज मेरी मगणी कल मेरा ब्याह। टूट गई टंगड़ी, रह ग्या ब्याह॥' इसमें मानव की चेष्टाओं पर दैवतत्त्व का अभिव्यंजन हुआ है। ठीक इसी अर्थ को द्योतित करनेवाली अंग्रेजी की यह कहावत है, "मैन प्रापोजेज गाड डिसपोजेज।" आदि।

लोकोक्ति साहित्य का महत्व

मानव के अध्ययन, उसकी भाषा, साहित्य तथा संस्कृति के अध्ययन के लिए लोकोक्तियाँ एक अमूल्य साधन हैं। भाषा की सुन्दरता, सरसता, एवं प्रभावशालिता का बहुत बड़ा भाग कहावतों को मिलेगा। इनमें 'गागर में सागर' भरने की क्षमता होती है। भाषा में एक जादू सा आ जाता है। एक तीक्ष्ण व्यंग्य होने पर भी सुनने वाला हूँ नहीं करता। यथा—किसी परमुखापेक्षी व्यक्ति को उत्साहित करने पर भी यदि वह अपनी प्रवृत्ति को न छोड़े, तब यह कहना 'दो घर बत्ती मागनी, पर चलणा मसाल की चादनी।' दो घर और अधिक बिना मागनी पड़े पर चलेंगे मसाल के प्रकाश में। कितना शिष्ट एवं गम्भीर व्यंग्य है। इसी प्रकार किसी सम्पन्न व्यक्ति के पास पहुँचकर मन की अभिलाषा पूरी न हो तो यह कहना 'पहुँचे समन्दर पै घोंघा हाथ लगा' कितना साहित्यिक व्यंग्य है। हिन्दी के प्राचीन तथा अर्वाचीन जितने सिद्धहस्त लेखक हैं उन सबके काव्य पर बहुत सा प्रभाव लोकोक्तिजन्य है। सूरदास की गोपियां ऊधो से कहती हैं।

"प्रकृति जोइ जाके अंग परी" स्वान्न पूँछ कोटिक जो लागै सूधि न काहू करी।" इसमें श्वान पुच्छ की नित्य की वक्रता से एक चुभता भाव व्यंग्य व्यक्त किया गया है।

लोकोक्ति का साहित्यिक दृष्टि से भी कुछ कम महत्व नहीं है। कई विद्वानों ने तो लोकोक्ति नामक अलंकार ही पृथक् माना है। इससे तो यह प्रगट होता है कि लोकोक्ति साहित्यिक भाषा में भी सज्जा का काम करती है। एक मुहावरे के प्रयोग से हम यह कह सकते हैं कि लोकोक्ति भाषा में शृंगार का काम करती है।

डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने लोकोक्ति साहित्य के महत्व का प्रतिपादन करते हुए लिखा है कि "लोकोक्तियाँ मानवी ज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र हैं। अनन्तकाल तक धातुओं को तपाकर सूर्य-रश्मि नाना प्रकार के रत्न उपरत्नों का निर्माण करता है, जिनका आलोक सदा छिटकता रहता है। उसी प्रकार लोकोक्तियाँ मानवी ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं, जिन्हें बुद्धि और अनुभव की किरणों से फूटनेवाली ज्योति प्राप्त होती है।" संक्षेप में हम कह सकते हैं कि लोकोक्तियाँ अनुभव का सार हैं। लोकोक्तियाँ भटकते हुए का संबल बन उसे अँधेरे में प्रकाश (ज्योति) प्रदान करती हैं। लोकोक्ति साहित्य सार्वभौम साहित्य है। यह जितना सुनारविन्द की सम्पत्ति है, उतना ही, जिसके कर्ण कुहर में पड़ा है उसका भी उतना ही है। लोकोक्ति का महत्व इस बात से भी जाना जा सकता है कि जब हम अपने साहित्य सेवियों की लोक प्रियता देखना होती है तो हम इसी कसौटी पर कसकर देखते हैं कि अमुक साहित्यकार की कितनी उक्तियों ने जनता के कण्ठ पर अधिकार पा लिया है तथा उसकी कितनी उक्तियाँ जनता का कण्ठहार बन गई हैं। सचमुच लोकोक्तियाँ साहित्य का एक महत्वपूर्ण अंग हैं।

लोकोक्ति साहित्य की विशेषताएँ

लोकोक्तियों में अनेक विशेषताएँ देखने में आती हैं जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं —

लोकोक्ति की पहली विशेषता है 'लाघव'। अरबी में एक बड़ी सारगर्भित बात कही गई है—'खैरुल कलाम कल्ला व दल्ला' अर्थात् थोड़ी सी भी बातें जो युक्ति पूर्ण कही गई हों, उत्तम हैं। संस्कृत में भी 'मितं च सारं च वचो हि वाग्मिता' तथा 'स्वल्पा च मात्रा बहुलो गुणश्च' के द्वारा कथन की इसी विशेषता की ओर संकेत किया गया है। ग्रीक विचारकों ने भी लोकोक्ति की विशेषता वर्णन करते हुये कहा है—'Multun in purvo' i. e. Much in little, वास्तव में लोकोक्ति में लाघव ही एक ऐसा गुण है जो इसे सर्वप्रिय बनाये हुए है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि लोकोक्ति का छुटपन ही उसमें बड़प्पन ला देता है। देखिए 'गीतड़ा के भीतड़ा' यह उक्ति कैसा

तीन शब्दों से बनी है जिसका अर्थ है मनुष्य की प्रसिद्धि दो कारणों से होती है—धर्मशाला आदि भवन निमाण कराने से या गीतों में गाये जाने से। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि लोकोक्ति म सर्वत्र यह गुण हो। इसके विपरीत कहावतें बड़ी बड़ी भी होती हैं यथा—'धिया की मा राणी। बुढ्यात भरेगी पाणी।' आदि म वाक्य का वाक्य लाकोक्ति कहलायेगा। कभी कभी तो वाक्य को छोड़ पद के पद लाकोक्ति की परिधि म निवास करते हैं। यथा —

फस की आग, उधार का खाणा।
बखत पड़े पै कमा न पाणा,
तिन उठ उठ घर घर जाणा। आदि।

दूसरी विशेषता यह है कि लोकाक्ति में अनुभव और निरीक्षण का निचोड़ हाता है जो इसे सत्य बना देता है। सचाइ कहावत की आधार शक्ति है। प्रयोगकर्ता ने उस अनुभव से जाच लिया है और अपने निरीक्षण पर पूरा पाया है। एक कहावत देखिए, "काजरा के डेरा में टूका का न्याव।" कजर एक जाति है जो मागकर अपना निवाह करती है। उनके डेरों के अन्दर जमीन जायदाद के झगड़े तो हाते नहीं हैं। बस जो बासे फूसे टूक मिल जाते हैं और बच रहते हैं उन्हीं के ऊपर झगड़ा होता है। यह कहावत इसी बात का लक्ष्य करती है जिसम दर्शक का अनुभव एव निरीक्षण है। यह तो इसका वाच्यार्थ है। लक्ष्यार्थ होगा 'तुच्छ पुरुषों के तुच्छता के झगड़े।' इसी प्रकार एक अन्य कहावत है जिसम कटु सत्य कहा गया है—"मूसल ना मिंह में के भीजैं से" जा मूसल को जानते हैं उन्हें इस अनुभव का ज्ञान अवश्य होगा कि वर्षा से मूसल पर कोइ प्रभाव नहीं होता अर्थात् निर्लज्ज पर बातों का कुछ प्रभाव नहीं पड़ता।

तीसरी विशेषता लाकोक्ति म है—घरेलू भाषा। यों तो समस्त लाक साहित्य ही घरेलू भाषा में प्रवहमान होता है, परन्तु कहावतों की भाषा सरल घरेलू और दिन प्रति दिन की जानी-पहचानी होती है। लोकोक्तिया वास्तव में जनपदीय बोलियों की अपनी वस्तु हैं। साहित्यिक भाषाओं में अपनी-अपनी बोलियों से लाकोक्तिया उधार ली जाती हैं और साहित्यिक क्षेत्र में वे बहुत दिनों तक अलग अलग रहती हैं। "गजी और राडा में हुल्लावादी", अपनी परिस्थिति का विचार किए बिना अव्यवहार करने वाले के प्रति कहावत के ये शब्द कितने सार्थक एव कितने घरेलू हैं। इसमें घरेलू वातावरण और साधा-साधा घरेलू भाषा है। अन्य कहावतें और देखी जा सकती हैं। "म्हारी मुरगा म्हारे ते गुर्र।", "काणी के ब्याह की कमर से" आदि घरेलू भाषा में

घर के वातावरण का एक चित्र है "पेहरा आड्या घन पिरे। सीधा पोता घर फिरे।" ऐसा ही "हाला व पान्दे विरकना का के काम" मुहावरा है जिसमें ग्रामीण वातावरण फूट पड़ रहा है।

चौथी विशेषता है कि लोकोक्ति साहित्य अनाम है। इसके रचयिता का पता नहीं है। ये नाम का ज्ञान से शून्य है—"खेती खसम सेती, पन्ना रेखा की रखा", कृषि कार्य स्वामी के द्वारा अच्छा होता है, नहीं तो वह व्यर्थ होगा। कहावत कब कहाँ और किसके द्वारा कही, पूर्णतया अज्ञात है।

अंतिम विशेषता इसकी लोकप्रियता एवं लोक-प्रचलन है। कोई उक्ति चाहे कितनी ही मनोहारी क्यों न हो वह तब तक लोकोक्ति नहीं बन सकती जब तक कि लोक उसे अपनी न बनाले। लोक के अपनाने से ही उसकी सच्ची लोकोक्ति होती है।

डा० सत्येन्द्र ने लोकोक्ति में तुक और अन्योक्ति अंश को भी विशेषता माना है।[1] उनका तर्क है कि तुक से कहावत का लयात्मक शिल्प उठता है। किन्तु ऐसी भी अनेक कहावतें हैं जहाँ लयात्म होता ही नहीं है। दूसरे अन्योक्ति अंश को भी पृथक् विशेषता मानने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वास्तविक कहावतों में अन्योक्ति ही उनका प्राण है। सामान्यार्थ की प्रतीति ही लोकोक्ति में गति देता है। विशेष की प्रतीति होती अवश्य है किन्तु कुछ ही स्थानों पर।

वर्ण्य विषय

लोकोक्तियों के वर्गीकरण की न तो कोई शैली ही निर्धारित की जा सकती है और न उन्हें किन्हीं वर्गों में सम्पूर्णतः ही रखा ही जा सकता है। वास्तव में इस साहित्य का विषय-वर्गीकरण जो सर्वदेशीय एवं सर्वकालीन अनुभव पर आधारित है, और जिसमें मानव की समस्त परिस्थितियाँ स्थान पाती हैं, एक दुष्कर कार्य है। अभी तक अन्यान्य लेखकों ने इनके विषय और वर्गीकरण के मार्ग प्रदर्शन करने का प्रयत्न किया है पर प्रयास में वे कहाँ तक सफल हो सके हैं यह एक आलोचना का विषय है। प्रस्तुत निबन्ध में हम इन्हें निम्न वर्गों में रखकर अध्ययन करेंगे —१ जातिपरक। २ स्थानपरक। ३ इतिहासपरक। ४ कृषि वर्षा परक। ५ नीतिगर्भित। ६ व्यंग्यात्मक।

लोकोक्ति साहित्य मर्मज्ञ मुरलीधर जी व्यास ने उनका विभाग—

---

१ 'ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन' पृष्ठ २३०।

१ सार्वदेशिक व सार्वकालिक, २ एक देशीय व एक कालिक किया है। परन्तु यह विभाग इतना सूक्ष्म है कि अध्येता का अधिक सहायक नहीं होता। यह तो साधारण सी रूपरेखा है। हरियानी में लोकोक्ति साहित्य बड़ा सम्पन्न है। इस प्रदेश में लोकोक्तियाँ प्रचुर मात्रा में पाई जाती हैं। साधारण जन (हाली पाली) अपने सभाषण में लोकोक्तियों का प्रयोग करते हैं और अपने कथन को सरल बनाते हैं। महिलाएँ भी अपने आह्निक व्यवहार में लोकोक्तियों का छौंक लगाती हैं। बालक भी अपनी बुद्धि के अनुसार इनका प्रयोग करते पाये जाते हैं। तात्पर्य यह है कि वाणी का उपयोग करने वाले सभी प्राणी लोकोक्ति का प्रसाद पाते हैं। अब हम अपने वर्गीकरण के अनुसार हरियानी कहावतों का अध्ययन करेंगे।

१ जातिपरक—लोकोक्तियों में विभिन्न जातियों के स्वभाव, आचार-व्यवहार और रीति नीति को बड़े संयत ढंग से निबद्ध कर दिया गया है। ये फुटकर सूत्र, दोहे अथवा गीत जाति विशेष के वे छोटे छोटे फोटोग्राफ हैं जो उस जाति की मनोवृत्ति का चित्र पाठक के समक्ष उपस्थित कर देते हैं। कहावत है—'अग्रे अग्रे ब्राह्मणा', अब हम अपना जाति विषयक अध्ययन ब्राह्मण को लेकर ही आरम्भ करते हैं।

ब्राह्मण—लोक में ब्राह्मणों की ख्याति पराधप्रियता की ओर बहुत पहिले से रही है। इसी बात को हरियाना में इस कहावत द्वारा दिखाया गया है, "अकर[१] कर मकर कर, खीर पर शकर कर। इतने मैं चुलाल्यू, दछना का फिकर कर।" एक दूसरी कहावत में ब्राह्मण को इस प्रकार चित्रित किया है "ब्राह्मण होवे आटे[२] जोहड़, बनिया होवे करे मराड़[३]। जमींदार होवे लेवे फाड़[४], तीनों का आया थावले[५] ओड़। काला ब्राह्मन, भूरा चमार। उल्टी मूछ सुनार, इनका न कोई इतबार॥ नाम्मण कुत्ता नाणिया तीनूं जात कुजात। बामन कुत्ता हाथी ये नहीं तीन जात के साथी।" हरियाने की एक कहावत में ब्राह्मण को सब बुराइयों का मूल कहा गया है—"काल बागड़ तै उपजै, अर बुरा बाम्मण तै होय॥ अकाल सदैव बागड़ प्रदेश से उत्पन्न होता है और दूसरों का अहित सदा ब्राह्मण से होता है।

कायस्थ—तीन जात नै पाल, कायत कागा कुकरा[६]। तीन जात नै घालै, नाइ बाम्मण कुतरा[७]॥

---

१ तत्परता और शीघ्रता के साथ खीर पर शक्कर डालिए और उसे खाकर ज्योंही मैं कुल्ला करूं तो दक्षिणा दीजिए। २ भरना। ३ अभिमान। ४ प्यार। ५ बाँझ। ६ मुर्गा। ७ कुत्ता।

जाट—हरियाने की सभ्यता व संस्कृति में जाट का एक महत्वपूर्ण स्थान है। जनसाधारण मानस ने उसे चारों ओर से परखा है। कहा जा सकता है कि लोकोक्ति ने जाट का पूरा चित्र खींचा है। जाट पर ही हमें सब से अधिक उक्तियाँ प्राप्त हुई हैं जिनका विवरण निम्न प्रकार है —

सदगुण आवै, बट बुधना आवै। जाट बड़ै ठाठ, जाट जात गया॥ जाट मरा [illegible] ना दे॥ जाट भाट बाणिया तिहारा मारे बाट॥ जाट मरा तिन जाणिए, जिब तरानी हो ल॥ गूजर[1] अर जाटड़ा बध [illegible]॥ जाटड़ा अर[2] काटड़ा अनपारे मारे॥ गूजर टेक[3], अहीर हठ, जाट कहा ना कहा॥ जाट[4] फिरंगी, नौ [illegible], लड़ जाट [illegible]॥ बिगड़ा किया था जाट ने, [illegible] रहणा [illegible]। जाट डूबे[5] धारा धार॥ आगम बुद्धि बाणिया, पाछम बुद्धि जाट॥ जाट[6] जाट के मान्ने, पर दें घाल्ले मान्ने॥ [illegible] जाट[7] न जान गुनकरा॥ [illegible] जाट, [illegible] जाट॥ जाट र जाट हाथा चाट॥

माल[8], मागी, कापड़, सत्ती सूत और ठाट।
ये [illegible] भर, भर मानवा जाट॥
जाट, जमाई, भानजा, रैबारा[9], सुनार।
कभी ना होंगे आपने सलूक[10] करा भी बार॥
जाट, बैरागी, नाटवा, चोर बिसवा नार।
ये [illegible] भूखे भले, धाप[11] करें बिगार॥
कुके, जाट और सूखड़ा बदर भिड़ बिचाओ।
ये दुःखी ना माडने, भावें[12] दूध कटोरे पिलाओ॥
जाट रे जाट तेरे सिर पै खाट।
तेली रे तेली तेरे सिर पै कोल्हू।
[illegible] पढ़ा जाट पढ़ा जैसा, पढ़ा जाट [illegible] जैसा॥

---

१ [illegible] और जाट को सदैव दाबकर रखना चाहिए। २ जाट और भैंसा सदा अपने निजी लोगों को हानि पहुँचाते हैं। ३ गूजर प्रतिज्ञापालक होता है, अहीर हठी होता है और जाट उदार होता है। ४ जाट फिरंगी और नौ [illegible] के साथ लड़ने का सामर्थ्य जाट के [illegible] लड़कों में होता है। ५ जाट में बुद्धि कम होती है और वह जलधारा में [illegible] डूब जाता है। ६ जाट सब आपस में सम्बन्धी होते हैं और जब मिलते हैं तो हानि की संभावना होती है। ७ जाट अकृतज्ञ होता है। ८ साठी चावल। ९ जाति विशेष। १० सद्व्यवहार। ११ तृप्त होकर। १२ चाहे, बेशक।

जाट कहै सुण जाटनी, अड़े गाम म रहणा ।
ऊंट बिलाऊ[1] ले गई, हां जी हां जी कहणा ।।

अहीर—अहीर जाने खेती की तदबीर ।। हीरे ने रेकारे[2] की गाल ।। हरि ये पीर[3] ।। अहीर खावे राबड़ी बतावे खीर ।। अहीर ओट पाछी[4], तीनों सत्यानाशी ।।

सभी जात गोपाल की, तीन जात बे पीर ।
बिना गरज लरजे नहीं, बनक[5] बेस्या हीर ।।
सांप घास और अहीर के सरन म न रहिये ।
डाकर और पहाड़ की ठोकर भी सहिए ।।

गूजर—
ऊजड़ देखके गूजर कूदे, ढाल देखके बैरागी ।
खीर देखके बाह्मन कूदे, तीनों हो जायें रागी ।।
गूजर से ऊजड़ भली, ऊजड़ से भली उजाड़ ।
जहां देखिए गूजर, तहां दीजिए मार ।।
गूजर गोंडा, जाट जंड[6], बड़ पीपल सिरदार ।
जाट हार्‌या जब जानिए, जब आसा नीर बकात ।।
कुत्ता बिल्ली दो, गूजर बादर दो ।
ये चरा ना हो तो खुले किवाड़ा सो ।।

बनिया—आगम बुद्धि बाणिया, पाच्छम बुद्धि जाट ।। बाणिया हाकम गजब खुदा ।। बनिया मीत ना बेसवा सती, कागा हंस ना गधा जती ।। बनिया हाकम, बामन शाह । जाट पिआदा, गजब खुदा ।। बाणिया कै आट म, पै खाट म ।। लड़ा बाणिया पड़े बराबर, पढ़्या बाणिया मर बराबर ।। जाननहारा जानिया, बनिया तेरी बान । बिनछाने लाहु पिवे, पाणी पीवे छान ।।

बावन बुद्धि बनिया, तरेपन अक्कल तेरा ।
चव्वन अक्कल सुनार की, रुपये में दहें धेली ।।
जिसका ठाकुर पालती, जिसका मित्र कलाल ।
जिसकी बेस्या इस्त्री, जिसका बनिया यार ।।
ढीली धोती बनिया, उल्टी मूछ सुनार ।
बिना तिलक के ब्राह्मन, इन पत्थर के दे मार ।।

कुम्हार—कुम्हार का कुम्हारी पै बस ना चले, सटकरो[7] के कान

१ बिल्ली । २ अरे या रे भी अहीर के प्रति गाली का काम करते हैं ।
३ अहीर निगुरा होता है । ४ जाति विशेष । ५ बनिया, वेश्या और अहीर ।
६ वृक्ष विशेष । शमी वृक्ष । ७ कटरा ।

उठे ॥ ढीला धाती बनिया, उल्टी मूँछ सुनार। नैंचे पैर कुम्हार के, ता नां प्रघल[1] पठान ॥ हड़ हड़ हस कुम्हार की। माली का च यूट[2]। ना जानूं ए पली फड़ नम नैरूट ऊँट ॥

रांघड़ (मुसलमान राजपूत)—सौ रांघड़ा की एक मा ॥ रांघड़ मल नाल क, जिह नगी खाने। कि घाड़े की पीठ, कि हग धाने ॥ रांघड़ का गहला[3], गूजर पै मिश्रान। गार[4] की मती कुसन्न ना जान ॥

भाट— भाट भटियारी वरना, तीनो जात कुजात।
आये का आदर करें, चलत पूछें ना बात ॥

धाणक—(भगी स मिलता जुलती एक जाति) धाणका न मा का न बाहण का। [किसी का सगा नहीं हाता।]

नाई—बामन कुत्ता हाथी ये नहीं चार जात क साथी ॥ तीन जात नै घालें[5], नाइ बामन कुनरा ॥ तल ब्ले दरबार का नाइ का न जाय ॥ नाइया की से जनेत (बरात) म सारे ठाकुर ॥ नाइ किसका भाइ, छोरा बेच ल्याया लुगाइ।

डोम—गाला[6] छाहमत, अभा[7] धन, इमा डेढा प्यार। गारे खेती नाने पे चारां शब्द खुआर ॥

तेली—तेली का तल जल, तेरा जी क्यू जले। बावन बुध बनिया तरेपन अक्ल तेली।

सुनार—बावन बुद्ध बनिया, तरपन अक्ल तेला। चा'रन अक्ल सुनार की, रुपय म दे है धला। काला ब्राह्मन, भूरा चमार। उल्टी मूंछ सुनार। इनका ना काइ इतबार।

कोली—देना आइ बुनावणी, काली तै लट्टम् लट्ठा ॥

मेर—मेर मरा निर जाणिए जिर तीजा हाले ॥

देश या स्थान परक—कहावतें पाठक के समक्ष स्थान व देश विशेष के ज्ञान का पिटारा खोल देती है। ये प्रामाणिक निर्देशक का काय करता है। इनमें आलोच्य देशवासियों के स्वभाव का वणन भी मिलता है और भौगालिक वणन भी। यथा 'बा र म डागर बस' ऐसी एक कहावत है जो बागर प्रदेश का सभ्यता-संस्कृति हीनता का ज्ञान करा देती है। 'देसा म्ह देस

1 कारा, निरी, पूरा। 2 हरे चने। 3 ... ना। 4 ग्राम समीप। 5 हानि पहुँचाते है। 6 ... । 7 बकरा, भेंड़।

हरियाणा, जित दूध दही का खाणा' हरियाना प्रदेश की निरामिष प्रकृति की और समृद्धि का इसमें कथन है। इसी प्रकार गुजरात और मालवे की सम्पन्नता पर भी उक्तिकार की दृष्टि गई है —सामन लगती सतवीं, गर्जे आधी रात। हम तो जाय पी मालवे, तम जाओ गुजरात।—इस दोहे की नायिका का पता है कि ये दो देश धनधान्यपूर्ण हैं। 'जिसने देखी ना दिल्ली वोह कुत्ता न बिल्ली' में दिल्ली के महत्व, सौन्दर्य एवं आकर्षण का वर्णन है।

३ इतिहास परक—लोकोक्तियों में हमारा इतिहास भी सिमट कर बैठा है। इतिहास का वह विस्तार तो यहाँ देखने में नहीं आयेगा परन्तु ये छोटी छोटी उक्तियां विगत युग की किसी मुख्यतम घटना को पाठक के सामने चित्रित करती हैं।

'कहाँ राजा भोज कहाँ गांगला तेली' भोज की असहायावस्था को चित्रित करता है। 'घोड़ा राज अर बैला अनाज' इतिहास के उस युग की गाथा कहती है जब फौज में अश्व का बड़ा मान था और बैल किसान का पाव था। जब सेना का विभाग आज की भाँति वायुसेना व नौसेना के नाम से नहीं था बल्कि पदाति, अश्वारोही, गजचर, रथचर आदि नाम से था। हरियाना प्रदेश की लोकोक्तियों में इन्द्र के हाथों सताये हुये इस प्रदेश की हीन दशा का ऐसा कारुणिक चित्र है जो पाठक को रोमांचित कर देता है। इस प्रदेश में एक दो नहीं अनेक दुर्भिक्ष पड़े हैं। प्रत्येक अकाल अपनी नई समस्या लेकर उपस्थित हुआ है। इन सब का ऐतिहासिक वर्णन हमें इन दुर्भिक्ष की उक्तियों से ज्ञात होता है। चौंतीसा नाम का अकाल इस प्रदेश में बड़ा भयंकर हुआ था। उस ऐतिहासिक स्मृति को लोकमेधा ने इन शब्दों में अभी तक याद रखा है —

> एक टोटा का बैल बिका, और पैसा बिक गया ऊँट।
> चौंतीसा ने खो दिया, भैंस गाय का वट[1]॥
> चौंतीसा ने चौंतीस मारे, जिये बैंस कसाई।
> ओह मारे तखड़ी अर उसने छुरी चलाई॥

अकाल की भयंकरता यहाँ तक थी कि एक टोटे का बैल बिका और ऊँट तो एक पैसे में बिका। चौंतीसा अकाल में भैंस गाय का वंश ही समाप्त हो गया। चौंतीसा अकाल में चौंतीस जातियां मर गई, केवल दो जातियां शेष रहीं—कसाई और बनिया। बनिया अपनी तराजू से कमाता और कसाई अपना छुरी चलाता।

१ वंश

एक करुणात्मक इतिवृत्त इन पंक्तियों में भरा हुआ है। एक दूसरी कहावत हमारे परतन्त्रता के इतिहास को बड़ा सूक्ष्म में व्यक्त कर रहा है—'कमावे धोती आला, खावे टोपी आला' भारतवासी कमाते हैं और फल तो अँगरेज सब ले जाते हैं।

४ कृषिपरक—हरियाना प्रदेश कृषि उपजीवी लोगों से आबाद है। इसमें जितनी अधिक कहावतें कृषिपरक मिलती हैं उतनी दूसरी नहीं। ऐसा होना स्वाभाविक ही है। कृषिपरक कहावतें वे उक्तियाँ हैं जो कृषि के ऊपर कही गई हैं अथवा किसान, खेत, बैल आदि का कोई अनुभव जनता के सामने रखती हैं। यथा—'जो बोवेगा सो काटेगा।' इस कहावत का वातावरण कृषिजनक है और इसका अभिधेयार्थपूर्ण रूप से कृषिपरक है। भावार्थ दूसरी कहावतों की भाँति इधर उधर जा सकता है। "उत्तम खेती, मध्यम बनज। अधम चाकरी भीख निदान।" इस कहावत में कृषि व्यवसाय की भूरि भूरि प्रशंसा की गई है।

हरियाने में अनेक ऐसी कहावतें भी मिलती हैं जो ठेठ किसान की साथी हैं। उनमें कृषि विषयक बड़े सुन्दर-सुन्दर उपदेश भरे पड़े हैं। एक प्रकार से इन कहावतों में कृषि शास्त्र के गुर छिपे पड़े मिलेंगे। 'हल लगा पाताल, तो टूट गया काल।' गहरी जुताई करने से फसल अच्छी होती है। जेठ जगा, माह हटी, सावन बोई न बोई।" यह कहावत 'अगाया सो सवाया' का ही रूपान्तर है। कपास की खेती पर एक उक्ति है, नौलाई (नलाई) ना करी दुपता, करी चुनेगा कपसा" छोटी फसल की यदि नलाई नहीं की तो कपास कुछ नहीं होगा। एक और कहावत में जुताई की महिमा बतलाते हुए कहा गया है—'बिआही दगा दे दे, पर बाह दगा ना दे।' विवाहिता पत्नी धोखा दे सकती है, परन्तु जुताई (बाह) कभी धोखा नहीं देती। यही यथार्थ उक्ति है।

इसी स्थान पर हम उन कहावतों को भी देख लेना चाहते हैं जो हैं तो कृषिपरक ही परन्तु उनमें ज्योतिषशास्त्रों के गंभीर तत्त्व सन्निहित हैं। ऐसी भी अनेक कहावतें हरियाने में मिली हैं। उदाहरण :—

उत्तर दिशा से पवन बहने पर अनाज की उत्पत्ति बहुत अधिक होती है। इसी बात को यहाँ कहा गया है। 'पौन चले उतरा, अनाज खाये ना कुतरा' यदि उत्तर की पवन चलेगी तो अनाज इतना अधिक होगा कि कुत्ते भी न खायेंगे। 'दो सावन दो भादवे, दो कातक, दो माह[1] ढांडे[2] ढोरे बेच के,

1 माघ। 2 साधन सामग्री।

नाम बिसावन[1] जा' ॥ 'सावन पैहला पचमी, बादल हो न बीज । वेचा गाडी बलदा, नापजे[2] कुछ न चीज' ॥ 'आइ मेखे[3] और आला सूरा एकमएक'। किसान के प्रति एक उत्तम शिक्षा है कि चैत्रमास में पकी अथवा अधपकी सब को काटकर रख लेना चाहिए । फसल खड़ी रहने से हानि होती है । इस प्रकार की सकड़ों कहावतें इस लेखक को मिलती हैं।

कृषिपरक कहावतों में बैल, गाय और भैंस का भी खुलकर वर्णन आया है । बैल किसान की शक्ति और गाय भैंस शरीर पुष्टि के साधन हैं । उनकी श्रेष्ठता की परीक्षा किसान को अपेक्षित है । ऐसी अनेकानेक कहावतें यहां प्रचलित हैं । यथा —

आच्छी गाडी बैगन खुरा, ले आवो कथा, कदी ना बुरा ॥ बैल बिसावण चले कथ, बूढे व मत देखियो दत । लाखा लिया लाख यतन कर, लीला लियो बराड़ पर ॥ बैल का आगा और धेनु का पाछा । कृषि प्रधान देश में आये दिन ही यहां के निवासियों को गाय व बैल खरीदने पड़ते हैं । गाय और भैंस की परीक्षा के लिए एक कहावत है 'गाय नारी अर भैंस सारी' अर्थात् गाय क्याणी (मध्यम) अच्छी होती है और भैंस भारी । हरियाने की गायें दूध देने में बड़ी प्रसिद्ध हैं । उनकी दूध देने की सामर्थ्य अधिक है । इसी विचार को लेकर हरियाने की एक कहावत में गाय की तुलना भैंस आदि से की गई है, 'गाडी वाला सदा दिवाला, भैंसवाला आवे ॥ गायवाला घर्ां बराबर, बकरी वाला जावे ॥' यह विचार आज की गौहितकारी भावना के अनुकूल है । किसान के घर में बैल और भैंस का न्याय नहीं है । बैल बेचारा प्रात में से ध्या तक हल चलाता है और खल बिनौले की सानी मिलती है भैंस को । इस अवसर पर बैल ने एक शिकायत की है, "खाट बिनौले भूरी खाय । हल चलान लाडा जाय ॥ बिनौले युक्त सानी तो भैंस को दी जाती है और हल चलाने बैल जाता है जिसे सूखा चारा ही मिलता है । लोकोक्तिकार उन कामचोर निष्कर्मण्य किसानों पर व्यंग्य कसने से नहीं चूका है जो गाय बछड़े के चक्कर में न पड़ मस्त रहने वाले हैं 'गाय न बाच्छा नींद आवे आच्छा ॥'

५ नीतिगर्भित—लोकोक्तियों की अधिक संख्या नीति साहित्य के अन्तर्गत आती हैं । हरियाने में भी नीतिगर्भित उक्तियों में किसान के काम की बहुत सी बातें आई हैं । आलसी किसान की दशा का एक चित्र यहां दिया गया है —

१ बरसात । २ उत्पन्न होना । ३ मेषराशि ।

आलस नींद किसान नै खोवै, चोर नै खोवै खांसी।
टका ब्याज मूल नै खावै, राड नै खावै हांसी॥

नीतिगर्भित यह वाक्य बड़ा सार्थक है। इसमें किसान, चोर और साहूकार को अच्छी शिक्षा दी गई है। 'जिस गह न जाणा, उसर कोस गिनणे तें न पाड़ा॥ सेना, खेती, चाकरी और घाड़ का तम। माद तो करे आदर चाह लोग लाग हो सब॥ भीत में आला, घर में साला, ये करे कुछ ना कुछ चाला॥' आदि ऐसी कहावतें हैं जो जानपदीय जन के लिए चाणक्य नीति जैसा कार्य करती हैं। इन नीतिमूलक कहावतों में उन उक्तियों का भी स्थान मिलना चाहिए जिनमें स्वास्थ्य के नुस्खे (योग) बतलाये गये हैं। यथा —

क्वार करेला, चैत गुड़, भादों मांग न खा।
कौड़ी खरच गिरह की, रोग बिसावन जा।

इस कहावत में पथ्य की सुन्दर नीति दी गई है। यदि उपभोक्ता इस नीति का पालन नहीं करता तो वह एक तो अपने पैसे इनके क्रय में व्यय करता है, दूसरे रोग लगेगा जिससे हानि होगी। इसी प्रकार "घोड़े का काम, आदमी का घाव।" आदि लोकोक्तियाँ भी आयुर्वेदीय ज्ञान कराती हैं।

६ व्यंग्यात्मक—लोकोक्ति में बड़ा गहरा व्यंग्य होता है जो अचूक चोट करता है, परन्तु उसकी अभिव्यंजना का विधान कुछ ऐसी अप्रस्तुत योजना द्वारा होता है कि सुनने वाला चोट खाकर भी बीच में रपटने वाले को माने बिना से खिसका नहीं करता। नेक सलाह (सम्मति) को न मानकर प्रतिकूल आचरण करने वाले व्यक्ति को नीचे लिखी उक्ति सूक्ष्मता का प्रकाशन करता है। "गधे ने दिया लूणा, गधा कहे मेरा आंख फोड़े" लोकोक्तिकार ने अपनी चतुराई से लिंग परिवर्तन ही नहीं, योनि परिवर्तन तक कर दिया है। पुरुष गधा बना दिया गया है। 'उल्टा चोर कोतवाल नै डांटे' धृष्टता का तीव्र बोध है। इसी प्रकार निस्सार व्यक्ति की आलोचना 'थोथा चना, बाजे घणा' के द्वारा स्पष्ट शब्दों में कर दी गई है। गहरा तड़क भड़क रखनेवाले लोगों को लक्षित करके कही गई "ऊंची दुकान, फीका पकवान" उक्ति सब कुछ कह गई है। अक्ल के अंधों का कच्चा चिट्ठा खोलनेवाली "अकल बिन ऊंट उभाणे" बुद्धि के बिना ऊंट नंगे रहते हैं और 'अकल बड़ी क भैंस' उक्तियाँ आज प्रमाण कर रही हैं। इसी प्रकार का एक तीखा व्यंग्य 'मुस्सल का सिर म्हे ये मारने सै' तथा 'नदीदे नै मिल्या कटोरा, पाणी पी पी हुआ पदोड़ा' नदीदे (अभावग्रस्त व्यक्ति) को यदि कटोरा मिल जाये तो वह उससे

पानी ही पानी पीता है और उसका पेट फूल जाता है। आदि उक्तियां में आया है।

प्रकृति निरीक्षण तथा भविष्यवाणी वाली कहावतें भी अनेक हैं। यथा —'सावन माह चले पड़वा, खेले पूत बुलाले मा' में प्रकृति निरीक्षण से उत्तम फसल की बात कही गई है। भविष्यवाणी में घाघ भड्डली की उक्तियां आयेंगी जिनका सविस्तार वर्णन आगे मिलेगा। नमूने के तौर पर एक उक्ति है —

सुक्करवाली बादली, रहे सनीचर छाय।
कहे सहदेव सुन भाड्डली, बिन बरसे ना जाय॥

यहां शकुन विचारवाली कहावतें भी मिलती हैं जिनमें जीवन में सफलता असफलता की भविष्यवाणी होती है। यथा —

एकला मृग दूना साल, भाटे चढ्या मिले गुवाल।
तीन कोस लग मिल जाय तली, तो मौत निभावे सिर पर खेली॥

(अर्थात्) यदि यात्रा करते समय जंगल में एक मृग मिले, दो सांप मिलें, भैंसे पर चढ़ा हुआ गुआला मिले और यात्रा के तीन कोस तक तेली मिले तो निश्चय ही मृत्यु हो। ऐसे दृश्य अपशकुनकारी हैं।

उक्त कहावतों के अतिरिक्त कुछ कहावतें ऐसी हैं जो न तो सूक्ति हैं मगर हैं पूरे पूरे दोहे जिनका अर्थ हृदयंगम करने के लिए वे घटनाएँ उधेड़नी पड़ती हैं जिनके आधार पर उनका निर्माण हुआ है। यह पंचतंत्र की शैली है। अर्थात् यहां एक युक्ति से कहानी उपजती है अथवा कहानी से दोहा उपजता है। हमने इन्हें 'कहावती दोहा' नाम दिया है। यहां एक दोहा देते हैं जिसमें हरियाना प्रदेश का मुँह बोलता चित्र है। नाथ गोरखनाथ अपने अनुभव को इन शब्दों में बांध रहे हैं —

कण्टक देश, कठोर नर, भैंस मूत का नीर।
कर्मा का मारा फिरे, बागर बीच फकीर॥

(अर्थात्) हरियाना में कंटक अधिक हैं, मनुष्य कठोर प्रकृति के हैं और यहां का पानी भैंस के मूत्र जैसा है। ऐसे बागर प्रदेश में फकीर का दुर्भाग्य है।

'जाट और तेली' की कहानी में तेली की भगवद् स्तुति भी ऐसे ही कहावती दोहों में आई है। यथा —

मोडा मोडी, बैल मारना, जाट बड़ सुड़ सुड़ में।
दूध के दो बरचा। खुदा बचा दे पड़ा घमोड़ गड्ढ़ में।

(अर्थात्) हे ईश्वर! रास्ता तंग है, बैल जिसने कंधे से जुआ उतार दिया है, को जोड़ता हूँ तो वह मारने आता है, जाट कहता है बैल की जगह जुड़कर गाड़ी खींचो। ऐसे दशा में आप ही सहायक हो। मुझे बचाओ। मैं अब घर पर रुई धुनकर ही आजीविका कर लूँगा। ऐसे अनेक कहावतें हरियाणा में प्रचलित हैं। एक दूसरे कहावती दोहे में गंगा-यमुना के अन्तवर्ती प्रदेश का चित्रण हुआ है —

> ग्यानडाम बड़ा खराब, सौंडा सौंडी फहू नवाब।
> आधी रोगी, ऊपर साग, ले तो ल ना रास्ता लाग॥

गंगा-जमुना के बीच के भाग को 'ग्यानडाम' नाम से हरियाना प्रदेश में पुकारते हैं। इस प्रदेश में भिक्षुकों के साथ ऐसा व्यवहार होता है कि उन्हें भरपेट भोजन भी नहीं मिलता।

कहावतों में कहीं-कहीं पर सामाजिक उच्छृङ्खलता को भी प्रश्रय मिला है। यथा—'मेरा तेरा नाता, लाकर का फोड़ माल्या।' यहाँ आचारिक पक्ष को लेकर देखें तो संयम नियम की मात्रा के प्रति अवहेला ही दृष्टिगत होगा। राजनैतिक प्रभाव भी कहावतों में झलक गया है। इस प्रकार ये कहावतें 'पिनाक पुराना' ही नहीं हैं आधुनिक राजनैतिक तत्व भी इनमें अनुस्यूत मिलते हैं। कांग्रेस की लहर दौड़ी तो गांधी जी को लोगों ने अपना बेताज का बादशाह मान लिया और उत्तिकार ने कहावत को जन्म दिया 'खरा रुपैया चान्दी का, राज महात्मा गांधी का।' इससे महात्मा गांधी का जन मानस पर राजनैतिक एवं आर्थिक प्रभाव प्रकट होता है। कहीं-कहीं पर आयुर्वेद के ज्ञान को भी इन गगरिया (गोतला) में भर दिया गया है। 'आत भारी तै मात भारी।' 'जिन बला उस सक' जल का नुस्खा है। ऐसे ही स्वास्थ्य का नुस्खा है —

'गर्म तै न्हावै, सोका खावै। कामें सोवै, उसका वैद मूड पकड़िया रोवै।'

लोकोक्तियों की बात समाप्त करने से पूर्व यह और देख लेना होगा कि लोकोक्तियों में अन्योक्तितत्व का विशेष महत्व है। यदि यह कहा जाये कि अधिकांशतः लोकोक्तियाँ अन्योक्तियाँ हैं तो विषयान्तर न होगा। इनमें जिनका प्रस्तुत उल्लेख होता है, उसके अतिरिक्त सामान्य विशेष में इनका प्रयोग होता है। "गंजा और गोखरू की हड्डी" यह खल्वाटों के सम्बन्ध में है परन्तु गंजों के प्रति इसका उपयोग न होकर एक विस्तृत भावभूमि में होता है। अतः इस उक्ति में वर्णित विशेष—गंजा जिसके सर पर बाल न हों—में जो सामान्य जिसमें गुण आदि कोई विशेषता न हो है, उसी सामान्य के अर्थ में इसका उपयोग हो

सकता है, एव होता है। जहा विशेष का वर्णन कर दिया जाता है वहा पर भी 'विशेष' उक्ति को वैचित्र्य देने के लिए ही आता है। अर्थ वहा पर भी सामान्य विशेष का ही होता है। 'टाकर वाला ऊट पहिले अरड़ावै', 'अक्कल बिन ऊट ऊभाणे' में 'ऊट' विशेष के प्रयोग से वैचित्र्य उत्पन्न हो गया है। अर्थ सदैव विशेष में गर्भित सामान्य ही होगा। 'पूड़ी ना पापड़ा, पटाक बहू आपड़ी' आदि में विभावना जैसी खूबी आ गई है। यहा पर भी प्रकृत विशेष अन्तर्निहित सामान्य भाव मे ही वैचित्र्य है और वही लोकोक्ति को सभाले है। यहा सामान्यभाव है 'तैयारी बिना कार्य का हो जाना।'

अन्यापदेशपूर्ण कहावतों में विशेष की स्थापना और उसके द्वारा सामान्य एव वैचित्र्य की योजना तो सभव कल्पना के आधार पर हुई है और 'टाई टींगरी पतू बागवान' जैसी कहावत में विशेष किसी सभावना पर निर्भर नहीं प्रतीत होता 'टींगरी का टाई' होना सभव नहीं है। ऐसे स्थानों पर उक्तिकार केवल उक्ति वैचित्र्य से अपने भाव को कह देना चाहता है। सभव असभव की उसे चिन्ता नहीं होती। उसका यही ध्येय होता है कि तीर 'लक्ष्य बेध कर' दे। ऐसी कहावतें कम होती हैं।

हरियाने में कुछ लोकोक्तियाँ ऐसी भी मिली हैं जिनमें लोकोक्तिकार अपनी मनोवाछित सुखदायक वस्तुओं की कल्पना करता है। आनन्ददायिनी परिस्थिति की अवतारणा ही इनका मूलमन्त्र होता है। यथा —

दस चगे बैल देख, बा दस मन बेरी,
हङ हिसाबी न्या, बा साबसीर जोरी।
भूरी भैंस का दूधा, बा राबड़ घोलणा,
इतना दे करतार, तो बोहिर ना बोलणा॥

किसानों के आनन्द की पराकाष्ठा है कि उसके अच्छे चगे बैल हों, पर्याप्त अनाज हो जाये, फस्ल के पीछे लगान या मालगुजारी माँगी न जाये, भूरी भैंस का दूध पीने को मिले और राबड़ी का भोजन मिल जाये। इतना मिल जाने पर उसे सार्वभौम सत्ता प्राप्ति जैसा सतोष मिलता है। वह फिर भगवान से अधिक नहीं मागेगा। इसी प्रकार सहस्रश लोकोक्तियाँ हैं जिनमें जीवन जगत् के किसी न किसी पक्ष की अनूठी झलक है। लोक साहित्य का अध्ययन इस मौखिक साहित्य के बिना अधूरा ही है।

ख मुहावरे (रूढ़ियाँ)

ससार भर की भाषाओं तथा उपभाषाओं (बोलियों) में मुहावरों का प्रयोग पाया जाता है। जैसे लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा सरतल बन जाती

है, उसी प्रकार मुहावरों के प्रयोग से भाषा का सौन्दर्य, प्रवाह और प्रभाव बहुत बढ़ जाता है। जिन बोलियों का अभी तक साहित्य नहीं बना है, उनके बोलनेवाले भी अपनी वार्तालाप अधिक प्रभावमयी बनाने के लिए मुहावरों का आश्रय लेते हैं अथवा प्रयोग करते हैं। अक्षर-ज्ञान का प्रकाश जिन ग्रामीणों को नहीं मिला है उनके मुख से भी मुहावरे, यदि ध्यानपूर्वक सुनें तो, अपने आप निकलते सुनाई पड़ते हैं और बड़े प्यारे लगते हैं। कितने ही स्त्री पुरुष तो मुहावरों में ही बातें करते हैं। इधर रोहतक नगर में एक एडवोकेट हैं, जिनका नाम चौ० प्रताप सिंह है। उनके लिए प्रसिद्ध है कि वे मुहावरे ही खाते हैं, मुहावरे ही पीते हैं और मुहावरे ही बोलते हैं।

१ (क) मुहावरे का अर्थ

मुहावरा शब्द अरबी भाषा का है। अरबी में इसका अर्थ होता है "परस्पर बातचीत और सवाल जवाब करना।" यहाँ यह शब्द सीमित तथा संकुचित अर्थवाची है या यों कहिए कि अरबी में मुहावरा शब्द का अर्थ सीमित है। किन्तु भारतीय भूमि पर आकर इसका अर्थ विस्तृत हो गया है। वैसे भारतीय वाङ्मय में मुहावरा शब्द का यथार्थ पर्याय नहीं मिलता। कई विद्वान इसके लिए कई प्रतिशब्द देते हैं यथा—प्रयुक्तता, वाग्धारा तथा रमणीय प्रयोग आदि आदि। परन्तु हम इसका प्रतिशब्द 'रूढ़ि' देते हैं जो इसके प्रयोगार्थ के अधिक समीप है। मुहावरा (रूढ़ि) उस सुगठित पद समूह का नाम है जो अपना साधारण अर्थ (वाच्यार्थ) नहीं, अपितु एक विशेष अर्थ (रूढ़ार्थ या लक्ष्यार्थ) प्रकट करता है। उदाहरणार्थ 'गड़े मुर्दे उखाड़ना' हरियाने का एक प्रसिद्ध मुहावरा (रूढ़ि) है। इसका अभिधेयार्थ वाच्यार्थ है "कब्रें उखाड़कर उनमें से शव बाहर निकालना।" परन्तु वार्तालाप में इसका प्रयोग इस अर्थ में नहीं होता बल्कि "प्राचीन एवं विस्मृत अवाञ्छनीय बातों का वर्णन करना।" अर्थ में होता है। इसका यह अर्थ लक्षणा के द्वारा हुआ है जिसमें रूढ़ि की प्रधानता है और इसमें उक्त पदसमूह निस्सन्देह रूढ़ि है। परन्तु किसी प्रयाग की रिपोर्ट मिलने पर पुलिस ने 'गड़े मुर्दे उखड़वा डाले' सरीखे वाक्यों में उक्त पद समूह रूढ़ि नहीं है क्योंकि यह वाच्यार्थ से आगे नहीं बढ़ता और उस अर्थ को ही प्रकट करके क्षीण हो जाता है। डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने अपनी थीसिस 'भोजपुरी लोक-साहित्य' में पृष्ठ ५५८ पर मुहावरा की यह परिभाषा दी है "हिन्दी एवं उर्दू में लक्षणा अथवा व्यंजना द्वारा सिद्ध वाक्य को ही मुहावरा कहते हैं। मुहावरे के अर्थ में अभिधेयार्थ से कुछ विलक्षणता होती है। एक गम्भीर दृष्टि से देखने पर विदित होगा कि डा० उपाध्याय का कथन भी हमारी स्थापना की पुष्टि कर रहा है।

(ख) लोकोक्तियों और मुहावरों का अंतर

आगे बढ़ने से पूर्व यह उचित है कि लोकोक्ति एवं रूढ़ि में अन्तर स्पष्ट कर लिया जाय। लोकोक्ति में एक पूर्ण सत्य या विचार की पूरी अभिव्यक्ति होती है। यह दूसरे वाक्य का अंग नहीं बनता वरन् एक स्वतन्त्र वाक्य होता है। रूढ़ि (मुहावरा) स्वतन्त्र नहीं होती यह तो वाक्य के भीतर ही प्रयुक्त होती है। अथवा यों कहिए यह किसी वाक्य में रखे जाने के लिए विवश होती है। 'के जाणै भेड निवाले का स्वाद' 'घर म गदड़ा सेर', 'लणा एक न देना दो' आदि लोकोक्तियाँ हैं जो स्वतन्त्र हैं। 'साग भरणा, भाने की चिड़ियाँ, बावली बूच, बारा मुट्ठी का, आदि रूढ़ियाँ हैं जो वाक्य में प्रयोग की बाट जोहती हैं।

(ग) मुहावरों का महत्व

मुहावरों के आविर्भाव का प्रतिपादन करते हुए श्री हरिऔध जी ने एक स्थान पर बड़ी मार्मिक बात कही है—"घटना और कार्यकारण परम्परा से जैसे असंख्य वाक्यों की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार मुहावरों का भी। अनेक अवसर ऐसे उपस्थित होते हैं जब मनुष्य अपने मन के भावों को कारण विशेष से संकेत अथवा इंगित किंवा व्यंग्य द्वारा प्रकट करना चाहता है। कभी कभी एक एसे भावों को थोड़े शब्दों में निबद्ध करने का उद्योग करता है, जिनके अधिक लम्बे चौड़े, वाक्यों का जाल छिन्न भिन्न करना उसे अभीष्ट होता है।" इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भाषा के सवारने, सजाने और उसमें शक्ति व बल फूँकने का कार्य मुहावरों का है। मुहावरों के बिना भाषा फीकी रह जाती है और विधवा सी प्रतीत होती है। मुहावरे की लाक्षणिक शक्ति से भाषा में संयम आता है और अनावश्यक विस्तार दूर हो जाता है। 'मुकद्दमा, शेर व शायरी' में मौलाना हाली ने मुहावरों के महत्व को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है, "मुहावरा अगर उम्दा तौर से बाधा जावे तो बिला शुबहा परस्त शेर को बलन्द और बलन्द को बलन्दतर कर देता है।" निस्सन्देह मुहावरों के यथोचित प्रयोग से शैली में परिष्कार आता है और उसमें शक्ति आती है। साथ ही शैली में माधुर्य तथा मनोहारिता भी आ जाती है। भाषा में चुस्ती भी इन्हीं के प्रयोग से आती है। मुंशी प्रेमचन्द की भाषा का जादू मुहावरों के सम्यक् प्रयोग में है और प० अयोध्या सिंह उपाध्याय की कविता की शक्ति मुहावरों के सहारे स्थिर है।

मुहावरों के महत्व के साथ ही साथ इनमें अपनी एक विशेषता होती है। मुहावरों का शब्द विन्यास 'परिवर्तन असहत्व" गुणवाला होता है। इसका तात्पर्य है कि प्रयोग करते समय रूढ़ियों के शब्दों तथा उनके क्रम में कोई

परिवर्तन नहीं होने पाता। यथा —'पेट का पानी न पचना' का भाव है, कोई बात छिपा न सकना। यदि इसके स्थान पर 'उदर का जल न पचना' कहा जायेगा तो अर्थ का अनर्थ हो जायेगा। यहां यह न भूलना चाहिए कि 'शब्द परिवृत्ति असहत्व' उत्तमोत्तम साहित्य का गुण होता है। अतः यह कहना कि लोकोक्ति एवं मुहावरे साहित्य के श्रेष्ठ अंग हैं, असंगत नहीं है।

२ हरियानी मुहावरों का अध्ययन

हरियानी मुहावरों के सम्यग् विवेचन से पाठक को अनेक अनूठी बातों का पता चलेगा। इन मुहावरों में कहीं स्थानीय सामाजिक प्रथाओं का उल्लेख हुआ है, तो कहीं किसी पौराणिक व्रत का वर्णन है। किसी जाति की विशेषता और उसके स्वभाव का चित्रण भी इनमें आया है। कई बार मुहावरों के द्वारा शब्दों की निरुक्ति करने में सहायता मिलती है। इस प्रकार इनका बड़ा महत्व है।

क संस्कार तथा प्रथाओं का उल्लेख

ऐसे अनेक मुहावरे हरियाना प्रदेश में प्रचलित हैं जिनमें इस प्रदेश के संस्कारों एवं प्रथा परम्पराओं की छाप है। एक मुहावरा है 'हाथ पीले करना' जिसका अर्थ होता है 'पुत्री का विवाह करना।'[1] कन्यादान करते समय पिता पुत्री के हाथों को हल्दी से पीले करता है और फिर उसे वर को देता है। अतः यह मुहावरा हिन्दुओं में प्रचलित कन्या के विवाह-संस्कार को बताता है।

वर जब कन्या का पाणिग्रहण करता है उस समय वर और कन्या के गोत्रज पुरुषों के नामों का उच्चारण किया जाता है। इसे हरियाना में 'शाखाचार' कहते हैं। यह प्रथा कुलीनता की भावना से युक्त है। इसीसे मिलता जुलता दूसरा मुहावरा है 'कुली बखानना' परन्तु यह पहिले मुहावरे के पूर्णतया विपरीत है। इसका अर्थ है 'किसी के वंश के दोष बखानना' अर्थात् दोषों का वर्णन करना। इसी प्रकार 'भात भरना' 'पानी देना' 'कुण्डे में घी भरना' आदि मुहावरे हैं जो प्राचीन संस्कार व प्रथाओं के अवशेष हैं।

स्त्रियों के व्रतों का उल्लेख भी इन मुहावरों में यत्र-तत्र पाया जाता है। 'सकरात पूजना' एक मुहावरा है जिसका अर्थ है खूब पीटना। हरियाना में मकर संक्रांति बड़ी श्रद्धा से मनाई जाती है। स्त्रियां इस अवसर पर [illegible] आदि कूटकर खिचड़ी बनाती हैं। अतः बाजरा कूटने की [illegible]

से इस रूढ़ि (मुहावरे) का पीटना अर्थ होता है। साथ ही इस मुहावरे के द्वारा उस प्रथा का उल्लेख भी हो गया है।

ख ऐतिहासिक चित्रण

हरियानी मुहावरों में ऐतिहासिक अंशों की ओर भी अनेक संकेत मिलते हैं। 'सत्तावणिया जूता' हरियानी का एक मुहावरा है। यह मुहावरा १८५७ के सिपाही विद्रोह के समय से सम्बंधित है। बहुत से जाटों के यहां ऐसे पुराने जूते मिलते हैं जो दूसरों के हैं और जिनसे उन्होंने अपने शत्रुओं को १८५७ में पीटा था। इसी प्रकार का एक दूसरा मुहावरा है 'भाऊ की लूट'। राजा भाऊ गुजरात के थे। उनको धोखे से हराया गया और राज्य को लूटा गया था। राज्य में कोई व्यवस्था न रह गई थी। वही पुरानी बात इस छोटे से मुहावरे में अवशिष्ट है। 'पुराना घाघ' अर्थात् आवश्यकता से अधिक अनुभवी, मुहावरा भी इतिहास के एक तमसाच्छन्न कोने को प्रकाश प्रदान कर रहा है।

ग पौराणिक चित्रण

कुछ मुहावरे पौराणिक कथाओं पर आधारित हैं। 'द्रौपदी का चीर' एक मुहावरा है जो पौराणिक युग की कथा को अपने में समेटे हुए है। अचूक औषधि को 'रामबाण' कहते हैं। यह भी पाठक को उस प्रागैतिहासिक युग में प्रवेश कराता है जहां इतिहास की पुस्तकें मूक हैं। इसी प्रकार 'ईद का चांद' किसी विगत युग की स्मृति का द्योतक है। 'सुदामा के चावल' भी कृष्ण युग की वस्तु है।

घ जातिगत विशेषताएं

हरियाने में कई ऐसे मुहावरे हैं जो किसी जाति को आधार मानकर खड़े हैं अथवा चल रहे हैं। इनमें 'जाट गोंगदा' जाटों का झगड़ा 'बुद्धू जाट' आदि मुहावरे जाट जाति के चरित्र पर प्रकाश डालते हैं। इस प्रदेश का एक मुहावरा है 'बावली बूच'। यह बूच कोई पशु विशेष अथवा कीट विशेष नहीं। लोकमेधा ने अद्भुत भाव के लिए एक शब्द घड़ लिया है जिससे किसी जंतु का भाव शब्द ध्वनि के प्रभाव से मिलता है। जिसे मान लिया गया है कि वह बावला होता है। गाय के ऊपर भी कई मुहावरे मिलते हैं यथा—'गूगली गाय' इसका अर्थ होता है 'दया का पात्र' 'बाच्छी का काका' एक दूसरा मुहावरा है जिसका अर्थ 'अत्यन्त सीधा'। यह मुहावरा जाति की सरलता एवं भोलेपन को लेकर चला है।

ङ व्यंग्योक्ति

मुहावरे की परिभाषा देते हुए पीछे कहा गया है कि लक्षणा व व्यंजना से युक्त सिद्ध वाक्य को मुहावरा कहते हैं। हरियाने में ऐसे मुहावरे प्रचुर मात्रा में मिलते हैं जिनमें व्यंग्य की अभिव्यंजना बड़ी अनूठी हुई है। 'राड का साड' एक मुहावरा है जिसका अर्थ होता है "उच्छृंखल बालक" विधवा पुत्र पर पिता आदि किसी अभिभावक का अनुशासन न होने से वह साड की भांति उद्दंड हो जाता है। अतः यहां साड शब्द से उच्छृंखलता का भाव ध्वनित होता है। 'पुराना पाप' मुहावरे में 'पाप' शब्द पाप करने के अनुभवों की ओर लक्ष्य करता है अतः इस मुहावरे का अर्थ होता है "बहुत अनुभवी पुरुष"।

च शकुन विचार

हरियाना मुहावरों में शकुन विचार भी आया है। गावों में उल्लू बोलना अपशकुन और कौवा का बोलना शकुन माना जाता है। अंगों के फड़कने से भी शुभाशुभ विचार लगाये जाते हैं। 'हथेली खुजाना' धन की प्राप्ति और 'पैर खुजाना' यात्रा का होना आदि का ज्ञान कराते हैं।

इन मुहावरों में प्राचीन भाव के अतिरिक्त नवीन वस्तुओं पर भी विचार व्यक्त किये जाते हैं यथा —'पलेटफार्म साफ होना' एक मुहावरा है, जिसका अर्थ होता है 'सबका मर जाना' आदि आदि। इस प्रकार हम देखेंगे कि जीवन जगत के नवीन अनुभव नये-नये मुहावरों के जनक होते जा रहे हैं।

संस्कृत साहित्य में सूक्ति या सुभाषितों के अतिरिक्त अनेक प्रकार के न्याय भी उपलब्ध होते हैं। यथा—तलेकपात न्याय, अरण्य रोदन न्याय, अन्ध दर्पण, अजाकृपाणीय, काकोलूकीय न्याय आदि-आदि। इन्हें हम रूढि या मुहावरा ही कहेंगे। इनका 'सुक्त कहावत' नामकरण जिसकी ओर कई विद्वानों का संकेत है, संगत नहीं प्रतीत होता। कहावत और मुहावरे में स्पष्ट एवं मौलिक अन्तर है। वे दोनों एक जाति की दो विधाएं अवश्य हैं परन्तु उन्हें एक नहीं कहा जा सकता। कहावत कहावत है। वह स्वतः स्पष्ट है और मुहावरा परतः स्पष्ट है।

मुहावरों तथा कहावतों का इतना अध्ययन ही पर्याप्त नहीं है। इनमें से अनेक मुहावरों को साहित्यिक तथा वर्तमान भाषा का रूप देकर सुन्दर भाव-व्यंजना की जा सकती है। 'साग भरना, झाडे की चिड़िया तथा घड़े पाड़

ग पहेली

पहेली शब्द प्रहेलिका का तद्भव रूप माना जाता है जिसका अर्थ होता है 'विषम अवस्था' अथवा 'उलझन'। हरियानी में इसे 'फाली आडना' पहेली बतलाना अथवा "गाहा खोलना" कहते हैं। 'फाली' शब्द का अर्थ होता है, 'फलगर्भित वाक्य' और गाहा 'गाथा' शब्द का अपभ्रष्ट रूप है जिसका अर्थ होता है 'कथा या कहानी', भोजपुरी में इसे 'बुझौवल' कहते हैं।[१] वहाँ तो पहेली पूछने के लिए 'बुझौवल बुझाना' मुहावरा भी है। इसके और भी कई नाम—पारसी, प्याली तथा उखाणा आदि—भिन्न भिन्न बोलियों में प्रचलित हैं। संस्कृत में पहेली को 'ब्रह्मोदय' कहते हैं।

पहेली कहने की प्रथा बड़ी प्राचीन है। बारहवीं तेरहवीं शती के कविवर खुसरो की पहेलियाँ और मुकरियों के विषय में आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि "जिस ढंग के दोहे, तुकबंदियाँ और पहेलियाँ आदि साधारण जनता की बोलचाल में इन्हें प्रचलित मिलीं उसी ढंग की पद्य पहेलियाँ आदि कहने की उत्कंठा इन्हें भी हुई[२]।" यह सभ्य और असभ्य सभी प्रकार के लोगों में प्रचलित मिलती हैं। अवकाश के क्षणों में पहेलियाँ अबाल-वृद्धवनिता सभी के लिए मनोरंजन का उत्कृष्ट साधन हैं। कई अनुष्ठानों और विवाहादि संस्कारों पर भी इनकी पूछ होती है। इधर हरियाने के गाँवों में जामाता की बुद्धि परीक्षा के लिए सुसराल में 'सीटणे' पूछे जाते हैं जो एक प्रकार की पहेली होती है। इसे कहीं-कहीं 'छन' या 'छंद' भी कहते हैं। 'सीटणों' में शृंगार के कोमलतम पक्षों का बड़ा खुला वर्णन होता है जो परिष्कृत रुचि

१ 'बुझौवल' ब्रज और बुन्देलखंडी में एक प्रकार की कहानियाँ होती हैं जिनमें कौतूहलपूर्ण परिस्थिति का स्पष्टीकरण वांछित होता है। श्री हरगोविन्द गुप्त, बुन्देलखंडी बुझौवल, आजकल पत्रिका, दिसम्बर, १९५२, में लिखते हैं "बुझौवल उन कहानियों को कहते हैं जिनमें एक व्यक्ति प्रश्न करता है और दूसरा उनका उत्तर देता है। मनोरंजक कहानियाँ भी होती हैं और सार्वजनिक ज्ञान की वृद्धि करनेवाला बौद्धिक व्यायाम भी, जिसमें कभी-कभी बहुत ही तत्व की बातें पकड़ में आती हैं।" प० त्रिपाठी ने बुझौवल को पहेली का पर्याय माना है। उनका कहना है, "बच्चों की बुद्धि पर शाण चढ़ाने के लिए गाँवों में बहुत सी पहेलियाँ जिन्हें बुझौवल कहते हैं, प्रचलित हैं। बुझौवल बड़े गूढार्थवाले होते हैं।"—हिन्दी ग्राम-साहित्य, भाग २ में ग्राम साहित्य की रूपरेखा।

२ रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ ६१।

सा घिनौना लगता है। भारतवर्ष में वैदिक काल से ही 'ब्रह्मोदय' पहेलियों का प्रचलन पाया जाता है। अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर ब्रह्मोद्य आनुष्ठानिक क्रिया का अंग समझा जाता था जो होता और पुरोहित के मध्य चलता था।

पहेलियों का प्रमुख उद्देश्य मनोरंजन होता है। परन्तु कोरा मनोरंजनात्मकता ही इनका सर्वस्व नहीं है। ये तो वक्ता के बुद्धि-विलास तथा श्रोता की बुद्धि परीक्षा के साधन रूप में भी आती हैं। बड़े अनुभवी बुद्धि के धनी और प्रत्युत्पन्नमति भाइयों तक भी उनके वैचित्र्यपूर्ण अर्थ गौरव के प्रति नत मस्तक हैं। इसी से प० रामनरेश जी त्रिपाठी ने इन्हें 'बुद्धि पर शाण चढ़ाने का यन्त्र' या 'स्मरण शक्ति और वस्तुज्ञान बढ़ाने की कलें' कहा है। भोजराज ने भी प्रहेलिका के उपयोग पर टिप्पणी देते हुए कहा है 'क्रीडा गोष्ठी विनोदेषु तज्ज्ञैराकीर्णमन्त्रणे। परव्यामोहने चापि सोपयोगा प्रहेलिका।' अर्थात् खेल, गोष्ठी तथा विनोदकाल में प्रहेलिका जाननेवाले पारस्परिक विचार विनिमय अथवा परामर्श एवं श्रोतृवृन्द को व्यामोहित करने के लिए अर्थात् आश्चर्य चकित करने के लिए इनका उपयोग करते हैं।[1] वहाँ पर इसके भेदाभेदों का भी वर्णन किया गया है यथा—अन्त प्रश्न, बहि प्रश्न, बहिरन्त प्रश्न, जाति प्रश्न, पृष्ट प्रश्न, उत्तर प्रश्न, प्रभृति।

पहेलियों के वर्ण्य विषय इतने विस्तृत एवं व्यापक हैं कि साधारण से साधारण वस्तु भी पहेली की पकड़ से छूटी नहीं है। दिन प्रति दिन इनकी संख्या बढ़ती रहती है। ग्रामीण प्रतिभा का अंशुमाली बराबर चलता रहता है। मोटे तौर पर हम कह सकते हैं कि पहेलियों में किसी वस्तु का वर्णन होता है जिसमें प्रस्तुत के द्वारा अप्रस्तुत की योजना की जाती है। अप्रस्तुत यहाँ प्राय ग्रामीण वातावरण से लिया जाता है जो वस्तु उपमान के रूप में रहता है। यह नैसर्गिक भी है। गाँव के बुद्धि कौशल को सजग रखने के लिए उस अपार परिचित परिस्थिति के अतिरिक्त और क्या चाहिए। अत यह कहा जा सकता है कि पहेलियों के विषय अनेक एवं अनंत होते हैं। ब्रज की पहेलियों को डा० सत्येन्द्र जी ने निम्नलिखित सात वर्गों में बाँटने का प्रयत्न किया है। १ खेती सम्बन्धी २ भोजन सम्बन्धी। ३ घरेलू वस्तु सम्बन्धी। ४ प्राणी सम्बन्धी। ५ प्रकृति सम्बन्धी ६ अंग प्रत्यंग सम्बन्धी ७ अन्य। यह वर्गीकरण अधिकांश में समीचीन है परन्तु 'पौराणिक कथा सम्बन्धी' पहेलियाँ भी प्रचलित मिलती हैं जो उपर्युक्त वर्गों में नहीं रखी जा सकतीं। यथा —

1 विश्वनाथ—'साहित्य दर्पण', दशम परिच्छेद, पृष्ठ ४९६ पर

बाप कवारा बाप कवारा और क्वारी महतारी।
पुत्र पिता न गोद खिला रह्या दसो न वेदाचारी ॥

हरियाने की यह पहली एक पौराणिक पहली है। इसमें मकरध्वज और हनुमान की पौराणिक गाथा कही गई है। जब तक यह पौराणिक वृत्त स्पष्ट नहीं हो जाता तब तक यह पहली नहीं सुलझती। अत हमारी सम्मति म उपरोक्त सात वर्गों के साथ एक वर्ग और पौराणिक कथा सम्बन्धी होना चाहिए। इससे भी अधिक भेद किये जा सकते हैं।

पहेलियों के विवेचन में यह भी ध्यान रखने की बात है कि इनमें बहुत से ऐसे शब्दों की योजना होती है जिनका अर्थ प्रस्तुत में तो कोई नहीं होता परन्तु प्रकरण में आकर उनमें अर्थ-चातुरता आ जाती है। कभी-कभी शब्द पादपूर्ति के लिए प्रयुक्त होता है और कहीं पर किसी व्यग्य की अभिव्यक्ति के लिए। श्लेष का अनूठा प्रयोग भी इन ग्रामीण गाहाओं में देखने को मिलता है। यथा —

दिल्ली बोई बेल, मगर पै नाल गये।
हथनापुर फूले फूल, पटाले पान गये॥

हरियाने के इस गाहे में एक बेल का वर्णन है जो दिल्ली में बोई गई है, जिसके नाल (तने) आदि मुगेर तक गये हैं। हस्तिनापुर में उस पर फूल लगे हैं और पटियाला तक पत्ते गये हैं। इस अलौकिक बेल का वर्णन श्रोता को कौतूहल से भर देता है और उसे चकित कर देता है। अब आप इसमें प्रयुक्त श्लेष को तनिक अनावृत्त कीजिए और देखिए कि इस गाहा का फल "ग्रामों में स्त्रियों द्वारा धारण की जानेवाली आँगी" है। यहाँ दिल्ली (दिल, वक्ष), मगर (मुगेर या पृष्ठ, पीठ), हथनापुर (हाथ, भुजमूल) और पटाले (पटियाला, पेट) श्लिष्ट शब्द हैं। आगी (Bodice) वक्ष से चलती है और कमर पर उसकी तणियाँ बाधी जाती हैं जो बेल के तने के सदृश हैं। भुजमूल पर फूला हुआ भाग हस्तिनापुर के फूल और पेट पर पटियाला पर पान के सदृश खुला कपड़ा रहता है[1]। कितना भव्य एव सुन्दर श्लेष है।

पहेलियों में एक शब्द-चित्र होता है। प्रश्नकर्ता उस चित्र को उपस्थित करके अर्थात् पूर्वपक्ष की स्थापना करके अपने प्रतिपक्षी से उस चित्र के उत्तरपक्ष की आकाक्षा करता है। यहाँ कठिनाई यह होती है कि प्रस्तुत चित्र अस्पष्ट होता है। उससे तो केवल एक दिशा मात्र मिलती है। शेष की

१ आज भी (गाडा) लुहारों की स्त्रियां इसी प्रकार की अगियां धारण करती हैं।

पूर्ति श्रोता का अपनी बुद्धि के आधार पर करनी होती है। इन से अनेक अन्तर्कथ्य अपने अन्तःकरण में अनुभव करते रहते हैं कि वह चित्र का अथवा समस्या का कुछ अनुगन्ता (Clue) है जिससे वे अपनी कल्पना से गढ़ सकें। इतना ही नहीं, इस समस्या का समाधान बतानेवाली एक बात और होती है इन चित्रों में और वह है 'ध्यानविकर्षण की भावना' जो श्रोता एवं मननकर्ता के ध्यान को विकेन्द्रित करती है और विचलित करती है। इसमें 'असमरसता' की बनी रहती है। यथा—'दो नार एक से, काम करें कहुँ। एक रहा खड़ा घर में एक रह बैठा॥' एक हरियाना गाथा है। इसमें श्रोता प्रथम पति का चित्र अपने बुद्धि-पटल पर अंकित करके आगे बढ़ता है तो उसका ध्यान विकेन्द्रित होने लगता है। एक स्थान पर काम करें किन्तु एक बैठा रहता है और दूसरा घूमता रहता है। उसकी समझ में नहीं आता। अतः उसे 'चाकी' का भाव स्पष्ट रूप द्वारा ज्ञात नहीं होता। वास्तविकता यह है कि इन पहेलियों में इस ध्यान विकर्षण के तत्त्व ने ही कौतूहल जाग्रत किया है। यही चमत्कार है और यही उक्ति का वैचित्र्य है। एक दूसरी पहेली —

पेट है सारा चोटि बोला बधस्या बलम बेला।
इस गाह का फल सोचिए नहीं तो मैं गुरु तू चेला॥

यहाँ लट्टू का भाव विचित्र अवस्था से चित्रित किया गया है। पहेलियों की अधिक संख्या इसी 'ध्यान विकर्षण' के आधार पर उक्ति-वैचित्र्य का अंग बना है। मुकरियों में तो यह प्रवृत्ति इतनी प्रचुर होती है कि श्रोता को प्रकरणवश ज्ञान तो होता है कुछ और पर वक्ता झट से दूसरा अर्थ कर बैठता है। इस प्रणाली से मनोभावनाओं को रहस्यमय ढंग से गुप्त रख लिया जाता है। अतः पहेलियों में इस अस्पष्ट चित्रण के द्वारा जो कौतूहलमय आनन्द भरा होता है उसी को लेकर दण्डी आदि अलंकारवादियों ने पहेली की अलंकारों में गणना की है, परन्तु रस सम्प्रदाय के आचार्य रसबाधक विरोधी कह कर इसे अलंकार कोटि से बहिष्कृत कर देते हैं। और इसे उक्ति वैचित्र्य मात्र की संज्ञा देकर आगे बढ़ते हैं।[1] परन्तु इस विषय पर थोड़ा सा विचार कर लेना यहाँ समीचीन होगा। लोक प्रचलित, पहेलिकाओं के विश्लेषण, अध्ययन एवं मनन से यह निर्बोध प्रतीति होती है कि इन

---

१ विश्वनाथ—'साहित्य दर्पण', दशम परिच्छेद, पृष्ठ ४६६—

रसस्य परिपन्थित्वान्नालंकारः प्रहेलिका।
उक्तिवैचित्र्यमात्रं सा च्युतदत्ताक्षरादिका॥

साहित्य में एक कौतूहलमय भाव एवं विस्मयकारी चित्र होता है जो रस कोटि तक पहुँच जाता है। विस्मय स्थायीभाव विभावादि के द्वारा व्यक्त हो अद्भुत रस में परिणत हो जाता है। हिन्दी के जो विद्वान संस्कृत रसवाद की पूँछ पकड़े हुए हैं उन्हें विचारना चाहिए कि अपने भाषा सारल्य एवं वचचातुर्य से हिन्दी पहेली संस्कृत प्रहेलिका की भाँति "काव्यान्तर्गतोद्भूत" नहीं है। अध्ययन के लिए हरियाने की कुछ पहेलियाँ नीचे दी जाती हैं।

यह बतलाया जा चुका है कि पहेलियों का प्रधान उद्देश्य मनोरंजन है। अतः पहेली श्रोता की बाछें खुलवा देती है। बच्चे तो ऐसे अवसर पर खिलखिलाकर हँस पड़ते हैं। उदाहरण—"जोहड़ ते निकली भरड़ फूँ। चार चुचड़ चार मुँह।" यहाँ बच्चे भरड़फूँ के 'चारचुचड़' का नाम सुनते ही खिलखिला उठते हैं।

> काकराजी हमने कुकड़ू देख्या, म्हारे भतीजा बैठे देख्या।
> बिना चोंच तै चुगते देख्या, बिना परों के उड़ता देख्या।

कुकड़ू यहाँ एक लोकमेधाप्रसूत काल्पनिक शब्द है जिसमें 'शब्द ध्वनि' विशेष अर्थ की प्रतिपादिका है। इसका अर्थ किसान के कुएं पर का 'चाक' है। ऐसी अनेक पहेलियाँ हरियाने की जनता को याद हैं। ऐसी पहेलियों में 'रामलाला' सालगराम आदि शब्द भी व्यक्तिवाची न होकर जातिवाचक रूप में ही प्रयुक्त हुए हैं।

पहेलियों का विषय एकमात्र मनोरंजनात्मकता ही हो ऐसी बात नहीं है। बड़े गम्भीर प्रश्न भी इनके विषय बनते हैं। रूपक शैली के द्वारा जीवन की अनुपम मीमांसा निम्नलिखित गाहे में दी गई है —

> कच्चे फल सुहावने, गदर हुए मिरान।
> वे फल कौन से, जो पक्के हो करवान।

इस पहेली में कच्चे, गदर और पके फलों के रूपक से शैशव, यौवन और वार्द्धक्य का यथार्थ चित्र दिया गया है। जीवन में बाल्यावस्था सुहावनी है, युवावस्था, ज्ञान ददायक है, परन्तु वृद्धावस्था कड़वी होती है।

कई पहेलियाँ ऐसी मिली हैं जिनका कथापट पौराणिक इतिवृत्त के सूत्रों से निर्मित हुआ है। ऐसी पहेलियों का अर्थ तब तक हृदयंगम नहीं होता जब तक कि वह 'पिनाक पुराना' समझ में न आ जाये। यथा —

> आप कवारा बाप कवारा और कवारी महतारी।
> पुत्र पिता की गोद खिला रह्या देखो न वेदाचारी॥

यहाँ मकरध्वज और हनुमान का पौराणिक कथा कही गई है। हरियाने की बहुत सी पहेलियाँ ऐसी हैं जिनकी पृष्ठभूमि घर और घरेलू वस्तुओं से निर्मित हुई है —

हरा थी मनमनी थी, नौलाख मोती जड़ी थी।
राजा जी के महल में, दुशाला ओढ़या खड़ी थी॥

मैं जब हरा थी तब बड़ी मनहर था। नौ लाख मोती (अनगिनत मणी) अर्थात् नाले-नीले दाने मेरे शरीर में जड़े हुए थे और किसान के महल (घर) में दुशाला (भुट्टे के पत्ते) ओढ़े खड़ी था। यह एक मक्का की 'कूकड़ी' का अपने मुँह वाला वर्णन है। घर में प्रतिदिन उपयोग में आने-वाला गेहूँ भी पहली में सिपाही बना खड़ा है "छोटा सा सिपाही, बाके पेट में चिराई।" परन्तु लोक मेधा का परितोष ग्रामीण वातावरण से नहीं हो जाता। उसकी पैनी दृष्टि शहरी 'जलेबी' और 'पतंग' को भी पहेली के क्षेत्र में घसीट लाई है —

गोल गोल चौंतरा, पोरी पोरी रस।
बता तो बता नहीं, रुपये दे दस॥

जलेबी के साथ शहरी रहन और जुआ की प्रवृत्ति भी लोक तक लगी चली आई है। पतंग का वर्णन हरियाने की एक पहेली में हुआ है —

एक कहानी मैं सुनाऊँ सुनले मेरे पूत।
बिना परों के उड़ गई, बाँध गले में सूत॥

साइकिल तो आज नगर की अपेक्षा ग्रामीण बनती जा रही है, और उसने ग्राम से घोड़े को भगा दिया है। एक उक्ति है —

घोड़ा है पर घास नहीं खाता।
खड़ा करें तो डिग[1] डिग जाता॥

'दृष्टिकूट' प्रणाली की पहेलियाँ भी हरियानी-लोकसाहित्य का अंग बनी हैं जिनमें ग्रामीण बुद्धि कौशल ने प्रागैतिहासिक वृत्त को बाँधा है —

पत्थर ऊपर हल चल बैल गऊ के पेट।
हालों तो जाम्या नहीं, दुकियारी पहुँची खेत॥

इस गाहा में इस जनश्रुति को आधार बनाया गया है कि वाल्मीकि जी ने रामचन्द्र जी के अवतार लेने से पूर्व ही रामायण लिख दी थी। पत्थर (पात्र, भोजपत्र) के ऊपर लेखनी चलती है। बैल रूपी भाव लेखक

[1] डिग डिग जाता है।

के मन में हैं। हाली (वर्ण्य पुरुष राम) तो अवतरित नहीं हुए हैं परन्तु लेरी (पूर्ण वर्णन) छकिमारी (लेखक ऋषि वाल्मीकि जी) ने कर दिया है। इन स्थानों पर विस्मय का भाव विशेष आनन्ददायी होता है। हरियाने में ऐसी पहेलियों को 'उलटा गाहा' नाम दिया जाता है। इनका अर्थ सहज समझ म नहीं आता। कभी कभी ग्रामीण मेधा घटना विशेष को लेकर पहेली रूप में मुखरित होती हुई दीख पड़ती है। बाल्टी में बंधकर कुएं में रसती हुई रस्सी की घटना का एक उदाहरण है —

"सरड़ जा सरड़ आवै।"

यहाँ कुएं में बाल्टी फासने और खींचने की घटना का चित्रण हुआ है। इसी प्रकार गाय या भैंस के शारीरिक अंगों की घटना ने एक पहेली को जन्म दिया है —

चार मेरे आऊ जाऊ चार मेरे कमाऊ।
दो सुवक लक्कड़, एक माखी टाऊ[1]॥

चार वस्तुओं (चार पैरों) से मेरा आना जाना होता है। चार (चार थन) मेरे कमाऊ हैं। दो सींग (दो सूकी) लकड़िया हैं और एक (पूंछ) मक्खी-मच्छर आदि को उड़ानेवाली है।

साथ ही ग्रामीण प्रतिभा ने कहीं-कहीं यौन वृत्ति परिचालक शब्द चित्र व क्रिया चित्र भी दिये हैं जो सयत हैं और स्वल्पीय मात्रा में हैं। "काला धाव्या, लालकाव्या" में पहेलीकार ने लुहार की भट्टी में लोहे का काली कुसका पड़ते और तपकर लाल होते हुए देखकर यह पहेली बनाई है। परन्तु इसमें यौनवृत्ति की झलक आ गई है जो भोगियों पे प्रति स्पष्ट है। ऐसे स्थानों पर सुख की भावना की प्रतीति होती है जो अवचेतन मन में बैठे यौन ततुओं के स्पदन से प्राप्त होता है।

लोकमेधा बराबर पहेलियों का निर्माण करती रहती है। नये विषयों या नये अनुभवों के साथ नये गाहे भी जन्म लेते रहते हैं। शिक्षा का प्रचार हुआ और किताबें पढ़ी जाने लगी तो किताबें और उनके पढ़नेवालों पर भी पहेलियां बन चलीं —

धोली धरती काला बीज।
बाम्यया आला गावै गीत।

मियां खुसरो की पहेलियों में मच्छर विरहपाठी के रूप में पाठक को

---

१ उड़ानेवाला।

मिला है परन्तु हरियानी पहेलियों में वही मच्छर सबमदी बन गया है —

> सेजाँ चढ़ती राणी खाइ, बालक खाये मन्दर में।
> काली नाग बुम्बी की म्याइ, केहरी खाया जगल में।
> हाथिया सेती हाथ मिलावे, वोह भी जानवर जगल में॥

राजप्रासादों में रानी का खानेवाला, घरों में बालकों का खानेवाला, बाँबी में सर्प का और जगल में शेर का खानेवाला (काटनेवाला) तथा हाथियों के साथ हँसरोक करनेवाला जीव (मच्छर) जगल में रहता है।

पहेलियों के साथ मुकरियों का नाम भी प्राचीन युग से चला आता है। अत हम भी यहाँ पहेलियों के अध्ययन में इन्हें स्थान देते हैं। ये भी विस्मय, वैचित्र्य, कौतूहलकारी होने से पाठक के आनन्द का स्रोत बन जाती हैं। "भींत क्यों बागी (टेढ़ा), बहू क्यों नागी (नग्न)"—(सूत न था)। यहाँ श्लेष बल पर अत प्रश्न पूछा गया है —

> सास बहू का भोजया, भीत रही बखरा।
> ताणी पड़ी जुलाहे कै, को चेला किसका? (सूत बिना)

यहाँ सूत सहयोग के बिना सास-बधू की लड़ाई, सूत के बिना भित्ती में टेढ़ और धागों के बिना जुलाहे का काम बन्द है। यह बहि प्रश्न है।

घ सूक्तियाँ

सूक्ति का दूसरा नाम सुभाषित भी है। सूक्ति या सुभाषित वे उक्तियाँ हैं जिनमें ग्राह्यतत्व की प्रधानता होती है और ये जन-साधारण को दूसरी उक्तियों की अपेक्षा अधिक प्रभावित करती हैं। ये सूक्तियाँ लोकसाहित्य एव शिष्ट साहित्य दोनों की अपनी वस्तुयें हैं। इनकी अपनी विशेषता एक यह भी है कि इनमें साधु भाव आद्यन्त ओत-प्रोत होते हैं जो श्रोता एव पाठक को अनायास ही आनन्द विभोर कर देते हैं। ये सूक्तियाँ अवश्य ही किसी आप्त पुरुष की प्राजल शब्दावलियाँ होती हैं। ये ही वे वचन हैं जो "हित च मनोहारी" की कल्पना को साक्षात् प्रकट करते हैं।

लोकसाहित्य की खेती बिना विधिवार एव बिना कर्ता की उपज होता है परन्तु सूक्तियों के ऊपर उन लोगों के नाम की छाप भी देखी जाती है जिन्होंने इन्हें जन्म दिया है। परन्तु ये नाम सकीर्णता की दुर्गन्ध से रहित होते हैं। भारत के सभी प्रदेशीय लोकसाहित्यों में घाघ, भड्डरी (भड्डली) और डाक की खेती व वर्षा विषयक सूक्तियाँ अवश्य सुनने को मिलेंगी। कई

विद्वानों का मत है कि ये तीनों नाम किसी एक ही प्रतिभाशाली व्यक्ति के नाम हैं जिसे देश भेद से कई नाम प्राप्त हो गये हैं। अन्य–घाघ, भड्डरी और डाक तीनों को भिन्न भिन्न व्यक्ति मानते हैं।

सूक्तियां भाषा-बोली के अर्थ सौष्ठव, भावगाम्भीर्य एवं संहार शक्ति की द्योतिका होती हैं। अतः जो भाषा जितनी सम्पन्न, एवं अर्थ प्रकाशिका शक्ति समन्वित होती है उसमें उतनी ही अधिक सूक्तियां पाई जाती हैं। संस्कृत में सुभाषितों की प्रचुरता है। वहां 'सुभाषित रत्नभाण्डागार' जैसी अनुत्तम पुस्तकें विद्यमान हैं। हिन्दी और उसकी बोलियों में अभी ऐसी उपयोगी पुस्तकों का अभाव है।

हरियाना प्रदेश में घाघा (घाघ) और भड्डली की सूक्तियां मिलती हैं। हमारी खोज में एक दो सूक्त सरूपा की भी मिली है। लोकहिताय अपनी वाणी, ध्वनित करने वाले इन कृषि पंडितों के विषय में इतिहास का साक्ष्य नहीं मिलता। 'घाघ' के विषय में कुछ पते की बातें महापंडित रामनरेश जी त्रिपाठी के अनुसंधानों से प्राप्त हुई हैं। एक जनश्रुति के अनुमोदन से पता चलता है कि इनकी जन्मभूमि उत्तर प्रदेश के पूरबवर्ती भाग गोरखपुर जिले में थी। कहा जाता है वहां वे अपने पुत्र और पुत्रवधू के साथ रहा करते थे। किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि उनकी पुत्रवधू बड़ी चतुर थी और उससे इनकी नोंक झोंक बराबर रहती थी। घाघ जो कहावत कहते पुत्रवधू तत्काल उसकी काट कर देती। एक घटना से क्षुब्ध होकर वे बादशाह अकबर के दरबार में पहुँचे। गुणग्राही सम्राट् ने उनका बड़ा आदर किया और उनको कन्नौज के पास एक जागीर भी दी। घाघ अपने अंतिम दिनों में उसी ग्राम में रहे। वह ग्राम कन्नौज से तीन मील दक्षिण में है और "अकबराबाद सराय घाघ" के नाम से प्रसिद्ध है। घाघ के वंशज आज भी उस गांव में रहते हैं। 'घाघ' की कृषि विषयक सूक्तियां बड़ी प्रसिद्ध हैं। हरियाना में 'घाघ' की अनूठी अनुभूतियों की द्योतक एक कहावत 'पुराना घाघ' अत्यन्त अनुभवी अभी तक चल रही है। परिणाम स्वरूप हम कह सकते हैं कि घाघ बड़ा ही पंडित और अनुभवी व्यक्ति था।

भड्डरी और डाक कौन थे, कहां और कब हुए आदि बातों का कुछ पता नहीं चलता। कुछ लोगों का अनुमान है कि भड्डरी डाक की पत्नी थी। भड्डरी शब्द के स्त्रीलिङ्गान्त होने से इस अनुमान को बल मिलता है। "कहयि डाक सुनु भड्डरी रानी।" इस वाक्य से तो सुस्पष्ट है कि भड्डरी डाक की पत्नी थी। गुजराती लोकगीतों के यशस्वी अन्वेषक श्री झवेरचंद

मेघाणी ने अपने लोकसाहित्य के 'कठरय-ऋतुगीतों' नामक अध्याय म गुजराती जनश्रुति के अनुसार भड्डरी को किसा ज्योतिषी की पुत्री बतलाया है। ब्रज में भड्डरी एक जाति है जो महाब्राह्मण का कार्य करती है और ज्योतिष से फलादेश बताती है। भड्डरी लाग 'भड्डरी' की सूक्तियों के आधार पर वष का भविष्य बतलाते हैं। राजपुताने और हरियाने में 'भड्डली' नाम की स्त्री की कहावतें मिलती हैं। हरियाने की सूक्तियों म 'भड्डला' के साथ सहदेव, शादी, सेदा जा सहदेव के ही सद्‌भव रुप हैं, मिलते हैं। सभवत भड्डला नामक स्त्री सहदेव की पत्नी हा। जहा सहदेव ने उक्ति कहा है वहा ता सवत्र सहदेव और भड्डली का नाम आया है अन्य कोइ नाम नहीं है। 'सरूपा' तो कोइ आधुनिक सूक्तिकार ज्ञात होते हैं।

घाघ और भड्डली जनकवि थे। उन्होंने अपने मुक्त सौकर्य की चिता न कर जन-साधारण की बोली में मौसमा ज्ञान की बातें सूक्ति रूप म कही हैं। परन्तु खेद है कि उनकी सूक्तियों की कोइ लिपिबद्ध पुस्तक नहीं मिलता। उनका आसन किसान का कठ है। आज का वैज्ञानिक घाघ व भड्डरी की सूक्तियों के फल की यथार्थता पर आपत्ति कर सकता है परन्तु इन लोगों ने जनता का मौसम की जानकारी उस युग मे कराई है जब इस देश में आज की भाति अन्तरिक्ष विज्ञान के केन्द्र न थे। जनता इन्हीं सूक्तियों के आधार पर कृषि-कर्म का निर्वाह करती था।

हरियाने को इन्द्र की कृपा का लव भी प्राप्त नहीं हुआ है। अत पानी की बूँद को तरसनेवाले हरियाने के लिए ता इन ऋषियों की वाणी सचमुच वेदवाक्य बन गइ है। हरियाने की जनश्रुति है कि 'घाघा' ने छत्तीस प्रकार के चूतिया (मूरख) बताये हैं और उन मूर्खों को 'किं कर्म किम कर्मेति' का उपदेश दिया है अर्थात् अवाञ्छनीय बातों के छोड़ने के लिए कहा है —

> पहर खड़ाऊ हलयो ओतै सुथण[1] पहर खालबै।
> कह घाघा जी तीन चूतिया (मूरख) सिर पै बोझ धर गावै॥

अथवा,

> नौकर सेती मता उपावै, घर तिरिया की चालै सीख।
> कह घाघा जी तीन चूतिया, गाव गोरवे[2] बोवै इख॥

महाकवि घाघ का कहना है कि ये तीन पुरुष मूर्ख हैं। (क) जो खड़ाऊ (पादुका) पहनकर हल चलाते हैं, (ख) पाजामा पहनकर जो नलाई करते

१ चुस्त पाजामा। २ ग्राम के समीप।

हैं तथा (ग) बोझ सिर पर रखकर खो गाते हैं। खड़ाऊ पहनकर हल चलाने से पैर टूटने का भय है, पाजामा पहनकर नलाने से बलतोड़ अधिक होते हैं तथा बोझ के नाचे गाने से फेफड़ों पर अधिक आघात पहुँचता है। अत ये तीनों कार्य अवाञ्छनीय हैं। दूसरी सूक्ति भी इसी प्रकार तीन बातों का निषेध करती है जो पुरुष अपने भृत्य (सेवक) से सम्मति लेते हैं, स्त्री की सीख मानते हैं और गाँव के निकट इख बोते हैं वे मूर्ख व्यक्ति हैं। गाँव क समीप ईख बोने से हानि अधिक होती है।

घर तिरिया से लेक्खो मागै, भू सुकड़ाई सोवै।
कह घाघा जी तीन चूतिया, उधल गई नै रोवै।

इसके द्वारा वे तीन मूर्ख कहे गये हैं जो पत्नी से हिसाब मागते हैं, विपुला पृथ्वी पर, सुकड़कर सोते हैं और जो भगी हुइ स्त्री का शोक करते हैं।

सहदेव और भडुली की सूक्तिया प्राय वर्षा विषयक हैं —

चिडटी ले अडे चली, चिड़िया नहावे धूल।
शादी कहे भाडली वरखा हो भरपूर॥

सहदव का विचार है यदि चींटिया अडे लेकर चलें, चिड़िया धूल में लेटें तो समझ लीजिए वर्षा अच्छी होगी।

सहदेव कहे सुन भाडली, जेठ गलिया मत रो।
जो सावन पचक गले, नाहिन खवत हो॥

इस उक्ति से सहदेव भाडली को समझाते हैं कि जेठ में पचक गलने की चिंता मत करो। यदि सावन में पचक गल जायें तो सवत् बुरा होगा। पचक पाच अनिष्ट नक्षत्र होते हैं। जिन दिनों वे आते हैं वे दिन पचक कहलाते हैं।

पदवा चले सबादली, पछुवा चलै नरोल[1]
सहदेव कहे भाडली, वरखा गई कित ओड॥

यदि पूर्वी पवन चले और बादल हों, पश्चिमी वायु के चलने पर बादल न रहे तो निश्चय समझो वर्षा नहीं होगी। एक और उदाहरण है —

सुक्कर वाली बादली, रहे शनीचर छाय।
कह सहदेव सुन भाडली, बिना बरसे न जाय॥

यदि शुक्रवार को बादल हों और वे शनिवार तक छाये रहें तो निश्चय

१ बिना बादल के, रिक्त।

वर्षा समझो । यहाँ पर भाडली के स्थान पर 'भाडली' शब्द आया है । ऐसा परिवृति लोकसाहित्य में सम्भव है ।

ऋतुओं में असामयिक परिवर्तन भी अनिष्टकर होते हैं, इसी बात को बतलाते हुए एक उक्ति है —

माघ मघवा जेठ सिआल, साढ़ पड़वा बाल ।
सेदा कहै भाडली, बरषा गई पाताल ॥

यदि माघ में गर्मी और जेठ में शीत पड़े, आषाढ़ में पूर्वी पवन चले तो निश्चय है कि वर्षा नहीं होगी । इस दोहे में सिआल (सीत)' पड़वा (पुरवा) और सेदा (सहदेव) शब्द देखने योग्य हैं जो भाषा वैज्ञानिक के लिए बड़े काम के हैं ।

ऊपर कही उक्तियों के अतिरिक्त, इन महापुरुषों की सैकड़ों कृति, खेत, बीज और बैल विषयक उक्तियाँ प्रचलित हैं जिनमें नाम की पुट नहीं है । हमने लोकोक्तियों के खंड में कृषिपरक भाग में उन्हें दिया है ।

ङ खेलों में वाणी विलास

अब तक जिन रूढ़ि, लोकोक्ति, प्रहेलिका एवं सूक्ति आदि का वर्णन हुआ है, उनके अतिरिक्त गांवों में कुछ और भी उक्तियाँ मिलती हैं जिन्हें ग्रामीण बालक तथा युवक खेलों में प्रयोग करते हैं । यह वाणी-विलास साहित्य संज्ञा का अधिकारी तो नहीं है परन्तु फिर भी उसका अस्तित्व ग्रामीण वातावरण में अपना एक अलग महत्व रखता है ।

गांवों में जितने खेल खेले जाते हैं उन्हें हम दो रूपों में विभाजित कर सकते हैं—एक, बड़ों के, दूसरे, शिशुओं के । बड़ों के अर्थात् युवकों के खेल भी मौसमवार होते हैं । हरियानी ग्रामीण युवक शरत्काल में—कबड्डी, आतीलो पातीलो, डंका बित्ती (गिल्ली डंडा), राहा खुलिया, हूल, दाई ला (आँखमिचौनी), कुड़ल और लिल्ली घोड़ा आदि से अपना मनोरंजन करते हैं और शरीर को पुष्ट बनाते हैं । ये ही युवक ग्रीष्मकाल में 'कायाभिरणी' चुरल, कोल्हड़ा जमालशाह, और काकड़ बलमतीरा आदि खेलते हैं । पावस ऋतु में नूणपाला, नौकट्टू, बारहकट्टू, कोड़ा दुआ, कौरा कुदाई (लाग जम्प) कोड़ा की धार और कोल्हू आदि खेल युवक समाज के प्रिय खेल हैं ।[१]

१ इन खेलों के नामों आदि में इलाके इलाके में भेद मिलेगा । हमने यहाँ उन खेलों के नाम मात्र दिये हैं जो हरियाना प्रदेश में प्रायः सभी स्थानों पर खेले जाते हैं । इनके अतिरिक्त भी सैकड़ों प्रकार के खेल मिलते हैं ।

इन खेलों में जो युवक समाज में प्रचलित हैं कुछ ही खेलों म वाणी का प्रयोग होता है वरन् शक्ति एव बुद्धि कौशल ही सहायक होते हैं। कनड्डी, कोलड़ा जमालशाह और 'आतालो पातीलो' ही ऐसे खेल हैं जिनमें वाणी का विलास दिखलाई पड़ता है।

'कबड्डी' गाव का प्रिय खेल है। हरियाना प्रदेश म तो यह खेल वहा का राष्ट्रीय खेल माना जाता है। यह खेल दो दलों मे बँटकर खेला जाता है प्रत्येक दल अपनी शक्ति एव बुद्धि कौशल से विपक्षी दल पर विजय प्राप्त करना चाहता है। इस खेल की विशेषता दर्शक को प्रारम्भ म ही प्रतीत हो जाती है। युवक जब दो दल बनाते हैं तो पहिले दो खुटे (कैप्टेन) चुन लिए जाते हैं। खेल की इच्छा रखनेवाले शेष युवक दो दो की जोड़ी में उनके पास आते हैं और उन्हें अपना परिचय देते हैं। यह परिचयात्मक वाक्य बड़ा विलक्षण होता है। इसे सुनकर खुटों में से प्रत्येक अपने निर्णयानुसार पराक्रमी खिलाड़ी को छाट लेना चाहता है। ये वाक्य कई प्रकार के होते हैं। उदाहरण —

> आड तोड बेडी आइ, तोड के बगाई[1] ।
> कोइ ले लो सूरज कोइ ले लो चाद।

बस, इस प्रकार सब खिलाड़ी दो दलों में विभक्त हो जाते हैं और खेल आरम्भ हो जाता है। इस खेल म 'महुड्डू' या 'कबड्डी कबड्डी' आदि छोटे-छोटे वाक्य बराबर बोले जाते हैं।

कोलड़ा जमालशाई या कमालशाई —एक दूसरा खेल है। इसम खिलाड़ी गोलाकार रूप में बैठ जाते हैं। एक खिलाड़ी कोलड़ा लेकर उनके पीछे घूमता है और उसे रहस्यमय ढग से किसी अन्य खिलाड़ी के पीठ पीछे रखना चाहता है। इस क्रिया के सम्पादन करते हुए वह खिलाड़िया को सचेत करता जाता है —

> कोरड़ा कमाल शाइ ।
> पीछे देखै उसी ने मार खाइ॥

यह पाठ भी सुनने को मिलता है —

> कोलड़ा कमालशाही,
> डिब्बे म दमाटू मैं तेरा बाबू।[2]

'आतीलो पातीलो'—इस खेल को खेलते हुए खिलाड़ी रात्रि म छिप

1 फेंकना। 2 बाप, पिता।

जाते हैं और पेंत देनेवाला लड़का उनको ढूंढता है। राज न मिलने पर छिपे लड़के "आतीलो पातीलो चम्पा फूल पहाड़िया या माड़िया कहकर अपना स्थान व्यक्त करते हैं और आगे बढ़ जाते हैं। पिदनेवाला लड़का किसको राज कर पकड़ लेता है फिर वह पोन देता है और यह खेल चलता रहता है।

दूसरे प्रकार के खेल शिशुओं के हैं जिनमें भाव तथा में वाणी का प्रयोग होता है। हमने नीचे कुछ प्रचलित शिशु-छन्द खेलों का दिया है।

शिशु जिसकी अवस्था अभी ५ वर्ष तक की है और जिसका संसार घर के अजिर और अधिक से अधिक मुहल्ला तक सीमित है उसके मनोरंजन का तथा उसके समय को व्यस्त रखने का एकमात्र साधन खेल होता है। इस आयु में दौड़ धूप के घर के बाहर के मैदानी खेलों की अपेक्षा वे खेल अधिक उपयोगी होते हैं जो अन्तरंग खेलों के (इन्डोर गेम्स) नाम से पुकारे जाते हैं और जिनमें शिशु की अन्यमनस्कता को दूर करने तथा उसके रोने को बन्द करने की शक्ति होती है। इन खेलों को आवश्यकतानुसार ग्रामीण का बुद्धि कौशल जन्म देता रहता है। ये खेल वाणियों का सहारा लेकर चलते हैं अथवा यों कह लीजिए कि इस प्रकार के शिशु खेलों में वाणी का विलास देखने को मिलता है। मुख्यतः निम्न खेल हैं।

'आटहे बाटहे या आट्टे बाट्टे —खिलानेवाला शिशु को खिलाते समय बालक का एक हाथ अपने हाथ में इस प्रकार रखता है कि बालक की हथेली ऊपर को रहे। फिर दूसरे हाथ से बालक के उस हाथ पर ताली पटकाता हुआ कहता है —

आटहे बाटहे काल के काटहे,
भूरा मोट्टा देख्या हो से बताइयो ॥

इन शब्दों के उच्चारण करते-करते खिलाने वाला अपनी दो अंगुलियों से पैरों की तरह बालक की भुजा पर चलता हुआ कहता है "या पैड़ या पैड़ यू गया यू गया" और भुजमूल तक पहुँच जाता है फिर कुच्छा में गुदगुदाकर कहता है "यू पाया, यू पाया, यू पाया।" बालक खिलखिलाकर हंस पड़ता है।

इसका पाठान्तर यह है —

आट्टे बाट्टे दही चटाक्के,
गोरी गाने आये बाघे ।
या पागी, या पागी, या पागी।

इस पाठ में चरमबिन्दु (क्लाइमैक्स) शीघ्र ही आ पहुँचा है। इसका एक रूपान्तर और भी मिलता है —

बच्चे की हथेली के बीच में उंगली गोलाकार रूप में घुमाते जाते हैं और निम्न प्रकार से पद बोलते जाते हैं। फिर बगल में गुलगुली करते हैं। बच्चा खिलखिला उठता है। पाठ यह है —

गोरी गाय ब्याई है,
गोरी बाच्छो ल्याई है,
न्यायो धुवाइ है,
धारी कुड़ाइ है,
खोजा, खाजा,
यह लादी रे, यह लादी।

'भूत्ती चढाणा' —एक बालक बैठ जाता है। दूसरा उसकी पीठ को थपथपाता है और यह बोलता जाता है।

काली कतरनी बाजा केस,
चढ चढ भूत्ती मगरा देस॥

कुछ देर तक इस प्रक्रिया से उस बालक को भूतली चढ जाती है। वह अचेतन सा होकर गिर पड़ता है। खिलानेवाले लड़के उसे चिढाते हुए इधर उधर भागते हैं। भूतग्रस्त लड़का किसी दूसरे लड़के को छूने के लिए दौड़ता है। जो छू लिया जाता है। उस पर फिर भूती चढाई जाती है और खेल आगे बढ़ता है।

'मकड़ी चढाना' — यह खेल उपरोक्त खेल से मिलता-जुलता है। वर्णन उसी प्रकार है। वचन ये हैं —

चढ चढ मकड़ी महादेराणी,
आवेगा सक्का देगा धक्का।
आवगी आल देगी गाल।

ऐसा कहते कहते खिलानेवाले उसे खूब हिलाते और झकझोरते हैं। फिर पूछते हैं "खार खागा कै राबड़ी" यदि वह खीर कहता है तो लड़के उसे थपियाते[1] हैं और यदि राबड़ी कहता है तो समझा जाता है कि मकड़ी चढ गई है और लड़का बावला हो गया है। लड़के भाग जाते हैं। बावला बना लड़का उन्हें पकड़ने का प्रयत्न करता है। जिसे छू लेता है उसे दांत देना होता है। खेल आगे बढ़ता है।

---

१ पीटते हैं।

'कुकड़म कुकड़ा' :—एक लड़का अपने सिर पर हाथ रखकर बैठ जाता है। दूसरे लड़के मुट्ठी बांध कर खड़े हो जाते हैं और यह वाणी बोलते जाते हैं —

कुकड़म कुकड़ा कितना बोझ।
एक पलो तार ले सौमण बोझ॥

इस प्रकार वचन कहकर एक एक मुट्ठी हटाते जाते हैं। अंत में जब सब मुट्ठियां हटा ली जा चुकती हैं तो उसके हाथ पीछे को खींच लेते हैं और उसे गिरा देते हैं।

'खाजी लगड़ा' —खेलनेवाले सबसे बड़े बालक को चुनते हैं और खूँटा बनाते हैं। उससे छोटा लड़का उस खूंटे को कसकर पेट से पकड़ता है। फिर उससे छोटा लड़का दूसरे के पेट को इसी प्रकार पकड़ता है। फिर उससे छोटा, फिर उससे छोटा अपने से अगले के पेट को कसकर पकड़ लेते हैं। इस प्रकार ये पंक्तिबद्ध हो जाते हैं और बैठ जाते हैं। तब एक लगड़ा खाजी खखारता मठारता आता है। खूंटे उससे पूछता है कौन? उत्तर मिलता है—'खाजी लगड़ा' फिर खाजी लगड़ा जिज्ञासा रूप से पूछता है, "राजा जी के बाग में के बोया से?" उत्तर मिलता है, "काकड़ी खरबूजा बैंगण वाड़िया का छा।" खाजी लगड़ा पूछता है, "पक्की या कच्ची?" और सब लड़कों के ठोल मार मार कर देखता है, और फिर पंक्ति के अंत के सबसे छोटे लड़के के पेट पकड़कर खींचता जाता है (अर्थात्) उसे अपहरण करने का अभिनय करता जाता है। जिसे यह अपहरण कर लेता है। वह खाजी लगड़े की पार्टी में सम्मिलित होता जाता है।

'ठेकरी' —यह खेल शरत्काल में धूप में खेला जाता है। लड़के कुंडलाकार बैठ जाते हैं। किसी एक के हाथ में एक ककरी दे दी जाती है। एक लड़का कुंडल के बीच में बैठता है। वह राजा भोज होता है। तब एक लड़का गोल कुंडल में से बोलता है —

मरण गरण की ठेकरी, सरणाटा करती जा।
कहियो राजा भोज ने भो के जिनावर जा॥

इस बीच में वह ककड़ी आगे पीछे बढ़ा दी जाती है। इस प्रश्न को सुनकर राजा भोज ककड़ीवाले लड़के को पहचानने की चेष्टा करता है। यदि पहचान जाये तो ठीक है नहीं तो यही प्रश्न दुबारा किया जाता है। यदि राजा भोज तीन बार उस लड़के को न पहचान सके ... ... का घोड़ा बनाया जाता है। एक हाथ और एक पांव आपस में बांध ... ... है

उसे एक फरड़ा दे दिया जाता है। तब कोई बालक राजा के वजीर से पूछता है, "कितने रुपये लेगा इस भड़ के 'यदि उत्तर मिले अस्सी तो सारे बालक कह उठते हैं "तेरे सिर में मारूं कस्सी।" बालक भाग जाते हैं। झोटा उस फरड़े से उन्हें छूने की कोशिश करता है जो छू लिया जाता है, वह राजा भोज बनता है और खेल का दूसरा दौर आरंभ हो जाता है।

"बुढ़िया के टोह् थे" —यह एक संवादयुक्त खेल है। एक बालक रेत में अपने हाथ को इस प्रकार फेरता है जैसे कुछ ढूंढ रहा हो। खिलाने-वाला उससे पूछता है —

बुढ़िया री बुढ़िया के टोह् थें ?
सुई टोहू सू।
सुई का के करैगी ?
कोथला सीम्यूगी।
कोथला में के घाल्लैगी ?
रपय्ये घल्लूगी।
रपय्यां का के करगी ?
म्हैंस ल्याऊगी।
म्हैंस का के करैगी ?
दूध पीऊंगी।
मूत पीले री मूत पी ले री।

कहकर सब भाग जाते हैं।

बालक को पैरों पर झुलाने का—झुलाने वाला खाट आदि ऊँचे स्थान पर बैठकर अपने पैरों को मिलाकर उन पर बालक को बैठा लेता है। फिर पैरों से आगे पीछे करके झुलाता जाता है और यह बोलता जाता है —

गोर गडी भई गोर गडी,
बन्ना छोट्टा बहू बडी।
गोर गडी भई गोर गडी,
सास्सू छोटी बहू बडी।
जितणे मास्सू पाथीरयावै,
उतणे बहू बिनौले खावै।

'महमूद का टट्टू' —खेल में दो दल हो जाते हैं। एक दल के सब लड़के घोड़ी बनते हैं और झुक कर खड़े हो जाते हैं। दूसरे

दल के सब सवार बनते हैं। उन सवारों में से एक सवार अपनी घोड़ी की आंख मीचकर और अपने हाथ की उंगलियों में से कुछ को उठाकर पूछता है —

इंन कला पर कीन कला,
महमूद के टट्टू के यारो ?

उत्तर सही होने पर घोड़ी सवार और सवार घोड़ी बन जाते हैं। गलत होने पर वह सवार उस बतलाई हुई संख्या को उच्चारण करता हुआ कहता है —

'चार (एक, दो, तीन आदि) का मार्‌या टेकड़ा।
अगली घोड़ी चढ़ यारो।"

अगली घोड़ी पर जाकर भी इसी प्रकार से प्रश्न होते हैं।

हल्दीघाटी —यह खेल उपरोक्त खेल से मिलता-जुलता है। बस आदि का कथन भिन्न है। शेष उसी प्रकार है। आदि के वाक्य हैं —

हल्दी घाटी जीत के आया,
राणा जी का मान बढ़ाया
क एक बीरो ?

उत्तर अशुद्ध होने पर उसी वचन का उच्चारण करता है जो उपरोक्त खेल के उत्तरार्द्ध में दिया है और अगली घोड़ी पर बदल जाता है।

लोरियां —जब बच्चा रोता है तो उसके मनोविनोदार्थ जो सुखद शब्दावला उच्चारण की जाती है और जिनमें बच्चे को निद्रानिमग्न करने की क्षमता होती है लोरी कहलाती है। माता के भावना पूर्ण हृदय में लोरियों का रत्नाकर हिलोरें लेता रहता है।

दुर[1] आइ रे कुत्ता, दुर आइ रे कुत्ता,
बाणिये की हरदी पादी कुत्ता।
बाणियो बूढ़वा डोकरो,
मेरे बेट्टे ने ल्यावै गुड़ खोपरो[2] ॥

बेट्टे शब्द के स्थान पर नाम भी ले लिया जाता है जो अधिक प्रभावशाली होता है। यथा —

---

[1] भागना। [2] गोला।

मेरे लीलू नैं ल्यावै गुड़ खोपरो, आदि ।

इन लारियों म शब्द की ध्वनि भी बच्चे के ध्यान को आकर्षित करने मे समर्थ होती है । ऐसी ही एक लारी नीचे दी जाती है —

> झल्लड मल्लड दूध बिलोवै
> जाटणी का छोरा रोवै ।
> रोवै सै तो रोवण दे,
> म नै दूध बिलोयण दे ॥ आदि ।

यहा 'झल्लड मल्लड' शब्द की प्रथम ध्वनि ही बच्चे पर प्रभाव डालने में समर्थ होती है ।

घ फुटकर —प्रकीर्ण साहित्य का विवेचन समाप्त करने से पूर्व घरों में बूढ़ली स्त्रियों क ''आशीर्वचांसि'' भी देख लेना असाम्प्रत न होगा । घर में नवागत वधुएँ प्रात साय अपनी सास, जेठानी, दादस आदि के चरणस्पर्श करती हैं जिसे ग्रामीण भाषा में 'पापड़णा' कहते हैं । तब वे अभिवृद्धाए आशीवाद देती हैं । हरियाने की वृद्धाए अपनी वधुओं को इस प्रकार शुभाशी देता हैं —

> बेब्बे बहू ! तू बूढ सुहागण हो, तेरे बेटा हो,
> तेरे भाइ भतीजे जीवें ।

अथवा

> बेब्बे बहू ! तेरा बेट्टा जीवो, तरे मैण पराया यवे रह,
> तेरे भाई भतीज्जे जीवें ।

यह दूसरा आशीवाद विधवा स्त्रियों के लिए है । उसके लिए 'बूढ सुहागण' नहीं कहा जाता । अन्यथा यह अपमानजनक होता है और चरित्र पर आक्षेप करता है । इन आशीषों म उदात्त भावना भरी होती है —

> सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सतु निरामया ।
> सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत् ॥

वास्तव में लोक प्रतिभा का कोइ सा अग और अश देख लीजिए उसम लोकहित का भावना स्रोत प्राप्त मिलेगी ।

किसान भी एक साधु है । वह अपने खेत, क्यार पर प्रात साय, रामनाम की रट लगाये रहता है । कुआ चलाते समय भी वह इस गुरुमन्त्र को नहीं

भूलता। वह कुछ न कुछ उच्चारण करता रहता है जिसे 'धारा' कहते हैं। जब चड़स भर जाता है तो वह कीलिया[1] को सचेत करता है।

"सहार[2] ले रे जल आ भर्यो।"

चरस के ऊपर आने पर वह प्रार्थना करता है—"कीलिया हां! निआइ पे रे राम!" इस प्रकार 'एक पथ दो काज' हो जाते हैं। रामनाम का जप और श्रम विनोदन का कार्य।

यह संक्षेप से हरियानी प्रकीर्ण साहित्य का रूप रहा है। जिसके अवलोकन में पाठक को षटरस मिलते हैं।



१ कीला लगानेवाला। २ खींचने।

सप्तम् अध्याय

हरियानी लोकसाहित्य में प्रादेशिक संस्कृति

हरियानी लोकसाहित्य में प्रादेशिक संस्कृति

हरियाना प्रदेश के लोकसाहित्य का सामान्य विस्तृत अध्ययन कर लेने के उपरान्त अब हम हरियाना की प्रादेशिक संस्कृति पर विचार करते हैं। जैसा कि विगत अध्यायों में दिखलाया गया है, हरियाना भारत के उन प्रदेशों में से एक है जहाँ की संस्कृति ने भारतीय संस्कृति की समष्टि में एक गौरवशाली स्थान प्राप्त किया है। वरेण्य देश भारत के नदी नद, पर्वत उपत्यकाएं, गिरि गह्वर, विस्तृत मैदान एवं षड्ऋतुओं की परिक्रमा, यहाँ की संस्कृति के प्रधान आधार हैं। इन्हीं के प्रांगण में आदि मानव ने उन तत्त्वों की खोज की थी जो मानव की आध्यात्मिक उन्नति के मूल हैं।

विश्व के अणु अणु में आत्मीयता की भावना ही संस्कृति का उज्ज्वलतम पक्ष है। यही भारतीय संस्कृति के मूलमन्त्र—

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्॥"—के रूप

में संसार के सामने प्रकाश-स्तम्भ सदृश खड़ा है। यही वाणी जब हम हरियाने के साधारण पुरुष के मुख से सुनते हैं —"हे भगवान्! सैर राखियो, सब का भला करियो!" तो गद्‌गद् हो जाना पड़ता है कितना उच्च, पावन एवं सर्वजनहितकारी भाव हैं। इस अध्याय में हम हरियाना प्रदेश में लोकसाहित्य में इसी प्रादेशिक संस्कृति का रूप देखेंगे —

एक किंवदन्ती है, जिसे हम पीछे भी दे चुके हैं, "देसां म देस हरियाणा, जित दूध दही का खाणा।" देशों में हरियाना देश विशेष उल्लेखनीय है, जहाँ का भोजन दूध और दही है।

इस प्रसंग में उक्त वाक्य बड़ा सार्थक है। इससे दो अर्थ व्यक्त होते हैं। एक—हरियाणा प्रदेश का पशुधन बड़ा समुन्नत है। यहाँ की गौओं का दूध देने की क्षमता विश्व विश्रुत है। हरियाने की गौ को यदि दूध की खान कहा जाये तो अत्युक्ति न होगी। इन्हीं पयस्विनी गौओं का दूध दही खाकर हरियाना के नवयुवक बलबुद्धि सौन्दर्य में अद्वितीय हैं। लोगों का कहना है कि दूध दही के इस प्रदेश की महिमा ने भगवान् कृष्ण तक को इधर आकर्षित किया था। दूध दही की यह प्रचुरता 'माखनचोर' के दिल में बस गई होगी। आज भी ऐसा विश्वास है कि गौ जब उद्धमुख होकर रंभाती है तो वह उसी कृष्ण की पुकार करती है। दूसरे—'दूध दही का खाणा'

भारतीय संस्कृति के एक बड़े महत्वपूर्ण एवं उज्ज्वल पक्ष की ओर लक्ष्य करता है। भारतीय संस्कृति में दुग्धाहार, फलाहार जैसे सात्विक भोजन की महत्ता बतलाई गई है। फिर भला गो दुग्ध का तो कहना ही क्या है? वह गौ जिसमें सर्वदेव विराजते हैं, उसका दूध आर्य संस्कृति के लिए क्यों न अनुकूल हो। अतः इस उक्ति से स्पष्ट होता है कि यह प्रदेश आर्य संस्कृति का आदि स्थल रहा है।

आज भी यहाँ की भोली भाली जनता में आधुनिक सभ्यता के वे चिह्न नहीं आ पाये हैं जो मांस, मदिरादि भक्षण को सभ्यता का प्रतीक मानते हैं। ये लोग आज भी वैसा ही ऋषि सुलभ जीवन व्यतीत करते हैं जैसा प्राचीन काल में आरण्यक लोग किया करते थे। यह एक उल्लेखनीय बात है कि मुसलमानों के सबसे अधिक सम्पर्क में आनेवाले ये हरियानी निवासी आज भी मुसलमानी सभ्यता से अधिकांश में दूर हैं। इनका जीवन शुद्ध और सात्विक है।

क हरियानी संत सम्प्रदाय

इस जनपद की गौरवगाथा को यहाँ के अनेक साधु महात्माओं ने भी दूर-दूर तक फैलाया है। मुस्लिम धर्म एवं संस्कृति के प्रवाह को रोकने के लिए इन निरीह साधु महात्माओं ने जनता का नेतृत्व किया। इस प्रदेश में यात्रा करनेवाले व्यक्ति को गाँव-गाँव में कोई न कोई समाधि अवश्य मिलेगी जिसका एक न एक साधु के साथ सम्बन्ध रहा है। इन्हीं स्थानों पर ग्रामीण भक्तजन प्रातःकाल तथा संध्या में एकत्र हो उन साधुओं के गीत गाते हैं और कीर्तन करते हैं। इस प्रदेश में वेदान्ती और निर्गुणपंथी अनेक साधु हुए हैं। गोरखपंथ की कीर्ति पताका आज भी 'बोहर अस्थल' पर फहरा रही है और एक तीर्थ स्थान के सदृश कई शताब्दियों के उपरान्त भी सिद्ध जोगियों के प्रभाव को अक्षुण्ण बनाए हुए है। छुड़ानी में, एक ओर यदि गरीबदास अपनी अमर वाणियों द्वारा अनुयायियों का हृदयमोहन कर रहे हैं तो किठौली के महाराज निश्चलदास की संस्कृतज्ञता तथा वेदान्तवादिता का किस विद्वान को ज्ञान नहीं है। दूबलधन माजरा के महाराज नित्यानन्द की लोक-पावन वाणियों के अभाव में कौन व्यक्ति नहीं तड़पता? मदम के मदमी मुसलमान फकीरों की सिद्धि और फक्कड़पन के गीत किसने नहीं सुने? महामती नानगी के सीधे तथा सरल पदों के रसास्वादन से वंचित रह कौन अपने को अभागा नहीं कहता? सहजोबाई ने "चलणा है रहणा नहीं, चलना विस्वे बीस। सहजा तनिक सुहाग पर, कौण गुदावै सीस॥" आदि शब्द संसार

की असारता को प्रकट करते हैं। किंबहुना, इस प्रदेश में चप्पु चप्पु में ब्रह्म, वेद, वेदान्त, सिद्ध और साध की सुगन्धि भरी पड़ी है। जहाँ तक मधुरता, आचार की उच्चता, तथा जीवन की श्रेष्ठता का सम्बन्ध है यह प्रदेश ब्रजमंडल और कायापुरी के समान ही है। नाना संप्रदायों एवं अनेक मतमतान्तरोंवाले इस प्रदेश में एक लोकधर्म के दर्शन होंगे। इस धर्म के माने जाते हैं—सरलता, सत्यता और साधुता। इन महात्माओं का इस प्रदेश में इतना प्रभाव है कि छोटे-बड़े सभी लोगों को इनकी वाणियाँ कंठाग्र हैं। हम यहाँ बाबा गरीब दास जी की एक वाणी आदर्श रूप में उद्धृत करते हैं —

चितावनी के अंग में से

गरीब पानी की अलबूँद से, साज बनाया जीव।
अन्दर बहुत अंदेशा था, बाहर बिसरिया पीव॥
गरीब पानी की अलबूंद से साज बनाया साथ।
राखन हारा राखिया जठराग्नि की आंच॥
गरीब पानी की अलबून्द से, साथ बनाया साथ।
कौड़ी बदले जात हैं, कंचन माटे कांच॥
गरीब धरयाधर जान्या नहीं, नित बिरज्या सनमाज।
चेत सकै तै चेतिये, बिगर जायगा काज॥
गरीब आध घड़ी को अधघड़ी, आध घड़ी की आध।
साधों सेती गोष्टी, जो कीजे सो लाभ॥
गरीब अन्न समय बीतै घनी, तन मन धरै न धीर।
उस साईं क याद कर, जिन यह घरिया शरीर॥
गरीब मस्त हेत घर बाँधिया, आगे महल मसान।
इ साहिब जान्या नहीं, भूल्या मूढ़ जहान॥
गरीब या आगे क महल म मगन भेया क्यूं मूढ़।
कर साहिब की बन्दगी उस माहं कूं ढूँढ॥

पिछले ७०-८० वर्ष से समाज सुधार की भावना से ओत प्रोत आर्य धर्म—वैदिक धर्म—का प्रचार आर्य समाज के द्वारा विशेष हुआ है। जिससे इन प्राचीन मठ व मन्दिरों के प्रति उत्साह कम हो गया है। किन्तु यहाँ के शिवालय किसी भी पर्यटक का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किये बिना नहीं रह सकते। कई विद्वान हर (शिव) का स्थान मानकर ही इसे 'हरयाणा' कहना उचित समझते हैं। उनका तर्क है कि रोहतक अथवा रोहतकारण्य कार्तिकेय जी को प्रिय था। पश्चिम

के लिए नकुल अथ खाण्डवप्रस्थ.

से चले तो वे धन धान्य से पूर्ण स्वामी कार्तिकेय के प्रिय प्रदेश रोहीतक में पहुंचे।[1] इस प्रकार यह प्रदेश शिव-परम्परा में प्रिय रहा है और आज भी शिव मंदिर शिव की महत्ता प्रकट कर रहे हैं।

ख हरियाना की भूमि

यमुना के खादर से पश्चिम में एक ऊंची उठी हुई भूमि है जिसे बागड़ के नाम से पुकारा जाता है। यह पंचनद और गंगा के दोआबे को पृथक् करने वाला वह ऊंचा उठा हुआ भूभाग है जो जलविभाजन (Watershed) के रूप में स्थित है। बागड़ से पूर्व को बहनेवाली नदियां बंगाल की खाड़ी में जाती हैं और पश्चिम को बहनेवाली नदियां अरब सागर में। यह भाग वर्षा के अभाव से पीड़ित रहता है।

१ पानी की न्यूनता

नदियां किसी भी देश के लिए बड़ी महत्त्वपूर्ण होती हैं। इस दिशा में यह प्रदेश सुभग नहीं कहा जा सकता। इस भूभाग में प्रागैतिहासिक काल में ३६० नदियां बहती बतलाई जाती हैं किन्तु आजकल उन प्राचीन एवं पवित्र नदियों में से केवल दो नदियां के काठे हैं। वे वर्षा काल में बहकर यहीं अपने को विलीन कर लेती हैं। नदियों के अभाव में यहां बड़े बड़े सर सरोवर बनाने की ओर जनता का विशेष ध्यान है। तालाब एवं बावड़ी बनाने का यहां विशेष महत्व है। रामरा, पिंडारा और कुरुक्षेत्र[2] के पावन सरोवरों में आज भी सहस्रश यात्री सुदूर भारत के कोने कोने से आकर स्नान करते हैं। इन्हीं सरोवरों के किनारे मेले भी लगते हैं। एक उक्ति के अनुसार किसी पुरुष की प्रसिद्धि, तालाब खुदवाने से तथा बाग लगवाने से, अधिक होती है। इनमें प्रथम जल का आशय तथा बागबगीचा वर्षा का कारण है।

इस प्रदेश का एक नाम हरितन रहा है। यह हम पीछे स्पष्ट कर आये हैं। इसके कुछ अवशेष आज भी दिखलाई पड़ते हैं। हरियाना के प्राय सभी ग्रामों के आसपास बड़ी-बड़ी 'बनियां' छूटी हुई हैं जिनमें पीलु वृक्ष विशेष रूप से पाये जाते हैं। प्राचीन किंवदन्ती तथा काव्यों में जांगल देश के

---

[1] ततोऽनुपमरम्य गवाढ्य धनधान्यवत्।
कार्तिकेयस्य दयितं रोहीतकमुपाद्रवत्॥ सभापर्व अध्याय ३५ श्लोक ४

[2] रामरा और पिंडारा दो प्रसिद्ध तीर्थस्थान रियासत जींद में हैं। कुरुक्षेत्र तो एक ऐतिहासिक प्रसिद्ध स्थान है।

लिए कहा गया है कि वहा पीलू और बेर के वृक्ष अधिक संख्या में होते हैं। राजस्थान के प्रसिद्ध 'ढोलामारू' किस्से में मारवाड़ का जो वर्णन मालवणी करता है वह पर्याप्त रूप में बागड़ प्रदेश पर भी घटता है। मालवणी के वचन देखिए —

"बालउ बाबा देसड़उ, पाणी जिहां कुवाह।
आधारात कुहुक्कड़ा, ज्यउं माणसां मुवाह॥"

बाबा! ऐसा देश जलादूँ जहा पानी गहरे कुओं में ही होता है, जिसे निकालते हुए लोग आधीरात में चिल्लाने लगते हैं —

मारू! थांकए देसड़इ एक न भाजइ रिड्ड,
ऊचालउ अबरसणउ, कर फाकउकर तिड्ड।

मारू! तुम्हारे देश में एक भी दुःख दूर नहीं होता है कभी अकाल के मारे दूसरे देश को भागना, कभी अनावृष्टि और कभी टिड्डियों का आक्रमण, एक न एक आतंक लगा ही रहता है —

जिणभुइ पन्नग पीयणा, कैर कंटाला रूख,
आके फोगे छांहड़ी, हूं छा भाज्इ भूख[1]।

जिस भूमि में पानेवाले साप हैं, करील और कटैली ही रूख हैं, जहां आक और फोग के पत्तों की ही छाया है और जहां भुरट नामक कटीली घास के दानों को खाकर लोग भूख भगाते हैं, भला वह देश भी कोई देश है। 'मारू' देश की ये विशेषताएं कई रूपों में हरियाना प्रदेश में भी मिलती हैं। पानी की अत्यधिक कमी ने देश की दशा को बड़ी दयनीय बना दिया है। प्रकृति इस देश के प्रति सदय नहीं है। हरियाने का पिछला इतिहास यह बतलाता है कि यहां पर अनेक बार बड़े भीषण एवं लोमहर्षक अकाल पड़े हैं। एक रूप से तो हरियाना को समझने के लिए अकालों का इतिहास जानना अत्यावश्यकीय है। प्रत्येक अकाल ने जनता के मनस् पर अपनी स्मृति की रेखाएं छोड़ी हैं जिनमें दैन्य है और है परिस्थिति का एक तथ्य निरूपण। ये वे दुर्भिक्ष हैं जिन्होंने ग्रामीण जनता के इतिहास में युग निर्माण किये हैं।

२ अकालों की भीषणता

इन अकालों का स्वरूप दो प्रकार का होता है—अनाज का काल और चारे का काल। अकालों में सबसे भीषण एवं घातक अकाल 'चालीसा'

१ नागरी प्रचारिणी पत्रिका सं० १९९४ पृष्ठ ४२२ 'ढोलामारू रा दूहा' का परिचय श्री मुन्शी अजमेरा लिखित।

(१८४० संवत्) का हुआ है। उसका वर्णन 'दि राजाज़ आव दि पंजाब' में बड़े मार्मिक ढंग से किया गया है। इसके बाद अगले सौ वर्षों में कई अकाल तार या तांता बांधकर पड़े हैं। इनमें *नबिया, सत्तरा, चौंतीसा* और *छप्पनिया काल* की कहानियां आज भी ग्रामीण जनता को रोमांचित कर देती हैं। इन सबके गीत वर्णन आज भी उपलब्ध हैं जो श्रोता को भयावह परिस्थिति में डाल देते हैं। ये गीत एक बड़ी संख्या में मिले हैं परन्तु यहां हम केवल एक दो गंभीर एवं भीषण परिस्थिति का वर्णन करनेवाले गीत ही देंगे। सं० १९१७ में जो 'सत्तरा' नामक 'काल' पड़ा उसका वर्णन एक अकाल गीत में इस प्रकार आया है —

पड़ते अकाल जुलाहे मरे, और बिच में मरे तेली,
उतरते अकाल बनिये मरे, रुपये की रहगी धेली।
चणा चिरौंजी हो गया, अर गेहूं होगे दाख,
सत्तरह भी ऐसा पड़ा, चालीसा का बाप ॥

अकाल के आरम्भ में जुलाहे मरे और मध्य में तेली मरे। अकाल की समाप्ति पर वैश्य मरे क्योंकि उनके ऋण को आधा ही चुकाया गया, इस १९१७ के अकाल में चना, चिरौंजी मेवा के रूप में महंगा बिका और गेहूँ अंगूर जैसा तेज हो गया। इस अकाल की भीषणता चालीसा सं० १८४० के अकाल से कई गुना अधिक थी। एक दयनीय दशा है और जीवनोपयोगी वस्तुओं का अत्यन्त अभाव है कि चना चिरौंजी के भाव में तथा गेहूँ अंगूर और द्राक्षा के भाव भी न मिले। अन्नाभाव में प्राणी की क्या दशा हुई होगी—अनुमान का विषय है। एक दूसरे 'अकाल गीत' में किसान की दुर्दशा का लोमहर्षक चित्र दिया गया है —

जीगे बणिया मरगे जाट,
टूटगी गड्डी मरगे बैल,
बे मुकलाया[1] होगी गैल।

अकाल पड़ने पर जाट (किसान) मर गये। बनिया व्यापारी का बड़ा लाभ हुआ। किसान की गाड़ी लदते-लदते टूट गई और बेचारे बैल भी मर गये। किसान की पुत्री बिना गौना हुए अपने सासरे चली गई। इतनी आपत्ति आई कि पिता ने अपनी लाड्डो को विवश होकर गौने की प्रथा बिना किये ही पति के यहां लदा दिया, भेज दिया। प्रथाभुक्त पिता के लिए कितना कष्टकारक यह दृश्य रहा होगा?

---

१ गौना।

एक अगले अकाल चौंतीसा में सं० १९३४ में किसान और उसके सहयोगी साधनों पर जो विपत्ति पड़ी उसका रोमांचकारी वर्णन निम्न पंक्तियों में मिलता है —

एक रोटी को बैल बिका, अर पैसा बिक गया ऊँट।
चौंतीसा नै खोदिया, भैंस गाय का बट[1]।
चौंतीसा नै चौंतीसा मारे, जिये बैश कसाई।
बोह मारै लकड़ी, अर उसने छुरा चलाई॥

इस चौंतीसा अकाल में बैल की कीमत एक रोटी था और ऊँट एक पैसे में बिका। भैंस और गाय का तो वंश ही समाप्त हो गया। इस चौंतीसा ने छत्तीस जातियों में से चौंतीस मार दीं। केवल दो जातियाँ वैश्य और कसाई बचीं। वैश्य अपनी तराजू से जीवित रहे और कसाई सस्ते पशु खरीदकर और उनका मांस बेचकर लाभ उठाते रहे। इन कालों की भीषणता ने सरकार की आँखें खोलीं और पश्चिमी जमना नहर के निकलने से अकालों की वह भयंकरता तो कतिपय रूप में दूर हो गई किन्तु एक विस्तृत भूभाग दैव दुर्विपाक से बहुत पीछे तक पीड़ित रहा।

इन अकालों का प्रभाव इतना पड़ा कि कन्या देने में पहिले यह सोचा जाने लगा कि जिस गाँव में कन्या दी जा रही है वह बैरानी (शुष्क) तो नहीं है। अपने जीवन निर्वाह के लिए कृषक यह चाहता रहता था कि कुछ भूमि उन्हें नहर पर मिल जाये। एक बहन अपने भाई से कहती है कि भाई! सम्मान के लिए नहरी खेती करो—"मेरे भैय्यो ने, नहरा पै धरती जोआवै।" बहन को भय है कि बैरानी गाम का भाई एक दीर्घकाल तक कुंवारा ही न रह जाये। बहन को भाई की गृहस्थी की चिंता है।

इसके साथ यह भी जान लेना उपयुक्त होगा कि जलहीन हरियाना स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से बड़ा प्रसिद्ध प्रदेश है। यह संसार के स्वास्थ्यप्रद देशों में से एक है। यहाँ के तीर जैसे सीधे, हृष्ट पुष्ट नवयुवक अलभ्य स्वास्थ्य का आनंद लेते हैं। शौर्य एवं स्वास्थ्य के हेतु यहाँ के नवयुवक प्रागैतिहासिक काल से बड़े जीवट सैनिक रहे हैं। भारत की विख्यात कहानियों की हरावल में यहीं के वीर सैनिक होते थे। महाराज मनु का आदेश है कि महाकाय, शीघ्रगामी, तथा फुर्तीले कुरुक्षेत्रीय, विराट देशीय, कान्यकुब्ज और अहिच्छत्र प्रान्तीय एवं शूरसेन प्रदेशीय जनों को सेनाग्र में रक्खा जाये।[2] कुरुक्षेत्र तथा पानीपत के सुविस्तृत मैदान हरियानी नवयुवकों की ओजमयी स्नायुओं में आज भी शक्ति संचार करते हैं।

---

१ वंश। २ मनुस्मृति, अध्याय ७, श्लोक १९३

(१८४० संवत्) का हुआ है। उसका वर्णन 'दि राजाज आव दि पंजाब' में बड़े मार्मिक ढंग से किया गया है। इसके बाद अगले सौ वर्षों में कई अकाल तार या तांता बांधकर पड़े हैं। इनमें ननिया, सत्तरा, चालीसा और छप्पनिया काल की कहानियां आज भी ग्रामीण जनता को रोमांचित कर देती हैं। इन सबके गीत वर्णन आज भी उपलब्ध हैं जो श्रोता को भयावह परिस्थिति में डाल देते हैं। ये गीत एक बड़ी संख्या में मिले हैं परन्तु यहां हम केवल एक दो गंभीर एवं भीषण परिस्थिति का वर्णन करनेवाले गीत ही देंगे। सं० १६१७ में जो 'सत्तरा' नामक 'काल' पड़ा उसका वर्णन एक अकाल गीत में इस प्रकार आया है —

पड़ते अकाल जुलाहे मरे, और बिच में मरे तेली,
उतरते अकाल बनिये मरे, रुपये की रहगी धेली।
चणा चिरौंजी हो गया, अर गेहूं होगे दाख,
सत्रह भी ऐसा पड़ा, चालीसा का बाप ॥

अकाल के आरम्भ में जुलाहे मरे और मध्य में तेली मरे। अकाल की समाप्ति पर वैश्य मरे क्योंकि उनके ऋण को आधा ही चुकाया गया, इस १६१७ के अकाल में चना, चिरोंजी मेवा के रूप में महंगा बिका और गेहूँ अंगूर जैसा तेज हो गया। इस अकाल की भीषणता चालीसा सं० १८४० के अकाल से कई गुना अधिक थी। एक दयनीय दशा है और जीवनोपयोगी वस्तुओं का अत्यन्त अभाव है कि चना चिरौंजी के भाव में तथा गेहूँ अंगूर और द्राक्षा के भाव भी न मिले। अन्नाभाव में प्राणी की क्या दशा हुई होगी—अनुमान का विषय है। एक दूसरे 'अकाल गीत' में किसान की दुर्दशा का लोमहर्षक चित्र दिया गया है —

जीगे बणिया मरेंगे जाट,
टूटगी गड्डी मरगे बैल,
धै मुकलाया[1] होगी गैल।

अकाल पड़ने पर जाट (किसान) मर गये। बनिया व्यापारी का बड़ा लाभ हुआ। किसान की गाड़ी लदते-लदते टूट गई और बेचारे बैल भी मर गये। किसान की पुत्री बिना गौना हुए अपने सासेर चली गई। इतनी आपत्ति आई कि पिता ने अपनी लाड़ली को विवश होकर गौने की प्रथा बिना किये ही पति के यहां सदा दिया, भेज दिया। प्रथायुक्त पिता के लिए कितना कष्टकारक यह दृश्य रहा होगा?

१ गौना।

एक अगले अकाल चौंतीसा में सं० १९३४ में किसान और उसके सहयोगी साधनों पर जो विपत्ति पड़ी उसका रोमांचकारी वर्णन निम्न पंक्तियों में मिलता है —

एक रोटी को बैल बिका, अर पैसा बिक गया ऊंट।
चौंतीसा नै खोदिया, भैंस गाय का बूंट[1]।
चौंतीसा नै चौंतीसा मारे, जिये वैश कसाई।
वोह मारे तकड़ी, यह उसने छुरा चलाई॥

इस चौंतीसा अकाल में बैल की कीमत एक रोटी थी और ऊँट एक पैसे में बिका। भैंस और गाय का तो वंश ही समाप्त हो गया। इस चौंतीसा ने छत्तीस जातियों में से चौंतीस मार दीं। केवल दो जातियाँ वैश्य और कसाई बचीं। वैश्य अपनी तराजू से जीवित रहे और कसाई सस्ते पशु खरीदकर और उनका मांस बेचकर लाभ उठाते रहे। इन कालों की भीषणता ने सरकार की आँखें खोलीं और पश्चिमी यमुना नहर के निकलने से अकालों की यह भयंकरता तो कतिचित् रूप में दूर हो गई किन्तु एक विस्तृत भूभाग दैव दुर्विपाक से बहुत पीछे तक पीड़ित रहा।

इन अकालों का प्रभाव इतना बढ़ा कि कन्या देने से पहिले यह सोचा जाने लगा कि जिस गाँव में कन्या दी जा रही है वह बराना (शुष्क) तो नहीं है। अपने जीवन निर्वाह के लिए कृषक यह चाहता रहता था कि कुछ भूमि उन्हें नहर पर मिल जाये। एक बहन अपने भाई से कहती है कि भाई! सम्मान के लिए नहरी खेती करो—"मेरे भैय्यो नै, नहरां पै धरती बोआवै।" बहन को भय है कि बैरानी गाँव का भाई एक दीर्घकाल तक कुंवारा ही न रह जाये। बहन को भाई की गृहस्थी की चिंता है।

इसके साथ यह भी जान लेना उपयुक्त होगा कि बलवान हरियाना स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से बड़ा प्रसिद्ध प्रदेश है। यह संसार के स्वास्थ्यप्रद देशों में से एक है। यहाँ के तीर जैसे सीधे, हृष्ट पुष्ट नवयुवक अलभ्य स्वास्थ्य का आनंद लेते हैं। शौर्य एवं स्वास्थ्य के हेतु यहाँ के नवयुवक प्रागैतिहासिक काल से बड़े जीवट सैनिक रहे हैं। भारत की विख्यात कहानियों की हरावल में यहीं के वीर सैनिक होते थे। महाराज मनु का आदेश है कि महाकाय, शीघ्रगामी, तथा फुर्तीले कुरुक्षेत्रीय, विराट देशीय, कान्यकुब्ज और अहिच्छत्र प्रान्तीय एवं शूरसेन प्रदेशीय जनों को सेनाग्र में रखा जाय।[2] कुरुक्षेत्र तथा पानीपत के सुविस्तृत मैदान हरियानी नवयुवकों की ओजमयी स्नायुओं में आज भी शक्ति संचार करते हैं।

---

१ वंश। २ मनुस्मृति, अध्याय ७, श्लोक १९३

एक अगले अकाल चौंतीसा में सं० १८३४ में किसान और उसके सहयोगी साधनों पर जो विपत्ति पड़ी उसका रोमांचकारी वर्णन निम्न पंक्तियों में मिलता है —

एक रोटी को बैल बिका, अर पैसा बिक गया ऊट।
चौंतीसा ने खोदिया, भैंस गाय का बट[1]।
चौंतीसा ने चौंतीसा मारे, चिये वैश कसाई।
भोइ मारे सर्गी, अर उसने छुरा चलाइ॥

इस चौंतीसा अकाल में बैल की कीमत एक रोटी थी और ऊँट एक पैसा में बिका। भैंस और गाय का तो वंश ही समाप्त हो गया। इस चौंतीसा ने छत्तीस जातियों में से चौंतीस मार दीं। केवल दो जातियां वैश्य और कसाई बचीं। वैश्य अपनी तराजू से जीवित रहे और कसाई सस्ते पशु खरीदकर और उनका मांस बेचकर लाभ उठाते रहे। इन कालों की भयंकरता ने सरकार की आँखें खोलीं और पश्चिमी यमुना नहर के निकलने से अकालों की वह भयंकरता तो कथंचित् रूप में दूर हो गई किन्तु एक विस्तृत भूभाग दैव दुर्विपाक से बहुत पीछे तक पीड़ित रहा।

इन अकालों का प्रभाव इतना था कि कन्या देने से पहिले यह सोचा जाने लगा कि जिस गाँव में कन्या दी जा रही है वह नैराना (शुष्क) तो नहीं है। अपने जीवन निर्वाह के लिए कृषक यह चाहता रहता था कि कुछ भूमि उन्हें नहर पर मिल जाये। एक बहन अपने भाई से कहती है कि भाई! सम्मान के लिए नहरी खेती करो—"मेरे मैय्यो ने, नहरा पै धरती नौआने।" बहन को भय है कि नैरानी गाँव का भाई एक दीर्घकाल तक कुंवारा ही न रह जाये। बहन को भाई की गृहस्थी की चिंता है।

इसके साथ यह भी जान लेना उपयुक्त होगा कि जलहीन हरियाना स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से बड़ा प्रसिद्ध प्रदेश है। यह संसार के स्वास्थ्यप्रद देशों में से एक है। यहां के वीर जैसे सीधे, हृष्ट पुष्ट नवयुवक अलभ्य स्वास्थ्य का आनंद लेते हैं। शौर्य एवं स्वास्थ्य के हेतु यहां के नवयुवक प्रागैतिहासिक काल से बड़े जीवट सैनिक रहे हैं। भारत की विख्यात कहानियों की हरावल में यहीं के वीर सैनिक होते थे। महाराज मनु का आदेश है कि महाकाय, शीघ्रगामी, तथा फुर्तीले कुरुक्षेत्रीय, विराट देशीय, कान्यकुब्ज और अहिच्छत्र प्रान्तीय एवं शूरसेन प्रदेशीय जनों को सेनाग्र में रखा जाये।[2] कुरुक्षेत्र तथा पानीपत के सुविस्तृत मैदान हरियानी नवयुवकों की ओजमयी स्नायुओं में आज भी शक्ति संचार करते हैं।

---

१ वंश। २ मनुस्मृति, अध्याय ७, श्लोक १९३

ग हरियाना में प्रचलित विश्वास

१ अंधविश्वास (Superstitions)

हिन्दुओं के यहा श्रद्धा एव मूढ विश्वास धार्मिक उपचार तथा प्रथाओं में सम्मिलित किये गये हैं। या कहा जाय कि धर्म और विश्वास एक ही वस्तु है तो कुछ सीमा तक कोइ आपत्ति न होगी। हरियाने के हिन्दू जीवन मे असख्य अधविश्वास माने जाते हैं जिनमें से कृषि तथा पशु सम्बन्धी कुछ मूढ विश्वास निम्नलिखित हैं —

जुताइ हलोटिया के प्रारभ के लिए मगलवार वर्जित माना जाता है। बुधवार विशेषत शुभ दिन माना जाता है। यहा एक उक्ति प्रचलित है 'बुद्ध बावनी सुक्कर लावनी' अर्थात् बुद्ध को बुआई आरम्भ करनी चाहिए और शुक्र को कटाई, किंतु रोहतक जिले म हलकर्षण के लिए बुधवार अमगलकारी एव अशुभ माना जाता है। प्रत्येक पक्ष की प्रतिपद् अथवा चतुर्दशी को जुताई और बोनाइ प्रारम्भ नहीं की जाती। आश्विन मास के प्रथम १५ दिन पितृपक्ष, श्राद्धपक्ष या कनागत के नाम से पुकारे जाते हैं। इन दिनों बुआइ करना अहितकर माना जाता है।

खेती के पशु विशेषकर बैलों का अमावस्या के दिन काम म नहीं लाया जाता। यदि अबाध आवश्यकता उपस्थित हो तो अपराह्न म काम में ला सकते हैं। माघ मास म सक्राति (सकरात) के दिन कुआ चलाना निषिद्ध माना जाता है। उस दिन गाड़ी अथवा हल भी नहीं चलाया जाता। पशुओं को विशिष्ट रूप से चारा दिया जाता है। लोक विश्वास है कि जैसी अवस्था में सक्राति बैठती है वैसी ही अवस्था वर्ष भर रहेगी।

पशु क्रय विक्रय के लिए मगल व शनिवार अशुभ माने जाते हैं। रोहतक जिलों म पशु विक्रय के लिए बुधवार भी अमगलकर माना जाता है। भम या दुधार पशु का क्रय विक्रय शनिवार को वर्जित माना जाता है। खरादा हुआ पशु आदि स्वामी के घर आते ही चौथ (गोबर) करे तो उसका टीका लगा लेना शुभ माना जाता है।

जब कभी पशुरोग फैल जाता है तो फलसा (ग्रामद्वार) के बीचाबीच रज्जु म एक मराइ, जिस पर काली-पाली टिकलिया बना दी जाती हैं, लटका दी जाती है। रस्सी को लकड़ी की कीलों से कस दिया जाता है। लोक विश्वास है कि जो पशु इस रस्सी के नीचे से निकल जायेगा, वह रोग से मुक्त हो जायेगा। इसी प्रकार का एक विश्वास लोक कहानियों म आता है

कि तिल और जौ बोने से आपत्ति टल जाती है। जादू की कहानियों में जादू के लिए नीला डोरा अपेक्षित होता है। गांव में जब कुआं खोदा जाता है अथवा कुआं चलाया जाता है तो हनुमान जी की मढ़ी बनाई जाती है। विश्वास है कि ऐसा करने से समस्त कार्य निर्विघ्न समाप्त हो जाते हैं और पानी मीठा निकलता है[1]।

२ अन्य विश्वास तथा शकुनविचार

नेती-क्यारी सम्बन्धी मूढ़ विश्वासों के अतिरिक्त हरियाने की जनता अनेकानेक विश्वासों को मानने की अभ्यस्त है। उनके जीवन में तरह-तरह की रूढ़ियां स्थान बनाये हैं और जनता में धर्म की नाना व्यवस्थाएं प्रचलित हैं। इनमें से कुछेक ये हैं —

कोई व्यक्ति जब अपने घर से बाहर यात्रा आदि पर निकलता है, अथवा व्यापार के लिए विदेश जाता है, और उस समय उसके सम्मुख यदि उपलों का दल, ईंधन, खाली या काला ब्राह्मण अथवा सर्प आ जाये तो यह अनिष्टकर तथा अपशकुनकर माना जाता है। एक स्थान पर यह शकुन विचार दिया गया है —

> एकला मृग, दूना साल, कोट चढ़्या मिले गुआल।
> तीन कोस लग मिल जाय तेली, तो मौत निमाये सिर पर खेली॥

यदि यात्रा के मार्ग में एकाकी हिरन मिले, दो सर्प मिलें और भैंसे पर चढ़ा गुआला मिले तो यात्रा के शकुन अच्छे नहीं हैं। यदि उसी यात्री को तीन कोस तक तेली भी मिल जाये तो निश्चय समझिए कि उसकी मृत्यु सिर पर खेल रही है। दोष निवृत्ति के लिए इन्हें वामांग करके निकल जाना चाहिए। इसी प्रकार किसी उद्देश्य विशेष के लिए जाते हुए पुरुष के सम्मुख यदि हिरन और हिरनी बायें से दायें का मार्ग काट जायें तो सुन्दर शकुन माने जाते हैं। यदि ये ही दायें से बायें का मार्ग काट दें तो कार्यपूर्ति में विघ्न होता है। पनिहारी जलपूर्ण दो कलश लेकर यदि सामने आये तो

---

१ हरियाना प्रांत के बहुत से भाग में पानी की—विशेषकर पीने के पानी की महान् कठिनाई है। पानी पृथ्वी में गहरे स्थान पर है और बहुधा खारा है। दुर्भाग्य की बात है कि श्रद्धा के साथ एक विपुल धनराशि व्यय करके कुआं खोदा जाये फिर भी वह खारा निकले। अतः जनता अनेकानेक देवी देवताओं की मान्यता करके ही ऐसे कार्यों में हाथ डालती है।

शुभ शकुन माना जाता है। अनाज व मिष्टान लाते हुए पुरुष मिलें तो भी शुभ शकुन होता है।

कौआ, मृग, सर्प और गरुड़ का शुभ शकुनकारी बतलाया गया है। परिस्थिति की विशेषता अनिवार्य है। एक दोहे में जनता के सगुन इस प्रकार कहे गये हैं —

> कागा मिरगा दाहिने बाए विसियर हो।
> गई सम्पत्ति बहावड़े जो गरुड़ सामने हो॥

कौआ और हिरन दक्षिणाग हों, विषधर सर्प वामाग हो, नीलकंठ (गरुड़) सम्मुख हो तो नष्ट हुआ धन भी मिल जाये। एक स्थान पर जमाता की मृत्यु के कारण भी अपशकुन ही कहे गये हैं —

> जब तो घर तैं छीकदया गभरू सेर जुआन।
> हो गया सौण कुसौण गभरू सेर जुआन॥
> बाम्मैं बोल्ली कोतरी, दहयौ बोल्या काग।

यहां कोतरी एक पक्षी विशेष का बाँई ओर बोलना और कौवे का दाईं ओर बोलना शुभ नहीं माना गया है।

एक अन्य स्थान पर रोहिताश्व कुमार के पुष्पचयन से सबधित गीत में अनेक अपशकुन गिनाये गये हैं —

> ठाइ डालदी हाथ कवर नै जिब हिरदा सा हाला,
> होगे सोन कसोन कवर के जिब फूल तोड़ने चाला।
> रीती दोघड़ लिए खड़ी थी पाच सात पनिहारी,
> आगे सी नै मिला बाणिया दे रहा खड़ी बुहारी,
> दरवाजे सगीन चढ़ाए देखे खड़े सिकारी,
> जान गया रोहतास कवर हुई बात गजब की भारी,
> दो साधू आपस में लड़ते देखा ढग निराला।
> सास बहू का जूत बाज रहा देखे खड़ी सहेली,
> छोड़े सात हीजड़े नाचैं पाते खूब हथेली,
> आरा काना तात खवे कै मिला बावना तेली,
> सुनमरा आन कोतरी बोल्ली सिर करदाई खेली,
> काढ दात फिरै करयारी गल चमड़े की माला।
> एक बालक की लाश पास रोवै सिर पीट लुगाई,
> तीन ब्राह्मन नगे पैरां सरप काट गया राही,

खोले केस उघाड़े सिर इक विधवा नजर में आई,
बिना खता मानस नै पकड़े जां से चार सिपाही,
हवालात की फाटक खुल रही सदर का यद ताला।
इस हमनी की नोट भूल गइ सब हेरा फेरी नै,
चरी उठ की ओट मिलो रहा दाव स्यार कहरी नै,
आया नेवर फड़क रह्या था ग्वतरा आन मरी नै,
चिड़गी चलती मुश्किल मै दिया चक्कर काल बैरी नै,
धर्म पाप की हार जीत नै पाप जीत गया पाला।
रहा काटदे जोड़ एक विरराल रूप का हाली,
हिरन लकड़गे आगे कै ओट्टे पै बैठा माली,
छोट्ट बड़े ऊंचे निच्चे पौंदे काटें माली,
शर्मा जी गये बाग बीच पकड़ी कन्नेर की डाली,
लड़का चाहये था फूल तोड़ला निर्भय छप्पा वाला,
होग सौन कमीन कवर के निय फूल तोड़ने वाला॥

रात्रि में काक और दिन म श्रृगाल का बोलना भावी अहित का सूचक माना जाता है। रात्रि में तारों का टूटना मृत्युसूचक माना जाता है। टूटता तारा यदि दीख जाय तो देखनेवाला उसकी ओर थूक देता है जिससे दोष निवृत्ति हो जाती है।

सगाइ अथवा लगन लाने वाले नाइ ब्राह्मण को नमकीन वस्तु अचार आदि नहीं खिलाइ जाती। विश्वास है कि ऐसा करने से सम्बन्ध में मिठास नहीं रहती, उल्टे कड़ुवाहट आ जाती है। विवाह में जो गोरवा[1] पूजन होता है उसमें विश्वास है कि यदि वर वरनी गोरवे की मिट्टी भंडार में रख दें तो भंडार गारवे की भांति भरा रहता है, कमी नहीं आती।

अशुभ संख्या शुभ मानी जाती है किन्तु तीन और तेरह अशुभ। इनका सम्बन्ध मृत्यु के पीछे अशुभ दिनों से है। इस प्रकार तीन तेरह अथवा तेरह तीन व्यर्थ के अर्थ में प्रयोग किया जाता है। तीन को यहाँ तक बचाया जाता है कि यदि एक पुरुष जिसके दो पत्नियां हैं वह तीसरी शादी करना चाहता है तो पहिले उसे किसी वृक्ष से शादी करना होती है और फिर स्त्री से, जो इस प्रकार चौथी हो जाती है। पांच की संख्या सबसे शुभ मानी जाती है, सात की उससे कम। ब्राह्मण को दक्षिणा देते समय सवा सेर, अढाई सेर, पाँच सेर अथवा साढे सात सेर अनाज दिया जाता है या इन्हीं संख्या में रुपये।

दक्षिण को यम दिशा कहा जाता है जहाँ पर मृतात्माएँ निवास करती हैं। अत चूल्हे का मुँह दक्षिण को नही बनाया जाता, सोनेवाला दक्षिण को पैर करके नहीं सोता। मृत व्यक्तियों के पैर अवश्य ही दक्षिण की ओर कर दिये जाते हैं।

छींक का आना शुभ माना जाता है। छींकने वाला अभी नहीं मरेगा, यह विश्वास माना जाता है। जब एक व्यक्ति को छींक आती है तो उसके हितैषी प्रसन्न होते हैं और कहते हैं 'शतजीव' अथवा 'छत्रपति'। 'चकपदी (छत्रपति) एक देवी मानी जाता है जो ब्रह्मा जी के छींकने पर मक्खी के रूप म उत्पन्न हुई थी। छींकते समय उसी का नाम लिया जाता है।

बच्चों के नाम को प्राय अधिक प्रसिद्ध नहीं किया जाता। पिता अपने बच्चों का कई वर्षों तक तो नाम भी नहीं लेते। उनके यथार्थ नाम को छोड़कर 'बूला' 'बूजी' कहते हैं। जन्मपत्री के नाम का प्राय नहीं लेते।

एक ग्रामीण अपने दूसरे साथी का तिल का तेल अथवा प्रदत्त तिल को उपयोग में नहीं लाता। उसे विश्वास है कि यदि वह इनका भक्षण करेगा तो प्रदाता की भविष्य जन्म में दासता करनी पड़ेगी। इस विश्वास के आधार पर एक उक्ति प्रचलित है "के मन्ने तिरे काले तिल चाब राखे सैं ?" काले तिलों की दासता एव कृतघ्नता अधिक होती है।

एक बनिया सर्वप्रथम (बोहनी के समय) उधार नहीं देता। उसका विश्वास है कि यदि बोहनी उधार से होती है तो दिन भर उधार ही चलेगा।

पति-पत्नी परस्पर एक दूसरे का नाम से नहीं पुकारते। सस्कृत के नीतिकार ने भी एक स्थान पर इसी प्रकार के विश्वासमूलक शब्द कहे हैं —

आत्मनामगुरोर्नाम नामातिकृपणस्य च।
श्रेयस्कामो न गृह्णीयाज्जेष्ठापत्यकलत्रयो ॥

विश्वास है कि अपना, गुरु का, अतिकृपण, जेठी सतान और पत्नी का नाम लेने से श्रेयस् की हानि होती है। एक हिदू से गाय का वध हो जाने पर गोघातक गोपुच्छ को एक छड़ी में बाध उसे ऊँचा उठाकर गगा स्नान के लिए जाता है। गगा पर प्रभूत धन व्यय करके उस दोष से मुक्त होता है।

वृहस्पतिवार को काजल अथवा सुर्मा नहीं आजा जाता। विश्वास है कि एक वृहस्पति अधी आती है। यदि उस वृहस्पतिवार को काजल आजली जायेगी तो लगाने वाले की आखें अधी हो जायेगी।

धरती पर या भित्ति पर औंगियां[1] बनाते हैं। यदि वे लकीरें दो से विभाजित हो जायें तो कार्य सिद्धि की आशा होती है अन्यथा नहीं। यह भी एक विश्वास है।

विश्वास है कि 'हिचकी' जब आती है तो कोई प्रियजन याद करता है। बारी-बारी से प्रियजनों का नाम लेते जाते हैं, जिस नाम लेने से हिक्का बन्द हो जाये वही स्मरण करता है—ऐसा माना जाता है।

ऐसा विश्वास है कि यदि हथेली खुजाती है' तो धन प्राप्ति की आशा की जाती है और 'पैर खुजाता है' तो यात्रा करनी पड़ती है। पुरुष का दाईं आंख फड़कना शुभ माना जाता है और स्त्री का बाईं आंख का फड़कना श्रेष्ठ होता है।

इनके अतिरिक्त हरियाना में अन्य अनेक विश्वास प्रचलित हैं जिनके मूल्य पर विचार करना भी यहां अप्रासंगिक न होगा। संसार की सभ्य असभ्य जातियों में विश्वास प्रचुर मात्रा में प्रचलित मिलते हैं। उनका अपना मूल्य है। श्रीमती बर्न ने ठीक कहा है कि हल या गाड़ी की आकृति का उतना महत्व नहीं जितना महत्व उन क्रियाओं एवं मन्त्रोच्चारणों का है जो हलवाहक (हाली) गाड़ीवान अथवा चरसिया कार्य के प्रारम्भ में प्रयोग में लाता है। भाषा चाहे अस्पष्ट एवं असंस्कृत क्यों न हो परन्तु उसकी आस्था में जो पावनता है एवं आत्मा की जो साक्षात्कारिता है, उसका मूल्य अवश्य है जो लौकिक पदार्थों के रूप में नहीं आंका जा सकता।

कर्म, ज्ञान और भक्ति की त्रिवेणी से होकर धर्मनद बहता है। इनमें भक्ति ही प्रेरक शक्ति है। धार्मिक पुरुष इसी भक्ति को लेकर ज्ञान और कर्म में प्रवेश करता है और धर्मपद की प्राप्ति करता है। ये मूढ़ विश्वास, जन मन भक्तितत्व को विकृत करनेवाले कहे जाते हैं परन्तु इनमें श्रद्धा का वह अंश रहता है जिसका मूल्य अन्यून है। मूढ़ विश्वास जन्त्र-तन्त्र के द्वारा जब भी धर्म की हानि और ग्लानि हुई है, वह अंधविश्वास एवं जन्त्र-तन्त्र के कारण नहीं अपितु इसके विकृत प्रचार व प्रयोग के कारण हुई है। पूर्वजन्म के कल्मष को दूर करने में टोने टोटकों से जो काम लिया जाता है उसके अन्तर्गत भी श्रद्धा की एक क्षीण रेखा निहित रहती है। वही श्रद्धा सदुपयोग के बल पर धर्म प्राप्ति का कारण बन सकती है।

३ जन्त्रमन्त्र और टोने टोटके

हरियाना प्रदेश में विविध प्रकृति के जन्त्र-तन्त्र मन्त्र, जादू, टोने टोटके

---

1 सीधी खड़ी लकीरें काढ़ना।

प्रचलित मिलते हैं। लोक जीवन म इनकी मा यता दो रूपों में मानी जाती है — एक, हित कामना के लिए, दूसरे, अहित कामना के लिए, वैर आदि उतारने के लिए।

आख दुखने पर 'चोन' उतारने आदि के नाना प्रकार के टोटके किये जाते हैं। बरी के सात पत्ते और सात आटे की गोलिया सींक से बींधकर आखों के सामने सात बार उतारी जाती है। फिर इन्हें छप्पर में टाक दिया जाता है। इस टोटके से आख की सुरखी दूर हो जाती है। आख में फुला पड़ जाने पर तो और भी कई प्रकार के टोने किये जाते हैं।

गाव में बहुत से रोग जन्त्र या टोने से दूर कर दिये जाते हैं। कई नीची जातियों के पुरुष इस प्रकार के टोने जानते हैं। कई प्रकार के ज्वरों के ऊपर जब भेषज् असफल हो जाती है तब ये जन्त्र (टोने) किये जाते हैं।

कई तालाबों म स्नान मात्र से सर्पदंशन का विष उतर जाता है। ऐसा एक तालाब 'गोराला कला' में है जिसम हरिदास पुण्यात्मा का प्रभाव बताया जाता है। छारा के तालाब म स्नान करने से पीलिया रोग दूर हो जाता है। कुत्ता का काटा 'लडराली' के तालाब की मिट्टी लगाने से ठीक हो जाता है। इस प्रदेश में ऐसे असख्य जन्त्र या टोने (Charms) पाये जाते हैं, जिनके प्रयोग से प्राचीन पुरुष अनेक बीमारिया दूर कर लेते कहे जाते हैं।

अंधविश्वासा की भाति जन्त्रमन्त्र, टोने टोटके भी बहु यापी हैं। इनके सास्कृतिक मूल्य की परख भी की जा सकती है। जन्त्र मन्त्र, टोने टोटके जिनका वणन ऊपर हुआ है, सभ्यता के दृष्टिकोण से भले ही जगलीपन से युक्त हों, पर तु आप तनिक उस पृष्ठभूमि में प्रवेश कीजिए जो छोटे से छोटे विश्वास में सनिहित है। आपको एक ही तत्व दिखाई देगा—वह तत्व है अनन्य श्रद्धा। यही वह तत्व है जो मानव को साधारण भावभूमि से ऊपर उठाकर आनन्द की मधुमती भूमिका में प्रवेश कराता है। अत गभीरता से विचार करें तो ये ही वे तत्व हैं जो सस्कृति का पचाग हैं।

सस्कृति आत्मा की पुकार है। सस्कृति का रूप आत्मा का रूप है। विश्वास इसके अभिन्न अंग हैं। श्रद्धा, आस्था एव विश्वास में अद्भुत शक्ति है। इन्हीं में सस्कृति का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है। अत किसी देश की सस्कृति का परख के लिए तद्देशीय प्रचलित प्रथाएँ, रीतियां, अंध विश्वास, जन्त्र और टोने टोटकों का सम्यग् ज्ञान परमावश्यक है।

॥ हरियानी समाज

हरियाना समाज के विषय म जब विचार करते हैं तो सर्वप्रथम हमारा

ध्यान यहां की जातियों के प्रति आकर्षित होता है। भारत के अन्य प्रदेशों की भांति हरियाना में भी नाना जातियां निवास करती हैं जिसमें अपनी-अपनी परम्पराएँ एवं रीति-रिवाज प्रचलित हैं। प्रत्येक जाति के विषय में विशद विवेचन इस लेख का अभिप्राय नहीं है। सामूहिक रूप से ही कुछ विचार किया जायेगा।

यहां का सभी जातियों में वैवाहिक प्रथा सजातीय (Endogamous) है किन्तु सगोत्रीय (Exgogamous) नहीं है। बहु विवाह प्रथा भी है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के अतिरिक्त सभी जातियों में नियोग अथवा कराया की प्रथा प्रचलित है। इस प्रथा ने बहु पत्नी प्रथा को प्रश्रय दिया है। अभी तक सर्वत्र सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा चल रही है। सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा में वृद्ध कुलपति का शासन रहता है जिसमें सबका समान अधिकार होता है। पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव एवं नौकरी की प्रवृत्ति ने इस पुनीत प्रथा को एक बड़ा धक्का पहुंचाया है। यह प्रथा आज निष्प्राण होती चली जा रही है। उत्तराधिकार अधिकतर पगड़ीबाट या भाई बाट के सिद्धांत पर है किन्तु किन्हीं गोत्रों अथवा किन्हीं कुटुम्बों में बीरबाट या चुंडा बाट भी प्रचलित है।

हरियानी समाज में जिसकी झांकी ऊपर की कतिपय पंक्तियों में दी गई है, बहुत से रीति रिवाज प्रचलित हैं। प्रजनन, विवाह, मृत्यु आदि पर जो रिवाज प्रचलित हैं उनका विशद वर्णन गीतों के अध्याय में हो चुका है। यहां पर नामकरण संस्कार के विषय में कुछ चर्चा की जायेगी। पुत्रोत्पत्ति पर घर घर के वृद्ध पुरुष, पण्डित को बुलाते हैं और उससे नवजात शिशु का नाम पूछते हैं। वह जन्म की राशि के अनुकूल नाम रखता है। नाम प्रायः किसी देवी देवता अथवा ईश्वर के नाम पर होते हैं। यथा —रामचन्द्र, किशनलाल, देवीदत्त आदि। कभी कभी पवित्र तीर्थों के नाम पर रखे जाते हैं। यथा—मथुरादास, बृन्दासिंह, काशीराम आदि। पवित्र पौदों के नाम पर भी नाम होते हैं। यथा तुलसीदास, गेंदासिंह आदि। दुष्ट ग्रहों की उपशांति के लिए कुछ असुन्दर (भौंडे) नाम भी रख लिए जाते हैं यथा—मगनू (मांगा हुआ), घसीटा (घसीटा हुआ), बुद्धू (मूर्ख), बदलू (बदल कर लिया हुआ), कुड़िया (कूड़ी पर मिला हुआ) आदि जिनसे ईर्ष्यालु को घृणा हो जाये किन्तु आजकल प्रवृत्ति पूर्णरूपेण बदली हुई है। रामायण और महाभारत में आये हुए नामों की पुनरावृत्ति सर्वत्र दीख पड़ती है।

जब बच्चा मूल नक्षत्र में उत्पन्न होता है तो मूल की शांति के लिए विभिन्न आचारों का आश्रय लिया जाता है। इसका विस्तृत वर्णन गीत अध्याय में जन्म के गीतों में पीछे दिया जा चुका है।

कन्याओं के लिए ऐसी कोई प्रथा प्रचलित नहीं है। हां, विवाह के पश्चात् ससुराल की स्त्रियां उसे बाप के नाम से पुकारने लगती हैं, यथा—तेजा की पुत्री को 'तेजाही' लक्खी की पुत्री 'लखाही' आदि। पुरुष उस स्त्री का पति के नाम से पुकारते हैं, यथा—नदलू की बहू आदि। यहां पर यह भी देख लेना चाहिए कि जाट आदि जातियों में जो नियोग अथवा करवा की प्रथा प्रचलित है उसे ब्राह्मण आदि अन्य जातियां सम्मान की दृष्टि से नहीं देखतीं। ये जातियां करेवा करनेवाली जातियों को व्यंग्योक्ति में कह देती हैं—"आजा बेटटी, लेन्ले फेरे, ये मरजा और भतेरे।" जिन जातियों में करेवा प्रचलित है उन जातियों में सौभाग्य के लिए इतनी चिंता नहीं होती, पति के मरने पर दूसरा पति कर लिया जाता है। हरियानी समाज की दो महत्वपूर्ण अभिलाषाएँ—'पक्की रोटी' और 'पक्की हवेली' उसका लौकिक समृद्धि की पराकाष्ठा है। एक दूसरे स्थान पर हरियानी किसान जीवन की आनन्ददायिनी परिस्थिति की अवतारणा इस रूप में की है —

दस चंगे बैल देख, घा दस मन बैरी,
हक्क हिसाबा न्या, घा साक्मीर जोरी,
भूरी भैंस का दूधा, घा राबड घोलया,
इतना दे करतार, तो फेर ना बोलया।

किसान के अच्छे 'चंगे बैल हों' पर्याप्त अनाज हो जाये, फसल के पीछे लगान या माल मांगा न जाये, भैंस का दूध पीने को मिले और राबड़ी का भोजन खाने को मिले तो उसे फिर अधिक की चाहना नहीं होती।

ङ हरियाने का भोजन

हरियाने के इतिहास, विश्वास, रीति रिवाज तथा एतद्देशीय लोकसाहित्य के दिग्दर्शन से यहां की प्रादेशिक संस्कृति का पर्याप्त परिचय दिया गया है। हरियाना के निवासियों के भोजन के विषय में अब कुछ विचार कर लेना उचित होगा। हरियाने के भोजन के विषय में लोकोक्तिकार ने बड़ी मार्मिक बात कही है—'देसा म्हें देस हरियाना, जित दूध दही का खाना'। यहां के खाने म दूध-दही की प्रचुरता है।

'रबड़ा' यहां के भोजन का एक विशिष्ट अंग है। यह हरियाने का प्रातराश है। यहां पर लाकोक्तिकार ने अहीरों पर व्यंग्य कसा है—"अहीर गा राबड़ा बतावे खीर" अहीर के लिए यह खीर बन गई है। हरियाने का खीर एक प्रिय भोजन है जो दुग्ध और तन्दुल के मिश्रण से बनता है।

हरियाना के भोजन का वर्णन करने में अवश्य अपूर्णता रह जायेगी यदि हम यहां के टीकड़ा या अगाकड़ा की ओर पाठक का ध्यान आकर्षित न करें। यह भी प्रातराश का भोजन है जिसे हम देसी बिस्कुट कह सकते हैं। कड़े आटे से बनी मोटी नमकीन रोटी 'टीकड़ा' कहलाती है। यह उन्हीं लोगों को प्रिय है जो एक बार ४ छटाक घी खा सकने की शक्ति रखते हैं। लोगों का कहना है कि बस एक टीकड़ा और पावभर घी खाइये कि राम मिल जायेंगे।

परिशिष्ट

परिशिष्ट क

हरियानी लोक-कहानी

"खीचड़ी"

'एक चमार था। वो था बड़ा बावला। जांह टाल कोइ उह नै भकादे ऊँह टाला मान जा था। एक बार वा अरणी सुसराड डिगर गिया। उह ऊँह क साला ने खूब सेवा करा। चमार का सास्सू ने बनाइ रे चा में एक हाड्डा मरन खीचड़ा पकाइ। चमार आग्गे एक थाला खीचड़ी धरदी अर उह में खूब गेर दिया घी। चमार था जा बाठ बाउँ सूत था सारी नै डकारग्या। उह ने खाचड़ा बोहत आच्छी लागा पर बिचारे ने ना का पता नहीं था। चमार ने सोच्ची अकरै याह चाब वैं घरां चालके बणवाइये। पर मुसाइत ये या अक इह का ना कांह टाल पता लागै। उह ने कुछ होक्के बेसरम सा इह का ना अपणी सास्सू त बूझ्या। पता लाग्या कि यो से "खीचड़ी"। वो जिन्ने इ रटण लागग्या—'खीचड़ा, 'खीचड़ी'।

अगले दिन चमार ने अपणे घरकँह का रस्ता लिया। चालते-चालते "खाचड़ी" कहणा ते गया भूल अर लाग्या भौंकणा "खाचिड़ी खाचिड़ी"। रस्ते में इक जाट अपणे खेत का रुखाला था और गोफिये तैं चिड़िया नै उडावण लाग रहा था। बिचारे का चिड़िया नै बोहत नक्सान कर दिया था। किमे तैं छो में था ही अर कुछ चमार के "खाचिड़ा-खाचिड़ी" के कहत्ते बान सुण के लाल पीला हाग्या। चमार तै कहण लाग्या अकरे अन्यायी थे पद दाँ के मारके से। अड़ैआ तन्ने मैं करूँगा सूध्या। जाटने चमार के पाच सात जूत फटकारे अर कहण लाग्या अक भाइ "आ फन्दे में, आ फन्दे में" कहता चाल्याजा। चमार बिचारा इस्से बात ने कहता चाल लिया।

आगै चाल कै ऊँह नै चार चार फँदे। वे चारां सौंग मना कै चोरी करण जा थे। चमार "आ फन्दे में, आ फन्दे में" कहता जा रहा था। इसतैं चारा ने सौगण खराब होगे अर चमार के बेरहम ने दो चार जमा दिये अर कहण लागे कि 'ले लें जाओ, धर धर आओ" कहता चाल्या जा। चमार नै डर के मारे थे ही आन्दर पकड़ लिये अर चालता बण्या।

आगै मुसलमाना का कोइ माणस मरग्या था। वे उह नै गाड्डण र थे। कुछ तै बिचारा कै मरा का चणवा थाए कुछ चमार नै 'ले ले जाओ

घर घर आश्रो" कहचे उनके घा में लूण छिड़क दिया। मुसलमाना ने चमार खूब पनाया अर कह दिया के "इसी किस्से के ना हो" कहता चाल्या जा। वो तै मार गैल पेंतरे बदले था। वो न्यूहे रटण लाग्या।

चमार "इसी किस्से के ना हो, इसी किस्से के ना हो" कहता जा रह्या था। आगे राह म एक गाम पडै था। उडै एक बाखिया धरम कर रह्या था। उड़ै घी पाच-सात आदम्या नै जिब इह चमार के इसे कड़वे बाल सुणे तै ऊह पे गरमागरम पाच-सात झापट रसीद कर दिये अर कह दिया अक "इसी सबके हो, इसी सब के हो" न्यू कहता चाल्या जा। चमार बिचारा चाल दिया रोमता।

आगै सी एक जगाँ किस्सै की पूलिया में लाग गी थी आच। उड़ै पूलिया आले का तै हो रहा था घर एक तमाशा अर चमार चिल्ला रह्या "इसी सब के हो, इसी सब के हो।" उन्ने चमार ठाकै आच बिचाले पटक दिया। थोड़ा सी हाण में चमार का तै गडासा सा बुझ गया। बिचारा गऊ का जाया घर ताहीं भी ना पांह चा। 'लाचड़ी' नै कीस्से जुलम ढाये बिचारे की गैला।

एक राजा के छोरे की कहानी

एक बार की बात सै। एक बाम्मण का छोरा नें ऊ का बाप नै उसताहीं देस लिकाड़ा दे दिया। जब वो घर तें चाल्ल्या जा था तौ ऊनै रा में एक साप मिला जो क जाड्डातें कती कठ्ठा होर्‌या था। ऊ नै सक्कै नै साप कै कुछ सेक स्याक देक्कै नै गर्मी दी तो के देख्खे सै क साप का लाल बणग्या। ऊ नै ले जाक्कै यो लाल राज्जा नै दे दिया। राज्जा नै उसताई सन्दूक में बंद कर कै अर उसका ढक्कण मूद दिया।

एक दिन राज्जा सन्दूक नै खोल कै देक्खण लाग्या तो के देक्खै सै क लाल का घणा साणा छोरा हो रह्या सै। राजा कै काइ औलाद ना थी। वो न्हात राज्जी होया। छोरा बड्डा होग्या मल[1] ऊ का बाप मरग्या। ऊ की सगाइ वो करग्या था। फर हकीकिया नै ऊ नै माराकूट्या अर भज्या दिया।

वा थोड़ी सी मोर[2] ले कै अर बिना बरे ऊए गाम में आग्या जै में ऊकी सगाइ होरिही थी। छोरा पढ्ढण जाण लाग्या अर ऊए मन्दरसा में जेम्हें या छारी पढ्या करती जिह के सेत्ती ऊए छोरा की सगाइ होरि थी।

१ मगर २ मोहर, अशरफी।

दोनू घणे सुथरे थे अर दोनू राजा की औलाद थे। उनका आपस म प्यार होग्या। ऊ नै न्यू नहीं बेरा था अक म्हारी आपस म सगाई हो रही से।

कुछ दिना पाच्छै ऊ छोरी के मा-बाप नै उनकी सगाई और तै करदी। फेर उनका ब्याह[1] नाड़ै आग्या। छोरी नै उतै सारी बात बता दी अरु मेरी सगाई पहल्या फलाणा कंवारी ठौड़ होगी थी। फेर छोरा नै बताई अक वो तो मैं ए सूं।

इब छोरी बोल्ली क जब तोरण चढ़वण का मौका आवै तो तू घोड़ा लेकै अर ऊ तै पैल्या[2] तोरण चढ़ा दीये। अर म दूसरा घोड़ा लेकै त्यार खड़ी मिल्लूंगी। ऊ नै न्यू एकरी। दोनू घोड़या पै चढ़कै भाजगे। अर सब लोग देखते क देखते रैगे।

दोनू एक राजा के छाला चीज्जा का नाचा तै वा छोरी मरद बणकै रहण लागगे। राजा ऊ नै घणा चाह्या करता। ये राजा का बाग में रह्या करते।

एक दिन रात नै परी आणकै उन रूखा नै काटण लागी तो ऊ छोरा नै तलवार काढ कै अर उनै मारी तो उनका कपड़ा कटकै रैग्या।

राणी बोल्ली इसा कपड़ा और ल्या। तो वा छोरी ग्याळ में लिकड़ पड़ी। चालती-चालती ऊ नै एक बाबा जी मिल्या। ऊ नै बताई अक इंतरां[3] इंतरां बाग में परी न्हाण आवै सै। ज वै न्हाण लाग्या तो उनने कपड़े उठाकै भाजैये। उनै ऊ ए तरां करी। बाबा जी नै बताया अक सब का कपड़ा चारी-चारी दे दिय मन लहली आवै तो ऊ का चोट्टा काट लिये। ऊ नै ऊ ए तरा करी। तो वे बोल्ली अक इब हम इस लत्या का के करा? फेर ऊ नै उनी "बीन तबड़ी" दी अक जबै त इसै बाजावांगी तो हम आणकै नाच करांगी। इतणी कहकै वै लुकगी।

ऊ नै 'बीन तबड़ी' बजाई अर वै सारी आण के नाचण लागी। बाबा का मन ललचाग्या। बोल्या क बच्चा! ले या बीन तूंबी तै मनै देदे अर या रस्सा सोटा त लेल्ले। त कहगी तै ए[4] या रस्सी तो बांध लेगी अर या सोट्टा पीटैगा।

आग्गै सी जाकै वा छोरा (छोरी) ठणक ठणक करण लाग्या। बाबा बोल्या रे मड़! तू ठणक ठणक क्यूं करै सै? वा छोरा बोल्या मनै बीन तूंबी ल्यादे। उनै बाबा जो बांध कै खूब पाल्या। बाबाजी नै बीन तूंबी दे दी।

---

१ विवाह, ब्याह। २ पहिले। ३ इस प्रकार, इस तरह। ४ इसी को।

आग्गै सी जाकै ऊए वरा एक मीर बाली मिली। ऊनै एक डिब्बी दी अक जिसा लत्ता चाल्हैगा उसाए मिल ज्यागा। फेर एंतराँ ऊनै एक उड्डा खटोल्ला मिलग्या अर ऊ पै नैठकै अपणी नगरी में आए पहुँचा।

राज्जा ऊ तै बहौत राज्जी हाया अर अपणी छोरी का ब्या ऊतै कर दिया। ऊ छोरी नै बतादी अक बिर मैं बी छोरी ए सु। फेर दोनू राणी अर वो राजकवर राज्जी राजी रहण लागग्या। ऊ रस्सी सोट्टा की ओट[1] तैं ऊ नै अपणा राज बी ले लिया।

फेर वा छोटणी राणी ऊतै एक दिन बोल्ली अक तेरी के जात सै। पहल्या ता नो बताइ मल ऊकी हट्ट करण तै बोल्ल्या क आऽच्छा तू मेरै काच्चा दूध का छींटा मार। ऊनै तो छींटा मार्या अर वो साप बणकै सरड सरड मौरी म्हैं बड़ग्या। वै दोनू देखती की देखती रैगीं अर अपणा किया पै पछताइ।

परिशिष्ट—ख

स्वरलिपि

लोकसाहित्य संग्राहक को अपने प्रयत्न में यथार्थ (एक्यूरेट) होने की बड़ी भारी आवश्यकता है। यदि वह ऐसा नहीं करता तो उसका प्रयास निष्फल तथा कृत्रिम-सा प्रतीत होने लगता है और वह विशेष उपयोगी नहीं रहता। जो बात लोकसाहित्य के लिए कही जा सकती है वह लोक-गीतों के विषय में और भी अधिक स्वीकार्य है। लोक-गीतों की रक्षा के लिए गायक के उच्चारण के साथ उन्हें ठीक ठीक उतारने का प्रयत्न वाञ्छनीय है। यह कार्य विशुद्धरूप से तभी हो सकता है जब प्रत्येक गीत की 'स्वरलिपि' भी की जाये। स्वरलिपियों के तुलनात्मक अध्ययन से लोक गीतों के वंश और प्रसार के इतिहास पर भी भारी प्रकाश पड़ता है। आधुनिक वैज्ञानिक युग में इन गीतों को विकृति से बचाने के लिए उचित तो यह है कि इन गीतों के 'रिकार्ड' तैयार कर लिए जायें।

आदर्शरूप में, हम यहाँ तीन हरियानी लोकगीतों की स्वरलिपि दे रहे हैं, जिससे इन गीतों के रागात्मक पक्ष को हृदयगम करने में सहायता मिलेगी।

---

1 मदद।

१ राग पीलू बरवा　　　　ताल कहरवा

सा सा रे रे सा सा नी — । सा सा रे रे गा — रे — ।
म्हा रे री घे ऽ र में ऽ आ या री ब टे ऽ ऊ ऽ
नी — नी नी सा ऽ रे नी । सा — — — नी — नी नी ।
सा ऽ य या का ल थि हार ऽ ऽ ऽ सा ऽ य या
सा — रे रे गा गा रे रे । सा सा नी नी सा सा रे नी ।
चा ऽ ल प ही री मे रे ह व ड व म र आ ये
सा — — — — — — — ।
नैया ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ।

शेष गीत तृतीय अध्याय के १६५ पृष्ठ पर देखिए ।

× × ×

मेरा छोटा बीरा लाडला बयाग्ड की राही हो लिया।
कितै हो सो बीरा बोलिये मैंने सारा बयारड टोलिया।

२ राग पीलू　　　　ताल कहरवा

नी सा रे — रे — र — । गा रे गा सा रे रे रेमा रे ।
मे रा छो ऽ टा ऽ बी ऽ रा ऽ ऽ ला ड ला री ब ।
मा गा रे सा नी सा — रे । गा रे सा — नी सा — — ।
या ल ड की ऽ रा ऽ ही । ऽ ऽ हो ऽ लि या ऽ ऽ

बेबे भन मिलै ना खाया नै दरखत के पते खा रहे ।
जल मिलै ना पीया नै जोड कुए सब टो लिए ।
मेरा छोटा बीरा लाडला बयारड की राही होलिया ।
कितै हो सो बीरा बोलिये मैंने सारा बयारड टोलिया ।
बीरा तेरे रे भाणजे का क्या ए मैं कौण आवेगा भात में ।
बेबे मेरे मे छोटे तान सै तेरै वै आवैंगे भात में ।
बेबे थाली में घालें तीन सो ए लोटे में मौर घला लिए ।
मेरा छोटा बीरा लाडला बयाग्ड की राही होलिया ।
कितै हो सो बीरा बोलिये मैंने सारा बयाग्ड टोलिया ।

कात्यक बदी अमावस आइ दिन था खास दिवाली का।
आख्या के कहें आसू आग्ये देख लिया घर हाली का।

२ राग माढ ताल कहरवा

पा — पा धा सां मां — रे। — सां सां सां — सां — पा।
का ऽ त्य का ब दी ऽ मा ऽ व स आ ऽ इ ऽ दिन
— पा पा — पा पा पा —। पा मा पा धा पा मा रे मा।
ऽ था खा ऽ स दि वा ऽ ली ऽ का ऽ ऽ ऽ आ ऽ
पा सां नी धा पा — पा धा। पा मा — — गा — रे सा।
ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ आ ख्या के म्हा ऽ ऽ आ ऽ सू ऽ
रे — सा — रे। रे — रे रे — रे रे रे — रे सा।
आ ऽ ग्ये ऽ दे ऽ ख लि या ऽ घ र हा ऽ ली ऽ
रे मा गा रे सा — — —।
का ऽ ऽ ऽ आ ऽ ऽ ऽ

सबी पड़ोसी बच्चों खातर खील खिलौने ल्यावैं थे।
दो बच्चे हाली के बैठ्ठे उनकी ओर लखावैं थे।
रात कूच की जली राबड़ी घोल सीत में खाय थे।
दो कुत्ते बैठ्ठे मगन हुए उनकी ओर लखावैं थे।
तीन कटोरे एक बखौरा काम नहीं था थाली का।
आख्या के कहें आँसू आग्ये देख लिया घर हाली का ॥१॥
कहीं कहीं तो खीर पकै कहीं हलुवे की महकार उठ री।
हाली की बहू एक ओड नै खड़ी बाजरा कूट री।
हाली बैठ्या खाट बिछाकै पायतारानी टूट री।
हुक्का भर कै पीवण लाग्या चिलम तळे तै फूट री।
बाकी छोरे टहूक पड्या था जर लाग्या एक पाली का।
आख्या के कहें आँसू आग्ये देख लिया घर हाली का ॥२॥

परिशिष्ट—ग

शब्दकोष

हरियानी लोकसाहित्य में प्रयुक्त कतिपय शब्दों की तालिका हम नीचे दे रहे हैं। देखकर आश्चर्य होता है कि अक्षरज्ञान विहीन ग्रामीण जनता

ने प्राचीन शब्द निधि को कितनी श्रद्धा के साथ अर्घ्य देकर बचाया है तथा उसका शब्दभंडार कितना समृद्ध है। भावाभिव्यक्ति के लिए उन्हें कदापि शब्द-दारिद्र्य नहीं घेरता। उनके यहाँ शब्दों की टकसाल सतत जारी रहती है।

"अ"

अभ्रा (अजा) बकरी

अगेता पहला, समय से पहिले

अड़ास १ कठिनाई, समस्या 'अड़ास में आया' कठिनाई में फँस गया। २ विघ्न करना, विघ्न उपस्थित करना 'अड़ास लाना' विघ्न कर रहा है।

अड़े, आड़े यहाँ

अणी नौंक

अधल (विशेषण) स्पष्ट, पक्की, प्राय पहचान, शब्द के साथ इसका पहचान प्रयोग होता है। अधल पहचान (पछाण) के अर्थ होंगे, स्पष्ट पहचान, खूब पहचान।

अंत (वि०) समाप्ति अथवा लक्ष्य

अलेख (अलक्ष्य) भगवान

अतना (वि०) अत्यधिक "घना न अंत का बोलना, घनी ना अंत की चुप।"

अबेर देरी

अकरमकर चालाकियाँ, अगर, मगर

अटकल सटकल अनुमान, अंदाजा

अणआत (अणहात) अभाव अथवा गरीबी

अल्वादी (वि०) धृष्ट, जिद्दी, (पुरुष या पशु)

अस्थल (स्थल) वैरागी साधुओं का मठ या आश्रम

"आ"

आकल ऊधम, निआर

आँख (आँखि तथा अक्षर) लिपि के अक्षर, दो आँख काढना, कुछ लिख देना।

आटना भरना। कुआ अथवा तालाब को मिट्टी डाल कर भर देना।

आगमबुधी (अग्रबुद्धि)

आठें अष्टमी

आठ न साठ तीन तेरह, व्यर्थ। "खेती की उसकी आप कर आधी उसकी देखना जाय। आये गये को पुच्छे बात, उसकी खेती आठ ना साठ।"

आड	१, विघ्न २ रोक ३ सरसों की आड
आड़ा	कुष्ठ, कड़वा । "राड़ करो तो बोलो आड़ा ।"
आण	निषिद्ध, परहेज । "दारू की आण से," मद्य का निषेध है।
आधमआध	बराबर-बराबर
आल	१ आर्द्रता, गीलापन । २ दगा, उपहास, मूर्खता
आलकस	आलस्य
आस	आशा
आसा	(आश्रय) सहारा, "मालिक के आसरे तै" भगवान की सहायता से ।
आयत	सिरहाना, सिर की ओर

"इ" "ई"

इलहान	व्यर्थ की बात जो अपनी शक्ति से बाहर हो ।
इंवे	इधर
ईंडी	बोझा, विशेषकर पानी का घड़ा ढोने के लिये सिर पर रखने का कपड़े का गोल चक्र । "दबी आवे, दबी जा ।"

"उ"

उजाड़	जंगल
उग्मना	उदित दिशा में, पूर्व दिशा में । 'उग्मना खेत' । पूर्व की ओर खेत हितकर नहीं होता । प्रात जब जाओ तो सूर्य सम्मुख, सन्ध्या में वापिस आओ तो भी सम्मुख ।
उम्रा	वह भूमि जिसमें बिना सिंचाई के रबी की फसल पैदा होती है ।
उणिहार	(अनुहार) सदृश, 'जेठ की उणिहार, जेठ की सदृश
उबना	निकलना, उद्भव होना

"ऊ"

ऊत	निपूत, निष्पुत्र, दुर्भाग्यशाली
ऊपला	गोसा, कंडा

"ए"

एकला	एकाकी

"ओ"

ओच्छा	छोटा, लघु
ओट, ओटना	१ स्वीकार करना—'अपणा कसूर ओट ले'। अपराध स्वीकार कर लो। २ मान लेना—"आज घर में काम सै, मेरा आड़े का काम तू ओटल।" ३ सहना, झेलना—'मेरी लाठी आट, गैर ओट'। संभालना।
ओहलना	उपालम्भ, व्यंग्य।

"औ"

औलासौला (क्रि वि)	जैसा-तैसा
औले	कोने में
औली बात	कटु, कर्कश, गाली
औले ता कौले	इधर उधर

"क"

कथ	पति
कठया	कठिन
कड़	कमर, पीठ
कड़े	कुन, कहां ?
कतनी	कातते समय पूनी रखने की टोकरी
कनै	पास—'तेरे कनै' तुम्हारे पास।
कपता	झगड़ालू, कुपुन "नलाई ना करा दापती, क्या चुगेगी कपती"
कमेर	१ कार्यक्षमता २ कमाई
करग	अरथिया
कराल	कठिन, बुरा बना हुआ। 'कराल हल' कठिनाई से भूमि में लगनेवाला हल।
कहेला	ऊट
कल्दारा	झगड़ालू, धृष्ट
कसुआ	एक कीड़ा जो फसल में लग जाता है
कसूत	बुरा, हानिकर
कसौन	अपशकुन, कुशकुन
काकड़ा	बिनौला
कागला	कौआ

क्नौड़ (क्रि वि) किधर
किम्मे न — कहीं नहीं
कुकरा — मुर्गी मुर्गी
कुतान (विशे०) — निकृष्ट, छोटा, 'आछी नगरी कुत्तान बासा । करी बीर क्या घर बासा''
कैहर — नरक, कष्ट, आपत्ति "रहना तो सहर का, चाहे कैहर क्यू ना हो।"

"ख"

खड्या — सापा
खुरा — खुरवाला 'बंगनखुरा' बैंगन के से खुरवाला ।
खानार — निकम्मी, हानिकर

"ग"

गद देसी(क्रि वि) एकदम, अनायास
गद्दर — अधपका "कच्चे फल सुहावने, गद्दर हुये मिठान । वे फल कौन से, जो पक्के हो करवान ।" शैशव, यौवन, वृद्धावस्था ।
गमीना — रिश्तेदारी
ग्यासा — एक शस्त्र विशेष
गाबरू — युवक
गाहा — पहली
गेड़ा — चक्कर
गोरा — आबादी के पास, गौरवर्ण
गोरी — युवती स्त्री । इस शब्द के पीछे रसिक स्त्री का चित्र उपस्थित होता है । यौवन की लाली या स्वभाव, सुलभ लज्जावश लाली का भाव गोरी शब्द में छिपा है ।
गोसा — उपला, कंडा

"घ"

घालमाल — गड़बड़, 'जाट जाट के साले, करदे घालेमाले' ।

"च"

चबोला — एक प्रकार का राग जिसमें प्रायः प्रेम का वर्णन होता है ।
चाम — खाल, चरस, "मरगया चाम राम मनाइयों"—चरस भर गया है ।

चोज — कौतुक, आश्चर्य
चौकस — सावधानी, पक्की बात
नरनारी का सिणगार, सजन तुम दिल में रखना।
नर को देना मार, नारी को चौकस रखना॥
नर (ताला) नारी (ताली)।
चौंरी — वेदी, (विवाह की)

"छ"

छार — राख

"ज"

जनेत — बरात
जलहेरी — जलकलश
जानीवासा — जनवासा, बरात के ठहरने का स्थान
जेठा — बड़ा, पहला

"झ"

झखत — परिश्रम, "झखत विद्या, पचत मैना"।
झिरने — दुर्बल होना, सूखना। "दाना झिरवे ज्ञान ने" यानी ज्ञान के लिए कष्ट उठाता है।

"ट"

टलना — बचना, वापिस जाना, चूकना "कालटलणा, कपाल ना टले" मृत्यु से बचाव हो सकता है।
टाबर — बाल बच्चे
टांडा — प्राय १०० बैलों के समूह को टांडा कहते हैं। बनजारे टांडा लादकर चलते थे। प्रसिद्ध है लाखा बनजारे के टांडा में लाखों बैल थे।
टीबा — रेत का पर्वत
टेक — प्रतिज्ञा, सहारा, रक्षा
टोटा — हानि
टारड़े — बकरे
टाहना — खोजना, तलाश करना

"ठ"

ठाडा — १ शक्तिशाली, २ खड़ा रहना, रुकना

"ड"

डाकौत — ज्योतिषी
डामचा — मचान, ठाढ
डागर — पशु
डूम — एक जाति जो नाच-गाकर आजीविका कमाती है।
डैहर — बाढ

"ढ"

ढाणा — १ कुआ का छोटा सा साधन, २ किसानों की छोटी सी बस्ती
ढाणी — बस्ती
ढुकाव — कन्या के द्वार पर मनाया जानेवाला आचार
ढोर — डागर

"त"

तगार — गीली मिट्टी का ढेर
तला — नीचे
तहेता — जोरदार, ठीक समय पर
तापड़ — कड़ी भूमि
तिस — प्यास, तृषा
तिसाया — प्यासा
तीजन — चरखा कातने की जगह
तील — स्त्रियों के पहरने के कपड़े "आगी आदना और लहगा"।
तारण — द्वार पर लगी हुई काठ की चिड़िया

"थ"

थान — (स्थान) साधुओं के रहने का स्थान
थामना — ठहरना
थारे — तुम्हारे

"द"

दगड़ा — रास्ता
दलद्दर — (दारिद्रय) गरीबी, निर्धनता
दसोटा — देश निकाला
दावेत — शत्रु

दुहाग	(दुभाग) राड बैठाना, तलाक, सजा
दुहेला	कठिन
दूधल	दुधार, 'गाय तो दूधल चाहिये' दुधार गाय प्रशंसनीय है।
दूभर	कष्टकर। 'मरदा दूभर पीसना' पुरुष के लिये पीसना कष्टसाध्य है।
देवघर	कोहबर जहां फेरों के पीछे वर को ले जाते हैं।

"ध"

धण	(धन्या) पत्नी
धणी	स्वामी, पति
धजा	(ध्वज) भंडा
धाप	छक कर। "कितणे सुलते जीवा ये जद धाप के राबड़ी पीवांये"।
धीनू	दूध का पशु करना
धीय	बेटी
धोकना	पूजना, नमस्कार, दण्डवत् करना

"न"

नगमलग	अकेला, बिना परिवार के
निगोड़ा	अशिष्ट, व्यर्थ, बावला
निपजना	उत्पन्न होना
निमाना	मूर्ख
निराशा	(निराश्रय क्रि० वि०) तीव्रता से "जेठ मास जो तपे निराशा, तो जानो बर्षा की आशा।"
निभ	निर्भय

"प"

पगड़ी बाँट	भाई बाँट
पछुवाड़े	घर के पीछे
पड़वा	१ प्रतिपद, २ पूर्वी वायु। 'सावन माह चले पड़वा। खेले पूत बुलाले मा।'
पत	इज्जत, मान
पदोड़ा	अत्यत पीनता, "नदी दे नै मिल्या करोरा। पानी पी पी हुआ पदोड़ा।"
परस	चौपाल, मरदानी बैठक

"ड"

डाकौत	ज्योतिषी
डामचा	मचान, ठाढ
डागर	पशु
डूम	एक जाति जो नाच-गाकर आजीविका कमाती है
डेहर	बाट

"ढ"

ढाणा	१ कुआ का छोटा सा साधन, २ किसानों की छोटी सी
ढाणी	बस्ती
ढुकाव	कन्या के द्वार पर मनाया जानेवाला आचार
ढोर	डागर

"त"

तगार	गीली मिट्टी का ढेर
तला	नीचे
तहेता	जोरदार, ठीक समय पर
तापड़	कड़ी भूमि
तिस	प्यास, तृषा
तिसाया	प्यासा
तीजन	चरखा कातने की जगह
तील	स्त्रियों के पहरने के कपड़े "आंगी ओढना और लहंग
तोरण	द्वार पर लगी हुई काठ की चिड़िया

"थ"

थान	(स्थान) साधुओं के रहने का स्थान
थामना	ठहरना
थारे	तुम्हारे

"द"

दग्ड़ा	रास्ता
दलद्दर	(दारिद्रय) गरीबी, निर्धनता
दसोटा	देश निकाला
दावेत	शत्रु

दुहाग	(दुभाग) राड बैठाना, तलाक, सजा
दुहेला	कठिन
दूधल	दुधार, 'गाय तो दूधल चाही' दुधार गाय प्रशसनीय है।
दूमर	कष्टकर। 'मरदा दूमर पीसना' पुरुष के लिये पीसना कष्टसाध्य है।
देवधर	कोहबर जहा फेरों के पीछे वर को ले जाते हैं।

"ध"

धण	(धन्या) पत्नी
धणी	स्वामी, पति
धजा	(ध्वज) झडा
धाप	छक कर। "कितणे सुलते चीथा के नद धाप के राबडी पीवाये"।
धीनू	दूध का पशु करना
धीय	बेटी
धोकना	पूजना, नमस्कार, दण्डवत् करना

"न"

नगमलग	अकेला, बिना परिवार के
निगोड़ा	अशिष्ट, व्यर्थ, बावला
निपजना	उत्पन्न होना
निमाना	मूर्ख
निराशा	(निराश्रय क्रि० वि०) तीव्रता से "जेठ मास को तप निराशा, तो जानो बरखा की आशा।"
निभ	निर्भय

"प"

पगड़ी बाँट	भाई बाँट
पछवाड़े	घर के पीछे
पड़वा	१ प्रतिपद, २ पूर्वी वायु। 'सावन माह चले पड़वा। खेलो पूत बुलाले मा।"
पत	इज्जत, मान
पदौड़ा	अत्यत पीनवा, "नदी दे नै मिल्या कयेरा। पानी पी पी हुआ पदौड़ा।"
परस	चौपाल, मरदानी बैठक

परार	एक वर्ष से पहिले
पर्नी	परिणीता
पटेला	पेटू, बड़े पेट का
पाली	गाय, ग्वाला
पायत	पैरों की ओर
पाही	गैर रिश्तेदार
पिलाया	जीन रखना
पीला	चुदड़ी, पीला पौमचा भी होता है जिसे प्रसव के उपरात माताएँ ओढ़ती हैं।
पुगना	१ जीतना, रहना। "गिल्ली डंडा म मैं अव्वल पुगया"— गिल्ली डंडा के खेल मैं सर्व प्रथम रहा। २ चुकना, दीजाना "उगाही नाहीं पुगी।"—भूमिकर नहीं दिया गया
पेओसाल	पितृशाला, नेहर
पौन	पवन
पोली	घर म प्रवेश का कमरा, दुवारी
पौहड़ा	आश्रय

"फ"

फलसा	मुख्यद्वार
फैंस	कष्ट, चिंता "ले लेना भैंस, कट जागी फैंस।"

"ब"

बगड़	आगन
बटेऊ	पथिक, यात्री, अतिथि, पाहुना
बत्ता	अधिक, "दो घर बची माँगनी, पर चल ता मशाल की चाँदनी।"
बरगा	सदृश "मैं बी तेरा ए बर्गा सूं।"
बरों बाबर	एकसा, समान
बरजना	मना करना, निषेध करना
बाका	१ छैल, २, टेढा
बागी	टेढी। "भींत क्यों बागी, लहू क्यों लागी"—(सूत न था)
बाबल	पिता
बारनै	द्वार पर
बाहुड़े	लौटना

बिसाना	क्रय करना, खरीदना
बीज	बिजली
बुलद	बैल
बैंडा	टेढ़ा
बल	व्यंग

"भ"

भड़ना	लगाना (किवाड़)
भानड़	घर की समस्त वस्तुएं सामूहिक रूप में
भाने	चाहे, बेशक
भाँटा	कठपुतली का नाच दिखानेवाली एक जाति जो राजस्थान में विशेषरूप से मिलती है।

"म"

मढ़ा	किसी सिद्ध पुरुष की समाधि
मत	मति, समझ
मनयार	मनिहार
मांडा (माढा)	फलका, गेहूँ की चपाती
मेलवाड़	किसी वृद्ध के मरने पर कारज आदि करना
मार मुलक के	अगणित, असंख्या, 'दुनिया भर के'।
मारू	प्रियतम
मोचड़े	जूते
मोडा	साधु

"र"

रांघड़	मुसलमान राजपूत, "सौ रांघड़ों की एक मा।"
रीता	रिक्त, खाली
रूपा	चाँदी
रैवारी	एक जाति

"ल"

ल्हास	१ खेती के काम में सहायता देने के लिये बुलाए हुए अवैतनिक व्यक्तियों को जो भोजन दिया जाता है वह ल्हास कहलाता है।

२ कोआपरेटिव लीग (ढगवारा)

छिपकर

रूक्ष, शुष्क, सूखा

"स"

प्रात काल

गधा

(स्वभाव) आदत—मन मोती और दूध का एक सभाग्रो।
पाटे पाछे नामिलें लाख करो उपाग्रो ॥

समीप—नृप, वैल, विद्या, तिरिया, येह ना गिनें गुणजात।
जो समेप इन के रहे, उसी पे लिपटे हाथ ॥

सुक्ष्म दक्षिणा

काम चलना

आपत्ति, दुष्काल

सखी

एक प्रकार के साधु जो निहंग रहते हैं और शादी नहीं

(स्यार) गीदड़, 'रात नै बोले कागला, दिन नै बोले स्याल'।

श्वसुरालय

करते

साथ

शकुन

"ह"

जोर से

समय, काल, वक्त

हक्का, पुकार

तरफ, ओर, 'आइये म्हारै हेर' ।—तू हमारी ओर आना

सहायक-सामग्री

१ ग्रामीण हिन्दी	डा० धीरेन्द्र वर्मा
२ विचार धारा	डा० धीरेन्द्र वर्मा
३ हिन्दी भाषा और लिपि	डा० धीरेन्द्र वर्मा
४ प्राकृत प्रकाश	डा० ए सी ऊलनर
५ हेमचन्द्र शब्दानुशासनम्	हेमचन्द्र सूरि
६ ब्रजभाषा का व्याकरण	किशोरीदास वाजपेयी
७ दक्खिनी हिन्दी	डा० बाबूराम सक्सेना
८ भोजपुरी भाषा और साहित्य	डा० उदयनारायण तिवारी
९ हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास	डा० उदयनारायण तिवारी
१० हिन्दी भाषा का विकास	डा० श्यामसुन्दर दास
११ हिन्दी व्याकरण	दुलीचन्द
१२ राजस्थानी भाषा और साहित्य	मोतीलाल मेनारिया
१३ पृथ्वीपुत्र	डा० वासुदेव शरण अग्रवाल
१४ भारतीय अनुशीलन ग्रंथ	हिन्दी साहित्य सम्मेलन
१५ पुरातत्व निबंधावलि	राहुल जी
१६ लोकसाहित्य	झवेरचंद मेघाणी
१७ लोकसाहित्य नु समालोचना	झवेरचंद मेघाणी
१८ ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन	डा० सत्येन्द्र
१९ राजस्थानी वातां	सूर्यकरण पारीक
२० भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन	डा० कृष्णदेव उपाध्याय
२१ भारतीय लोकसाहित्य	श्याम परमार
२२ कविता कौमुदी भाग ५ वां	रामनरेश त्रिपाठी
२३ ग्राम साहित्य	रामनरेश त्रिपाठी
२४ धरती गाती है	देवेन्द्र सत्यार्थी
२५ बेला फूले आधीरात	देवेन्द्र सत्यार्थी
२६ चट्टान से पूछ लो	देवेन्द्र सत्यार्थी
२७ बाजत आवे ढोल	देवेन्द्र सत्यार्थी
२८ भोजपुरी ग्राम-गीत भाग २	डा० कृष्ण देव उपाध्याय

२६ भोजपुरी ग्राम्य-गीत	आर्चर तथा संकटा प्रसाद
३० राजस्थानी लोक-गीत	सूर्यकरण पारीक
३१ मैथिली लोक-गीत	रामइकबाल सिंह 'राकेश'
३२ हरियाना के लोकगीत	एस एस रंधावा और देवी शंकर 'प्रभाकर'
३३ कुरु प्रदेश के लोक गीत	गणेश दत्त गौड़
३४ हिन्दी लोक गीत	रामकिशोरी श्रीवास्तव
३५ गढ़वाली लोक-गीत	नत्थी प्रसाद डुगपाल
३६ मालवी लोकगीत	श्याम परमार
३७ ईसुरी की फाग	लोक वार्ता परिषद, टीकमगढ़
३८ ग्राम्य गीतों में करुण रस	सीतादेवी
३९ धूलिधूसरित मणियां	सीतादेवी
४० गरीबदास जी की वाणी	बम्बई
४१ ब्रज की लोक-कहानियां	डा० सत्येन्द्र
४२ ब्रज की लोक कथाएं	आदर्श कुमारी यशपाल
४३. बुन्देलखण्ड की ग्राम कहानियां	शिवसहाय चतुर्वेदी
४४ हरियाना की लोक कथाएं	राजा राम शास्त्री
४५ जातक संग्रह	ना० वा० तुगार
४६ राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा	मोतीलाल मेनारिया
४७ राजस्थान रा दूहा भाग १	नरोत्तमदास स्वामी
४८ ढोला मारू रा दूहा	पारीक, ठाकुर और स्वामी
४९ राजस्थानी कहावतें	मुरलीधर और स्वामी
५० राजस्थानी लोकोक्तियां	डा० कन्हैया लाल सहल
५१ राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद	डॉ० कन्हैया लाल सहाय
५२ घाघ और भड्डरी की कहावतें	श्रीकृष्ण शुक्ल
५३ मराठी साहित्य का इतिहास	कृष्णलाल शरसादे
५४ तारीख जबान ए उर्दू	डा० मसूदहसन
५५ उर्दू साहित्य परिचय	हरिशंकर शर्मा
५६ उर्दू साहित्य का इतिहास	डा० रामबाबू सक्सेना
५७ जीवन विहार	काका कालेलकर
५८ भारतीय रीति रिवाज	रत्नभानु सिंह नाहर
५९ हिन्दुओं के त्योहार	कु० कन्हैया जु
६० राजपूताना का इतिहास	गौरीशंकर हीराचंद ओझा

६१ बीकानेर राज्य का इतिहास — गौरीशंकर हीराचन्द ओझा
६२ हमारा राजस्थान — पृथ्वी सिंह मेहता
६३ इतिहास प्रवेश — जयचंद्र विद्यालंकार
६४ भविसयत्त कहा — धनपाल
६५ हिन्दी काव्यधारा — राहुलजी
६६ जय यौधेय — राहुल जी
६७ बृहद् विष्णु पुराण (प्रदेश माहात्म्य भाग)
६८ स्कन्द पुराण
६९ महाभाष्य
७० महाभारत—सभापर्व, वनपर्व, उद्योगपर्व
७१ मनुस्मृति
७२ निरुक्त (नैगमकाण्ड) दुर्गाचार्य की टीका
७३ वेदधरातल — गिरीशचन्द्र अवस्थी
७४ पाणिनिकालीन भारतवर्ष — डा॰ वासुदेव शरण अग्रवाल
७५ नाटक की परख — डा॰ खत्री
७६ हिन्दी नाटक साहित्य का विकास — डा॰ सोमनाथ गुप्त
७७ महापुराण पुष्पदंतविरचित
७८ शब्द कल्पद्रुम काण्ड २
७९ बीसलदेव रासो — नरपति नाल्ह
८० बालमुकुन्द गुप्त स्मारक-ग्रंथ
८१ अग्रवाल जाति का इतिहास — डा॰ सत्यकेतु विद्यालंकार
८२ 'तारीख फरिश्ता'

1 Linguistic Survey of India — Dr George Grierson
2 The Legends of the Punjab Vol 3 — Sir R C Temple
3 Standard Dictionary of Folk lore, Mythology & legends — Funks and Wagnalls
4 Annals & antiquities of Rajasthan — Col Tod
5 Encyclopedia Britanica — (History of Folk lore

6 Gazetteers of Districts —	Gurgaon, Rohtak, Delhi, Hissar, Karnal, Patiala (State) Jind (State)
7 Introduction to the popular religion and folklore of Northern India	Crooke
8 Golden Bough	Sir James Frazer
9 Queen of the Air	John Ruskin
10 Field songs of Chhattisgarh	Dr S C Dube
11 Snow balls of Garhwal	N S Bhandari
12 Hindi Folk songs	A G Sheriff
13 Folk songs of the Maikal Hills	Dr Vanier Elvin
14 Folk tales from Mahakaushal	Dr Vanier Elvin
15 A History of Maithili literature	Dr J K Misra
16 Dictionary English Sanskrit	William Morrier
17 'Fables choroies'	La Fountain
18 Old Ballad	Frank Sidgwick
19 The English Ballad	Robert Graves
20 The Oxford book of Ballads	Arthur Quiller Couch
21 Ballads & songs of the peasantry of England	Robert Bell
22 Lyrical Ballads	Thomas Hutchunson
23 The Ballads	M J Hodgart
24 Geography of early Budhism	B C Law
25 Census report 1954 paper No 1 Punjab Tables	

26 The origin & development of Bengali language — Dr S K Chatterji
27 Downfall of Hindu India — C V Vaidya
28 Epigraphia Indica
29 Ina Akbari — Bussman
30 Ellit's History of India as told by its own historians
31 Epigraphia Indo Muslemica — Gulam Yazdani
32 The ocean of story — Penger
33 The Rajas of the Punjab

पत्रिकाएँ

१ जनपद
२ मधुकर
३ सरस्वती
४ विशालभारत
५. सम्मेलन पत्रिका (लोकवार्ता विशेषांक)
६ भारतीय साहित्य (हिन्दी विद्यापीठ आगरा)
७ चांद
८ हंस
६ आजकल
१० नागरी प्रचारिणी पत्रिका
११ हिन्दुस्तानी पत्रिका
१२ हिन्दी अनुशीलन पत्रिका, प्रयाग विश्वविद्यालय
१३ राजस्थानी लोकवार्ता
१४ जनवाणी
15 Modern Review
16 Indian Antiquary
17 Man in India-Folk lore number
18 Indian Historical Quarterly—Calcutta
19 General of Asiatic Society of Bengal (Files)
20 General of Royal Asiatic Society—London